विश्व हिंदी पत्रिका

2025

विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

विश्व हिंदी पत्रिका

2025

प्रधान संपादक
डॉ. माधुरी रामधारी

संपादक
डॉ. शुभंकर मिश्र

विश्व हिंदी सचिवालय
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Independance Street, Phoenix 73423
Mauritius

info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
फ़ोन / Phone : +230-6600800

ISSN No. : 1694-2477

वरिष्ठ सहायक संपादक
श्री प्रकाश वीर

सहायक संपादक
श्रीमती श्रद्धांजलि हजगैबी-बिहारी

संपादन-सहयोग
श्री नीरज कुमार, सुश्री मीनाक्षी देवी दोमा

निवेदन

विश्व हिंदी पत्रिका में प्रकाशित लेखों के विचार लेखकों के अपने हैं। विश्व हिंदी सचिवालय और संपादक-मंडल का उनके विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है।

कवर डिज़ाइन
डॉ. प्रकाश झगारू, मॉरीशस

पृष्ठ सज्जा
आर. एस. प्रिंट्स

स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि., 4/5 बी, आसफ़ अली रोड, नई दिल्ली-110002 (भारत) द्वारा प्रकाशित

संपादकीय

हिंदी के वैश्विक प्रसार में भारतीय दूतावासों एवं उच्चायोगों का अनुपम योगदान

भारत सरकार के विदेश मंत्रालय के तत्त्वावधान में वर्तमान में विश्व के 153 देशों में भारतीय राजदूतावास अथवा महावाणिज्य दूतावास एवं उच्चायोग स्थापित हैं। इन राजनयिक मिशनों का प्रमुख उद्देश्य परस्पर सहयोग के आधार पर दुनिया के अलग-अलग देशों से मैत्री संबंध सुदृढ़ करना है। भारतीय दूतावास एवं उच्चायोग भारत की राजभाषा हिंदी के प्रति अपने कर्तव्य को लेकर विशेष सजग एवं सचेष्ट हैं। यही कारण है कि विदेशों में हिंदी का विकास करना भी इनका परम लक्ष्य है, जिसकी पूर्ति घोर परिश्रम, सच्ची निष्ठा और बड़ी उमंग से की जाती है। मुख्यत: हिंदी के अध्ययन को बढ़ावा देते हुए तथा हिंदी की गतिविधियों व प्रतियोगिताओं के आयोजन को प्रोत्साहित करते हुए, भारतीय राजनयिक मिशन हिंदी को अखिल विश्व रूप प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है।

भारतीय मिशनों द्वारा अनेक देशों में हिंदी-कक्षा की विधिवत् व्यवस्था की जाती है। इन कक्षाओं में विभिन्न उम्र, वर्ग, समुदाय और नागरिकता के लोग हिंदी पढ़ते हैं। विदेशी युवक-युवतियाँ हिंदी सीखने के लिए दूतावासों से संपर्क करते हैं। हिंदी-कक्षा की शुरुआत करने से लेकर कुशल अध्यापकों की नियुक्ति करने, शिक्षकों की बैठक लगाने, हिंदी का पाठ्यक्रम निर्धारित करने, पाठ्य-पुस्तक का निर्माण करने, अतिरिक्त पठन हेतु हिंदी की शिक्षाप्रद पुस्तकें और रोचक पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध कराने, गैर पाठ्यक्रम गतिविधियों का आयोजन करने, हिंदी की शैक्षणिक संस्थाओं को अनुदान देने आदि कई प्रकार से भारतीय दूतावास की सक्रियता बनी रहती है। जमैका में हिंदी-शिक्षण के उद्भव और विकास के संबंध में प्रो. सीताराम पोद्दार कहते हैं -

"जमैका में हिंदी की पढ़ाई के लिए उचित कदम पहली बार भारतीय उच्चायोग की ओर से हुआ 1991 में। उच्चायोग के तत्कालीन प्रथम सचिव श्री आर. पी करे का ध्यान लेखक की ओर गया ... एक दिन लेखक को अपने ऑफ़िस में बुलाया और हिंदी पढ़ाने का प्रस्ताव रखा ... सो उन्होंने खुशी-खुशी हामी भर दी। भारतीय उच्चायोग की अनुशंसा पर भारत सरकार के हिंदी विभाग द्वारा उन्हें हिंदी शिक्षण की नियुक्ति मिल गई। तब से वे जमैका में हिंदी-शिक्षण एवं प्रचार में लगे हैं।... जमैका जैसी जगह में यदि भारतीय उच्चायोग का ध्यान नहीं गया होता, तो हिंदी शिक्षा की शायद ही कोई व्यवस्था कभी हो पाती।"

आधुनिक कंप्यूटर और इंटरनेट के युग में आभासी पटल पर हिंदी की कक्षा का विस्तार हुआ है। दुनिया भर के उत्सुक विद्यार्थी आभासी कक्षा में अपने समय और सुविधा के अनुकूल हिंदी सीखते हैं। भारतीय दूतावास हिंदी की ऑनलाइन पढ़ाई का पूरा समर्थन करता है। बेलारूस के डॉ. मिहईल मिहायलोव का कहना है –

"भारतीय दूतावास की मदद से और पूर्व उपराष्ट्रपति श्री भैरोसिंह शेखावत जी के सुझाव से मैं ने गोर्की में बेलारूसी ऑनलाइन हिंदी वेब सर्वर आयोजित किया था। इस सर्वर पर अब करीब पचास विविध सामग्री के वेबसाईट हैं। इस वेब सर्वर के माध्यम से हर साल हज़ारों रूसी भाषी छात्र-छात्राएँ हिंदी और भारतीय इतिहास और संस्कृति की कोई-न-कोई जानकारी प्राप्त कर रहे हैं और सौ से अधिक ऑनलाइन विद्यार्थी प्राथमिक स्तर से लेकर हिंदी का अध्ययन करते हैं।"

भारतीय दूतावास के सहयोग से भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् पिछले कई दशकों से विदेशी विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान कर रही है। परिणामस्वरूप, भारत के केन्द्रीय हिंदी संस्थान में हिंदी का अध्ययन करने में विद्यार्थी सक्षम हो सके हैं। उनके लिए दूतावास उदारतापूर्वक नि:शुल्क वीज़ा का प्रबंध करता है और उन्हें भारत में हिंदी का अध्ययन करते समय भारतीय संस्कृति को ध्यान से देखने और गहराई से समझने के लिए प्रेरित भी करता है। डॉ. दानुता स्तासिक के अनुसार पोलैंड के छात्रों को सन् 1978 से यह छात्रवृत्ति मिल रही है और प्रो. उपुल रंजीत हेवा वितानगमगे बताते हैं कि श्रीलंकाई छात्र सन् 1980 से छात्रवृत्ति प्राप्त करके हिंदी सीखने के लिए भारत जाते रहे हैं -

"सन् 1980 के दशक में हिंदी-अध्ययन के क्षेत्र में नया मोड़ दिलाने हेतु भारतीय सरकार ने एक महत्त्वपूर्ण कदम उठाया। उस कार्यक्रम के अंतर्गत भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्(आई.सी.सी.आर) द्वारा आगरा तथा दिल्ली में स्थित 'केन्द्रीय हिंदी संस्थानों' में हिंदी अध्ययन करने हेतु श्रीलंकाई विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दी गईं। इस कार्यक्रम के अधीन वर्तमान में भी श्रीलंकाई छात्र हिंदी अध्ययन हेतु भारत जाते रहते हैं।"

हिंदी के उन्नयन में उपर्युक्त छात्रवृत्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। थाईलैंड के डॉ. बमरुंग खामिक रेखांकित करते हैं कि "छात्र बैंकॉक में भारत के दूतावास से आगरा में केन्द्रीय हिंदी संस्थान में पढ़ने की छात्रवृत्ति पा सकते हैं और यहाँ से हिंदी का ज्ञान प्राप्त करने के बाद अपने देश वापस आकर हिंदी शिक्षक बन जाते हैं।" इसी प्रकार डॉ. ऑलेना मायरोनिवा स्पष्ट करती है कि "आई.सी.सी. आर प्रोग्राम के अंतर्गत यूक्रेनी छात्रों को भारत जाकर हिंदी सीखने तथा शोध-कार्य करने का सुअवसर मिलता है, जो बहुतों के भावी व्यवसाय के लिए निर्णायक और प्रेरणात्मक सिद्ध होता है। भारत में प्रेरित होकर छात्र बड़े उत्साह से हिंदी के प्रचार में जुट जाते हैं।"

हिंदी का ज्ञान रखने वालों को भारतीय दूतावास में नौकरी करने का सुअवसर भी मिलता है। थायलैंड के आचार्य डॉ. करुणा कुशलासाय भारत से हिंदी पढ़कर स्वदेश लौटे, तो उन्होंने बैंकॉक के भारतीय दूतावास में नौकरी करना आरंभ किया। यदि हिंदी से अपरिचित किसी विदेशी को भारतीय उच्चायोग में सेवा करने का मौका मिलता है, तो वहाँ के कर्मचारियों के साथ काम करते हुए वह स्वयं ही हिंदी सीख लेता है। हिंदी में बातचीत करने का वह आनंद उठाने लगता है, तो उसे इस भाषा से प्रेम हो जाता है और वह हिंदी के प्रसार में हाथ बँटाने लगता है। इसका ज्वलंत उदाहरण हंगरी की डॉ. दैबरेत्सैनी आर्पाद हैं, जिनके बारे में डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा लिखते हैं –

"हंगरी के भारतीय दूतावास में कार्यरत डॉ. दैबरेत्सैनी आर्पाद ने स्वयं हिंदी सीखकर विश्वविद्यालय में हिंदी अध्यापन करने का कार्य किया था।"

जिन देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी-शिक्षण होता है, वहाँ भारतीय उच्चायोग की सहायता से भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् भारत के योग्य और अनुभवी प्राध्यापकों को अतिथि आचार्य के रूप में भेजती है। रोमानिया के बुखारेस्त विश्वविद्यालय में हिंदी-शिक्षण के इतिहास पर दृष्टि डाली जाए, तो ज्ञात होता कि 1965 से 1967 तक भारत के प्राध्यापक, कवि और लेखक डॉ. इंदु प्रकाश ने अपनी सेवाएँ प्रदान कीं और उन्होंने हिंदी भाषा का ऐच्छिक पाठ्यक्रम आरंभ किया। 1968 से 1972 के दौरान हैदराबाद के उस्मानिया विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. प्रभुदयाल विद्यासागर की प्रतिनियुक्ति हुई और उन्होंने रोमानियन विद्यार्थियों के लिए पाठ्यपुस्तक प्रकाशित की और हिंदी-रोमानियन शब्दकोश तथा रोमानियन-हिंदी शब्दकोश तैयार किया। 1973 से 1974 के कार्यकाल में दिल्ली की प्राध्यापिका प्रोफ़ेसर उषा चौधरी ने हिंदी एवं भारतीय कला व संस्कृति का प्रचार किया। 1975 से 1978 की अवधि में डॉ. विद्यासागर ने पुन: इस विश्वविद्यालय में हिंदी का अध्यापन किया। 1979 से 1983 तक आगरा के केन्द्रीय हिंदी संस्थान से डॉ. सूरजमान सिंह ने हिंदी पढ़ाई तथा 1983 से 1984 के दौरान जबलपुर विश्वविद्यालय से डॉ. महावीर सरन जैन ने हिंदी का अध्ययन किया। 1998 और 1999 में प्राध्यापिका लता गुप्ता ने हिंदी पढ़ाई और 1999 से 2000 तक प्रो. यतीन्द्र तिवारी ने हिंदी साहित्य का पाठ्यक्रम पढ़ाया। 2000 में डॉ. शत्रुघ्न विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाने के लिए नियुक्त हुए। यह प्रमाणित करता है कि हिंदी-शिक्षण को नई गति देने के लिए भारतीय दूतावास के मार्गदर्शन में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् अतिथि आचार्यों को नियमित रूप से विदेश भेजती रही है। किसी कारणवश यदि अतिथि प्रोफ़ेसर की प्रतिनियुक्ति संभव नहीं हो पाती है, तो भारतीय दूतावास अन्य निराले ढंग से मदद करता है। जापान में ऐसी ही परिस्थिति उत्पन्न हुई। प्रो. सुरेश ऋतुपर्ण बताते हैं –

"भारत स्वतंत्र हो गया था और सन् 1948 में प्रो. बरलास भारत लौट गए थे। ऐसी स्थिति में हिंदी जानने वाले भारतीय को लाना कठिन काम था तब प्रो. दोई के प्रयासों से भारतीय दूतावास के राजनयिक अधिकारी श्री पेरोला रत्नम की विदुषी पत्नी श्रीमती कमला रत्नम ने अवैतनिक तौर पर हफ़्ते में दो बार हिंदी पढ़ाना स्वीकार कर लिया।"

हिंदी के प्रति भारतीय दूतावास का समर्पण गहनतम है। हिंदी की गतिविधियों और प्रतियोगिताओं का आयोजन करने में विश्वविद्यालयों तथा हिंदी प्रचारिणी संस्थाओं को भारतीय राजनयिक मिशन पूरा सहयोग प्रदान करता है। बलगारिया में भारतीय राजदूतावास और सोफ़िया विश्वविद्यालय के भारतशास्त्र विभाग के समन्वित सहयोग से सोफ़िया विश्वविद्यालय में हिंदी दिवस आयोजित किया जाता है। मार्च 2005 में भारतीय उच्चायुक्त श्री कैलाश लाल अग्रवाल के प्रयास से पहली बार जमैका में विश्व हिंदी दिवस मनाया गया। इज़राइल के डॉ. गेनादी श्लोम्पर उल्लेख करते हैं -

"सन् 2000 से लेकर तेल-अवीव विश्वविद्यालय में पढ़ाई के हर वर्ष के अंत में 'हिंदी समारोहों' का आयोजन किया जाता रहा है, जिनमें भाग लेने के लिए भारत के और हिंदी के सैंकड़ों प्रेमी आते हैं। ... भारत के राजदूतावास की सहायता से ऐसे समारोह एक शुभ

परंपरा बन गए हैं, जो भारत और उसकी राजभाषा के प्रति इज़राइलवासियों की रुचि और प्रेम का प्रदर्शन करते हैं।"

हिंदी क्लब के पिकनिक में भी दूतावास के अधिकारी सहर्ष सम्मिलित होते हैं -

"हिंदी क्लब द्वारा जब भी पिकनिक का आयोजन किया गया, भारतीय उच्चायोग के स्टाफ़ और उनके परिवार ही नहीं, उच्चायुक्त श्री अग्रवाल ने स्वयं भी शामिल होकर उत्साह बढ़ाया।"

विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस के सभी कार्यक्रम और अंतर्राष्ट्रीय हिंदी प्रतियोगिताएँ शिक्षा एवं मानव संसाधन मंत्रालय और भारतीय उच्चायोग, मॉरीशस के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित की जाती हैं। विशेषकर हिंदी प्रतियोगिताओं के आयोजन में भारतीय उच्चायोग का आर्थिक सहयोग सराहनीय है। पिछले साल विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर विश्व हिंदी सचिवालय और भारतीय उच्चायोग के परस्पर सहयोग से 'हिंदी में अभिव्यक्ति' अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता आयोजित हुई, जिसमें विश्व के पाँच भिन्न क्षेत्रों में प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त विजेताओं को भारतीय उच्चायोग ने नकद राशि से पुरस्कृत किया। इस वर्ष हिंदी दिवस के अवसर पर मॉरीशस के महात्मा गांधी संस्थान द्वारा आयोजित नुक्कड़ नाटक प्रतियोगिता के विजेताओं को भारतीय उच्चायोग ने प्रमाण-पत्र सहित नकद राशि प्रदान की। यू.के. हिंदी समिति, लंदन द्वारा कई वर्षों से संचालित 'हिंदी ज्ञान प्रतियोगिता' के विजेताओं के लिए भारतीय उच्चायोग, इंग्लैंड द्वारा भारत-यात्रा की व्यवस्था की जाती है –

"हिंदी ज्ञान प्रतियोगिता ने हिंदी सीखने वाले विद्यार्थियों और हिंदी पढ़ाने वाले शिक्षकों में नया उत्साह पैदा किया है। भारतीय उच्चायोग का योगदान इस प्रकल्प में उल्लेखनीय रहा है। प्रतियोगिता में उच्च स्थान पाने वाले कुछ विद्यार्थियों को भारत की यात्रा पर ले जाया जाता है, जिससे वे भारत को और भारत में हिंदी को देख-सुन पाते हैं।"

हिंदी के प्रचार की हर संभावना की खोज करते हुए भारतीय दूतावास एवं उच्चायोग हिंदी को विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में ठोस कदम उठाते हैं। हिंदी-शिक्षण के लिए उत्कृष्ट संसाधन एवं सुविधाएँ उपलब्ध कराने और हिंदी की गतिविधियों और प्रतियोगिताओं के आयोजन को प्रोसाहन देने के अथक प्रयासों से भारतीय राजनयिक मिशन ने हिंदी के महत्त्व की ओर विश्व का ध्यान आकृष्ट किया और हिंदी का परचम लहराने में अनुपम योगदान दिया।

डॉ. माधुरी रामधारी
महासचिव
विश्व हिंदी सचिवालय

संपादकीय

हिंदी : संवाद, संस्कृति और नवाचार

वैश्विक परिदृश्य में गरीबी, सामाजिक एवं आर्थिक विषमता तथा अवसरों की सीमित उपलब्धता जैसी व्यापक चुनौतियों के समाधान हेतु हम कदम-से-कदम मिलाकर चल रहे हैं। इसी क्रम में संयुक्त राष्ट्र द्वारा वर्ष 2015 में 'सतत विकास' के कतिपय लक्ष्य निर्धारित किए गए, जिनके तहत वर्ष 2030 तक एक न्यायसंगत, समतामूलक और सतत भविष्य के निर्माण का संकल्प लिया गया। इन लक्ष्यों में लक्ष्य-4 विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, जो 'गुणतामूलक शिक्षा' की बात करता है। इसके अंतर्गत मद-4.6 में यह आकांक्षा स्पष्ट रूप से व्यक्त की गई है कि वर्ष 2030 तक विश्व के सभी नागरिक, विशेषकर युवा तथा वयस्क जनसंख्या, बुनियादी साक्षरता एवं संख्याज्ञान के कौशलों से संपन्न हो सकें। कहना नहीं होगा कि औपचारिक एवं अनौपचारिक, दोनों प्रकार की शैक्षिक व्यवस्थाओं के माध्यम से इन बुनियादी कौशलों का विकास न केवल व्यक्तिमूलक बल्कि सामाजिक समता एवं सहभागी विकास को भी सुदृढ़ करता है।

विदित ही है कि भाषा केवल संप्रेषण का साधन भर नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक पहचान की वाहिका, सामाजिक व्यवहार का माध्यम तथा संज्ञानात्मक विकास का एक प्रमुख आधारस्तंभ भी है। विभिन्न शैक्षिक शोध इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण करना, शिक्षार्थी के मनोगत और भावनात्मक पहलुओं के अधिक निकट होती है, जिससे उनकी सीखने की गति में वृद्धि होती है। नेल्सन मंडेला का प्रसिद्ध कथन इस संदर्भ में अत्यंत सार्थक है कि "यदि आप किसी व्यक्ति से उसकी सीखी हुई भाषा में बात करते हैं, तो वह उसके मस्तिष्क तक पहुँचती है, परंतु यदि उसी व्यक्ति से उसकी मातृभाषा में संवाद करते हैं, तो वह सीधे उसके हृदय में उतर जाती है।"

यूनेस्को के अनुसार, विश्व के लगभग चालीस प्रतिशत बच्चे ऐसे भाषा-परिवेश में शिक्षा प्राप्त करते हैं, जिसे वे पूर्ण रूप से समझ नहीं पाते। यह स्थिति उनकी सीखने की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है और कई बार उन्हें शिक्षा को बीच में ही छोड़ने के लिए बाध्य कर देती है। स्वाभाविक है कि यह प्रवृत्ति शिक्षा की सार्वभौमिकता और सतत विकास के लक्ष्य-4 की उपलब्धि को गंभीर रूप से प्रभावित करती है।

भाषा को लेकर एक और वैश्विक चिंता यह भी है कि लगभग हर दो सप्ताह में किसी-न-किसी भाषा के लुप्त होने का खतरा मंडराता है। यह तथ्य वैश्विक स्तर पर न केवल भाषाई विविधता के संकट को रेखांकित करता है, बल्कि हमारी सांस्कृतिक धरोहर, बौद्धिक समृद्धि और सामूहिक ज्ञान-परंपरा के अपूरणीय क्षरण की ओर भी संकेत करता है।

इस परिदृश्य में मातृभाषा के संरक्षण एवं मातृभाषा-आधारित शिक्षा-पद्धति को बढ़ावा देना अब एक नीतिगत आवश्यकता बन गई है। ध्यान रहे कि हमारा यह प्रयास भाषाई संरक्षण के अतिरिक्त मनुष्य के बुनियादी अधिकार, शैक्षिक न्याय और समावेशी ज्ञान-विकास की दिशा में भी बेहद महत्त्वपूर्ण है।

हम जानते हैं कि भारत की भाषाई संरचना अत्यंत विविधतापूर्ण है, जहाँ सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ न केवल संप्रेषण के लिए प्रयुक्त होती हैं, बल्कि सामाजिक पहचान और सांस्कृतिक विरासत की संवाहिका भी हैं। भाषाई बहुलता के इस समृद्ध परिदृश्य में हिंदी की भूमिका हम सबके लिए विशेष महत्त्व रखती है। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार, हिंदी भारत के लगभग 43 प्रतिशत लोगों की मातृभाषा है, जिनकी संख्या लगभग 52.8 करोड़ है। विश्व स्तर पर भी हिंदी मंदारिन-चीनी, स्पेनिश और अंग्रेज़ी के बाद चौथी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है।

मातृभाषा के अतिरिक्त, द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी को अपनाने वाले करोड़ों भारतीय इसकी उपयोगिता और प्रभाव-क्षमता को और अधिक सुदृढ़ करते हैं। यह भाषा सामाजिक-आर्थिक अवसरों के विस्तार, गुणतापूर्ण शिक्षा की सार्वभौमिक उपलब्धता तथा राष्ट्रीय एकता और समावेशन की भावना को प्रबल करने में केंद्रीय भूमिका निभाती है।

एथ्नोलॉग (Ethnologue) एवं ग्लॉटोलॉग (Glottolog) के अनुसार, हिंदी (आईएसओ कोड: 639-1: hi, 639-2/3: hin) की डिजिटल उपस्थिति लगातार बढ़ रही है। एथ्नोलॉग और ग्लॉटोलॉग जैसे बिब्लियोग्राफ़िक डेटाबेस हिंदी को एक स्वतंत्र और संस्थागत भाषा के रूप में स्वीकारते हैं। इसका निहित अर्थ यह है कि हिंदी एक विशिष्ट भाषा है, जिसे सामाजिक और संस्थागत स्तर पर पर्याप्त समर्थन प्राप्त है।

भारत की शिक्षा-नीतियाँ भाषाई विविधता और उसके संरक्षण के बुनियादी दर्शन पर आधारित रही हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 सहित भारत की सभी शिक्षा नीतियाँ प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा या स्थानीय भाषा के माध्यम से प्रदान करने पर बल देती रही हैं। इस परिप्रेक्ष्य में हिंदी का विशेष स्थान है। यह देश के विभिन्न राज्यों में व्यापक रूप से शिक्षण-अधिगम का प्रभावी माध्यम है।

स्पष्ट है कि हिंदी न केवल भाषाई पहुँच का विस्तार करती है, बल्कि शिक्षार्थियों की सीखने की क्षमता, आत्मविश्वास और उपलब्धि के स्तर में भी उल्लेखनीय सुधार लाती है। पर्याप्त शैक्षिक सामग्री की उपलब्धता और प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या इसके प्रभाव को और अधिक मज़बूती प्रदान करती है।

ध्यान रहे कि वर्तमान परिदृश्य में हिंदी केवल शैक्षिक व्यवस्था में ही प्रासंगिक नहीं है, बल्कि यह सामाजिक समन्वय और राष्ट्रीय एकता के एक सूत्र के रूप में कार्य करती है। महात्मा गांधी का यह कथन कि "राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है," राष्ट्रीय भाषा हिंदी की सामाजिक सहभागिता, लोक-सशक्तिकरण और नागरिक-समता की प्राप्ति में इसकी केंद्रीय भूमिका को बड़ी स्पष्टता से रेखांकित करता है। खुशी की बात है कि हिंदी विभिन्न भाषाई पृष्ठभूमि वाले नागरिकों को परस्पर संवाद तथा अवसर-सुलभता का मंच प्रदान करती रही है, जिससे सामाजिक गतिशीलता और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को निरंतर बल मिलता रहा है।

आर्थिक दृष्टि से भी हिंदी का महत्त्व दिनों-दिन बढ़ रहा है। व्यापार, विपणन, मीडिया, सूचना-प्रौद्योगिकी तथा सेवाओं के विविध क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग नई आर्थिक संभावनाओं के द्वार खोल रहा है। इनके माध्यम से रोज़गार-सृजन, उद्यमशीलता और बाज़ार विस्तार को विशेष प्रोत्साहन मिल रहा है। साथ ही, डिजिटल दुनिया में हिंदी की निरंतर बढ़ती उपस्थिति ने इसे एक नई ऊर्जा प्रदान की है।

हालाँकि इन उपलब्धियों के बावजूद हिंदी के विकास की नीतिगत यात्रा चुनौतियों से मुक्त नहीं है। शिक्षण-माध्यम के रूप में हिंदी के प्रयोग में राज्यवार असमानताएँ, उच्च शिक्षा, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और शोध के क्षेत्रों में आवश्यक संदर्भ-साहित्य की अपेक्षित उपलब्धता का अभाव तथा डिजिटल भाषा प्रौद्योगिकी, विशेषकर कृत्रिम बुद्धिमत्ता, प्राकृतिक भाषा संसाधन और कंप्यूटेशनल भाषा-विज्ञान के क्षेत्रों में हिंदी की प्रगति कमोबेश संतोषजनक होने के बावजूद, वैश्विक प्रतिस्पर्धा के मानकों के अनुरूप इस दिशा में अभी और प्रयासों की आवश्यकता है।

बहुभाषिकता के चरित्र को सुरक्षित बनाए रखने के लिए हिंदी के विकास को और अधिक संतुलित तथा संवेदनशील स्वरूप में आगे बढ़ाने की ज़रूरत है। भारतीय भाषाओं के संरक्षण एवं संवर्धन के साथ ही हिंदी को एक संपर्क-भाषा के रूप में सशक्त करने हेतु विविध विषयों में मानकीकृत हिंदी में पाठ्य-सामग्री तथा तकनीक-समर्थित संसाधनों का विकास, हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीनी अनुवाद, ई-लर्निंग तथा भाषा प्रौद्योगिकी में हिंदी की सुदृढ़ उपस्थिति समान शैक्षिक अवसरों की उपलब्धता के लिए भी अनिवार्य है। इसके साथ ही विश्वभर में फैले भारतीय प्रवासी समुदाय के मध्य हिंदी शिक्षा-शिक्षण की सुलभता भी एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 भारतीय शिक्षा व्यवस्था के लिए एक परिवर्तनकारी दृष्टि प्रस्तुत करती है, जिसमें हिंदी, संस्कृत तथा सभी भारतीय भाषाओं के संरक्षण एवं संवर्धन को विशेष प्राथमिकता दी गई है। यह नीति बहुभाषी शैक्षिक वातावरण को प्रोत्साहित करती है, जिससे भारत की भाषाई-सांस्कृतिक विविधता न केवल सुरक्षित रहती है, बल्कि राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक समन्वय और सह-अस्तित्व की भावना भी सुदृढ़ होती है। सभी भाषाओं को समान प्रोत्साहन प्रदान करना इस नीति का मूल सिद्धांत है।

एनईपी 2020 त्रिभाषा-सूत्र का समर्थन करती है, जिसके अंतर्गत राज्यों को अपनी भाषाई परिस्थिति और आवश्यकताओं के अनुरूप भाषाओं के चयन का अधिकार प्रदान किया गया है। साथ ही इसमें यह अनुशंसा की गई है कि शिक्षा-शिक्षण का माध्यम कम-से-कम कक्षा 5 तक तथा वांछनीय रूप से कक्षा 8 तक मातृभाषा अथवा स्थानीय भाषा ही हो। भारत के व्यापक भाषाई परिदृश्य में हिंदी की भूमिका एक संपर्क-भाषा के रूप में देखी जाती है।

हिंदी आज विश्व-पटल पर एक महत्त्वपूर्ण भाषा के रूप में स्थापित है। विश्वविद्यालयों में यह दक्षिण एशियाई अध्ययन, भाषाविज्ञान, इंडोलॉजी, एशियाई भाषाएँ एवं संस्कृतियाँ, आधुनिक भाषाएँ, विदेशी भाषाविज्ञान, अनुवाद एवं व्याख्या अध्ययन तथा प्रवासी अध्ययन, जैसे विविध शैक्षणिक अनुशासनों के अंतर्गत पढ़ाई जाती है। इससे स्पष्ट है कि हिंदी की वैश्विक प्रतिष्ठा निरंतर बढ़ रही है।

प्रवासी भारतीय समुदाय, विशेषतः गिरमिटिया देशों, मॉरीशस, फ़िजी, त्रिनिदाद, सूरीनाम और गयाना में हिंदी सांस्कृतिक पहचान का एक अविभाज्य अंग है, जो 'भाषा गई तो संस्कृति गई' की भावना का प्रबल उदाहरण है। इन देशों में बैठकाओं, आर्य समाज केंद्रों,

मंदिरों, सांस्कृतिक संस्थाओं तथा विद्यालयों के माध्यम से हिंदी संरक्षण का महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाया जा रहा है। मॉरीशस में हिंदी को सुदृढ़ संस्थागत समर्थन प्राप्त है, तथापि यहाँ डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता को और सशक्त किए जाने की आवश्यकता है। त्रिनिदाद, गयाना और सूरीनाम में हिंदी सांस्कृतिक परंपराओं में अधिक सक्रिय है, जबकि फ़िजी में यह दैनिक संप्रेषण के साथ-साथ शैक्षिक विमर्शों में भी प्रमुखता से बनी हुई है।

गिरमिटिया देशों के अतिरिक्त, हिंदी विश्वभर में भारतीय मूल के समुदायों के मध्य संपर्क-भाषा के रूप में भारतीयता की पहचान है। यह उल्लास का विषय है कि हिंदी के प्रति अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शोध-रुचि निरंतर बढ़ रही है। अनेक विदेशी विद्वान, हिंदी भाषा के माध्यम से भारतीय साहित्य, दर्शन, संस्कृति और सभ्यता का अध्ययन करते हैं। यह प्रवृत्ति हिंदी की वैश्विक प्रासंगिकता का सशक्त संकेत है, जहाँ यह केवल विरासत और संस्कार की भाषा ही नहीं, बल्कि वैश्विक ज्ञान, संवाद और सृजन की एक प्रभावी भाषा बनकर उभरी है।

हिंदी भारत की सांस्कृतिक 'सॉफ़्ट पावर' का केंद्रीय प्रतीक है। भारतीय दूतावासों, इंडियन काउंसिल फ़ॉर कल्चरल रिलेशंस (ICCR) तथा विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस द्वारा हिंदी-संवर्धन हेतु विविध कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं। विश्व हिंदी सम्मेलन और प्रवासी भारतीय दिवस जैसे अंतरराष्ट्रीय आयोजनों ने हिंदी के वैश्विक स्वरूप को एक सशक्त मंच प्रदान किया है। इस प्रकार हिंदी भौगोलिक सीमाओं से परे, विश्व-पटल पर भारत की उपस्थिति को और अधिक सुदृढ़ करती है।

उल्लेखनीय है कि भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु अनेक सार्थक प्रयास किए जा रहे हैं, तथापि गुणात्मक विस्तार, तकनीक-सुलभता और नवाचार के स्तर पर कुछ चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं। अतः हिंदी के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए पूरे मिशनभाव से सामूहिक, योजनाबद्ध तथा दूरदर्शी तरीके से आगे बढ़ना हमारी आज की अपेक्षाओं के सर्वथा अनुरूप है।

21वीं सदी में हिंदी की भूमिका शिक्षा, प्रशासन, प्रौद्योगिकी और संस्कृति के अनेक आयामों में उसकी अनिवार्य उपस्थिति के कारण दिन-ब-दिन बढ़ रही है। इन विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा में सघन प्रयास करने की ज़रूरत है। परंपरागत शिक्षण-शास्त्र (Pedagogy), वयस्क शिक्षा (Andragogy) और स्व-निर्देशित शिक्षा (Heutagogy) के साथ कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित शिक्षा (AI-gogy) अपनाए जा रहे हैं, जहाँ शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। इस प्रक्रिया में शिक्षक, जहाँ नवाचार के मार्गदर्शक हैं, वहीं 'एआई' इस यात्रा में हमारे साथ बतौर सह-चिंतक है। शिक्षण-अधिगम का यह मॉडल हिंदी-शिक्षण को जटिलता से सरलता की ओर ले जाता है, जो इसे अन्वेषणपरक और रचनात्मक भी बनाता है।

डिजिटल इकोसिस्टम, प्राकृतिक भाषा संसाधन (Natural Language Processing – NLP), बहुभाषी प्लेटफ़ॉर्म और एआई-आधारित तकनीकें, हिंदी सामग्री के वैश्विक सृजन एवं वितरण को अभूतपूर्व गति प्रदान कर रही हैं। इस दिशा में आगे डिजिटल साक्षरता, समालोचनात्मक चिंतन और अंतर्सांस्कृतिक संप्रेषण जैसे 21वीं सदी के अधिकाधिक कौशलों से हिंदी को जोड़ने पर यह भाषा निःसंदेह नवाचार और वैश्विक संवाद के लिए एक प्रासंगिक भाषा बनेगी।

'कम पढ़ाना, अधिक सिखाना' (Less Teaching, More Learning) के सिद्धांत पर आधारित शिक्षार्थी-केंद्रित शिक्षा, हिंदी को वैश्विक स्तर पर सशक्त बनाने में मदद करेगी। समावेशी शिक्षण-पद्धतियाँ, प्रौद्योगिकीय नवाचार, सामाजिक सहभागिता और कॉर्पोरेट सहयोग के माध्यम से हिंदी न केवल अपनी विरासत को संरक्षित रख सकती है, बल्कि ज्ञानप्रधान, डिजिटल और पारस्परिक सरोकारों के माध्यम से पूरे विश्व में सृजनात्मक भूमिका निभा सकती है।

डिजिटल केन्द्रित हिंदी की विकास यात्रा अपनी गति पर है, पर ध्यान रहे कि इंटरनेट पर सामग्री को खोजना और उपयोग करना उपयोगकर्ताओं के लिए कई बार कठिन हो जाता है। मौजूदा तकनीकी परिदृश्य में हिंदी, डिजिटल सामग्री के 'मेटाडाटा' मानकीकरण की चुनौतियों का सामना कर रही है। वैश्विक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए मेटाडाटा द्विभाषी (देवनागरी एवं अंग्रेज़ी) रूप में हों, तो बेहतर है। साथ ही इसे ISO भाषा एवं लिपि कोड (ISO Language & Script Codes Standards) के मानकों के अनुरूप तैयार किए जाने से अधिक सुगमता होगी। इनके अतिरिक्त, सांस्कृतिक संदर्भयुक्त कीवर्ड, लिप्यंतरण तथा विकिडाटा जैसे संसाधनों की भी इस दिशा में महती आवश्यकता है। हिंदी सामग्री की वैश्विक पहुँच एवं उपलब्धता को अधिकाधिक सुनिश्चित करने के लिए टैगिंग, इंडेक्सिंग और वर्गीकरण का मानकीकरण अनिवार्य है, ताकि हिंदी में उपलब्ध संसाधनों और डिजिटल पुस्तकालयों आदि की खोज सरल व सुगम हो सके।

डिजिटल एकरूपता सुनिश्चित करने हेतु 'वेब कंटेंट एक्सेसिबिलिटी गाइडलाइंस' (WCAG) का पालन भी आवश्यक है। इसमें सबटाइटल, ऑडियो विवरण, सांकेतिक भाषा तथा स्क्रीन रीडर अनुकूलता, जैसी सुविधाओं को अधिकाधिक शामिल करना उचित होगा, ताकि दिव्यांग शिक्षार्थियों को भी इनका समान रूप से लाभ मिल सके। साथ ही, सहभागिता द्वारा मेटाडाटा संवर्धन और समय-

समय पर मेटाडाटा ऑडिट जैसे कदम उपलब्ध सामग्री की सटीकता, उपयोगिता और शैक्षिक प्रासंगिकता सुनिश्चित करने में मददगार साबित हो सकते हैं।

हिंदी को वैश्विक स्तर पर प्रभावी रूप से प्रतिष्ठित करने के लिए एक समग्र, दूरदर्शी और बहुस्तरीय रणनीति की आवश्यकता है।

इस दृष्टि से, एनसीईआरटी द्वारा संचालित 'दीक्षा' (DIKSHA – Digital Infrastructure for Knowledge Sharing) जैसे सफल मॉडल से प्रेरणा लेते हुए, हिंदी के लिए एक 'डिजिटल वर्टिकल' स्थापित करना एक प्रभावी कदम साबित हो सकता है। यह प्लेटफ़ॉर्म हिंदी शिक्षार्थियों, शिक्षकों, शोधकर्ताओं और वैश्विक उपयोगकर्ताओं के लिए सभी प्रकार की सामग्रियों को एक ही स्थान पर उपलब्ध कराएगा, जिससे सूचनाओं का अधिकतम उपयोग और उनका समुचित वितरण सुनिश्चित होगा। इससे निश्चय ही हिंदी की वैश्विक उपस्थिति सुदृढ़ होगी और डिजिटल शिक्षा की उभरती दुनिया में इसकी प्रासंगिकता और बढ़ेगी।

हिंदी वर्टिकल के अंतर्गत एक 'शिक्षण प्रबंधन प्रणाली' (Learning Management System – LMS) इस प्रकार विकसित की जा सकती है कि यह विभिन्न क्षेत्रों और उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप (Hindi for Specific Purposes – HSP) दक्षता-आधारित मॉड्यूल प्रदान करे। उदाहरण के लिए, 'डॉक्टरों के लिए हिंदी', 'इंजीनियरों के लिए हिंदी', 'विधि-विशेषज्ञों के लिए हिंदी', 'आपदा प्रबंधन अधिकारियों के लिए हिंदी', 'बैंकिंग कर्मियों के लिए हिंदी' आदि। इन मॉड्यूलों में अध्यापक द्वारा संचालित सत्र, पूर्व-रिकॉर्डेड पाठ, पीडीएफ़, ऑडियो-वीडियो तथा अन्य मल्टीमीडिया संसाधनों का उपयोग करके इन्हें अधिक रोचक और प्रभावी बनाया जा सकता है।

भारत सरकार के 'मिशन कर्मयोगी' के अंतर्गत 'इंटीग्रेटेड गवर्नमेंट ऑनलाइन ट्रेनिंग' (iGOT Karmayogi) प्लेटफ़ॉर्म की तर्ज़ पर इन मॉड्यूल्स को 2–3 घंटे की अवधि वाली छोटी-छोटी इकाइयों में विभाजित किया जा सकता है, जिनका उद्देश्य हिंदी में बुनियादी तथा पूरक कौशलों का विकास करना होगा। सुनने, बोलने, पढ़ने और लिखने, इन चार मुख्य भाषा-कौशलों को आधार बनाकर, शिक्षण-प्रक्रिया में नियमित मूल्यांकन से शिक्षार्थियों की प्रगति का आकलन किया जा सकेगा। मॉड्यूल पूर्ण करने पर 'कौशल विकास प्रगति' (Holistic Progress Card) के रूप में प्रमाण-पत्र प्रदान किए जाएँ, ताकि सीखने के अनुभव को और भी यादगार बनाया जा सके।

यह वर्टिकल विश्वभर के हिंदी-शिक्षार्थियों और शिक्षकों के लिए एक प्रौद्योगिकी-आधारित केंद्रीकृत 'एलएमएस' (LMS) के रूप में उपयोगी सिद्ध होगा, जहाँ विविध स्तरों के शिक्षण-संसाधन और परीक्षाएँ उपलब्ध होंगी। इसका वास्तविक लाभ यह होगा कि हिंदी वैश्विक स्तर पर शिक्षण व रोज़गार जैसे बुनियादी प्रश्नों से सीधे जुड़ सकेगी और इसकी उपयोगिता, व्यावहारिकता तथा स्वीकार्यता का दायरा पहले के मुकाबले बढ़ेगा। अपेक्षित संसाधन, उपयोगकर्ता तक सुगम, व्यापक और निःशुल्क पहुँचे, इस हेतु पोर्टल को मौजूदा सरकारी ऑनलाइन शिक्षण प्लेटफ़ॉर्म, जैसे एनआईओएस (NIOS) की 'आरम्भिका', केंद्रीय हिंदी निदेशालय के बेसिक कोर्स तथा अन्य सरकारी व निजी मल्टीमीडिया स्रोतों के साथ समेकित किया जा सकता है। इन मॉड्यूलों में भारतीय ज्ञान-परंपरा (Indian Knowledge Systems – IKS) से संबंधित पक्षों को भी शामिल किया जाना उचित होगा, ताकि शिक्षार्थी भाषा के साथ-साथ भारतीय सांस्कृतिक विरासत से भी भली-भाँति परिचित हो सकें।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रयोग को ध्यान में रखते हुए, 'हिंदी वर्टिकल' के अंतर्गत एक विशेष डिजिटल खंड 'ई-विश्वहिंदी' स्थापित किया जा सकता है, ताकि हिंदी की क्लासिक साहित्यिक कृतियों, पाठ्यपुस्तकों, ऑडियो-वीडियो सामग्री, पत्र-पत्रिकाओं तथा अन्य मुद्रित संसाधनों को एक ही स्थान पर उपलब्ध कराया जा सके। उपलब्ध संसाधन 'क्रिएटिव कॉमन्स लाइसेंस' (Creative Commons License) के अंतर्गत निःशुल्क उपलब्ध कराए जा सकते हैं।

इस वर्टिकल में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित उपकरण, वाक्-पहचान, मशीन लर्निंग, प्राकृतिक भाषा संसाधन (Natural Language Processing – NLP) तथा कतिपय अन्य विशिष्ट प्रणालियों का उपयोग कर हिंदी शिक्षण-अधिगम को और अधिक प्रभावी, आकर्षक व शिक्षार्थी-केंद्रित बनाया जा सकता है। हिंदी के विविध फ़ॉन्ट और सहायक सॉफ़्टवेयर उपलब्ध कराकर सीखने की यात्रा को सुगम बनाया जा सकता है। इस दिशा में भारत सरकार के इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, सेंट्रल कंप्यूटर्स और डिवाइस विकास संगठन (C-DAC) तथा नेशनल इन्फ़ॉर्मेटिक्स सेंटर (NIC) जैसी संस्थाओं का सहयोग मददगार साबित होगा।

हिंदी वर्टिकल को एक संपूर्ण समाधान मंच (One-Stop Platform) के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसमें संसाधनों को सीखना-सिखाना (Learning Corner), जीवन-कौशल प्रशिक्षण (Life Skills Training), अनुसंधान (Research), सतत शिक्षा (Continuing Education) तथा हिंदी प्रकाशन (Hindi Publication) जैसे मदों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है। एनआरओईआर (NROER), एनपीटीईएल (NPTEL) और स्वयम (SWAYAM) जैसे डिजिटल प्लेटफ़ॉर्मों की सामग्री से इसे जोड़ने पर संसाधनों का महत्तम उपयोग सुनिश्चित हो सकेगा।

इस दिशा में आगे एक प्रतिपूरक प्रयास के रूप में हिंदी शिक्षण एवं अनुसंधान को वैश्विक स्तर पर अधिक प्रभावी बनाने के लिए

विद्वानों, लेखकों और अनुवादकों की एक विस्तृत निर्देशिका का निर्माण भी एक उपयोगी कदम सिद्ध हो सकता है। इसमें प्रविष्टि कतिपय स्थापित मानकों के आधार पर रखी जा सकती है, जो निरंतर हिंदी के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवा प्रदान कर रहे हों। यह 'डाटा-भंडार' विश्वभर के हिंदी प्रयोक्ताओं के लिए एक महत्त्वपूर्ण संदर्भ-स्रोत के रूप में यकीनन सहायक सिद्ध होगा।

प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान के वैश्विक प्रसार में अनुवाद की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। गिरमिटिया देशों और अन्य देशों के लेखकों एवं बुद्धिजीवियों को इस हेतु प्रेरित करना उचित होगा। रामायण, श्रीमद्भगवद्गीता आदि भारतीय शास्त्रीय ग्रंथों का अधिकाधिक वैश्विक भाषाओं एवं उपभाषाओं में अनुवाद हिंदी को व्यापक आधार प्रदान करेगा। इसी प्रकार, हिंदी की मुद्रित पत्रिकाओं को वैश्विक शोध मानकों वाले ई-जर्नल्स में रूपांतरित करना भी उपयोगी होगा, जिससे 'पढ़िए कभी भी, कहीं भी' के सिद्धांत पर अपेक्षाकृत कम लागत में माउस के एक क्लिक से प्रयोक्ताओं तक तत्क्षण पहुँचाया जा सकता है।

हिंदी की लोकप्रियता बढ़ाने में प्रसिद्ध व्यक्तित्वों, कलाकारों, खिलाड़ियों तथा लेखकों की भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, जो सोशल मीडिया के माध्यम से हिंदी के प्रति जनसामान्य को आकर्षित करते रहते हैं। इसके साथ ही, युवाओं को प्रतियोगिताओं, गेमिफिकेशन, कहानी-वाचन, क्विज़, अंतर-सांस्कृतिक मंचों और सामुदायिक कार्यक्रमों से जोड़ना आवश्यक है, ताकि वैश्विक स्तर पर लोग हिंदी में काम करने में सहजता का अनुभव कर सकें।

श्रवण बाधित दिव्यांगों के लिए हिंदी ऑडियो-वीडियो सामग्री में 'समान भाषा उपशीर्षक' (Same Language Subtitling – SLS) अब एक वैधानिक आवश्यकता है। यह न केवल समाज बल्कि शिक्षण को भी समावेशी बनाता है। 'सामान्य भाषा उपशीर्षक' भाषा शिक्षण के चार कौशलों में श्रवण के साथ-साथ पढ़ने के कौशल को भी बढ़ाने में सहायक होगा।

ध्यान रहे कि इस दिशा में सरकारी सहयोग के साथ-साथ हम सभी को एकजुट होकर आगे बढ़ने की आवश्यकता है। इसमें कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR Activities) को भी शामिल करना उचित होगा। सीएसआर निधि का सार्थक उपयोग, भारत सरकार की 'ज्ञान-भारतम्' योजना की तर्ज़ पर दुर्लभ पांडुलिपियों के डिजिटलीकरण, ई-लर्निंग साधनों के विकास तथा ग्रामीण और वंचित पृष्ठभूमि के प्रतिभाशाली छात्रों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने में सहायक हो सकता है।

इन कतिपय समेकित पहलों से हिंदी न केवल वैश्विक स्तर पर सुदृढ़ होगी, बल्कि ज्ञान, संस्कृति और संप्रेषण की लोकप्रिय भाषा के रूप में भी उभरेगी। यह वैश्विक आंदोलन न केवल भाषाई विस्तार, बल्कि मानवीय मूल्यों, अस्मिता और अंतर-सांस्कृतिक समझ की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। महात्मा गांधी का कथन, 'किसी राष्ट्र की संस्कृति उसके लोगों के हृदय में बसती है' और सैमुअल जॉनसन की उक्ति, 'भाषा विचारों का परिधान है' हिंदी प्रचार-प्रसार के इस वैचारिक विमर्श को और मज़बूती प्रदान करते हैं। ऋग्वेद के आर्षवचन, 'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः,' के अनुरूप हिंदी के विकास हेतु सभी दिशाओं से विचार और सहयोग आवश्यक हैं, ताकि हमारी हिंदी एक समर्थ सेतु-भाषा बनकर उभरे और वैश्विक संवाद में महत्त्वपूर्ण योगदान देती रहे।

शुभकामनाओं के संग,

भवदीय

डॉ. शुभंकर मिश्र

उपमहासिचव

अनुक्रम

हिंदी : भाषा एवं लिपि का विकास

1.	हिंदी भाषा की ध्वनि-संरचना	- डॉ. रवीन्द्र कुमार पाठक	2
2.	हिंदी भाषा और लिपि	- डॉ. टी. रवीन्द्रन	8
3.	हिंदी भाषा की मानकता	- प्रो. राजेश कुमार	16
4.	यह केवल भाषा की बात नहीं है	- सरोजिनी नौटियाल	21
5.	भारतेन्दु-पूर्व हिंदी भाषा और लिपि का संघर्ष	- श्री ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह	25
6.	नीदरलैंड में हिंदी भाषा	- डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पांडे	28

हिंदी : साहित्य एवं भारतीय संस्कृति

7.	सूरसागर और भारतीय पशुचारण संस्कृति	- डॉ. संतोष कुमार यादव	34
8.	हिंदी का प्रतिबंधित साहित्य	- श्री संजय चौधरी	40
9.	'रंगभमि' के सौ साल	- डॉ. बृजराज कुमार	45
10.	केदारनाथ सिंह की कविताओं में पारिस्थितिकी-बोध	- श्री रजनीश कुमार	50
11.	हिंदी काव्य में कश्मीर की विस्थापन पीड़ा	- डॉ. उमर बशीर	54
12.	भारतीय संस्कृति के प्रचार में हिंदी की भूमिका	- डॉ. (श्रीमती) स्वाति चद्ढा	59
13.	संस्कृति, साहित्य और लिपि - भाषाई अंतःसंबंध के आधार	- डॉ. मनोज पाण्डेय	64
14.	मॉरीशस की लोककथाओं में भारतीय संस्कृति की झलक	- प्रो. राज शेखर	69

हिंदी का ई-संसार

15.	कृत्रिम बुद्धिमत्ता और हिंदी भाषा : संभावनाएँ, चुनौतियाँ और समाधान	- डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी	75
16.	कृत्रिम मेधा और हिंदी भाषा का भविष्य	- डॉ. साकेत सहाय	83
17.	कृत्रिम मेधा और हिंदी भाषा-साहित्यः संभावनाएँ, उपयोगिता और प्रभाव	- श्री रोहित कुमार 'हैप्पी'	89
18.	हिंदी आज का प्रश्नः कृत्रिम बुद्धिमत्ता और समाचार चैनल	- श्री हिमांशु जोशी	94
19.	डिजिटल मीडिया में हिंदी व्यंग्य के विश्वव्यापी वितान व्यापक संभावनाएँ	- डॉ. शैलेश शुक्ला	101
20.	डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार	- श्री विश्वनाथ चौबे	109

हिंदी-शिक्षण

21.	विदेशी भाषा के रूप में हिंदी भाषा-शिक्षण का सांस्कृतिक पहलू	- डॉ. प्रियंका सोनकर	116
22.	हिंदी भाषा-शिक्षण के तकनीकी साधन	- माला मिश्रा	122
23.	विश्व के शीर्ष विश्वविद्यालयों में हिंदी-शिक्षण की स्थिति	- डॉ. शहाबुद्दीन एवं डॉ. पवन अग्रवाल	130
24.	ब्रिटेन में हिंदी-शिक्षण एवं प्रशिक्षण	- डॉ. वंदना मुकेश	137
25.	पूर्वोत्तर भारत में हिंदी-शिक्षण	- चंपा कुमारी चौहान	142

हिंदी-सेवी : व्यक्ति एवं संस्था

26.	अद्भुत हिंदी सेवी - कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी	- श्री सुरेश कुमार श्रीचंदानी	148
27.	दक्षिण अफ़्रीका में प्रवासी भारतीयों और हिंदी भाषा के संरक्षक - भवानी दयाल संन्यासी	- डॉ. दीप्ति अग्रवाल	153
28.	वैश्विक हिंदी अभियान के अथक साधक - डॉ. शैलेश शुक्ला	- डॉ. अमित मिश्र	159
29.	हिंदी की साधिका - डॉ. वंदना मुकेश	- शालिनी वर्मा	167
30.	खड़ी बोली के विकास में फ़ोर्ट विलियम कॉलिज का योगदान	- उमेश दत्त तिवारी	171

हिंदी : शोध, आलोचना एवं अनुवाद

31.	हिंदी : शोध और आलोचना	- डॉ. रमा नवले	176
32.	हिंदी शोध एवं आलोचना में तकनीक की भूमिका	- डॉ. दीनदयाल	180
33.	बॉलीवुड फ़िल्मों के शीर्षकों के थाई अनुवाद की रणनीतियाँ	- डॉ. पद्मा सवांगश्री एवं डॉ. सेकसन सवांगश्री	186
34.	जॉ पॉल विनय और जॉ दर्बलनेट की अनुवाद-प्रविधि के आधार पर 'दास्ताँ और भी हैं' का विश्लेषण	- अंजय रंजन दास	197

हिंदी : भाषा एवं लिपि का विकास

1. हिंदी भाषा की ध्वनि-संरचना - डॉ. रवीन्द्र कुमार पाठक
2. हिंदी भाषा और लिपि - डॉ. टी. रवीन्द्रन
3. हिंदी भाषा की मानकता - प्रो. राजेश कुमार
4. यह केवल भाषा की बात नहीं है - सरोजिनी नौटियाल
5. भारतेन्दु-पूर्व हिंदी भाषा और लिपि का संघर्ष - श्री ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह
6. नीदरलैंड में हिंदी भाषा - डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पांडे

हिंदी भाषा की ध्वनि-संरचना

- डॉ. रवीन्द्र कुमार पाठक
बिहार, भारत

हम अपना भाषिक व्यवहार वाक्यों में करते हैं। किसी वाक्य के विश्लेषण या विखण्डन से उसके जो '(वाक्य-प्रयुक्त) लघुतम स्वतंत्र सार्थक अंश' प्राप्त होते हैं, वे 'पद' कहलाते हैं। कई लोग उन्हें 'शब्द' भी कहते हैं, पर 'शब्द' और 'पद' में तकनीकी अन्तर होता है। पदों में लगे 'वाक्य-प्रयोगार्थ आवश्यक तत्त्वों', जिन्हें परम्परागत रूप से 'विभक्ति' कहते हैं, को हटाने पर जो सार्थक अंश बचता है, वह है – 'शब्द'। जैसे – 'लड़के को बुलाओ' में 'लड़के को' पद है और 'लड़का' शब्द।

'वाक्य' आमतौर पर एकाधिक पदों के मेल के रूप में होता है, किन्तु कई बार ऐसा भी होता है कि अकेला पद ही वाक्य की भूमिका में दिखाई देता है, अर्थात् वाक्य की रचना कर लेता है। जैसे – 'नमस्कार!', 'जाओ!' आदि। ऐसे वाक्य 'अपूर्ण' या 'अध्याहृत' कहलाते हैं। भाषिक इकाई के विश्लेषण (विखण्डन) को यदि 'पद' से आगे बढ़ाते जाएँ, तो अन्तिम रूप से जो घटक उपलब्ध होते हैं, वे ध्वनि-तत्त्व होते हैं, जो स्वयं तो सार्थक नहीं होते, किन्तु सार्थक और सम्प्रेष्य इकाइयों की रचना में मददगार होते हैं।

वे ध्वानिक तत्त्व दो तरह के होते हैं -

एक वे, जिन्हें स्पष्ट रूप से अलग-अलग किया जा सकता है (क्योंकि उनका अपना **अपेक्षाकृत स्वतंत्र** उच्चरित स्वरूप होता है।)

दूसरे वे, जिन्हें हम अलग रूप में महसूस तो कर सकते हैं, लेकिन किसी तरह अलग करके दिखला नहीं सकते (क्योंकि उनका स्वतंत्र उच्चरित स्वरूप नहीं होता। वे उक्त '**A**' के साथ ही संयुक्त होकर उच्चरित होते हैं - उन्हीं के साथ सुनाई पड़ते हैं।)

एक अनुच्छेद के माध्यम से बात करना संगत होगा।

कोई उसकी गठरी ले भागा। वह लुट गया। ... वहाँ अँधेरा था, इस कारण ऐसा हुआ ?...शोर सुनकर, लोग जमा हो गए। ... एक लड़की ने टॉर्च जलायी। सबने देखा - कुछ रुपये बिखरे हैं। ...बोली - "इन्हें उठा।" बटोरकर वह उठा, तो किसी ने कहा -"उसे रोको, मत जाने दो।

ध्यान देने पर, इस उद्धरण में उक्त दोनों तरह के ध्वनि-तत्त्व प्रयुक्त मिलेंगे। पहले हम तीसरे वाक्य को लेकर विचार करते हैं। इसमें 'व्', 'थ्', 'इ', 'स्', 'ऐ', 'ण्', 'आ' आदि बहुत-से तत्त्व ऐसे हैं, जिनके उच्चरित स्वरूप को स्पष्टतया अलग-अलग रूप में पहचान सकते हैं और उन्हें अलग-अलग करके भी दिखा सकते हैं। कारण, इनकी उच्चारण-दृष्टि से **अपेक्षाकृत स्वतंत्र** सत्ता है। ये उक्त '**A**' कोटि में हैं। परन्तु, इनके साथ कुछ और भी ध्वनि-तत्त्व सम्पृक्त हैं। यथा - तीसरे वाक्य के अन्त में प्रश्नसूचक चिह्न (?) है, मतलब पूरे वाक्य को एक ऐसे 'सुर' (Tone) में बोला गया है कि लगे कि सवाल पूछा जा रहा है। यानी, कुछ इस प्रकार का आशय निकल रहा है कि वक्ता को यह पता नहीं है कि घटना क्यों और कैसे घटी? मगर, वह वाक्य उस खास **सुर/तान** में न बोला जाता अर्थात् उसके अन्त में प्रश्नसूचक चिह्न (?) की जगह पूर्णविराम (।) होता, तो वाक्य का अर्थ सूचनात्मक और निश्चयात्मक आशय वाला होता (कि घटना अँधेरा होने के चलते घटी)। उच्चारण में लाया गया उक्त ध्वनि-गुण विशेष (**'सुर'**) है, जिसका 'व्', 'थ्', 'इ' आदि की तरह उच्चारणगत (अपेक्षाकृत) स्वतंत्र अस्तित्व नहीं दिखता, बल्कि यह इन्हीं ध्वनियों (व्', 'थ्', 'इ' आदि) के साथ सम्पृक्त होकर उच्चरित होता और सुनाई पड़ता है। इसी से इसे उक्त ध्वनियों की तरह अलग-अलग करके नहीं दिखा सकते। इसी वाक्य में 'वहाँ' और 'अँधेरा' में उच्चरित '**अनुनासिकता**' (जिसका चन्द्रबिन्दु से संकेत किया गया है) भी ऐसा ही अस्वतंत्र या अखण्ड्य ध्वनि-तत्त्व है। तीसरे वाक्य में ही आए हुए, 'इस कारण' को कोई इस तरह बोले कि उच्चारण-क्रम में आनेवाला अल्प ठहराव 'इस' व 'कारण' के बीच में न आकर 'इसका' व 'रण' के बीच में आ जाए, तो अर्थ में अन्तर आ जाएगा। उच्चारण-क्रम में लाया जाने वाला यह अल्प ठहराव भी एक ध्वनि-तत्त्व विशेष है, जिसे 'संगम' या 'विवृति' (Juncture) कहा जाता है। इसका भी उच्चारण उक्त 'इ', 'क्', 'र्' आदि ध्वनियों के साथ मिलित रूप में ही सम्भव है, न कि इनसे अलग या इनकी तरह (अपेक्षाकृत) स्वतंत्र। इसे भी हम महसूस तो कर सकते हैं, पर अलग करके नहीं दिखा सकते। ये सभी - 'सुर/तान', 'अनुनासिकता', 'संगम' आदि – **ध्वनि-गुण** या **उच्चारण-गुण** हैं, जो उपर्युक्त कोटि 'B' के अन्तर्गत आते हैं। इनका 'ध्वनि' का दर्जा नहीं है, बल्कि ये उसकी उच्चारणगत विशेषता के रूप में मान्य हैं। कोटि 'A' के ध्वनि-तत्त्व 'खण्ड्य' (Segmental) तथा कोटि 'B' के ध्वनि-तत्व 'अखण्ड्य' या 'खण्ड्येतर' (Supra-seg-

mental) कहलाते हैं।

स्वन :

कोटि 'A' के कुछ और ध्वनि-तत्त्वों (यानी 'खण्ड्य' ध्वनियों) पर विचार करते हैं। उद्धरण में से कुछ शब्द/पद लेते हैं- (1) 'जलाया', (2) 'बोली', (3) 'लुट', (4) 'ले', (5) 'लोग'। इन सबमें लगता है एक ध्वनि सामान्य (Common) है – 'ल्'। पर, उच्चारण-प्रक्रिया पर गहराई से ध्यान दें, तो पता चलता है कि '1', '2', '3', '4' और '5', सबमें इस सामान्य ध्वनि ('ल्') का उच्चारण कुछ-कुछ अलग प्रक्रिया से होता है तथा ये पाँचों सुनाई भी कुछ-कुछ अलग तरह के देते हैं। (1) का 'ल्' कुछ कण्ठ की तरफ़ से भी गूँजता लगता है, (3) का 'ल्' एकदम आगे (होंठ के पास) से गूँजता प्रतीत होता है। इसी तरह हर का 'ल्' कुछ अलग ही रंग लिए हुए है। वैसे तो इन पाँचों के 'ल्' का उच्चारण तो औसत तौर पर ऊपरी दन्त-पंक्ति से जीभ के अगले हिस्से के स्पर्श से ही होता है, फिर भी कुछ-कुछ प्रक्रिया का अन्तर अवश्य है, जिससे हर का 'ल्' कुछ अलग-सा सुनाई पड़ता है। इसका कारण है, हर 'ल्' अपने पास की ध्वनि के असर से कुछ अलग उच्चारणिक स्वरूप ले लेता है। (1) में 'ल्+आ' है, तो (3) में 'ल्+उ'। अब (1) में 'ल्' के उच्चारण पर 'आ' की उच्चारण-प्रक्रिया का प्रभाव तो पड़ेगा ही। उसी तरह (3) में उस पर 'उ' की उच्चारण-प्रक्रिया का प्रभाव तो पड़ेगा ही। इस प्रकार उक्त पाँच तरह के 'ल्' केवल एक उद्धरण में प्राप्त होते हैं – 'ल्-1', 'ल्-2', 'ल्-3', 'ल्-4' और 'ल्-5' । यानी, हर शब्द/पद का 'ल्' अलग होता है। किन्तु, बात यहीं तक सीमित नहीं है। हर व्यक्ति का बोला हुआ 'ल्', दूसरे से अलग होगा। व्यक्ति-भेद से ध्वनियों का भेद होता है, तभी तो हम किसी ऐसे व्यक्ति की भी आवाज़ मात्र सुनकर (बिना उसका चेहरा देखे) उसे पहचान जाते हैं, जो हमारी आँखों से ओझल होता है (यथा - अँधेरे में, मोबाइल फ़ोन आदि पर)। फिर, ध्वनि का अलगाव व्यक्तियों के अन्तर से ही नहीं है। एक ही व्यक्ति के अलग-अलग समय/स्थान पर बोले 'ल्' में अन्तर हो सकता है। 'ल्' ही क्यों, क्, प् - सबमें इन-इन कारणों से, अन्तर-दर-अन्तर होता जाता है। इस तरह, नाना कारणों से भाषा में 'ल्' सहित किसी विवेचित ध्वनि के असंख्य रूप हो सकते हैं। यानी, किसी भाषा में अनगिनत ध्वनियाँ होती हैं। भाषा में प्रयुक्त इन असंख्य ध्वनियों को **स्वन** (Phone) कहते हैं, जो लघुतम उच्चरित भाषिक इकाई होते हैं।

स्वनिम :

विवेचन की सुविधा के लिए इन अनगिनत स्वनों, अर्थात् असंख्य तरह के 'ल्' ओं, 'क्' ओं आदि को उनमें निहित न्यूनतम सामान्य ध्वनि-तत्त्व (सबमें प्राप्त औसत 'ल्' त्व, 'क्' त्व आदि) के आधार पर कुछ जातियों में व्यवस्थित करते हैं। न्यूनतम सामान्य ध्वनि-तत्त्व के आधार पर ही उपर्युक्त असंख्य 'ल्', भाषागत असंख्य 'क्' ओं, 'प्' ओं आदि सबसे भिन्न स्वरूप के हैं। इसी से सभी अलग-अलग वर्ग में सम्मिलित किए गए। वर्ग/जाति का नाम सबमें विद्यमान न्यूनतम समान ध्वनि-तत्त्व के आधार पर 'ल्', 'क्', 'प्' आदि हुआ। 'जाति' नाम के उल्लेख से सम्बद्ध सभी स्वनों का (यानी, असंख्य 'ल्' ओं, 'क्' ओं आदि का) स्वतः उल्लेख हो जाता है। स्वनों की जाति/वर्ग को **'स्वनिम'** (Phoneme) कहते हैं। इसकी सत्ता मानसिक है। वास्तविक रूप में भाषा-व्यवहार (उच्चारण और श्रवण) में तो 'स्वन' ही आते हैं। यथा - वास्तविक व्यवहार में उपर्युक्त 'ल्-1', 'ल्-2', 'ल्-3', 'ल्-4' और 'ल्-5' ही आते हैं। इनका स्वरूप भौतिक है। इनकी तुलना में इनकी परिकल्पित जाति 'ल्' की सत्ता भौतिक नहीं, मानसिक है। यह भाषा-व्यवहार में नहीं आती। जिस प्रकार भाषा में 'शब्द' (प्रकृति) नहीं चलते, बल्कि उनके विकार प्राप्त रूप 'पद' चलते हैं। उसी प्रकार 'स्वनिम' नहीं, उनके मूर्त्त रूप 'स्वन' ही भाषा में चलते हैं। जिस प्रकार भाषा में वास्तविक रूप से प्रयुक्त पदों (उपर्युक्त 'जलाया', 'बोली', 'लोग' आदि) के विश्लेषण के लिए कल्पित तकनीकी इकाई है 'शब्द'; उसी प्रकार 'स्वनिम' विश्लेषण के लिए कल्पित अमूर्त्त इकाई है। किसी **'स्वनिम'** (जैसे - 'ल्') से सम्बद्ध अथवा उसके वास्तविक प्रयुक्त रूपों (यथा - उक्त 'ल्-1' से 'ल्-5' तक), दूसरे शब्दों में स्थानीय प्रभाव से उसके अलग-अलग रूपों (स्वनों) को **सहस्वन/उपस्वन** कहते हैं।

'ध्वनि विज्ञान' (Phonetics/Phonics) की दृष्टि से हर 'ल्' आदि का स्वतंत्र व्यक्तित्व है। परन्तु, भाषा-विशेष के सन्दर्भ में 'ल्' आदि का स्वतंत्र व्यक्तित्व है। भाषा-विशेष के सन्दर्भ में ध्वनि-व्यवस्था का जब हम विचार करते हैं, तब हम 'स्वनिम-विज्ञान' (Phonemics/Phonematics/Phonology) में प्रवेश कर जाते हैं, जिसकी निगाह में स्वन-व्यक्तियों की जगह स्वन-जाति (स्वनिम) महत्त्वपूर्ण है। भाषा-विशेष के सन्दर्भ में प्राप्त ध्वनियों (स्वनों) में विद्यमान न्यूनतम ध्वनि-तत्त्व (यानी, उच्चरित भाषा का लघुतम अंश), जो अन्य ध्वनियों से अन्तर प्रदर्शित करता है और साथ ही अर्थ-भेदक है - उसी का नाम 'स्वनिम' है। 'स्वनिम' की अवधारणा से प्राचीन भारतीय भाषावैज्ञानिक अनभिज्ञ नहीं थे। 'वर्ण-समाम्नाय' (माहेश्वर-सूत्र) के रूप में 'अष्टाध्यायी' में पाणिनि ने संस्कृत भाषा

के **खण्ड्य** स्वनिमों का ही संग्रहण किया है। इन्हें परम्परागत रूप से 'वर्ण' कहा गया है।

'वर्ण' शब्द का प्रयोग यदा-कदा लिपि-संकेत के लिए भी कर लिया जाता है। (Alphabet के लिए वर्णमाला शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता है।) परन्तु, प्राचीन काल से ही भारतीय भाषाविज्ञान की एक लम्बी परम्परा में भाषा की उच्चार्यमाण इकाई (खण्ड्य स्वनिम) को 'वर्ण' कहा जाता रहा है। 'वर्ण' शब्द 'वर्ण्' धातु से बना है, जिसके विविध अर्थों में कहना और लिखना भी है, इसलिए स्वनिमों के साथ गौण रूप से उनके लेखन-संकेतों को भी 'वर्ण' कहा जाना असंगत नहीं है। पर उसका मुख्य अर्थ 'उच्चरित' ही है; यही सतत ध्यातव्य है। भाषा का मूल अर्थ अभिव्यक्ति का मौखिक माध्यम ही है। लिखित रूप तो उसी का प्रतिनिधित्व भर करता है, जो सभ्यता-जन्य और वैकल्पिक है। परम्परागत चिन्तन में 'वर्ण' और 'अक्षर' का भी समानार्थी प्रयोग हुआ है, किन्तु आधुनिक भाषाविज्ञान में एक खास अवधारणा 'सिलेबल' के लिए 'अक्षर' शब्द का प्रयोग सुस्थिर हो चुका है।

उच्चारण में यदि हम प्रयासपूर्वक किसी एक स्वनिम के **उपस्वनों/संस्वनों** की परस्पर अदला-बदली भी कर दें, तो अर्थ में कोई अन्तर नहीं आता। जैसे - हम 'जलाया' के ल्-1 की जगह 'लुट' के ल्-3 का कोशिश करके उच्चारण कर भी दें, तो 'जलाया' के अर्थ-बोध में किसी को कठिनाई या भ्रान्ति नहीं होगी। बहुत हुआ तो उच्चारण-दोष माना जाएगा, बस! परन्तु, 'जलाया' के 'ल्' की जगह अन्य स्वनिम ('त्') से सम्बद्ध कोई ध्वनि/उपस्वन उच्चरित कर दें, तो स्पष्ट है कि अर्थ-बोध तक में अन्तर आ जाएगा। इसी से 'स्वनिम' को अर्थ-भेदक कहा गया है। भाषा-विशेष में स्वनिमों का निर्धारण सामान्य न्यूनतम ध्वनि-तत्त्व के साथ अर्थ-भेदक युग्मों के लम्बे विचार-विमर्श का परिणाम है। ऐसे शब्द-युग्म, जिनमें ध्वनि के स्तर पर न्यूनतम अन्तर हो, पर उसी के कारण उनके दोनों शब्द अलग-अलग अर्थ वाले हो जाएँ, 'न्यूनतम विरोधी युग्म' (Minimal Pair) कहलाते हैं। जैसे- 'जलाया-जताया', 'काली-लाली', 'कल-खल' आदि। किसी भाषा में स्वनों से बने, उनके ऐसे युग्म देखे गए, तभी उन-उन स्वनों के 'स्वनिम' निर्धारित हुए।

भाषा-विशेष में व्यवहृत असंख्य स्वनों को थोड़े से **स्वनिमों** (वर्णों) में सीमित करना इसलिए आवश्यक था, क्योंकि इसी से भाषा की मूलभूत ध्वनियों का विवेचन, शिक्षण एवं लिपि-चिह्नों का निर्धारण सम्भव हुआ। स्वनिमों के ज्ञान से भाषा-विशेष की मूलभूत ध्वनियों (स्वनों) पर अधिकार हो जाता है। किसी भाषा के लेखन हेतु लिपि-संकेत तभी स्थिर किए जा सकते हैं, जब (सार्थक) ध्वनि-समूह के रूप में संघटित उसकी इकाइयों का विश्लेषण कर उनके 'स्वनिम' निर्धारित कर लिए गए हों। तब, हर स्वनिम (वर्ण) के लिए लिपि-संकेत स्थिर किया जाता है। उदाहरणार्थ, उपर्युक्त 'ल्-1', 'ल्-2', 'ल्-3', 'ल्-4' और 'ल्-5' अथवा असंख्य 'ल्' के लिए एक लिपि-चिह्न तय किया गया। उसी एक चिह्न से असंख्य 'ल्' स्वन लिखे जाते हैं। किसी आदर्श लिपि का सर्वप्रमुख लक्षण यही होता है कि उसमें एक स्वनिम का एक ही लिपि-संकेत हो तथा एक लिपि-संकेत से एक ही स्वनिम (या उसी से सम्बद्ध ध्वनियों/ स्वनों) का बोध हो।

पूर्वोक्त दो प्रकार के ध्वनि-तत्वों में से 'A' कोटि, यानी 'खण्ड्य' से सम्बद्ध यह स्वनिम-विचार है। 'B' कोटि के ध्वनि-तत्वों से सम्बद्ध भी स्वनिम-विचार होता है, जो गौण स्वनिम माने जाते हैं। ये 'खण्ड्येतर' स्वनिम कहलाते हैं। अब तक विचारित स्वनिम 'खण्ड्य' कहलाते हैं। ये ही मुख्य स्वनिम हैं, क्योंकि इन्हीं का स्वतंत्रतया प्रयोग और विश्लेषण होता है और भाषा-शिक्षण का सबसे ज़रूरी हिस्सा इन्हीं को माना जाता है। इन्हीं को सामान्यतया 'स्वनिम' कहा भी जाता है, जिसका प्राचीन पर्याय 'वर्ण' रहा है। खण्ड्येतर स्वनिम तो वर्णोच्चारण-गुण हैं।

अक्षर (Syllable) **:**

हम अपने भाषिक व्यवहार पर गहराई से ध्यान दें, तो स्पष्ट होगा कि किसी वाक्य/पद का उच्चारण करते समय उसकी सारी घटक ध्वनियों (स्वनों) का न तो एक ही साँस में उच्चारण किया जाता है, न एक-एक करके उन्हें उच्चरित किया जा सकता है। बल्कि, वाक्य/पद प्रयुक्त स्वनों का एक गुच्छ एक साँस में उच्चरित किया जाता है, तो अगला गुच्छ अगली साँस में उच्चरित किया जा सकता है। पूर्वोक्त उद्धरण के एक वाक्य पर विचार करते हैं-

"कोई उसकी गठरी ले भागा।"- इस वाक्य को हमारा उच्चारण-तंत्र (उच्चारणांग) स्वनों के अनेक पैकेटों/गुच्छों में बाँटकर ही एक-पर-एक उच्चरित कर पाता है-

"को । ई । उस् । की । गठ् । री । ले । भा । गा"- यानी, 'को', 'ई', 'उस्' आदि हर ध्वनि-गुच्छ को हम साँस के अलग-अलग झटके में ही बोल पाते हैं। **यही ध्वनि-गुच्छ हमारे लिए एक तरह से उच्चारण की लघुतम इकाई है।** इसे 'सिलेबल' कहते है, जिसके लिए भारतीय भाषावैज्ञानिकों ने 'अक्षर' शब्द निश्चित किया है। इस प्रकार, साँस के एक झटके या एक हृत्स्पन्द/वक्ष-स्पन्द (Chest Pulse) में उच्चरित होने वाली ध्वनि-इकाई को एक 'अक्षर' कहते हैं। उद्धृत वाक्य में 'को' आदि कुल 9 अक्षर हैं।

अक्षर प्रायः स्वन-गुच्छ होता है, जिसमें एक 'स्वर' स्वन अवश्य होता है। ध्यातव्य है कि किसी अक्षर में 'स्वर' एक से अधिक नहीं हो सकता, भले 'व्यंजन' एकाधिक हों। जैसे- 'को' (क्+ओ), 'उस्' (उ+स्), 'गठ्' (ग्+अ+ठ्)। कभी-कभी अकेला स्वन भी 'अक्षर' की भूमिका में रह सकता है। ऐसा केवल 'स्वर' के साथ हो सकता है। जैसे - उक्त वाक्य में 'ई' एक अक्षर है, केवल एक स्वन से बना। अकेला व्यंजन अक्षर नहीं बन सकता, बल्कि एकाधिक व्यंजन का अकेले, अपने बल पर उच्चारण (बिना स्वर का सहारा लिए) असम्भव है। शिशुओं को सिखायी जानेवाली वर्णमाला में व्यंजनों में परिगणित 'क', 'ख' आदि वस्तुतः शुद्ध व्यंजन नहीं हैं, बल्कि व्यंजनों के साथ स्वर 'अ' के मिलने से बना अक्षरीभूत रूप हैं, तभी तो इनका उच्चारण सम्भव है। शुद्ध व्यंजन स्वनिम की सूचना हल्-चिह्न () से दी जाती है- 'क्', 'ख्' आदि। बिना अक्षर बने यानी, बिना एक स्वर का सहारा पाए कोई व्यंजन बोला ही नहीं जा सकता (यह सहारा चाहे, वह आगे से ले या पीछे से)। 'क्' (क्+अ), 'की' (क्+ई) आदि में यह सहारा आगे से लिया गया है, 'इक्' आदि में पीछे से, तभी 'क्' उच्चरित हो पा रहा है। कोई स्वर अपने-आप में एक अक्षर होता है (जैसे - उक्त वाक्य में 'ई' एक अक्षर है), क्योंकि वह अपने बल पर उच्चरित हो सकता है। किसी अक्षर का संघटन हमेशा एक 'स्वर' वर्ण का मोहताज होता है। अतः, 'पद'/'शब्द' या वाक्य में जितने 'स्वर' होते हैं, उतने ही अक्षर माने जाते हैं। उक्त वाक्य में आए 'उसकी' में लग रहा है कि 3 स्वर हैं -('उ+स्+अ+क्+ई') - पर हम हिंदी वालों की प्रवृत्ति कुछ ऐसी हो गई है कि 'स्' के बाद वाला 'अ' स्वन प्रायः उच्चरित कर नहीं पाते। इसी से बच गए 2 स्वर। अतः दो अक्षर हमने माने (उस् । की)। यदि हम कोशिश कर इस लुप्त 'अ' का उच्चारण करें, तो तीन स्वर हो जाने से अक्षर भी तीन हो जाएँगे (**उ । स । की**)। हिंदी में अकारान्त लिखे जाने वाले शब्द प्रायः ('अ' के लोप से) हलन्त अर्थात् व्यंजनान्त हो गए हैं। भले लिखें 'राम', पर बोलते हैं 'राम्'। इसी तरह भले लिखें 'नरगिस', पर बोलते हैं 'नर्गिस्'। शब्दान्त में संयुक्त व्यंजन होने पर ही अन्त्य 'अ' उच्चरित हो पाता है। जैसे - पूर्वोक्त उद्धरण में आया 'टॉर्च' पद। इसमें 'ट्+ऑ+र्+च्+अ' स्वन हैं। अन्तिम में 'र्+च्' का संयोग है तभी अन्त्य 'अ' उच्चरित हो पा रहा है। (इसमें दो अक्षर हैं - **टॉर् । च**)। शब्दान्त में दीर्घ स्वर होने पर भी बीच के 'अ' का उच्चारण नहीं हो पाता। जैसे - पूर्वोक्त उद्धरण के 'गठरी' पर (ग्+अ+ठ्+अ+र्+ई) में 'ठ्' से संलग्न 'अ' का उच्चारण नहीं हो पाता, जिससे इसमें दो ही अक्षर मान्य हैं (**गठ् । री**)।

किसी अक्षर में अधिक-से-अधिक कितने व्यंजन, किसी एक स्वर के साथ आ सकते हैं - यह अलग-अलग भाषाओं की व्यवस्था (शब्द-संरचना, ध्वनि-संरचना) पर निर्भर है। हिंदी भाषा के किसी-किसी शब्द में, चार तक व्यंजन एक ही अक्षर में आते दिखे हैं। जैसे - 'कार्त्स्न्य' शब्द (जिसका अर्थ है – सम्पूर्णता) में दो अक्षर हैं – '**कार्त्स्। न्य**' । पहले अक्षर 'कार्त्स्' में 'आ' स्वर पर आगे-पीछे के चार व्यंजनों का उच्चारण निर्भर करता है (क्+आ+र्+त्+स्)। यानी, यह अक्षर चार व्यंजनों और एक स्वर से बना है। इसी तरह यह भी भाषाओं की अपनी-अपनी व्यवस्था के सापेक्ष है कि कितने अक्षरों से बने शब्द/पद मिलेंगे। चीनी में मिलने वाले शब्द तो प्रायः एक ही अक्षर के बने होते हैं। जैसे - 'तो' (= अनेक), 'जिन' (=मनुष्य)। हिंदी में एक से लेकर पाँच अक्षरों तक के भी शब्द मिलते हैं। जैसे – **एकाक्षरी** शब्द : तू, जा, स्त्री, बस (बस्)। **द्वि-अक्षरी** शब्द : अभी, प्रेम, हत्या, अखबार (अख् बार्)। **त्रि-अक्षरी** शब्द : पढ़ाई, परोक्ष, सर्वोदय (सर्वोदय्)। **चतुरक्षरी** शब्द : अभिनन्दन, आराधना। **पंचाक्षरी** शब्द : अन्धानुकरण, अपराजिता।

स्वर और व्यंजन स्वनिम :

हमें प्रारम्भिक कक्षाओं से ही बताया जाता रहा है कि उच्चारण में स्वयं समर्थ, आत्मनिर्भर स्वन 'स्वर' है और उच्चारण के लिए उस पर आश्रित स्वन 'व्यंजन' कहलाते हैं। उच्चारण-प्रक्रिया को लक्ष्य कहते हैं, तो 'स्वर' वे स्वन हैं, जिनके उच्चारण के समय फेफड़े से आ रहा निःश्वास मुख-विवर/मुख-गुहा से लगभग निर्बाध गुज़र जाए, तथा 'व्यंजन' वे स्वन हैं, जिनके उच्चारण के समय मुख-विवर में से उस निःश्वास को निकलने में अपेक्षाकृत बाधा/अवरोध का सामना करना पड़े। यहाँ आए 'लगभग' व 'अपेक्षाकृत' शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। वस्तुतः फेफड़े से आ रहे निःश्वास के रास्ते में एकदम अवरोध न हो, तो कम्पन पैदा ही नहीं होगा। बिना कम्पन के स्वन की उत्पत्ति ही असम्भव है। इससे निःश्वास-मार्ग में थोड़ा-बहुत अवरोध तो होता ही है, किन्तु वह व्यंजन के उच्चारण-प्रयत्न में हुए अवरोध की तुलना में नगण्य होता है। इसी से स्वर के प्रसंग में कहा गया कि निःश्वास लगभग निर्बाध गुजर जाए। निःश्वास के रास्ते में अवरोध का प्रयास करने वाला अंग 'करण' कहलाता है तथा जिस अंग या स्थान को लक्ष्य बनाकर (उसे छूने के प्रयास-सा) यह कार्य करता है, वह वर्ण/स्वनिम-विशेष का 'उच्चारण-स्थान' कहलाता है। 'स्थान' उच्चारण-प्रक्रिया के दौरान अचल/स्थिर रहने वाले अंग हैं और 'करण' उस दौरान गतिशील रहने वाले अंग। जैसे - ऊपरी दन्त स्थान है, जीभ करण।

'स्वर' और 'व्यंजन' किसी भाषा में प्राप्त स्वनों या स्वनिमों के दो विशाल वर्ग हैं। 'केन्द्रीय हिंदी निदेशालय' (दिल्ली) ने '**देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण**' शीर्षक पुस्तिका में, हिंदी वर्णमाला में 11 स्वर तथा 35 व्यंजन स्थिर किए हैं।

स्वर हैं - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ
व्यंजन हैं - क, ख, ग, घ, ङ
च, छ, ज, झ, ञ
ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़, ढ़
त, थ, द, ध, न
प, फ, ब, भ, म [ये 27 **स्पर्श**]
य, र, ल, व [ये 4 **अन्तःस्थ**]
श, ष, स, ह [ये 4 **ऊष्म**]

अनुस्वार (ं) और विसर्ग (ः) को 'निदेशालय' ने उक्त पुस्तिका में उल्लिखित तो किया, पर वर्णमाला में उन्हें जगह नहीं दी है। क़, ख़, ग़, ज़, फ़ - इन 5 व्यंजनों तथा 'ऑ' स्वर ('डॉक्टर' आदि में प्राप्त) की भी चर्चा उक्त पुस्तिका में की गयी, जो विदेशी शब्दों के ज़रिये हिंदी के शिष्टवर्गीय उच्चारण में थोड़ा-बहुत स्थान बना चुके हैं। क्ष, त्र, ज्ञ, श्र आदि संयुक्त व्यंजन हैं, अतः ये भी वर्णमाला में नहीं लिए गए। ऐसे संयोग असंख्य हो सकते हैं। कितनों को लेंगे? **'ॐ'** (ओम्) भी इसी तरह का एक संयोग है। ये सब तो ठीक हैं, पर अनुस्वार और विसर्ग को भाषा-विवेचन की व्यवस्था के रक्षार्थ हमें हिंदी-वर्णमाला में स्थान देना चाहिए। तब 48 वर्ण हो जाएँगे। 'ऋ' तो 'र्'-व्यंजनमय संयुक्त ध्वनि है, तथापि व्यवस्था/परम्परा की रक्षा के लिए उसे अब तक मूल वर्ण (वहाँ भी स्वर) में गिनते रहे हैं। तब, अनुस्वार, विसर्ग क्यों न गिने जाएँ? संस्कृत में दीर्घ 'ऋ' भी होता है, उससे शुरू होने वाले एक-दो शब्द भी वहाँ हैं। पर, हिंदी में ऐसा नहीं है। किन्तु 'पितृ+ऋण = पितृण', 'मातृ+ऋण = मातृण' आदि शब्द हिंदी में भी आएँ तो मात्र-रूप में दीर्घ 'ऋ' की सत्ता हिंदी में भी दिखने लगती है। (तब, 49 वर्ण हो जाते हैं।)

हरेक 'स्वन' या 'वर्ण' का उच्चारण फेफड़ों से शुरू होकर मुख-विवर तक व्याप्त बाह्य एवं आन्तरिक प्रयत्नों (जिनमें 'स्थान' एवं 'करण' की भूमिकाएँ भी सम्मिलित हैं) की सामूहिक व सम्मिलित भूमिका से सम्भव होता है। अर्थात् कौन-सा वर्ण उच्चरित होगा? इसका निर्धारण करने वाले तत्त्व हैं - फेफड़ों से चली निःश्वास वायु की मात्रा या वेग, स्वर-तंत्रियों की विवृति-संवृति, नासिका-द्वार का बन्द या खुला रहना तथा उच्चारण-स्थान, करण और आन्तरिक प्रयत्न के प्रकार। परन्तु, ज्यादा सही यही कहना होगा कि हमारी अन्तरात्मा की इच्छा ही 'स्वनिम' या 'वर्ण' का निर्धारण कर देती है, जिसके उच्चारणार्थ ये सब तत्त्व तदनुसार घटित होते हैं।

व्यंजन-संयोग, स्वर-संयोग और सन्धि :

जिस प्रकार दो या अधिक व्यंजन (बिना स्वर को बीच में रखे) लगातार आने से 'संयुक्त' हो उठते हैं (जैसे - 'क्ष्=क्+ष्', 'त्र्=त्+र्', 'श्र्=श्+र", 'ज्ञ्=ज्+ञ्' आदि), उसी प्रकार लगातार (एक पर एक) आ जाने वाले एकाधिक स्वरों से 'स्वर-संयोग' की स्थिति बनती है। जैसे- आइए, कौआ (क्+औ+आ)। व्यंजन-संयोग का उच्चारण आगे या पीछे से किसी स्वर का सहारा ले लेने से सहज हो जाता है (जैसे 'क्ष' में 'क्+ष्+अ है, 'अ' के बल पर वह उच्चरित हो जाता है)। पर, स्वर-संयोग का उच्चारण असम्भव है। भले लेखन में 'आइए' आदि लिख लें, (दो स्वरों के बीच में अंत:स्थ व्यंजन (य्, व्) को प्रविष्ट कराए बिना) इनका उच्चारण असाध्य है। उसी से अक्सर 'आइए' को 'आयिये' बोलते हैं।

'संधि' अलग चीज़ है। भाषा-प्रयोग में कभी ऐसी स्थिति बन जाए कि लगातार दो ऐसे वर्ण आ जाएँ कि उनके लगातार उच्चारण करने में उच्चारण-अंग शिथिल होने लगे, जिससे उच्चारण-प्रवाह टूट जाए, तब प्रवाह-रक्षार्थ हमसे जो अनायास वर्ण (स्वन)-परिवर्तन घटित हो जाए, तो उसे संधि कहते हैं। जैसे- 'हर+एक' को बोलते समय 'हर' के 'अ' और 'एक' के 'ए' के बीच प्रवाह टूट जाता है। तब हम स्वतः प्रथम 'अ' को बाद के 'ए' में विलीन कर देते हैं - 'हरेक' बना देते हैं, जिससे उच्चारण-प्रवाह बना रह जाता है। यही वर्ण-परिवर्तन सन्धि है। इसी तरह खरीद+दार = ख़रीदार, यह+ही = यही, अतः+एव = अतएव, जगत्+नाथ = जगन्नाथ आदि भी संधि हैं। संधि में वर्ण (स्वन) परिवर्तन तीन तरह के होते हैं - (1) वर्ण-विकार (2) वर्ण-लोप (3) वर्णागम (नये वर्ण का आ जाना) (जैसे- पर+पर=परस्पर)।

(1) 'ऋ' का उच्चारण कहीं पर 'रे' है, तो कहीं पर 'रु', कही 'रि' है, तो कही 'र'।

इस आलेख की शुरुआत में हमने खण्ड्येतर ध्वनि-तत्त्वों (खण्ड्येतर स्वनिमों) की तरफ़ इशारा किया था। आमतौर पर उन्हें ध्वनि-गुण कहा जाता है - यह भी बतलाया था। वे अर्थ-भेदक गुण भी रखते हैं। अतः उनका भी ज्ञान भाषा सीखने वाले के लिए अनिवार्य है। खासकर द्वितीय भाषा के रूप में किसी भाषा का प्रशिक्षण लेने वालों के लिए यह ज्ञान निहायत ज़रूरी है। उनमें प्रमुख हैं - (i) मात्रा (ii) अनुनासिकता (iii) अनुतान/सुर/सुरलहर

(iv) बलाघात (v) संगम/विवृति। पीछे के 'उद्धरण' में 'सुर'/'तान' और 'संगम' पर थोड़ी बातें हो गई हैं। उद्धरण के अन्तिम वाक्य में भी 'संगम' का बेहतर प्रयोग है। यहाँ, 'उसे रोको, मत जाने दो' के आशय में 'रोको' पर संगम है। यदि 'मत' पर संगम करते तो वाक्यार्थ ही उलट जाता - 'उसे रोको मत, जाने दो।'

'बोली - इन्हें उठा।'- का आशय है तू इन रुपयों को उठा ले। इस अर्थ का निकलना तभी सम्भव है, जब 'उठा' में अन्तिम अक्षर 'ठा' पर बल दिया जाए। अगले वाक्य 'बटोर कर वह उठा----' का आशय व्यक्ति के उठने से है। इस अर्थ का निकलना तभी सम्भव है, जब 'उठा' के प्रथम अक्षर 'उ' पर बल दिया जाए। अर्थ-भेदक वह ध्वनि-गुण, जिसका स्वरूप निःश्वास वायु की तीव्रता से इच्छित अक्षर का उच्चारण हो, यानी इच्छित अर्थ के लिहाज़ से इच्छित अक्षर का ज़ोर देकर उच्चारण करना हो, उसे '**बलाघात**' कहते हैं।

उक्त उद्धरण के 'वहाँ' व 'अँधेरा' पदों में **अनुनासिकता** नामक ध्वनि-गुण का प्रयोग है। स्वरों के उच्चारण में निःश्वास यदि गौण-रूप से नासिका-विवर से भी निकले (यानी, प्रयास पूर्वक निकाला जाए), तो उच्चरित ध्वनि का स्वरूप कुछ बदले रूप में प्रकट होता है। यही गुण अनुनासिकता है। 'अँधेरा' का 'अँ' 'अ' का अनुनासिक उच्चारण है। अनुनासिकता का लिपि-संकेत चन्द्रबिन्दु है - ँ। हिंदी में अनुनासिकता व्यापक रूप से मिलती है। संस्कृत अनुस्वार-प्रधान है, पर हिंदी अनुनासिक-प्रधान। अनुनासिकता हिंदी में अर्थ-भेदक भी है। यथा - कहा-कहाँ, काटा-काटाँ और पूछ-पूँछ। फिर भी, हिंदी में अनुनासिकता के कारण अलग स्वनिम (वर्ण) नहीं माना जाता। जैसे- 'अ' से अलग वर्ण के रूप में 'अँ' मान्य नहीं है। एक बात और! अनुस्वार ं एक स्वतंत्र वर्ण है, पर चन्द्रबिन्दु ँ नहीं - वह अनुनासिकता गुण का संकेतक भर है।

'मात्रा' की परिभाषा ध्वनि (स्वन) के उच्चारण में लगने वाले समय के रूप में दी जाती है। मुख्यतः दो मात्राएँ मान्य हैं - (a) ह्रस्व (एक मात्रा) (b) दीर्घ (दो मात्राएँ)। अर्द्धमात्रिक स्थिति भी होती है। जैसे- 'स्वप्न' शब्द का अन्त्य 'अ' उच्चारण में अर्द्धमात्रिक है। दो से अधिक मात्राओं की स्थिति 'प्लुत' कहलाती है। जैसे 'ओ sss सुगन्धा!' में 'ओ sss'। खण्ड्येतर तत्त्वों में एक 'मात्रा' (Quantity / Length) ही है, जिसके कारण हुए अलग उच्चारण एवं उनकी अर्थ-भेदक स्थिति को देखते हुए, हिंदी में उन्हें अलग वर्ण/स्वनिम के रूप में मान्यता मिल चुकी है। जैसे – 'चिता-चीता', 'कल-काल', 'सुर-सूर' आदि अर्थ-भेदक युग्मों के चलते इ-ई, अ-आ, उ-ऊ आदि अलग-अलग वर्ण के रूप में स्थापित हो चुके हैं।

संदर्भ-सूची :

1. भाषा का उद्भव और विकास', 2016, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. कामताप्रसाद गुरु, हिंदी व्याकरण, 1952, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
3. किशोरीदास वाजपेयी, 'हिंदी शब्दानुशासन', द्वितीय संस्करण, 1976, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
4. देवेन्द्रनाथ शर्मा, 'भाषाविज्ञान की भूमिका', 1966 (संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण, 2001 की तीसरी आवृत्ति 2005), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
5. रवीन्द्र कुमार पाठक, हिंदी व्याकरण के नवीन क्षितिज, 2012, दूसरा संस्करण (पहला संस्करण - 2010 ई.) भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
6. रामविलास शर्मा, 'भाषा और समाज', 2008, छठा संस्करण, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली
7. J.C.Nesfield, Manual of English Grammar and Composition, 1898, Macmillan and Co. Limited, London
8. HYPERLINK "https://www.google.co.in/search?tbo=p&tbm=bks&q=inauthor:%22Samuel+Henry+Kellogg%22" Samuel Henry Kellogg, A Grammar of the Hindi Language,1876

rkpathakaubr@gmail.com

हिंदी भाषा और लिपि

- डॉ. टी. रवीन्द्रन
महाराष्ट्र, भारत

भावाभिव्यक्ति के साधन को भाषा कहते हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह अपने विचारों को अन्य लोगों तक पहुँचाना चाहता है। प्राचीन काल में मनुष्य विभिन्न संकेतों से अपने विचार प्रकट करता रहा है। इसके पश्चात हाव-भाव के साथ आँ, ई, ऊँ, गूँ, गाँ आदि ध्वनि-संकेतों से काम चलाता रहा है। वाक्-शक्ति के विकास के साथ मनुष्य को उच्चारणात्मक भाषा का ज्ञान हुआ है। भाषा-विकास के साथ अपने विचारों को दूर स्थित मनुष्य तक सम्प्रेषण और भावी संतानों के लिए सुरक्षित रखने की समस्या सामने आई। मानव ने इस समस्या के समाधान के लिए लिपि का आविष्कार किया है। लिपि-उद्भव की इस प्रक्रिया से यह स्पष्ट होता है कि भाषा के विकास पर लिपि का स्वरूप सामने आया है, जबकि भाषा की उत्पत्ति मनुष्य की उत्पत्ति के साथ ही माननी चाहिए। भाषा निश्चय ही मनुष्य की सामाजिकता, विकास और सौन्दर्य का परम आधार है, जबकि लिपि भाषा को स्थायित्व प्रदान करती है। आज भी बहुत-से व्यक्ति ऐसे मिलेंगे, जो पढ़ना-लिखना नहीं जानते हैं, किन्तु भाषा का आकर्षक प्रयोग करते हैं। जन्म के पश्चात् बच्चा पहले उच्चरित भाषा का प्रयोग करता है और बुद्धि-विकास के साथ लिपि सीख कर लिखना शुरू करता है।

सामान्यतः ध्वनि के व्यवस्थित रूप को भाषा और वर्णों के व्यवस्थित रूप को लिपि की संज्ञा दी जाती है। भाषा में जो स्थान ध्वनि का है, लिपि में वही स्थान वर्ण चिह्नों का है। लिपि के अभाव में भाषा का प्रयोग ही नहीं, कुशल प्रयोग सम्भव है, जबकि भाषा के अभाव में लिपि का अस्तित्व संदिग्ध हो जाएगा। ऐसी अवस्था में लिपि-चिह्न मात्र निरर्थक रेखा स्वरूप बन जाएँगे। भाषा का स्वरूप श्रव्यात्मक है, तो लिपि का दृश्यात्मक।

लिपि : परिभाषा

भाषा को स्थायित्व प्रदान करने की शक्ति को लिपि कहते हैं। लिपि का आधार पाकर भाषा समय और स्थान पार करने की शक्ति संजो लेती है। कोई भी भाव या विचार लिपिबद्ध कर सुरक्षित कर दिया जाए, तो दिन, महीना, वर्ष ही नहीं युग के बाद भी ग्रहण किया जा सकता है। आदि रचना ऋग्वेद, चर्चित महाकाव्य महाभारत और रामायण लिपिबद्ध होने के कारण आज भी सुलभ हैं। कोई भी संदेश लिपिबद्ध कर किसी भी नगर अथवा किसी भी देश में भेजा जा सकता है ।

विभिन्न विद्वानों ने लिपि को अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। कुछ परिभाषाएँ उद्धरणीय हैं।

"व्यक्ति अपने भावों को व्यक्त करने के लिए जिन चिह्नों का प्रयोग करता है, उसे लिपि कहते हैं।"[1] जो० वान्द्रियैज

"लिपि वह माध्यम है जिसके सहारे भाषा काल तथा स्थान की सीमा के बन्धन को पार कर जाती है।"[2] डॉ० भोलानाथ तिवारी

"लिपि, भाषा का प्रतिरूप होती है, जो अक्षरों तथा चिह्नों के संयोजन की प्रणाली है।"[3] डॉ० देवीशंकर द्विवेदी

"भाषा लेखन के प्रयोग में आने वाला संकेत-समूह लिपि कहलाता है।"[4] डॉ० रामाश्रय मिश्र

"मानव भाषा के अस्तित्व को स्थिर रखने के लिए जिन चित्रों या चिह्नों का सहारा लेता है, उसे लिपि कहते हैं।[5] डॉ० अम्बाप्रसाद सुमन

"लिपि वह माध्यम है, जो भाषा को स्थायित्व प्रदान करते हुए देशकाल के बन्धन से मुक्त कर दे।"[6] आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा

लिपि को स्पष्ट रूप से इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं -

जिस चिह्न-समूह से काल और स्थान की सीमा पार करने की शक्ति के विकास से स्थायित्व आ जाए, उसे लिपि कहते हैं।

भाषा और लिपि का सम्बन्ध

भाषा के विकास-क्रम में लिपि का उद्भव हुआ है। भाषा का सामान्य अर्थ उच्चरित भाषा से ही लिया जाता है। इसका मुख्य कारण है कि जब लिपि का उद्भव नहीं हुआ था, तब भाषा का यही स्वरूप था। उच्चरित भाषा का प्रयोग लगभग सभी मनुष्य करते हैं, जबकि लिपिबद्ध भाषा का प्रयोग पढ़े-लिखे मनुष्य द्वारा होता है। भाषा का सम्बन्ध किसी लिपि विशेष से ही नहीं होता है। एक लिपि में एकाधिक भाषाओं को लिपिबिद्ध किया जा सकता है। नागरी लिपि में हिंदी, संस्कृत, मराठी आदि भाषाएँ लिखी जाती हैं, तो एक भाषा को एकाधिक लिपियों में लिख सकते हैं; यथा- अंग्रेज़ी की लिपि रोमन है, किन्तु इसे नागरी लिपि में भी लिख सकते हैं।

He is singing song - रोमन लिपि
ही इज़ सिंगिंग सॉङग - नागरी लिपि

भाषा और लिपि दोनों ही भावाभिव्यक्ति के साधन हैं। दोनों ही मानव उन्नति के आधार हैं। दोनों ही अर्जित सम्पत्ति है, इन्हें प्रयत्न करके सीख सकते हैं।

भाषा और लिपि की प्रवृत्ति में कुछ भेद भी हैं, जिन्हें निम्न प्रकार से रेखांकित कर सकते हैं।

1. संकेत व्यवस्था - भाषा उच्चरित ध्वनि-संकेतों की व्यवस्था पर आधारित होती है। यथा- मोती शब्द-प्रयोग पर म् और ई ध्वनियों के उच्चारण पर ध्यान केन्द्रित करते हैं।

म् - व्यंजनात्मक, ओष्ठ्य, अल्पप्राण, घोष, नासिक्य
ओ - स्वरात्मक, वृत्ताकार, पश्च, अर्धसंवृत
त् - व्यंजनात्मक, दन्त्य, अल्पप्राण, अघोष
ई - स्वरात्मक, अवृत्ताकार, अग्र, संवृत

अंग्रेज़ी जैसी भाषाओं में उच्चरित ध्वनियों के साथ अनुच्चरित चिह्नों का विशेष ध्यान रखना होता है; यथा-

Knife - नाइफ़ (K अनुच्चरित चिह्न)
But - बट (U का उच्चारण अ)
Put - पुट (U का उच्चारण उ)

लिपि में लिखित स्वर-चिह्नों की व्यवस्था पर दृष्टि रखते हैं; यथा- नागरी लिपि में यदि बालकः लिखना हो, तो निम्नलिखित चिह्नों का आधार लेते हैं -

बालक - बा ल क :

2. शक्ति

वाचिक भाषा में वक्ता और श्रोता दोनों का होना अनिवार्य है। ऐसी भाषा के प्रयोग के समय वक्ता और श्रोता का एक समय में और एक स्थान पर होना भी अनिवार्य है। यहाँ एक स्थान का अर्थ है कि वक्ता और श्रोता ध्वनि-उत्पादन और ग्रहण की सीमा में हों। यदि श्रोता सामने और एक स्थान पर हों, किन्तु वक्ता के ध्वनि-उत्पादन के साथ ध्वनि-ग्रहण-सीमा से दूर हो, तो भाषा की उद्देश्यहीनता सिद्ध होगी; जैसे - एक बड़े मैदान के एक कोने में खड़ा व्यक्ति विपरीत और दूर के कोने में खड़े व्यक्ति को सामान्य उच्चारण में कुछ कहना चाहें, तो भाव-सम्प्रेषण सम्भव नहीं होता है। वाचिक भाषा की सबसे प्रमुख शक्ति है - अभिव्यक्ति की गम्भीरता। ऐसी भाषा में वक्ता भाव-भंगिमा, मुखाकृति और अनुकूल, उपयोगी अंगों के संवेत रूप में प्रचालन से भावाभिव्यक्ति को अधिक स्पष्ट और प्रभावोत्पादक बना देता है। यह शक्ति लिखित भाषा में आंशिक ही सम्भव है। माता अपने बच्चे को जितनी गम्भीरता से वात्सल्य की अभिव्यक्ति संवादात्मक रूप में कर सकती है, उतनी गम्भीरता से लिखित रूप में नहीं कर सकती है। इसी प्रकार क्रोध या आक्रोश की जैसी प्रभावी अभिव्यक्ति वाचिक रूप में सम्भव है, वैसी लिखित में सम्भव नहीं है।

लिपिबद्ध भाषा में भाव-ग्रहणकर्ता का सामने होना आवश्यक नहीं है। लिपि का आधार पाकर भाषा में समय और स्थान पार करने की शक्ति आ जाती है। लिपिबद्ध भाव या विचार सुरक्षित होने पर वर्षों बाद भी ग्रहण किया जा सकता है। इसे देश अथवा विदेश कहीं भी भेज सकते हैं। विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध समृद्ध और विपुल साहित्य भाषा के इसी रूप की देन है। लिखित भाषा में न केवल हस्तलिखित रूप लेना चाहिए, वरन् समस्त प्रकाशित साहित्य इसका ही विकसित रूप समझना चाहिए। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के वैदिक रूप में उपलब्ध ऋग्वेद आदि से लेकर मानक हिंदी ही नहीं, समस्त भाषाओं के लिखित और प्रकाशित आज तक के साहित्य को इसी वर्ग में रखेंगे।

3. इन्द्रिय-सम्बन्ध

भाषा के विविध रूपों को विभिन्न इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करते हैं। भाषा से भाव-ग्रहण में कर्णेन्द्रिय की मुख्य भूमिका होती है। ध्वनि-उत्पादन के पश्चात् यदि संग्राहक उसे कर्णेन्दिय से ग्रहण नहीं कर पाएगा, तो भाषा और भाषा का यह स्वरूप संदिग्ध हो जाएगा। लिपि में विभिन्न स्वर-व्यंजन आदि चिह्नों की व्यवस्था होती है। लिपिबद्ध भाषा को देखकर ग्रहण करते हैं, क्योंकि यह चक्षु-ग्राह्य भाषा-स्वरूप है।

4. समष्टि रूप

भाषा के दोनों रूपों में भिन्न-भिन्न चिह्नों की व्यवस्था होती है। भाषा में विभिन्न ध्वनियों की व्यवस्था होती है। ये ध्वनियाँ भाषा-विशेष पर आधारित होती हैं; यथा- हिंदी भाषा की ध्वनियाँ हैं -

स्वर - अ आ इ ई उ ऊ आदि।
व्यंजन - क ख ग घ ङ आदि।

लिपि में विभिन्न लिपि-चिह्नों (वर्णों) की व्यवस्था होती है। चिह्नों की समग्रता और व्यवस्था लिपि-विशेष के आधार पर होनी है; यथा नागरी लिपि के लिपि-चिह्नों (वर्णों) की व्यवस्था इस प्रकार है

स्वर - अ आ इ ई उ ऊ आदि

व्यंजन - क ख ग घ ङ आदि

5. योग तत्त्व

भाषा के माध्यम से भावाभिव्यक्ति हेतु ध्वनि-प्रतीकों को आधार बनाया जाता है, तो वाक् अंगों का सहयोग लिया जाता है। हिंदी 'त्' ध्वनि के उच्चारण में जीभ जब दाँत का स्पर्श करती है, तब उक्त ध्वनि का उत्पादन होता है। इसी आधार पर इसे दन्त्य ध्वनि कहते हैं। 'प्' के उच्चारण में पहले दोनों होंठ एक-दूसरे को छूते हैं और फिर होठों के खुलते ही हवा बाहर आती है और इसका उच्चारण होता है। मुखांग ओष्ठ के उच्चारण आधार-स्थान होने के कारण इस ध्वनि को ओष्ठ्य ध्वनि कहते हैं।

लिपि में लिपि-चिह्नों की मुख्य भूमिका होती है, तो विविध संदर्भों में सहयोगी आधार की आवश्यकता होती है। लेखक को कागज़, स्याही, कलम आदि, चित्रकार को तूलिका, रंग, फलक आदि, मूर्ति-शिल्पी को छेनी, हथौड़ी, आधारवस्तु पत्थर आदि तो प्रकाशक को अक्षर, कागज़, स्याही आदि लिपिबद्धता के योगाधार हैं।

6. विकास-क्रम

भाषा का आदि रूप संकेतों पर आधारित था। इसके विकास के परिणामस्वरूप स्वनात्मक रूप सामने आया है। भाषा का आदि-सांकेतिक रूप आज भी प्रयुक्त होता है। यातायात नियंत्रण के लिए चौराहे पर लगी हुई हरी और लाल बत्ती क्रमशः आगे बढ़ें या मार्ग साफ़ है और रुकिए या मार्ग के अवरुद्ध होने का अर्थ-बोध कराती है। दिन में ट्रेन के लिए गार्ड द्वारा दिखाई जाने वाली हरी और लाल झंडी इन्हीं भावों को प्रकट करती है। इसके विकासक्रम में ध्वन्यात्मक या मौखिक भाषा का स्वरूप उपयोग में आने लगा है।

लिपि का प्राचीनतम रूप चित्रात्मक था। सूर्य को प्रकट करने के लिए एक गोला और उसके चारों ओर निकलती हुई रेखाएँ बनाते हैं। इसके पश्चात् संकेत लिपि का विकास हुआ है। लिपि के ये दोनों स्वरूप भावात्मक थे। लिपि के विकास क्रम में स्वनात्मक और अक्षरात्मक लिपियों का उपयोगी स्वरूप प्राप्त हुआ है। लिपि-विकास से ही वर्तमान रचनात्मक और अक्षरात्मक रूप सामने आए हैं।

7. भाषा-लिपि-सम्बन्ध

भाषा से किसी लिपि विशेष का अनिवार्य सम्बन्ध नहीं होता है। कुछ को परम्परागत रूप में लिपि की उपलब्धि होती है; यथा संस्कृत भाषा से हिंदी का उद्भव हुआ है। हिंदी में संस्कृत की देवनागरी को अपना लिया गया है। कुछ भाषाएँ सुविधानुसार अपनी लिपि विकसित कर लेती हैं। प्रारम्भ में गुजराती भाषा की लिपि नागरी थी। बाद में नागरी में परिवर्तन करके गुजराती लिपि विकसित की गई है। गुजराती तथा नागरी में जो प्रमुख भेद किया गया है, वह है-नागरी का शिरोरेखा सहित और गुजराती का शिरोरेखा रहित रूप। यह सत्य है कि एक लिपि में कई भाषाएँ लिखी जा सकती हैं, वर्तमान और भूतकाल में लिखी जाती है; यथा नागरी लिपि में संस्कृत, हिंदी, मराठी और नेपाली भाषाएँ लिखी जाती हैं।

यदि हम तटस्थ और भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से चिन्तन करें, तो पाएँगे कि भाषा और लिपि दोनों भावाभिव्यक्ति के साधन हैं। इसलिए भावाभिव्यक्ति हेतु किसी भी भाषा को किसी भी लिपि में लिपिबद्ध कर सकते हैं। एक लिपि में एकाधिक भाषाएँ और एक भाषा को विभिन्न लिपियों में लिपिबद्ध कर सकते हैं।

8. भाव-सम्बन्ध

भाषा तथा लिपि दोनों भावाभिव्यक्ति के साधन हैं। इससे आभास होता है कि भाषा तथा लिपि दोनों भाव से सीधे जुड़े हैं, किन्तु ऐसा नहीं है। भाषा का भाव से सीधा सम्बन्ध होता है। वक्ता हृदयस्थ भाव को मन-मस्तिष्क की प्रेरणा और ध्वनि-उत्पादक अवयवों के माध्यम से प्रकट करता है। इस प्रक्रिया में लिपि का ध्यान करना या आधार बनाना आवश्यक नहीं होता है। इसका सबल और सहज प्रमाण है कि लिपि ज्ञान से दूर रहने वाले बच्चे और अनपढ़ व्यक्ति सुन्दर और आकर्षक भाषा का प्रयोग करते हैं।

लिपि से भाव का सीधा सम्बन्ध नहीं होता है। वास्तविकता यह है कि हृदयस्थ भाव अभिव्यक्ति के पूर्व अभिव्यंजना में ही किसी भाषा का रूप लेते हैं। भाषा का अभिव्यंजित रूप होठों तक समान रहता है। इसके पश्चात् ध्वन्यात्मक होकर अभिव्यक्त हो जाता है। लेखक जब अपने भाव या विचारों को लिपिबद्ध करता है, तब उसका अभिव्यक्त रूप सामने आता है। यह सुस्पष्ट तथ्य है कि लिपिबद्ध करने के पूर्व भाव या विचार अभिव्यंजना में ही भाषा का रूप ग्रहण कर चुका होता है। कई बार लिखते-लिखते उसके पूर्वांश में ही उच्चारण क्रम शुरू हो जाता है। लिपि-शिक्षण के प्रारम्भिक चरण में यह प्रक्रिया पूर्ण स्पष्ट होती है। इससे ज्ञात होता है कि भाषा के तीन रूप हैं। प्रथम - हृदस्थ भावों का अनुच्चरित किन्तु प्रेरक अभिव्यंजित रूप, द्वितीय - ध्वन्यात्मक स्वरूप प्राप्त

उच्चरित रूप, तृतीय - लिपि का आधार प्राप्त लिखित रूप।

इससे स्पष्ट होता है कि भाषा का सीधा सम्बन्ध भाव से है, किन्तु लिपि और भाव को जोड़ने के लिए भाषा का मध्यस्थ होना अनिवार्य है। भावाभिव्यक्ति संदर्भ में भाषा के लिए लिपि की अनिवार्यता नहीं है, जब कि भाषा के अभाव में लिपि का अस्तित्व ही संदिग्ध हो जाएगा।

9. सैद्धान्तिक स्वरूप

मानव-जीवन पूर्णरूपेण व्यवहार और सिद्धान्त के समन्वित स्वरूप पर टिका है। मनुष्य-निर्मित भाषा और लिपि में ये दोनों गुण हों, यह स्वाभाविक है। विश्व की किन्हीं दो वस्तुओं या व्यक्तियों में पूर्ण समानता हो, यह असम्भव है। इसी प्रकार मानव के व्यवहार में आने वाली भाषा और लिपि के सैद्धान्तिक स्वरूप में भिन्नता है। भाषा जिसे मात्र मौखिक रूप प्राप्त होता है की सैद्धान्तिक व्यवस्था अपेक्षाकृत पर्याप्त शिथिल होती है। बोलचाल की भाषा में न केवल क्षेत्रीयता का पुट होता है, वरन् व्यक्ति-व्यक्ति का अपना भाषायी रंग होता है। ऐसी भाषा में व्याकरणिक शुद्धता पर ध्यान देने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। ऐसी भाषा कभी समाज भाषाविज्ञान पर आधारित होती है, तो कभी सहज व्यवहार पर। बोल-चाल की भाषा में सिद्धान्त और व्याकरण की अपेक्षा न होकर मुख्यतः अर्थ अभिव्यक्ति को ध्यान में रखते हैं।

लिपि स्वयं में सैद्धान्तिक स्वरूप और उत्तम व्यवस्था से युक्त होती है। लिपिबद्ध भाषा भी सुदृढ़ व्यवस्था पर आधारित होती है। लिपिबद्ध भाषा में व्याकरणिक कोटियों का अनुपालन अनिवार्य होता है।

10. व्यवस्था

स्वनों की व्यवस्था से भाषा का रूप निर्धारित होता है। लिपि में लिपि-चिह्नों की व्यवस्था होती है। लिपि का आधार पाकर ही लिपि-चिह्नों को शुद्धता, स्पष्टता, स्थिरता आदि गुण मिले हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि स्वनों को भी स्पष्ट, शुद्ध और निश्चित करने के लिए लिपि का आधार अनिवार्य है। भाषा के स्वनों को यदि लिपिबद्ध न किया जाता, तो प्रत्येक व्यक्ति स्वनों का उच्चारण सुविधा और इच्छानुसार मनमाने ढंग से करता। इस प्रकार लिपि जहाँ लिखित भाषा का आधार बनती है, वहीं भाषा के वाचिक रूप को सुन्दर और अनुकूल व्यवस्था प्रदान करती है।

इस प्रकार भाषा और लिपि दोनों भावाभिव्यक्ति के साधन और मानव-उन्नति के परमाधार हैं। भाषा और लिपि का आपस में निकट सम्बन्ध है। लिपि का आधार पाकर भाषा में विविध स्थायित्व गुण विकसित हो जाते हैं, अर्थात् समय और स्थान पार करने की शक्ति आ जाती है।

भाषा उच्चारित एवं मौखिक है और लिपि अंकित एवं दृश्य। इसी कारण लिपि वस्तुतः दृश्य भाषा है। लिपि चक्षु ग्राह्य है जबकि भाषा श्रोत्र ग्राह्य। विश्व की अनेक भाषाएँ/बोलियाँ लिपि के बिना भी अस्तित्व में हैं, लेकिन उनका क्षेत्र संकुचित है एवं स्वरूप पूर्ण विकसित नहीं है। उनके क्षेत्र विस्तार एवं पूर्ण विकास के लिए लिपि का होना आवश्यक है। लिपि के बिना भाषा का अस्तित्व संभव है, पर लिपि के अभाव में भाषा की विकास-प्रक्रिया अत्यन्त मन्थर होती है, उसकी विकास-प्रक्रिया लिपि से ही गतिमय होती है और उसमें अपेक्षित तीव्रता का भी समावेश होता है। यही कारण है कि लिपि रहित भाषा / बोली मौखिक परम्परा के कारण अपने समस्त वाङ्मय को जनता तक पहुँचाने में समर्थ नहीं हो पाती। किसी भाषा के सामर्थ्य का ज्ञान समस्त वाङ्मय की अभिव्यक्ति से होता है। विश्व की सैकड़ों भाषाएँ ऐसी हैं, जिनकी अपनी कोई लिपि नहीं है। भारत में भी लिपिहीन भाषाओं/बोलियों की कमी नहीं है। वे निकटस्थ किसी भाषा की लिपि को अपनाकर विकसित होती हैं तथा ऐसी भी भाषाएँ/बोलियाँ हैं, जो विदेशी लिपियों को अपनाकर अपना अस्तित्व बनाए रखने में समर्थ हैं। संसार में ऐसे भी उदाहरण हैं कि अनेक भाषाएँ/बोलियाँ लिपि के अभाव में समाप्त हो गई हैं। अतएव भाषा के विकास और उसके जीवित रहने के लिए लिपि आवश्यक है।

भारत की सबसे बड़ी विशिष्टता यह है कि यह विविधताओं और अनेकताओं का देश है तथा यह एक बहुभाषी देश है, जिसमें अनेक लिपियाँ हैं।

आज़ादी के बाद भारत में भाषा-सर्वेक्षण तो नहीं हुआ है, पर प्रत्येक दस वर्ष बाद देश में जनगणना ज़रूर होती है। 2011 की जनगणना के आधार पर 19,500 से अधिक मातृभाषाएँ हैं, जिनमें 121 ऐसी भाषाएँ हैं, जिन्हें 10,000 से अधिक लोगों द्वारा मातृभाषा के रूप में बोली जाती हैं। जनगणना कार्यालय के द्वारा उपलब्ध रिपोर्ट के आधार पर देश में 114 भाषाएँ मान्य हैं। जिनमें 22 भाषाएँ हिंदी, बंगला, तेलगु, मराठी, तमिल, उर्दू, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, उड़िया, पंजाबी, आसमिया, सिन्धी, नेपाली, कोंकणी, मणिपुरी, कश्मीरी, बोडो, डोगरी, मैथिली और संथाली संविधान की आठवीं अनुसूची में हैं तथा 96 भाषाएँ संविधान की अनुसूची में नहीं हैं। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में मान्य 22 भाषाओं को बोलने वाले लगभग 96 प्रतिशत हैं। शेष 4 प्रतिशत में 96 भाषाएँ

बोलने वाले आते हैं। संविधान की आठवीं अनुसूची की भाषाओं के अन्तर्गत 85 मातृभाषाएँ आती हैं, जिनमें हिंदी के अन्तर्गत 48 मातृभाषाएँ हैं। अनुसूची से अलग 96 मातृभाषाओं के अन्तर्गत 131 मातृभाषाएँ आती हैं। यहाँ भारत की कुछ भाषाओं और उनकी लिपियों का वर्णन 2011 की जनगणना के आधार पर किया जा रहा है।

(i) हिंदी : इसकी लिपि देवनागरी है। यह हिमाचल, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान बिहार और मध्य प्रदेश में मुख्यतः बोली जाती है। इसके बोलने वालों की संख्या 53.83 करोड़ है।

(ii) असमिया : यह असमिया लिपि में लिखी जाती है। इस भाषा के बोलने वालों की संख्या 1,53,11,351 है। असम में बोडो भाषा भी बोली जाती है। बोडो लोगों ने स्वेच्छा से देवनागरी लिपि स्वीकार की है।

(iii) बांग्ला : बंगाल में बांग्ला भाषा और बांग्ला लिपि का प्रयोग होता है। बांग्ला बोलने वालों की संख्या 9.72 करोड़ है।

(iv) उड़िया : उड़ीसा में उड़िया भाषा और उड़िया लिपि का प्रयोग होता है। उड़िया भाषा बोलने वालों की संख्या 3.75 करोड़ है।

(v) गुजराती : प्राचीन नागरी से विकसित है। यह लिपि शिरोरेखा विहीन लिखी जाती है। नागरी लिपि से मिलती-जुलती है। गुजराती भाषा बोलने वालों की संख्या 5.54 करोड़ है।

(vi) मराठी : मराठी भाषा की लिपि बालबोध है। जो देवनागरी का ही रूप है। एक दो अक्षर में भेद है। मराठी भाषा, 8.30 करोड़ लोगों द्वारा बोली जाती हैं।

(vii) तेलुगु : तेलुगु भाषा की लिपि तेलुगु लिपि है। इसके बोलने वालों की संख्या 8.11 करोड़ है।

(viii) कन्नड़ : कनड़ भाषा की लिपि कन्नड़ है। कन्नड़ भाषी लोगों की संख्या 4.37 करोड़ है।

(ix) तमिल : तमिल भाषा की लिपि तमिल लिपि है। तमिल बोलने वालों की संख्या 6.90 करोड़ है।

(x) मलयालम : मलयालम भाषा की लिपि मलयालम लिपि है। मलयालम भाषा बोलने वालों की संख्या 3. 48 करोड़ है।

(xi) उर्दू : उर्दू की लिपि फ़ारसी लिपि है। इसकी लिपि में 37 अक्षर होते हैं। यह भाषा सम्पूर्ण भारत में प्रचलित है। इसके बोलने वालों की संख्या 5.07 करोड़ है।

फ़ारसी लिपि और देवनागरी को मिलाकर भारत में 16 लिपियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं।

भारत में हिंदी भाषा लिखने और बोलने वालों की संख्या सबसे अधिक है और इसकी लिपि देवनागरी है। अब विस्तार से नागरी लिपि पर विचार किया जाता है।

नागरी लिपि अपनी वैज्ञानिक सम्पन्नता, स्पष्टता, सुगमता के कारण अन्य प्रचलित लिपियों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। नागरी में 52 अक्षर हैं, जो सभी भारतीय भाषाओं और बोलियों की ध्वनियों को अंकित करने में सक्षम है।

जहाँ तक अन्य भाषाओं का सम्बन्ध है, मराठी की लिपि तो नागरी है ही, बांग्ला, उड़िया, असमिया, गुरूमुखी, गुजराती आदि की लिपियाँ भी नागरी के अत्यन्त निकट है। नागरी लिपि भारत की अन्य भाषाओं द्वारा भी अपनाई जा सकती हैं। इसका प्रमुख कारण है कि संस्कृत भाषा की भी लिपि यही है, जिससे समस्त उत्तर भारतीय भाषाएँ उदय हुई हैं। दक्षिण भारतीय भाषाएँ द्रविड़ परिवार की होने के कारण आर्य परिवार की भाषाओं से पृथक अवश्य हैं, तथापि संस्कृत का प्रचलन दक्षिण भारत में कम नहीं है। दक्षिण भारत के कुछ भागों में तो संस्कृत आज भी उनके परिवारों की मातृभाषा के रूप में व्यवहृत होती है।

रामायण, महाभारत तथा संस्कृत के अन्य ग्रन्थों को वे अपनी मातृभाषा के ग्रन्थ मानते हैं। धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण आदि के अतिरिक्त भास, कालिदास, भर्तृहरि, भवभूति आदि को भारतीय आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। प्राचीन वेद आदि भी नागरी लिपि में होने के कारण नागरी लिपि के महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता। तब प्रश्न उठता है कि भारतीय भाषाएँ नागरी में लिखी जाएँ, तो क्या हानि हैं ? विनोबा जी के शब्दों में "भिन्न-भिन्न लिपियाँ भारत में चलती हैं। उन सबकी अपनी-अपनी खूबियाँ हैं। मैं सबसे कहता हूँ कि आपकी भाषा नागरी में लिखी जाए, तो भारत के सारे शिक्षितों को जोड़ने में मदद मिलेगी। नागरी लिपि पूर्ण है, ऐसा किसी का दावा नहीं है और दुनिया की कोई लिपि पूर्ण है भी नहीं, लेकिन जो लिपियाँ हमारे यहाँ मौजूद हैं उन सबमें थोड़े से फ़र्क से जो पूर्ण हो सकती है, वह नागरी लिपि है।"

हमें नागरी के प्रसार के लिए परिश्रम करना होगा, अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ ग्रन्थों के संस्करण नागरी लिपि में करने होंगे, इससे नागरी लिपि के प्रति लोगों का आकर्षण बढ़ेगा। साथ ही, समान लिपि होने पर समस्त भाषाओं से सम्मान भी बढ़ेगा। एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में आने पर दूसरी भाषा समृद्ध होगी तथा नागरी लिपि का प्रचार और प्रसार भी बढ़ेगा तथा नागरी लिपि ही अधिक भारतीयों की लिपि बन सकेगी।

भारत की वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए आज इस बात

की ज़रूरत है कि देश में प्रचलित सभी भाषाओं में सौमनस्य हो, हम सभी भाषाओं के सम्पर्क में आएँ, उनका उचित सम्मान करें। विभिन्न लिपियों में बद्ध भारतीय भाषाओं का साहित्य हम आसानी से नहीं पढ़ सकते हैं। अतः देश की एक सर्वमान्य लिपि में यदि हम अन्य भारतीय भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था कर सकें, तो परस्पर एक-दूसरे को समझने का अधिक अवसर मिलेगा। ऐसी वैज्ञानिक सरल एवं सहज लिपि नागरी ही है, जिसे आसानी से एक सम्पूर्ण भारत की सह-लिपि बनाया जा सकता है। आज भाषा के सम्बन्ध में भले ही विवाद है, किन्तु लिपि के सम्बन्ध में किसी प्रकार का विवाद नहीं है। नागरी लिपि समूचे देश की भाषाओं में घुली-मिली है। उत्तर दक्षिण के इस झगड़े से यह मुक्त है, हिंदी-अहिंदी का विवाद इसके वैज्ञानिक स्वरूप के कारण कहीं नहीं दिखाई देता। भारत की अन्य लिपियों का अस्तित्व ज्यों-का-त्यों रखा जाए और नागरी लिपि का प्रयोग अन्य भाषाओं की पढाई के लिए बढ़ाया जाए, तो भारत की राष्ट्रीय एकता को अवश्य बल मिलेगा और नागरी लिपि का प्रचार और प्रसार भी बढ़ेगा। आचार्य विनोबा जी ने देश को राष्ट्रीय एकता के सूत्र प्रदान करने के लिए नागरी लिपि के प्रयोग का आह्वान किया था। विनोबाजी ने कहा था "हिन्दुस्तान की एकता के लिए हिंदी भाषा जितना काम देगी, उससे बहुत अधिक काम नागरी लिपि दे सकती है।" वे कहते थे – "भारत में नागरी ही नहीं नागरी भी चाहिए।" विनोबा जी ने जीवन भर नागरी के माध्यम से भारत को एक सूत्र में पिरोकर मुस्कराते रहते देखने का प्रयास किया। वह कहते थे - "भारत की एकता के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि भारत की भाषाएँ देवनागरी में लिखी जाएँ।"

हिंदी अपनी निजी विशेषताओं के कारण प्रगतिगामी है। यह सरल, सुबोध, सुगम तथा सहज ग्राह्य है। इसे सीखना और पढ़ना आसान है। इसमें भ्रम की अधिक गुंजाइश नहीं है। इसका शब्द-भण्डार विपुल है। हर परिस्थिति एवं अवसर के अनुकूल भावाभिव्यक्ति की सामर्थ्य इसमें विद्यमान है। भाषा मनुष्य को जोड़ती है। जिस भाषा में यह जोड़ शक्ति अधिक होती है, वह सम्पर्क भाषा के रूप में अधिक समादृत होती है। हिंदी में यह विद्यमान है। हिंदी हृदय से हृदय को जोड़कर एकता के सूत्र में अन्तर्ग्रथित करती है। राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी यह अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाने में सक्षम है। फ़िजी, मॉरीशस, त्रिनिडाड, गयाना आदि में हिंदी समादृत है।

हिंदी की लिपि देवनागरी है। जिस प्रकार सम्पर्क भाषा के रूप में हिंदी विकसित और प्रतिष्ठित हो रही है, उसी प्रकार देवनागरी लिपि को भी प्रतिष्ठित होना होगा। इससे विभिन्न भाषा-भाषियों में निकटता आएगी और भावात्मक एकता सुदृढ़ होगी। नागरी लिपि भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान है। जिन कारणों से हिंदी सम्पर्क भाषा के रूप में अग्रगामी है, उसी प्रकार देवनागरी लिपि को भी अग्रगामी होना चाहिए। आचार्य विनोबा भावे का कहना है - 'जिन कारणों से 'सबकी बोली' के तौर पर हिंदी को मान्यता दी गई है, उन्हीं कारणों से नागरी को सबकी लिपि' के तौर पर मान्यता मिलनी चाहिए। हिन्दुस्तान की अन्य भाषाएँ भी देवनागरी में लिखी जाएँ, ऐसा निर्णय होने पर दूसरी भाषाओं के लिए आज जो लिपियाँ चल रही हैं, उनका निषेध नहीं होगा, वे लिपियाँ भी चलेंगी और नागरी भी चलेगी।" वस्तुतः नागरी लिपि में भारतीय भाषाएँ लिखी जाएँ, तो किसी की असहमति नहीं होनी चाहिए और इससे किसी प्रकार की हानि भी नहीं है। मराठी की लिपि तो नागरी है ही, बंगला, असमिया, उड़िया, गुजराती, गुरूमुखी आदि की लिपियाँ भी नागरी के निकट हैं। इस तरह आर्य परिवार की भाषाओं को देवनागरी में लिखने पर कोई विशेष हानि नहीं है। द्रविड़ परिवार की भाषाओं की प्रकृति भिन्न है, लेकिन दक्षिण भारत में संस्कृत का प्रचलन होने के कारण अधिकांश लोग नागरी लिपि से परिचित हैं। इस तरह वहाँ भी नागरी लिपि अपनाने पर कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी। एक लाभ यह होगा कि उत्तर भारत के लोग दक्षिण भारत की भाषाओं को पढ़ और लिख सकेंगे। एक समान लिपि होने पर भाषायी एकता बढ़ेगी। सम्पर्क सूत्र और विकसित होगा। आचार्य विनोबा भावे अपना अभिमत प्रकट करते हैं - "मैं नागरी लिपि पर ज़ोर दे रहा हूँ। मेरा अधिक ध्यान नागरी लिपि को लेकर चल रहा है। नागरी लिपि अगर हिन्दुस्तान की सभी भाषाओं के लिए चले, तो हम सब लोग बिल्कुल नज़दीक आ जाएँगे।"

भारत जैसे विशाल देश की विभिन्न भाषाओं को परस्पर जोड़ने के लिए अगर कोई उपयुक्त लिपि है - तो वह है देवनागरी। देवनागरी सामासिक भाषायी संस्कृति की संवाहिका है। भारत की सभी भाषाओं का साहित्य किसी-न-किसी रूप में संस्कृत साहित्य का ऋणी है। वेद, पुराण, स्मृतियाँ, धर्मशास्त्र, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थ संस्कृत में हैं। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ, बाण, भर्तृहरि जैसे महान रचनाकारों की देन अविस्मरणीय है। भरत, दण्डी, मम्मट, रूद्रट, पण्डितराज जगन्नाथ, विश्वनाथ आदि काव्यशास्त्रियों के काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के प्रति कौन आभारी नहीं होगा ? संस्कृत के सम्पूर्ण वाङ्मय को जन-जन तक पहुँचाने वाली लिपि देवनागरी समस्त भारतीय भाषाओं के लिए उपयुक्त जोड़ लिपि साबित हो सकती है। इसीलिए आचार्य

विनोबा ने देवनागरी को जोड़ लिपि के रूप में विकसित करने पर ज़ोर दिया- 'सारे भारत को एक रखने के लिए जितने स्नेह बन्धनों से बाँध सकते हैं, उतने स्नेह बन्धनों की आज ज़रूरत है। जैसे हिंदी एक स्नेह तन्तु है, उतने महत्त्व का स्नेह तन्तु देवनागरी लिपि है। आज लोग अपनी भिन्न-भिन्न लिपियों में लिखते हैं। साथ-साथ नागरी में भी लिखते, तो कितना लाभ होता।"

आचार्य विनोबा से पूर्व भी कई मनीषियों ने देवनागरी को अपनाने पर ज़ोर दिया था। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने हिंदी और देवनागरी का प्रयोग तथा प्रचार-प्रसार किया। गौरीदत्त शर्मा ने 'नागरी सभा का गठन कर देवनागरी के प्रचार-प्रसार का जो कार्य किया - वह सराहनीय है। बिहार के भूदेव मुखोपाध्याय के प्रयत्नों से नागरी का प्रयोग अदालतों के काम-काज में प्रारम्भ हुआ। महात्मा गांधी राष्ट्रीय एकता के लिए नागरी अपनाने के प्रबल पक्षधर थे। लाला लाजपत राय और वीर सावरकर देवनागरी को 'राष्ट्रलिपि के रूप में अपनाने पर ज़ोर दे रहे थे। पंडित नेहरू चाहते थे कि समस्त भारतीय भाषाएँ देवनागरी को अपनाएँ। सम्पर्क लिपि के रूप में देवनागरी की पक्षधरता प्रकट करने वाले अन्य मनीषियों में पंडित मदन मोहन मालवीय, रवीन्द्रनाथ टैगोर, बंकिमचन्द्र चटर्जी, शारदाचरण मित्र, लोकमान्य तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, वी० कृष्णा स्वामी आयंगार आदि के नाम उल्लेख्य हैं। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर नागरी लिपि का व्यवहार अतिरिक्त लिपि के रूप में करने के पक्षपाती थे। एम०सी० छागला का कहना था कि एक लिपि स्वीकार करने से भारत की विभिन्न भाषाओं में संचित ज्ञान सर्वसुलभ हो सकेगा। इसके लिए देवनागरी से उपयुक्त और कोई लिपि नहीं हो सकती।

सम्पर्क लिपि होने के लिए जिन तत्त्वों और कारकों का किसी लिपि में पाया जाना आवश्यक है, वे सभी देवनागरी में विद्यमान हैं। सम्पर्क लिपि वही हो सकती है, जो प्राचीन हो, वैज्ञानिक हो, अभिव्यक्ति कौशल में समर्थ हो तथा देश की अधिकांश जनता द्वारा व्यवहृत होती हो। देवनागरी की प्राचीनता से किसी को असहमति नहीं होगी। देवनागरी भारत की प्राचीनतम लिपि ब्राह्मी की वंशजा है। ब्राह्मी का सम्बन्ध इन लिपियों से प्रमाणित हो गया, तो नागरी भी इनसे सम्बंधित मानी जाएगी। और इस तरह देवनागरी प्राचीन लिपि के साथ ही विश्वनागरी के रूप में भी प्रतिष्ठित हो सकेगी। भारतीय संस्कृति, दर्शन, अध्यात्म तथा लोकरंजन एवं लोकमंगल की कामना से रचित ग्रंथ देवनागरी की अमूल्य निधि हैं। ये प्राचीनतम ग्रन्थ देवनागरी की समृद्धि एवं प्राचीनता को अभिप्रमाणित करते हैं। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिंदी तक की यात्रा में देवनागरी समृद्ध भी हुई है और संस्कारित भी। इसका जनाधार बढ़ा है और इस तरह देवनागरी सम्पर्क लिपि के रूप में अधिक सक्षम है।

देवनागरी की वैज्ञानिकता भी, सभी भाषाओं के लिए उपयुक्त लिपि, इसे ही मानने का आधार प्रदान करती है। इसमें पर्याप्त चिह्न हैं। एक ध्वनि के लिए प्रायः एक चिह्न है। स्वरों में ह्रस्व तथा दीर्घ के लिए अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त होती हैं, वहाँ ध्वनि-प्रतीकों के लिखने की व्यवस्था है। देवनागरी वैदिक भाषा से लेकर वर्तमान भारतीय भाषाओं के ध्वनिगत तत्त्वों को अपने भीतर समाहित करने की क्षमता से पूर्ण रही है। इसने सजातीय एवं विजातीय दोनों प्रकार के लिपि चिह्नों को अपने में आत्मसात किया है।

इससे स्पष्ट है कि राष्ट्रलिपि या सम्पर्क लिपि या वैकल्पिक लिपि के रूप में देवनागरी का अपनाया जाना सभी के हित में है। इससे राष्ट्रीय एकता की पुष्टि होगी तथा इससे विश्वनागरी की मात्रा का सुफल प्राप्त हो सकेगा। हिंदी सम्पर्क भाषा के रूप में विश्वक्षितिज पर प्रतिष्ठित हो और उसकी वाहिका देवनागरी कीर्ति पताका फहराये यही कामना है -

किसी भी भाषा का विकास उसकी लिपि के विकास से जुड़ा होता है। भाषा तो समृद्ध और सर्वग्राह्य होती है, जब उसकी लिपि में वे सभी गुण मौजूद हों, जो विश्व की किसी भी भाषा को अभिव्यक्त करने में सक्षम और समर्थ हो। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि देवनागरी लिपि एक ध्वन्यात्मक लिपि है और विश्व की अधिकतम भाषाएँ, जिस तरह बोली जाती हैं, यह लिपि उन्हें उसी तरह अभिव्यक्त कर सकती है। आज तो सूचना प्रौद्योगिकी ने भी देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता को सहर्ष स्वीकार किया है।

वैश्वीकरण की तेज़ रफ़्तार में आज सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ भाषा और लिपि में भी परिवर्तन की संभावनओं से इनकार नहीं किया जा सकता। इन संभावनाओं को पूर्ण करने के लिए आज देवनागरी लिपि और हिंदी वर्तनी के मानवीकरण की ओर अधिक-से-अधिक ध्यान देने की आवश्यकता न केवल भारत में, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी महसूस की जा रही है। भाषा की तरह उसकी लिपि का प्रचार-प्रसार व विकास करना भी एक संवेदनाशील मुद्दा है। प्रत्येक भाषा-भाषी अपनी ही लिपि के अधिकाधिक प्रयोग पर बल देता है। यदि उसकी कोई अपनी लिपि नहीं है, तो वह अपनी भाषा को लिपिबद्ध करने के लिए एक स्वतंत्र लिपि का निर्माण करता है और उसे ही अपनी भाषिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है। ऐसा करके भले ही वह समय की रफ़्तार के साथ ताल मिलाकर न चल सके, पर अपनी लिपि के माध्यम से

अपने विचारों को प्रकट करके गर्व का अनुभव करता है।

आज पूरे विश्व के हिंदी प्रेमी एक ओर जहाँ 'जय हिंदी' का उद्घोष कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर 'जय नागरी' के मानकीकृत रूप से अनभिज्ञ हैं। उन्हें हिंदी में एक ही शब्द की अलग-अलग वर्तनी देखकर आश्चर्य होता है। विदेशों में बसे भारतवंशियों को इस बात की कतई जानकारी नहीं है कि हिंदी की मानक लिपि और वर्तनी के संबंध में भारत में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं, कब हुए हैं, किसने किए, मानक हिंदी के एक ऐसे असमंजस भरे वातावरण में हिंदी की विश्व-यात्रा कैसे सहज और सुगम होगी, यह एक विचारणीय मुद्दा है।

आचार्य विनोबा भावे का सपना था कि नागरी लिपि 'विश्वनागरी' बने और आवश्यकता इस बात की है कि देवनागरी लिपि और हिंदी वर्तनी के मानक रूप निर्धारित करने की दिशा में भारत सरकार ने जो प्रयास किए हैं, उससे विश्वव्यापी हिंदी प्रेमियों को अवगत कराया जाए और विश्व के सभी लोग हिंदी भाषा में एक ही तरह की लिपि और वर्तनी का प्रयोग करें।

संदर्भ-सूची :

1. डॉ. इसपाक अली, देवनागरी लिपि विविध आयाम-2016, साहित्य संस्थान, गाज़ियाबाद
2. डॉ. श्रीधर मिश्र, देवनागरी लिपि : वैज्ञानिकता एवं उपयोगिता, अंक 74, जुलाई-सितंबर 1986, राजभाषा भारती
3. गुणाकर मुले, भारतीय लिपियों की कहानी, 1990, राजकमल प्रकाश दिल्ली
4. डॉ. भोलानाथ तिवारी, हिंदी भाषा की लिपि संरचना, 1993, साहित्य सहकार, दिल्ली
5. डॉ. राजबली पांडेय, भारतीय पुरालिपि, 1993, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
6. गौरीशंकर हीराचंद औझा, भारतीय प्राचीन लिपिमाला, 1993, मुंशीराम मनोहर लाल प्रा. लि. दिल्ली

avirocks1971@gmail.com

हिंदी भाषा की मानकता

- प्रो. राजेश कुमार
नोएडा, भारत

भाषा एक जटिल सामाजिक-सांस्कृतिक परिघटना है, जिसके इर्द-गिर्द विभिन्न अवधारणाएँ और अकादमिक विमर्श प्रचलित हैं। प्रायः यह कथन सुनाई देता है कि 'मानक भाषा' का उपयोग वांछनीय है, जबकि इसके समानांतर 'युवाओं की भाषा के भ्रष्ट होने' का आरोप भी लगाया जाता है। भाषायी 'शुद्धता' बनाम 'अशुद्धता' अथवा 'सही' बनाम 'गलत' के मानक भी विमर्श के केंद्रबिंदु रहे हैं। इसके अतिरिक्त, 'संस्कृतनिष्ठ भाषा' के आग्रह के विपरीत 'हिंदुस्तानी' के व्यापक स्वरूप की चर्चा भी प्रासंगिक रही है। भाषा के लिखित और मौखिक रूपों की भिन्नता तथा उसकी वैज्ञानिकता के प्रश्न भी निरंतर उठते रहे हैं। इन सबके बीच यह सुस्थापित अवधारणा भी है कि 'भाषा बहता नीर है' और इसके स्वाभाविक प्रवाह को अवरुद्ध करना असंभव है। वहीं, महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे संपादकों के उदाहरण भी मिलते हैं, जिन्होंने तत्कालीन शीर्षस्थ साहित्यकारों की भाषायी शैली में परिमार्जन किया। ये सभी संकल्पनाएँ भाषा के स्वरूप, उसके विकास और प्रयोक्ताओं पर पड़ने वाले प्रभावों को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

आइए, इन्हीं संकल्पनाओं का विश्लेषण करें:

मानकता की संकल्पना

हमारे सामने दो शब्द हैं – भाषाविज्ञान और व्याकरण। आमतौर से लोग इनका पर्याय के रूप में उपयोग कर लेते हैं, जबकि दोनों के अर्थ अलग हैं। वैसे भी भाषा में पूर्ण पर्याय जैसी संकल्पना नहीं होती, क्योंकि हर शब्द में अर्थछटा और रूप का अंतर होता है, जैसे पर्वत में अडिगता का भाव मिलता है और पहाड़ में विशालता का। भाषाविज्ञान में मानव भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है और निष्कर्ष निकाले जाते हैं, लेकिन नियम निर्धारित नहीं किए जाते या व्यवस्था नहीं दी जाती। यह भाषा के सभी स्वरूपों - मौखिक, लिखित और सांकेतिक, सभी उपयोगों - वार्तालाप, साहित्य, विज्ञान तथा सभी रूपों - बोलियों, सामाजिक वर्गों, ऐतिहासिक अवधियों में भाषा का व्यापक विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। व्याकरण भाषा-संरचना में अंतर्निहित व्यवस्थित सिद्धांत होता है। सामान्य अर्थ में, व्याकरण उन अचेतन नियमों और सिद्धांतों के समूह को संदर्भित करता है, जो यह नियंत्रित करते हैं कि किसी विशेष भाषा में ध्वनियाँ, शब्द, और वाक्य कैसे संरचित होते हैं। यह आंतरिक प्रणाली है, जिससे देशी वक्ता अनंत संख्या में अभिव्यक्त कर और समझ सकते हैं। व्याकरण का अर्थ है - "भाषा के ध्वनियों, शब्दों, वाक्यों और अन्य तत्वों के साथ-साथ उनके संयोजन और व्याख्या को नियंत्रित करने वाले नियम। व्याकरण शब्द इन अमूर्त विशेषताओं के अध्ययन या इन नियमों को प्रस्तुत करने वाली पुस्तक को भी दर्शाता है।"

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भाषाविज्ञान व्यापक वैज्ञानिक क्षेत्र है, जिसमें भाषा के सभी पहलुओं का अध्ययन किया जाता है, जबकि व्याकरण भाषा का विशिष्ट घटक या उप-प्रणाली है, जिसकी भाषाविज्ञान जाँच करता है।

भाषा की मानकता क्या है

अब सवाल उठता है कि भाषा की मानकता क्या है? क्या यह भाषा के शुद्ध-अशुद्ध रूप निर्धारित करने की प्रणाली है या यह भाषा के स्वरूप को पहचानने की विधि है? फिर सवाल होंगे कि क्या यह आवश्यक प्रक्रिया है या यह भाषा को अवरुद्ध करने का प्रयास है? क्या यह भाषा उपयोगकर्ता की सहायता करती है या उसके भाषा-प्रयोग को दुरूह बनाती है। और यह भी कि क्या यह भाषाविज्ञान के क्षेत्र में आती है या यह वैयाकरणों का काम है?

आम तौर से समझा जाता है कि भाषा के मानक रूप का अर्थ भाषा का शुद्ध रूप है। उदाहरण के लिए, "उपर्युक्त" और "उपरोक्त" में से पहला ठीक है, यह भाषा की मानकता का मुद्दा है, या यह कि "हाथ की हथेली" के बजाय "हथेली" कहना ही काफ़ी है, या "छः" नहीं बल्कि "छह" ठीक है, "राजनीति" सही है और "राजनैतिक" गलत या संबोधन में अनुस्वार का उपयोग नहीं होता, जैसे दोस्तो, देवियो और सज्जनो, भाइयो और बहनो या "कार्रवाई" और "कार्यवाही", "सजा" और "सज़ा", तथा "हंस" और "हँस" के अर्थ में अंतर है, "वह" और "यह" के बहुवचन "वे" और "ये" होते हैं, "आप जा रहे हैं" और "आप जा रहे हो" में से पहला क्रियारूप सही है, "रमेश एक साहसी व्यक्ति है" में "एक" की ज़रूरत नहीं है – वह अंग्रेज़ी के आर्टिकल का अनुकरण है, लेकिन यह काम

भाषाविज्ञान का नहीं है। यह विश्लेषण व्याकरण में किया जाता है।

भाषा-वैज्ञानिक भाषा का अध्ययन अनेक प्रकार से करते हैं और इसी आधार पर भाषाविज्ञान के भी अनेक प्रकार हो जाते हैं। इनमें से एक है, समाज-भाषाविज्ञान। क्या हम सही भाषा का उपयोग व्याकरण के नियमों का उचित उपयोग करके कर सकते हैं? भाषा का उपयोग केवल वाक्यों के उच्चारण तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह तब पूरा होता है, जब कथ्य संप्रेषित हो जाता है। हाइम्स का कहना है कि भाषा को जानने में केवल व्याकरण संबंधी नियम ही शामिल नहीं हैं, बल्कि यह भी जानना शामिल है कि सामाजिक संदर्भों में भाषा का कब, कहाँ और कैसे उचित उपयोग किया जाए। इसे वे "संप्रेषण क्षमता" कहते हैं। समाज-भाषाविज्ञान अध्ययन का आकर्षक और महत्वपूर्ण अंतःविषय क्षेत्र है, जिसमें भाषा और समाज के बीच संबंधों का अध्ययन किया जाता है। इसमें जाँच की जाती है कि सामाजिक कारक भाषा के उपयोग को कैसे प्रभावित करते हैं और इसके विपरीत, भाषा सामाजिक संपर्क और पहचान को कैसे आकार देती है। भाषाविज्ञान की अन्य शाखा, सैद्धांतिक भाषाविज्ञान के विपरीत, जिसमें भाषा पर अमूर्त प्रणाली के रूप में फ़ोकस किया जाता है, समाज-भाषाविज्ञान भाषा की उस रूप में जाँच करता है, जैसे यह वास्तविक दुनिया के सामाजिक संदर्भों में प्रकटतः उपयोग की जाती है। भाषा की मानकता का अध्ययन भाषाविज्ञान के इसी क्षेत्र में किया जाता है।

भाषा का मानकीकरण जटिल सामाजिक भाषायी प्रक्रिया है। इसमें भाषा के लिए मानदंडों और परंपराओं का सामान्य सेट स्थापित करना शामिल है, जिसका उद्देश्य भाषागत भिन्नता को कम करना होता है, विशेष रूप से भाषा के लिखित रूपों में। यह प्रक्रिया अक्सर "मानक भाषा" या "मानक किस्म" के विकास की ओर ले जाती है। इस किस्म को प्रतिष्ठित माना जाता है और सरकार, शिक्षा और मीडिया जैसे आधिकारिक संदर्भों में इसका उपयोग किया जाता है।

भाषा मानकीकरण के मुख्य पहलू

भाषाविद् आमतौर पर मानकीकरण प्रक्रिया में कुछ चरणों या घटकों का उल्लेख करते हैं, जो इस प्रकार हैं -

चयन : भाषा की विशेष बोली या किस्म को मानक के आधार के रूप में चुना जाता है। यह अक्सर सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक प्रतिष्ठा वाली बोली या किस्म होती है, जो अक्सर वाणिज्य और सरकार के केंद्रों से जुड़ी होती है या इसका उपयोग शिक्षित अभिजात वर्ग द्वारा किया जाता है। (उदाहरण के लिए, मानक अंग्रेज़ी के लिए लंदन की बोली और हिंदी के लिए खड़ी बोली)।

कोडीकरण : इसमें व्याकरण, शब्दावली, वर्तनी, और कभी-कभी उच्चारण के लिए स्पष्ट नियमों के निर्माण के माध्यम से चुनी गई किस्म को औपचारिक रूप देना शामिल होता है। यह शब्दकोशों, व्याकरण ग्रंथों और शैली मार्गदर्शिकाओं के माध्यम से किया जाता है।

प्रकार्य का विस्तार : इसके बाद चयनित किस्म को औपचारिक, तकनीकी, साहित्यिक, और प्रशासनिक उपयोगों सहित प्रकार्यों की विस्तृत श्रृंखला में कार्य करने के लिए विस्तारित किया जाता है। इसके लिए अक्सर इसकी शब्दावली और शैलीगत संसाधनों का विस्तार करने की आवश्यकता होती है।

स्वीकृति : कोडीकृत मानक रूप समुदाय के भीतर व्यापक स्वीकृति और मान्यता प्राप्त करता है। अक्सर शिक्षा, मीडिया, और आधिकारिक संस्थानों के माध्यम से इसका प्रचार होता है।

क्या मानकता ज़रूरी है

अब हम चर्चा के इस बिंदु पर आ गए हैं, जहाँ हम यह बात कर सकते हैं कि क्या भाषा की मानकता निर्धारित करना ज़रूरी है और इसके क्या लाभ और हानियाँ होती हैं।

समाज-भाषाविज्ञान की आधारशिला रखने वाले भाषाविद्, भाषा-विविधता और परिवर्तन पर विलियम लेबोव का कार्य इस बात पर प्रकाश डालता है कि मानकीकरण कैसे अक्सर भाषा के परिवर्तन और विविधता की स्वाभाविक प्रवृत्ति के विरुद्ध काम करता है। वे इस बात पर ज़ोर देते हैं कि किसी भाषा की सभी किस्में या बोलियाँ अपने आपमें समान रूप से व्याकरणिक होती हैं और उनमें मानकीकरण की प्रक्रिया "भाषायी अधीनता" का कारण बन सकता है, जहाँ गैर-मानक किस्मों पर हीनता का भाव आ जाता है और उनके बोलने वालों को कम शिक्षित या बुद्धिमान माना जाता है। लेबोव का शोध दर्शाता है कि सामाजिक कारक कैसे भाषा-परिवर्तन और प्रतिष्ठित किस्मों के उद्भव को अत्यधिक प्रभावित करते हैं।

फ़र्डिनेंड डी सॉसर ने मानकीकरण पर सीधे ध्यान केंद्रित तो नहीं किया, लेकिन सॉसर की लैंगुए (भाषा की अमूर्त प्रणाली) और पैरोल (वाणी के व्यक्तिगत कार्य) की आधारभूत अवधारणाएँ इसके लिए सैद्धांतिक पृष्ठभूमि प्रदान करती हैं। मानकीकरण को किसी समुदाय पर विशेष भाषा या भाषा के अत्यधिक विनियमित रूप को लागू करने के प्रयास के रूप में देखा जा सकता है, जिससे प्राकृतिक पैरोल भिन्नता कम हो जाती है। सॉसर ने "एकत्रित करने

वाली ताकतों" जो एकता पैदा करती हैं और "विलयनकारी ताकतों" जो बोली की भिन्नता की ओर ले जाती हैं, के बीच अंतर्निहित तनाव को भी नोट किया है, जो मानकीकरण को समझने के लिए केंद्रीय तनाव है।

ईनार हौगेन भाषा नियोजन और मानकीकरण में प्रमुख भाषाविद् हैं, जिनके द्वारा इस प्रक्रिया के प्रस्तुत मॉडल इस विषय पर व्यापक रूप से उद्धृत किया जाता है। उनका मॉडल ऊपर वर्णित चार चरणों की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया है कि मानकीकरण जान-बूझकर की जाने वाली प्रक्रिया है, जो अक्सर सामाजिक-राजनीतिक लक्ष्यों से प्रेरित होती है।

जेम्स मिलरॉय और लेस्ली मिलरॉय ने भाषा के मानकीकरण पर व्यापक शोध किया है। उन्होंने विशेष रूप से इसके सामाजिक परिणामों और वैचारिक आधारों पर ध्यान केंद्रित किया है। वे इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि मानकीकरण तटस्थ भाषायी प्रक्रिया नहीं है, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रिया है, जिसके कारण अक्सर भाषायी असुरक्षा पैदा होती है और गैर-मानक वक्ता हाशिए पर जाने लगते हैं। वे मानक किस्म के दबाव के बावजूद गैर-मानक किस्मों को बनाए रखने में "प्रच्छन्न प्रतिष्ठा" अर्थात् उच्च सामाजिक मूल्य या सकारात्मक संबंध की भूमिका पर ज़ोर देते हैं।

प्रमुख भाषाविद् डेविड क्रिस्टल मानकीकरण को ऐसी प्रक्रिया के रूप में वर्णित करते हैं, जिसका उद्देश्य व्यापक संचार के लिए एक भाषा को अधिक स्थिर और सुसंगत बनाना है। उन्होंने अंग्रेज़ी जैसी मानक भाषाओं के ऐतिहासिक विकास और इस प्रक्रिया में शब्दकोशों और व्याकरण की पुस्तकों की भूमिका पर चर्चा की है। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि भाषा लगातार विकसित हो रही है, जिससे पूर्ण मानकीकरण अव्यावहारिक और एक सतत प्रयास बन गया है।

अब तक की चर्चा से हम यह जान पाते हैं कि मानकीकरण की प्रक्रिया को भाषाविदों ने नकारात्मक कार्य के रूप में देखा है, जिससे भाषा की विभिन्न किस्मों में तनाव पैदा होता है और मानक से भिन्न किस्म बोलने वाले लोगों को अनावश्यक रूप से हीनता का बोध होने लगता है। मानकीकरण की ज़रूरतों में राजनीति, आर्थिक पहलू, प्रशासनिक कार्य आदि को गिना गया है और इस तरह से नकारात्मक होते हुए भी मानकीकरण को अपरिहार्य कार्य माना गया है, ताकि भाषा से जुड़े व्यवस्था-संबंधी कार्य सुगम हो सकें, क्योंकि मानकीकृत से स्थिर और एकरूप हुए स्वरूप से विभिन्न कार्यों में सरलता पैदा होती है।

कुछ विद्वानों ने इस विषय पर प्रत्यक्ष रूप से नहीं लिखा, लेकिन उनके कार्यों से इस विषय पर उनका नज़रिया ध्वनित होता है।

एस. इम्तियाज़ हसनैन और सोनल कुलकर्णी-जोशी ने विश्लेषण किया है कि भाषा की पश्चिमी वैचारिक श्रेणियों को भारतीय संदर्भ में इस तरह से लागू किया गया है, जिससे कभी-कभी भारत की भाषायी वास्तविकताओं की गलत व्याख्या होती है। उन्होंने अन्वेषण किया है कि जिस तरह से औपनिवेशिक हस्तक्षेपों ने भारतीय भाषाओं की समझ और वर्गीकरण को आकार दिया है, उसने फिर मानकीकरण के प्रयासों को प्रभावित किया है।

"भारत में भाषा मानकीकरण" पर मलिंडा वेनर के काम को अक्सर अकादमिक प्रस्तुतियों या लेखों में उद्धृत किया जाता है। उन्होंने "लिंक भाषाओं" के रूप में अंग्रेज़ी और हिंदी की जटिलताओं और भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र में मानकीकरण के सामाजिक और राजनीतिक निहितार्थों पर गहराई से चर्चा की है। उन्होंने इस मुद्दे पर चर्चा की है कि कैसे मानकीकरण भाषायी विभाजन पैदा कर सकता है और सत्ता की संरचनाओं को मज़बूत कर सकता है।

भारत में त्रि-भाषा सूत्र और राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) पर चर्चा; हालाँकि यह व्यक्तिगत विद्वानों ने नहीं किया है, लेकिन विभिन्न भारतीय शिक्षाविदों और भाषाविदों द्वारा त्रि-भाषा सूत्र और एनईपी में भाषा प्रावधानों पर चल रही बहस और विश्लेषण समकालीन मानकीकरण चुनौतियों पर महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। इन चर्चाओं में अक्सर हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में बढ़ावा देने, क्षेत्रीय भाषाओं की भूमिका और अंग्रेज़ी के लिए निहितार्थों की जाँच शामिल होती है।

उपर्युक्त भाषाविद् भी भाषा के मानकीकरण में राजनीतिक हस्तक्षेप और तद्जन्य भाषिक विभाजन की चर्चा करते हैं।

इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारतीय भाषायी परंपराएँ ऐतिहासिक दृष्टि से दुनिया में सबसे पुरानी और सबसे परिष्कृत हैं और वे पश्चिम में इस तरह की अवधारणाओं के उभरने से बहुत पहले, भाषा मानकीकरण में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करती हैं। विशेष बात यह है कि उनका दृष्टिकोण राजनीतिक एकता के लिए विविध आबादी पर "मानक" थोपने के बारे में कम था, जैसा कि आधुनिक राष्ट्रों में अक्सर देखा जाता है। इसके विपरीत उनका ध्यान पवित्र ग्रंथों (विशेष रूप से वेदों) की शुद्धता और यथार्थता को संरक्षित करने और अनुष्ठान की वाणी की प्रभावकारिता सुनिश्चित करने पर अधिक था। आइए हम, भाषा के मानकीकरण के संबंध में उनके सबसे महत्वपूर्ण संदर्भों और योगदान पर एक नज़र डालें।

शास्त्रीय संस्कृत के निर्माता पाणिनि (लगभग छठी-पाँचवीं

शताब्दी ईसा पूर्व) का विशाल और चिरकालिक कार्य, "अष्टाध्यायी" (आठ अध्याय), संस्कृत का जेनरेटिव व्याकरण है। अष्टाध्यायी निश्चित रूप से विश्व इतिहास में भाषा मानकीकरण का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। उन्होंने तत्कालीन विकसित हो रही वैदिक संस्कृत को उस रूप में कूटबद्ध किया, जिसे हम अब शास्त्रीय संस्कृत के रूप में जानते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ है, वह जिसे "पूर्ण" या "परिष्कृत" किया गया है। यह केवल भाषा का वर्णन नहीं था; यह निर्देशात्मक व्याकरण था, जिसमें "सही" संस्कृत के लिए नियम निर्धारित किए गए थे। पाणिनि और उनके पूर्ववर्ती वैयाकरणों की प्राथमिक अभिप्रेरणा वैदिक ऋचाओं के "भ्रष्टीकरण" या परिवर्तन को रोकना था, जिन्हें ईश्वरीय अभिव्यक्ति माना जाता था और जिनका सटीक उच्चारण और रूप अनुष्ठान की प्रभावशीलता के लिए महत्वपूर्ण था।

अष्टाध्यायी अपनी जेनरेटिव प्रकृति के लिए उल्लेखनीय है, जिसका अर्थ है कि यह ऐसे नियम प्रदान करता है, जो व्याकरणिक रूप से सही सभी संस्कृत वाक्यों को उत्पन्न कर सकते हैं और गलत वाक्यों की पहचान कर सकते हैं। यह औपचारिक एल्गोरिथ्म के समान है और इसने आधुनिक भाषाविज्ञान (जैसे, सॉसर, चोम्स्की) को गहराई से प्रभावित किया है। पाणिनि अपने समय की बोलचाल की "भाषा" और वेदों की पुरातन भाषा ("छंदसा") के बीच अंतर करते थे।

कात्यायन (लगभग चौथी-तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व) ने पाणिनि की अष्टाध्यायी पर वार्तिक (आलोचनात्मक टिप्पणियाँ या पूरक नियम) लिखे। उनके वार्तिक पाणिनि के नियमों को परिष्कृत और स्पष्ट करने की सतत प्रक्रिया को प्रदर्शित करते हैं और अक्सर अस्पष्टताओं या कमियों को दूर करते हैं। यह पाणिनि द्वारा स्थापित मानक के साथ सक्रिय जुड़ाव को दर्शाता है, जो भाषा के उपयोग के विकसित होने के साथ-साथ इसकी निरंतर सटीकता और प्रयोज्यता सुनिश्चित करता है।

पतंजलि (लगभग दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व) का "महाभाष्य" पाणिनि की अष्टाध्यायी और कात्यायन के वार्तिकों पर विशाल टिप्पणी है। पतंजलि ने पाणिनि की प्रणाली का ज़ोरदार बचाव किया और पाणिनीय मानक की शुद्धता और श्रेष्ठता के लिए व्यापक तर्क और उदाहरण प्रदान किए। उन्होंने स्पष्ट रूप से सही भाषा के लिए बेंचमार्क के रूप में शिष्ट-व्यवहार (शिक्षित और सुसंस्कृत द्वारा उपयोग) की आवश्यकता पर चर्चा की, ख़ासकर जब पाणिनि के नियम अस्पष्ट लग सकते थे या जब नए भाषायी रूप सामने आए। उन्होंने शब्द (सही शब्द) और अपशब्द (गलत शब्द या 'भ्रष्ट' रूप) के बीच के अंतर पर भी चर्चा की, जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से पूर्व की वकालत की। उनका काम "सही" संस्कृत बोलने और लिखने से जुड़े सामाजिक महत्त्व और प्रतिष्ठा पर प्रकाश डालता है।

भर्तृहरि (लगभग पाँचवीं शताब्दी के अंत से छठी शताब्दी की शुरुआत तक) का सबसे प्रसिद्ध कार्य "वाक्यपदीय" है, जिसमें भाषा का गहन दार्शनिक अन्वेषण है। जबकि पाणिनि निर्देशात्मक थे, भर्तृहरि ने भाषा, अर्थ और "शुद्धता" की अवधारणा की प्रकृति के लिए गहन दार्शनिक आधार प्रदान किया। स्फोट (अर्थ की अविभाज्य भाषायी इकाई) के उनके सिद्धांत का तात्पर्य है कि अर्थ को पूरे रूप में समझा जाता है, भले ही वह क्रमिक रूप से व्यक्त किया गया हो। यह दार्शनिक दृष्टिकोण स्थिर, अंतर्निहित भाषायी संरचना के विचार का समर्थन करता है, जिसे वैयाकरणों ने कूटबद्ध करने का प्रयास किया। भर्तृहरि शब्द-ब्रह्म (परम वास्तविकता के रूप में भाषा) की अवधारणा पर भी चर्चा करते हैं, जो सही वाणी को ब्रह्मांडीय महत्त्व प्रदान करती है, जिससे भाषायी शुद्धता और मानदंडों के पालन की अनिवार्यता को मज़बूत किया जाता है। वे बोले गए, अभूतपूर्व शब्द (जो भिन्न होता है) और अंतर्निहित, आदर्श शब्द (जो स्थिर है) के बीच संबंधों की खोज करते हैं, जो मानक रूप की खोज के लिए दार्शनिक आधार प्रदान करता है।

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट होता है कि भाषा का मानकीकरण भाषा को अनुशासित करने की प्रक्रिया है। इसे भाषा के उपयोग के आधार पर किया जाता है और ये अनेक राजनीतिक, प्रादेशिक, भाषागत और ऐतिहासिक कारणों से संचालित होते हैं। भाषा में स्पष्टता लाने और उसके संप्रेषण के कार्य को सुगम बनाने के लिए यह प्रक्रिया आवश्यक होती है, भले ही इससे भाषा प्रवाह अवरुद्ध करने और भाषा विभाजन करने जैसे दुष्परिणाम भी होते हैं। यह भौतिकी में "घर्षण" की तरह है, जिसे अक्सर "आवश्यक बुराई" कहा जाता है, क्योंकि यह विरोधाभासी स्थिति प्रस्तुत करता है। हम इसके बिना नहीं रह सकते, फिर भी यह अनेक समस्याएँ और अकुशलताएँ पैदा करता है। अगर भाषा का मानकीकरण न हो, तो उसके उपयोग में अराजकता पैदा हो जाएगी और फिर एक-दूसरे की बात समझना मुश्किल हो जाएगा और इस तरह भाषा का मूल प्रयोजन ही सिद्ध नहीं हो पाएगा। दूसरी ओर, अगर हम मानकीकरण को कठोरता से अपनाते हैं, तो भाषा का सहज विकास अवरुद्ध हो जाएगा। प्राचीन भारतीय वैयाकरण और भाषाविद् भाषायी परिवर्तन और विविधता से अच्छी तरह परिचित थे। उन्होंने संस्कृत से विकसित विभिन्न प्राकृत भाषाओं को संदर्भित करने के लिए अपभ्रंश (शाब्दिक रूप से "भ्रष्ट" या "विचलित" भाषा) जैसे

शब्दों का इस्तेमाल किया। इस तरह हम देख सकते हैं कि अगर भाषाविदों का मानकता पर आग्रह होता, तो हिंदी भाषा का विकास नहीं होता, यानी न मैं यह लेख हिंदी में लिख पाता और न आप इसे पढ़ पाते। तथापि, अगर हिंदी भाषा का मानक रूप निर्धारित न होता, तो न जाने मैं क्या लिखता और आप उसे क्या समझते।

संदर्भ-सूची :

1. फ़्रॉमकिन, वी.ए., रोडमैन, आर., और हाइम्स, एन., भाषा का परिचय (11वाँ संस्करण), 2018, सेनगेज लर्निंग
2. क्रिस्टल, डी., ए डिक्शनरी ऑफ़ लिंग्विस्टिक्स एंड फ़ोनेटिक्स (छठा संस्करण), 2008, ब्लैकवेल पब्लिशिंग
3. हडलस्टन, आर. और पुलम, जी.के., 2002, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस
4. "ग्रामर", ब्रिटानिका। (5 जुलाई, 2025 को पहुँच की गई)
5. हाइम्स, डी., फ़ाउंडेशंस इन सोशियोलिंग्विस्टिक्स : एन एंथ्रोग्राफ़िक एप्रोच,1972, पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय प्रेस
6. हौगेन, ई., लैंग्वेज कॉन्फ़्लिक्ट एंड लैंग्वेज प्लानिंग, 1966, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
7. लेबोव, डब्ल्यू., प्रिंसीपल्स ऑफ़ लिंग्विस्टिक चेंज (3 खंड), 2010, विली ब्लैकवेल
8. सॉसर, एफ़.डी., कोर्स इन जनरल लिंग्विस्टिक्स, 1983, ओपन कोर्ट
9. हौगेन, ई., लैंग्वेज कॉन्फ़्लिक्ट एंड लैंग्वेज प्लानिंग, 1966, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
10. मिलरॉय, जे., और मिलरॉय, एल., अथॉरिटी इन लैंग्वेज : इंवेस्टिगेटिंग लैंग्वेज प्रस्क्रिप्शन एंड स्टैंडर्डाइज़ेशन, 2012, रूटलेज़
11. क्रिस्टल, डी., हाउ लैंग्वेज वर्क्स : हाउ बेबीज़ बैबल, वर्ड चेंज मीनिंग, एंड लैंग्वेज लिव ऑर डाई, 2007, पेंगुइन ग्रुप
12. कुलकर्णी-जोशी, सोनल, और एस. इम्तियाज हसनैन, "नदर्न प्रेस्पेक्टिव ऑन लैंग्वेज एंड सोसायटी", 2021, कैम्ब्रिज हैंडबुक ऑफ़ लैंग्वेज स्टैंडर्डाइज़ेशन में
13. वेनर, मलिंडा, लैंग्वेज स्टैंडर्डाइज़ेशन इन इंडिया, विविध प्रस्तुतियां और आलेख
14. एनसीईआरटी (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद) जैसे संगठनों और भारत में शिक्षा नीति पर फ़ोकस करने वाली अकादमिक पत्रिकाओं के विभिन्न लेख और रिपोर्ट, जैसे, इंडियन जर्नल ऑफ लैंग्वेज एंड लिंग्विस्टिक्स
15. पाणिनि, अष्टाध्यायी, (विभिन्न अनुवाद और टिप्पणियाँ उपलब्ध हैं)
16. पतंजलि, पतंजलि का व्याकरण-महाभाष्य, बॉम्बे संस्कृत श्रृंखला भर्तृहरि, वाक्यपदीय, (के.ए. सुब्रमण्यम अय्यर द्वारा किए गए अनुवाद)

drajeshk@yahoo.com

यह केवल भाषा की बात नहीं है

- सरोजिनी नौटियाल
उत्तराखंड, भारत

हर भाषा का अपना एक व्यक्तित्व होता है। ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य और अर्थ की अपनी बुनियादी संरचना के साथ अन्य अनेकानेक भाषिक कारकों और भाषिक पुटों को लेकर भाषा अपने साम्राज्य का विस्तार करती है। पाणिनी से पूर्व यास्क ने भाषा के चार भेद किए हैं - नाम (संज्ञा, विशेषण), आख्यात (क्रिया), उपसर्ग (मूल धातु से पूर्व लगने वाले शब्दांश) और निपात (संयोजक, उपमा वाचक और पादपूरक यानी अव्यय)। यास्क के परवर्ती पाणिनी ने इनको केवल दो - सुबन्त और तिङन्त में समेट दिया। सुबन्त यानी संज्ञा पद और तिङन्त यानी क्रिया पद। संक्षिप्तता भाषाचार्यों का विशेष आग्रह रहा है। भाषा-विज्ञान के नियमों को उन्होंने सूत्र प्रणाली में पिरोया है। छोटे-छोटे सूत्रों में भाषा की विराट संरचना को बाँध कर रख दिया। वर्णों को माहेश्वर सूत्रों यानी प्रत्याहारों में निबद्ध किया और सूत्र निर्माण की नींव रखी। 'अच्' में सारे स्वर और 'हल्' में सारे व्यंजन समाहित हो जाते हैं। आगे संधि और समास में भी वर्णों और शब्दों को जोड़कर नियमबद्ध तरीके से छोटा किया गया है। यहाँ पर इस बात का उल्लेख करना भी ज़रूरी लग रहा कि संधि और समास जैसी संरचनाएँ लोक जिह्वा के प्रयत्नलाघव यानी मुखसुख की स्वाभाविक प्रवृत्ति का ही परिणाम हैं। भाषाचार्यों ने उनको केवल व्याकरणसम्मत किया है। स्वर, व्यंजन, विसर्ग संधियों तथा तत्पुरुष, अव्ययीभाव, कर्मधारय, द्वंद्व, दिगु, बहुव्रीहि समासों में मौखिक भाषा के बनते-उभरते स्वरूपों को वर्गीकृत करना और फिर नियम-अपवादों में अनुशासनबद्ध करना भाषाचार्यों की भाषा सतर्कता और भाषानुशासन को परिलक्षित करता है। निश्चित ही अध्ययन और परिश्रम को भी।

भाषाचार्य वर्ण और शब्द की अपव्ययता को भाषिक दोष मानते हैं। इस संबंध में प्रचलित यह उक्ति द्दष्टव्य है – अर्द्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः। अर्थात् वाक्य में आधे वर्ण अथवा मात्रा की बचत होने से व्याकरणाचार्य पुत्र-जन्मोत्सव-सा आनंद अनुभव करते हैं। कहने का आशय यह है कि बोलने और लिखने में शब्द के अनावश्यक प्रयोग या पुनरावृत्ति से बचना चाहिए। यह बात के प्रभाव को तो क्षीण करता ही है, वक्ता को भी निष्प्रभावी बना देता है।

भारतीय वाङ्मय में भाषा की महत्ता को भली भाँति आँका गया है। भारतीय भाषा-दर्शन में वाणी के चार भेद – परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी बताए गए हैं। इनका स्थान क्रमशः मूलाधार, उदर, हृदय और कंठ है। जिसको सामान्यतः भाषा कहा जाता है, वह कंठ में स्थित वैखरी है। इसलिए भाषा को वैखरी भी कहा जाता है। भाषा की व्याप्ति को लेकर हमारे मनीषियों ने कहा है कि संसार में ज्ञात ऐसा कोई विषय नहीं है, जो शब्द का आश्रय न लेता हो। मनुष्य का चिंतन, संवेदनाएँ और सांसारिक क्रिया-कलाप – सब भाषा के ही द्वारा संचालित होते हैं। "इति कर्तव्यता लोके सर्वा शब्द व्यापश्रय" – कह गए हैं शतक त्रय - नीति, श्रृंगार और वैराग्य - के रचयिता संस्कृत के प्रकांड विद्वान, भर्तृहरि।

इसी क्रम में भाषा की महिमा के विषय में 'दशकुमार चरित' और 'काव्यादर्श' जैसी कृतियों के रचयिता दण्डी के इस कथन को उद्धृत करना भी समीचीन होगा –

"यदि संसार में शब्द रूपी ज्योति नहीं होती, तो संपूर्ण संसार अंधकारमय होता।"

भाषा की महिमा को बनाए रखने के लिए हमारे मनीषी भाषा की शुद्धता को लेकर बहुत सतर्क रहते थे। शुद्धता को लेकर उन मनीषियों की चिंता इस बात से समझी जा सकती है कि वेदों के भाषिक स्वरूप और अर्थ-विवेचना को सुरक्षित रखने के लिए जिन छः वेदांगों – शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, कल्प और ज्योतिष – की रचना की गई है, उनमें प्रथम चार तो प्रत्यक्षतः भाषा से संबंधित हैं। शिक्षा उच्चारण से, व्याकरण भाषानुशासन से, निरुक्त शब्द की व्युत्पत्ति से और छन्द पदयोजना से। भाषा की सत्ता के प्रति हमारे कवियों-मनीषियों का यह दृष्टिकोण भाषा के महत्त्व को स्थापित करता है। इन मनीषियों ने न केवल भाषा के स्वरूप को सुनिश्चित किया, प्रत्युत् उसको वैज्ञानिक आधार भी प्रदान किया है। मूल धातु में उपसर्ग व प्रत्यय लगाकर और वर्ण व शब्दों में संधि व समास के योग से असंख्य शब्दों का निर्माण कर भाषाविज्ञों ने अपने भाषा-विधान से जग को विस्मित कर दिया।

भाषा का केवल संरचनात्मक पक्ष ही नहीं है, सौंदर्यात्मक पक्ष भी है। उपसर्ग, शब्द-शक्तियाँ, काव्य गुण, अलंकार, रस, छंद, जैसी शास्त्रीय विशिष्टताएँ तथा मुहावरे, लोकोक्तियाँ, सूक्तियों और निपातों जैसे लोकजन्य भाषिक कौतुकों को समेटे भाषा अपने चमत्कार और प्रभाव को बढ़ाती है। यही नहीं, बिंब, प्रतीक, उक्ति लावण्य, उक्ति वैचित्र्य जैसे भाषा-प्रयोग शब्द के सामर्थ्य को तो

बढ़ाते ही हैं, भाषा की खूबसूरती पर भी चार चाँद लगा देते हैं। इतना ही नहीं बोलने वाले की अनुतान-अनुभाव अर्थात् लय-ताल और भाव-भंगिमा तक बात को बनाने और बिगाड़ने का माद्दा रखती है। बोलने के ढंग मात्र से महाभारत हो जाता है। यह हमारा भाषा-व्यवहार ही है, जो कभी बुझी राख में दबी-ढकी चिंगारी को भड़काकर विकराल ज्वाला में बदल देता है, तो कभी अग्नि की प्रचंडता को भीगी फुहारों से मद्धिम कर देता है।

भाषा मूलतः मौखिक होती है। लिखित भाषा बनने के लिए मौखिक स्वरूप को सुनिश्चित और परिष्कृत होने की प्रक्रिया से गुज़रना पड़ता है। इस संबंध में हिंदी के प्रथम डी.लिट् डॉ. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल का यह कथन उल्लेखनीय है –

"भाषा फलती-फूलती तो है साहित्य में लेकिन अंकुरित होती है, बोलचाल में। साधारण बोलचाल में बोली मँज-सँवरकर साहित्यिक भाषा बन जाती है।"

दरअसल भाषा की एक विकास-यात्रा होती है। ध्वनि-क्रम से शुरू होकर भाषा व्याकरण क्रम में स्थिर होती है। फिर शब्द-शक्तियों, काव्य-गुणों, अलंकार, रस, छन्द से सुसज्जित-सुष्ठ होकर साहित्य क्रम को प्राप्त हो जाती है। स्पष्ट है कि भाषा किसी तिथि विशेष में जन्म नहीं लेती। यह समय के प्रवाह के साथ बनती और बदलती है। काल के कई चरणों से गुज़रती हुई यह आकार बदलती रहती है। यास्क ने समय के साथ-साथ भाषा में होने वाले पाँच विकारों का उल्लेख किया है – वर्णागम, वर्णलोप, वर्णविकार, वर्ण-विपर्यय और अर्थ विकार। लोक जिह्वा से शास्त्रीय स्वरूप और इसके उलट यानी शास्त्रीय स्वरूप से लोक जिह्वा तक भाषा अपने कई स्वरूप बनाती-बदलती रहती है। 'भीतर' अभ्यंतर से बना है, क्या कोई यह अनुमान लगा सकता है! तद्भव तो सभी तत्सम से कायान्तरित हुए हैं।

भाषा की एक सुदीर्घ परंपरा होती है। भाषा सामाजिक सम्पदा है। भाषा सामाजिक निर्वात में विद्यमान नहीं रह सकती। भाषा और सामाजिक कारकों के मध्य जो क्रिया-प्रतिक्रिया होती है, उससे भाषा बनती है और बदलती है; उमगती है और सिमटती है। राजनीतिक-सामाजिक कारणों से जनसमूहों का आप्रवासन और उत्प्रवासन प्रचलित भाषा को नया रूप दे देता है। भाषा में बहुत-कुछ पुराना बदल जाता है और बहुत-कुछ नया जुड़ जाता है।

शब्दों की इस यात्रा पर चिंतक एवं लेखक गोपाल कृष्ण गांधी ने अपने बड़े दिलचस्प लेख 'शब्दों से झाँकता इतिहास' में लिखा है - "किसी आकर्षक गुफ़ा में घुसने की मानिन्द होती है, शब्दों के मूल की तलाश। आप इनके एक-एक मोड़ व इनमें आए बदलावों को गहराई से देखते जाते हैं और आपका साबका कहीं हैरानी से तो कहीं कुछ नया पाने की उम्मीद से और कभी-कभी ज़ोरदार झटके से पड़ता रहता है।"

भाषा को लेकर जितना लिखा जाता है, जितना बताया जाता है, उससे अधिक उसके बारे में लिखा जाना और बताया जाना शेष रह जाता है। कई अन्तर्कथाएँ संगुंफित रहती हैं, इसके कलेवर में। यह केवल अभिव्यक्ति अथवा संप्रेषण का माध्यम भर नहीं है, यह मानव सभ्यता का पैमाना और व्यक्ति की पहचान भी है। जब भाषा पहचान या अस्मिता का विषय बन जाती है, तब भाषा की राजनीति का खेल शुरू हो जाता है। इतिहास साक्षी है कि जिसकी सत्ता, उसकी भाषा। यह सत्य है कि भाषा की अपनी जीवनी शक्ति होती है, लेकिन मुख्यधारा में बने रहने तथा अपनी स्थापना-प्रतिष्ठा के लिए राज्य की इच्छाशक्ति के साथ-साथ इसे राजनीतिक प्रश्रय की भी आवश्यकता होती है।

भाषा संस्कृति का घटक है, लेकिन कई दफ़े यह हथियार भी बन जाती है। किसी देश अथवा जाति पर आक्रमण करने वाले अस्त्र-शस्त्रों में भाषा एक दमदार अस्त्र है। विजयी देश विजित देश पर दो तरफ़ा वार करता है। झटके से वह भूभाग पर कब्ज़ा करता है। फिर वहाँ की जीवन-शैली, सभ्यता-संस्कृति, मान्यताओं-परंपराओं को हलाल करना शुरू कर देता है। संस्कृति में सबसे तगड़ा वार वह भाषा पर करता है। वह अधीनों की जिह्वा से उनकी भाषा छीन लेता है और एक बार सत्ता की भाषा का चस्का लग जाने के बाद वे खुद ही अपनी भाषा को नकारने लगते हैं।

भाषा की गुलामी से निजात पाना बहुत कठिन होता है। भारत राजनीतिक रूप से भले ही वर्ष 1947 में आज़ाद हो गया था, लेकिन मानसिक गुलामी से अभी तलक उबर नहीं पाया। आज भी शिक्षा, शासन और अदालत की भाषा अंग्रेज़ी है। यह तो तब है जब भारत एक विशाल और बहुभाषाओं वाला देश है। भारत की भाषिक विशालता का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि यहाँ के हिमालय से लेकर सुदूर दक्षिण में समुद्रतटीय प्रान्तों और पश्चिम में कच्छ, गुजरात से लेकर पूर्व में अरुणाचल तक फैले जनसमुदायों के मध्य जो-जो भाषाएँ व्यवहार में हैं, वे विश्व के कुल तेरह भाषा-परिवार के चार भाषा-परिवारों के अन्तर्गत वर्गीकृत हुई हैं। पहला, भारोपीय भाषा-परिवार, जिसके अन्तर्गत कश्मीरी, हिंदी, बंगाली, असमिया, उड़िया, पंजाबी, गुजराती, कच्छी, सिन्धी, मराठी, संस्कृत, उर्दू भाषाएँ आती हैं। दूसरा, द्रविड़ भाषा-परिवार, जिसके अन्तर्गत तेलगु, तमिल, मलयालम और कन्नड़ भाषाएँ हैं। तीसरा, ऑस्टियो-एशियाई भाषा परिवार, जिसके अन्तर्गत छोटा नागपुर, उड़ीसा, प.

बंगाल, छत्तीसगढ़, झारखंड में बिखरे हुए संथाली, मुंडारी, खैरवाड़ी, बरहोर, भूमिज, कारवा, कोरकू आदि चौदह आदिवासी समूहों की भाषाएँ हैं। चौथा, हिमालयी क्षेत्र में बसे भोटिया, लाहौली, शेरपा, लद्दाखी, अरुणाचली और उत्तर असम में रहने वाली जातियों-जनजातियों की भाषाएँ। इतना ही नहीं, अंडमान निकोबार द्वीप में रहने वाले लोगों की भाषा अंडमानी निकोबारी को लेकर पाँचवें भाषा-परिवार का उल्लेख भी मिलता है।

कहने का अभिप्राय यह है कि जहाँ इतनी भाषाएँ प्रचलन में हैं और जहाँ अपनी राष्ट्रीय भाषा हिंदी के लिए स्वयं गांधी जी ने कमर कस रखी थी, वह भी आज़ादी मिलने से बहुत पहले से, वहाँ भी स्वतन्त्रता मिलने पर हिंदी को अपने शासकों की ज़ुबान अंग्रेज़ी से कड़ा मुकाबला करना पड़ा और आज भी उसका संघर्ष जारी है। दक्षिण अमेरिका और दक्षिण अफ़्रीका महाद्वीप के छोटे-छोटे देश तो आज़ाद होने के उपरांत भी अपनी भाषा को नहीं ढूँढ पाए। अपने विदेशी साम्राज्यवादी शासकों की थोपी हुई भाषाओं – स्पैनिश, डच, पुर्तगाली, फ़्रांसीसी और अंग्रेज़ी को ही चलाए रखने को मजबूर हुए। स्वाभाविक है कि उनकी अपनी भाषाएँ हाशिये पर चली गईं।

लेकिन जिस संस्कृति में अपनी जीवनी-शक्ति होती है, वह अपनी भाषा को लुप्त नहीं होने देती। यह भारत की संस्कृति का ही दम है कि फ़िजी, गुयाना, सूरीनाम, त्रिनिडाड, मलेशिया, मॉरीशस आदि देशों में भोजपुरी और अवधी मिश्रित हिंदी 'बात' का चलन हिंदी की अजेय शक्ति का परिचायक है। अंग्रेज़ों द्वारा गुलाम बनाए भारतीयों को जब बहला-फुसला कर दुनिया के छोटे-छोटे द्वीपों में ले जाया गया, तो ये अपनी बेबसी के साथ रामचरितमानस, सत्यनारायण व्रत कथा, भगवद् गीता जैसे ग्रन्थों और पोथियों को भी ले गए थे। उनमें से अधिकांश वापस स्वदेश नहीं आ पाए। आज उन्हीं के वंशज अब प्रवासी भारतीय नहीं हैं, बल्कि जहाँ–जहाँ हैं, वहाँ के भारतवंशी नागरिक हैं। भारतवंशी हैं, तो भारतीय संस्कृति भी है। संस्कृति है, तो हिंदी भी है। हिंदी है, तो हिंदी साहित्य भी है। भारतवंशी फ़िजीयाई, मॉरीशसीय और सूरीनामी नागरिक विदेश में हिंदी की ध्वजा थामे हुए हैं। मॉरीशस के प्रेमचंद कहलाने वाले अभिमन्यु अनत ने अपने हिंदी-लेखन से भारतवंशियों की अच्छी-खासी संख्या होने के आधार पर लघु भारत कहे जाने वाले मॉरीशस को हिंदी जगत् में चर्चित कर दिया। आज हिंदी के प्रवासी-लेखन का फलक बहुत बड़ा हो गया है।

आज हिंदी साहित्य में प्रवासी साहित्य की धूम है। कोई इसे हिंदी लेखन की नई ज़मीन कह रहा है, तो कोई ताज़ी फुहार कह रहा है। अमेरिका और यूरोप में रहकर हिंदी के प्रवासी लेखक अपने लेखन से साहित्य के एक नए विमर्श – 'प्रवासी साहित्य' को आकार दे चुके हैं। भले ही उसके प्रकाशक और पाठक यहीं, अपने देश भारत में हैं। फिर भी, देश से दूर, बहुत दूर बैठकर हिंदी में लिखे गए उनके किस्सों-कहानियों का रंग और खुशबू अलग ही है। अब हिंदी में यूरोप की और भाषाओं के शब्द भी आ मिले हैं और हिंदी अंग्रेज़ी को लेकर और सहज हो गई है।

हिंदी की जड़ें निश्चित ही संस्कृत में हैं, लेकिन वे फ़ारसी के साथ फली-फूलीं। वर्ण संस्कृत के ही हैं। शब्द भी अधिकांश संस्कृत के तत्सम या तद्भव हैं। उपसर्ग और प्रत्यय भी संस्कृत के ज्यों के त्यों ले लिए, लेकिन बहनापा इसका फ़ारसी से है। ढेरों अरबी-फ़ारसी के शब्दों को लिए यह फ़ारसी से गहरा नैकट्य रखती है। अरबी सीधे हिंदी में नहीं आई; फ़ारसी के मार्फ़त आई। मुगल आए, तो फ़ारसी आई और फ़ारसी के साथ कई अरबी शब्द भी हिंदी ज़ुबान का हिस्सा बन गए। वाक्य-रचना की दृष्टि से भी हिंदी और फ़ारसी में साम्य है। मुगलकाल में मुस्लिम शायरों और गज़लकारों ने इसी हिंदी में लिखा। उर्दू शब्द तब तक अस्तित्व में नहीं आया था। बात दरअसल यह है कि मुगलकाल में जो भी चीज़ हिन्दुस्तान की होती थी, उसको हिंदी कह दिया जाता था। व्यक्ति हिंदी, तेजपत्ता हिंदी, तेग हिंदी, ज़ुबान भी हिंदी। लेकिन बाद में 'हिंदी' शब्द भाषा के लिए रूढ़ हो गया। उस भाषा के लिए, जो दसवीं शताब्दी के शौरसेनी अपभ्रंश से अमीर खुसरो की पहेलियों और संतों की वाणी से निकलकर आमजन की ज़ुबान बनने लगी थी। निकली संस्कृत से थी, लेकिन गठजोड़ फ़ारसी से था। भाषिक संरचना की दृष्टि से देखें, तो उर्दू हिंदी की एक शैली है, जो फ़ारसी से प्रभावित है और नश्तालीक लिपि में लिखी जाती है। इसका अपना कोई मौलिक स्वरूप नहीं है। यह कहना सरासर गलत है कि हिंदी हिन्दुओं की और उर्दू मुसलमानों की भाषा है। सच्चाई यह है कि हिंदी के विकास में मुसलमानों का और उर्दू के विकास में हिन्दुओं का बड़ा योगदान है। अठारहवीं सदी के अंत तक उर्दू शब्द का प्रयोग भाषा के रूप में नहीं मिलता। अठारहवीं सदी के महान शायर मीर के समय तक उर्दू के कवि अपनी भाषा को हिंदी कहते थे। स्वयं मीर ने एक स्थान पर लिखा है –

"क्या जानूँ लोग कहते हैं जिसको सरूरेकल्ब
आया नहीं यह लफ़्ज़ हिंदी जुबाँ के बीच"

भारतेन्दु ने भी हिंदी और उर्दू को एक मानते हुए अपनी पुस्तक 'कवि वचन सुधा' में लिखा है –

"हिंदी और उर्दू में अन्तर क्या है? हम बिना संकोच के कहते हैं

कि इनमें कोई अन्तर नहीं है। बस अन्तर यह है कि हिंदी में जिसके लिए हिंदी शब्द नहीं मिलता, वहाँ संस्कृत शब्द काम आते हैं और उर्दू में सहज हिंदी शब्द न मिलने पर अरबी-फ़ारसी के शब्द लिखे जाते हैं। यही दोनों में अन्तर है।"

भाषाओं में परस्पर ग्रहणशीलता का गुण होता है। मिलने पर वे एक-दूसरे को समृद्ध करती हैं। महत्त्व मिलने पर उसको भी विकसित किया जाता है। संख्या बल पर हिंदी देश की राजभाषा बन तो गई थी, लेकिन उसकी चुनौतियाँ कम नहीं थीं। एक बड़ी चुनौती उसकी रिक्तियों यानी अपूर्णताओं को भरने की थी। हिंदी में विज्ञान और तकनीकी विषयों पर मौलिक पुस्तकें तैयार करनी थीं। हिंदी को अनुवाद की भाषा भी बनानी थी। दूसरी परेशानी यह थी कि हिंदी में आगत शब्दों का अनावश्यक जमावड़ा हो गया था। हिंदी को नागरी बोलने वाले भाषामर्मज्ञों को इस जमावड़े से बड़ी दिक्कत थी। लेकिन हिंदी इनके बिछोह को सहने की स्थिति में नहीं थी। लोकजिह्वा तो उन शब्दों को आगत मानने को ही तैयार नहीं थी। इसी आधार पर गांधी ने राजभाषा के लिए आम बोलचाल वाली हिंदी की पैरवी की थी।

गृह-मंत्रालय के अधीन राजभाषा विभाग के अन्तर्गत कार्यरत केंद्रीय हिंदी निदेशालय, तकनीकी शब्दावली आयोग और अनुवाद ब्यूरो ने विभिन्न स्रोतों से शब्दों को लेकर हिंदी को विभिन्न प्रयुक्तियों के लिए तैयार किया। वर्तनी में एकरूपता की आवश्यकता महसूस होने लगी। मानकीकरण किया गया। द्वित्व व्यंजनों की छँटनी की गई। संस्कृत के हठी व्याकरण से भी हिंदी को बचाने की कोशिश होने लगी। कामता प्रसाद गुरु, डॉ धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव जैसे भाषाविदों ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इन भाषाविदों ने अपने अथक परिश्रम से स्वतन्त्र भारत में हिंदी को अपनी नई भूमिका के लिए तैयार किया। पौराणिक ग्रन्थों से ग्रह, उपग्रह, अंतरिक्ष, वायुमंडल, नक्षत्र, ऋतु, विमान, चन्द्रयान, तारामंडल, दूर संवेदी उपग्रह, अभयारण्य, संविदा, यान, जलपोत, जलयान, जलदस्यु, रज्जुमार्ग, शल्य-चिकित्सा, आपात-कक्ष, पारपत्र, आकाशवाणी, दूरदर्शन, दूरसंचार, अभियन्ता, संगणक, विभाग, संभाग, विद्युत, परिवहन, वाहन, सैन्यदल, अश्वारोही, कवचित जैसे अर्थवान-प्राणवान शब्दों को आम चलन में ढाला। आगत शब्दों और हिंदी के शब्दों के मेल से शब्द युग्मों को व्यवस्थित किया। अजायब घर, किताब घर, कलम चोर, हिस्सा बाँट, आम चुनाव, अखबार वाला, मुसाफ़िर गाड़ी, माल गाड़ी जैसे अरबी-हिंदी शब्द युग्म; टिकटघर, रेलगाड़ी जैसे अंग्रेज़ी-हिंदी शब्द युग्म और जिलाधीश, जेल खाना, दवा खाना, डाक विमान जैसे दो भिन्न भाषाओं के शब्द युग्म हमारी रोज़ की बोलचाल की भाषा में शामिल हो गए। इसके साथ-साथ आगत शब्दों को हिंदी की चाल में ढाला गया। अरबी-फ़ारसी से यथासंभव नुक्ते की अनिवार्यता को नज़रअंदाज़ कर दिया गया और अंग्रेज़ी के शब्दों का हिंदीकरण कर दिया गया, जैसे तकनीक, अकादमी, रपट। बाकी कुछ शब्दों को बिना किसी छेड़छाड़ के जैसे हैं, वैसे ही अंगीकार कर लिया गया। स्वयं देख लीजिए, क्या कभी लगा कि पुलिस, डॉक्टर, पोस्ट ऑफ़िस, लैटर बॉक्स, बस, ट्रेन, डिलीवरी, नर्स, रजिस्ट्री, रेल, जेल, बटन, बल्ब, रिक्शा, फ़ोन, नेटवर्क, प्लेटफ़ॉर्म, ट्रांसफ़र, ज्वाइनिंग, टिकट, वार्ड, रिज़ल्ट, पास, फ़ेल जैसे शब्द आपके अपने नहीं हैं !

अपने विकास की सुदीर्घ परंपरा को लिए आज हिंदी अपने विस्तार के साथ देश और विदेश में बोली और समझी जाती है। चूँकि विश्व की भाषाएँ किसी-न-किसी जाति या कुल से संबंधित होती हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि आज हिंदी विश्व की उस जाति की भाषा है, जिसकी संख्या विश्व में सर्वाधिक है। यूरोप में जितने प्रतिशत अंग्रेज़ी भाषा-भाषी हैं, उससे अधिक प्रतिशत हिंदी समझने वाले भारत के गैर हिंदी प्रान्तों में मिलेंगे। अंग्रेज़ी में फैलाव अधिक है और हिंदी में सघनता। इसी प्रकार चीनी को बोलने वाले बहुत हैं, लेकिन दूसरी जातियों में चीनी के उतने वक्ता नहीं हैं, जितने हिंदी के हैं।

संदर्भ-सूची :

1. हिंदी की अनस्थिरता एक ऐतिहासिक बहस, संपादक – भारत यायावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2. भारतीय समकालीन साहित्य, सित.-अक्टू 2019, संपादक – चंद्रशेखर कंबार, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
3. भाषा-विज्ञान का रसायन, डॉ. कैलाश नाथ पाण्डेय, गाज़ीपुर साहित्य-संसद, गाजीपुर (उ.प्र.)
4. राजभाषा भारती, जनवरी 2000, भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग, स्वर्ण जयन्ती विशेषांक
5. हिंदी भाषा की संरचना, डॉ. भोलानाथ तिवारी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
6. भाषा का विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहाबाद
7. हिंदी का प्रवासी साहित्य, कमल किशोर गोयनका, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली

snautiyal1@gmail.com

भारतेन्दु-पूर्व हिंदी भाषा और लिपि का संघर्ष

- श्री ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह
गुजरात, भारत

हिंदी भाषा और नागरी लिपि आन्दोलन की शुरुआत उन्नीसवीं सदी से मानी जाती है। हिंदी भाषा और नागरी लिपि आन्दोलन दरअसल हिंदी के विकास के संघर्ष से संबंधित है। यह संघर्ष ब्रिटिश शासनकाल में शुरू होता है, 1836 ई. में अंग्रेज़ सरकार ने एक इश्तहार निकाला, जिसके अनुसार अदालतों में देशी भाषाओं के प्रयोग को अनुमति मिली, अभी तक पश्चिमोत्तर प्रांत की अदालती भाषा फ़ारसी थी। इस बदलाव की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि फ़ारसी के अदालती भाषा होने के कारण जनता को जो कठिनाइयाँ होती थीं, उस बात का अनुभव अंग्रेज़ सरकार को भी अधिकाधिक होने लगा था। अतः अंग्रेज़ सरकार ने इश्तहार निकालकर देशी भाषाओं के प्रयोग को अनुमति दी। इस इश्तहार के बाद फ़ारसी लिपि के साथ नागरी का भी प्रचलन हो गया, किन्तु यह व्यवस्था ज्यादा दिन चल न पाई। अगले ही वर्ष 1837 ई. में उर्दू को पश्चिमोत्तर प्रांत के सब दफ़्तरों की भाषा बना दी गई। इस घटना का उल्लेख आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में कंपनी सरकार द्वारा 1836 ई. में निकले इश्तहारनामे की नकल देते हुए किया है - "हमारे संयुक्त प्रदेश के सदर बोर्ड की तरफ़ से जो 'इश्तहारनामा' हिंदी में निकलता था, उसकी नकल नीचे दी जाती है -

इश्तहारनामा : बोर्ड सदर

पच्छाँह के सदर बोर्ड के साहबों ने यह ध्यान किया है कि कचहरी के सब काम फ़ारसी ज़बान में लिखा-पढ़ा होने से सब लोगों का बहुत हर्ज पड़ता है और बहुत कलप होता है, जब कोई अपनी अर्ज़ी अपनी भाषा में लिख के सरकार में दाखिल करने पावे तो बड़ी बात होगी। सबको चैन आराम होगा। इसलिये हुक्म दिया गया है कि 1244 की कुवार बदी प्रथम से जिसका जो मामला सदर व बोर्ड में हो, सो अपना-अपना सवाल अपनी हिंदी की बोली में और फ़ारसी के नागरी अच्छरन में लिखे दाखिल करे कि डाक पर भेजे और सवाल जौन अच्छरन में लिखा हो, तौने अच्छरन में और हिंदी बोली में उस पर हुक्म लिखा जाएगा। मिति 29 जुलाई सन् 1836 ई.।"

इस इश्तहारनामे में स्पष्ट कहा गया है कि बोली 'हिंदी' ही हो, अक्षर नागरी के स्थान पर फ़ारसी भी हो सकते हैं। खेद की बात है कि उचित व्यवस्था चलने न पाई। यह घोर प्रयत्न हुआ कि दफ़्तरों में हिंदी रहने न पाये। यहाँ तक कि एक वर्ष बाद ही अर्थात् संवत् 1894 (सन् 1837 ई.) में उर्दू हमारे प्रांत के सब दफ़्तरों की भाषा कर दी गयी।

उल्लेखनीय है कि सन् 1836 में अंग्रेज़ों द्वारा जो इश्तहार निकाला गया, उसमें सरकार ने यह निर्णय लिया कि कोई भी व्यक्ति अपनी भाषा में सदर व बोर्ड में अर्जी दाखिल कर सकता है। यह अर्जी हिंदी में हो सकती है और अच्छर (लिपि) नागरी के स्थान पर फ़ारसी भी हो सकते हैं। यहाँ स्पष्ट है कि सरकार का फ़ैसला यह था कि भाषा हिंदी हो और लिपि फ़ारसी या नागरी में से कोई भी हो सकती है। यानी जिसे हिंदी कहा गया था, वह दरअसल वह हिंदी थी, जो फ़ारसी से अलग देशी भाषा थी और जिसे हिंदवी (हिन्दुस्तानी) या हिंदी नाम दिया गया था। नागरी और फ़ारसी दोनों लिपियों में लिखी जाकर भी दरअसल वह एक ही भाषा थी। इसी कारण विवाद शुरू हुआ कि एक भाषा जो दो लिपियों में लिखी जा रही थी और बोलचाल में जिसमें फ़र्क नहीं था, उसे उर्दू और हिंदी में बाँट दिया गया। इस बँटवारे में अंग्रेज़ों ने भूमिका निभाई।

हिंदी को लेकर अनेक भ्रम प्रचारित किये जाते रहे हैं। हिंदी को 'मुश्किल ज़बान' कहकर उससे पल्ला झाड़ने की कोशिश की गई।

यह भ्रम कमोवेश आज भी बना हुआ है। हिंदी-उर्दू के बीच अंतर दिखाने का कार्य अंग्रेज़ी-राज में शुरू हुआ। अंग्रेज़ों का उद्देश्य था, हिन्दू-मुस्लिम के बीच फूट डालकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना। 1857 ई. के स्वाधीनता संग्राम के पश्चात् अंग्रेज़ों ने एक सोची-समझी रणनीति के तहत हिन्दू-मुस्लिम समुदाय की एकता में फूट डालने का काम किया। अंग्रेज़ी-राज के पहले फ़ारसी भारत की राजभाषा थी, जिसे हिन्दू और मुसलमान समान रूप से स्वीकार करते थे। सारे राजकीय कार्य फ़ारसी में होते थे। इसका उल्लेख रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'भाषा और समाज' में किया है- "भारत में अंग्रेज़ी राज कायम होने से पहले यहाँ की अनेक भाषाओं और उनके साहित्य के विकास में मुसलमानों ने योगदान दिया है। इनका यह योग इतना महत्त्वपूर्ण है कि अनेक मुसलमान लेखक कुछ (भारतीय) भाषाओं के साहित्य के आदि संस्थापक माने जायेंगे।... इन्होंने हर प्रदेश की भाषा और संस्कृति

को अपनाया और हिन्दुओं और मुसलमानों का भेदभाव बहुत कुछ दूर करके जातीय संस्कृतियों और राष्ट्रीय भावनाओं का आधार मज़बूत किया।"

1836 ई. में फ़ोर्ट विलियम कॉलिज, कलकत्ता के अंग्रेज़ अध्यापक गिलक्राइस्ट ने खड़ी बोली में पुस्तकें लिखने को प्रोत्साहित किया, लेकिन उन्होंने ये पुस्तकें फ़ारसी और नागरी दोनों लिपियों में लिखवाई। नागरी लिपि में लिखने वालों ने अपनी भाषा में अरबी-फ़ारसी के शब्दों के इस्तेमाल से बचने की कोशिश की, तो दूसरी ओर फ़ारसी लिपि में लिखने वालों ने अरबी-फ़ारसी के शब्दों का भरपूर प्रयोग किया। इस तरह फ़ोर्ट विलियम कॉलिज ने एक ही खड़ीबोली को लिपि और शब्द-भंडार के आधार पर उर्दू और हिंदी में बाँट दिया।

उन्नीसवीं सदी में पश्चिमोत्तर प्रांत में सरकारी दफ़्तरों और अदालतों की भाषा उर्दू और फ़ारसी थी। इन दफ़्तरों में एक भद्रवर्ग था, जो उर्दू भाषा और फ़ारसी लिपि का इस्तेमाल करता था। ध्यातव्य है कि ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में उर्दू पश्चिमोत्तर प्रांत के सारे दफ़्तरों की भाषा कर दी गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि "सरकार की कृपा से खड़ी बोली का अरबी-फ़ारसीमय रूप लिखने-पढ़ने की अदालती भाषा होकर सबके सामने आ गया। जीविका और मान-मर्यादा की दृष्टि से उर्दू सीखना आवश्यक हो गया। देश की भाषा के नाम पर लड़कों को उर्दू ही सिखाई जाने लगी। उर्दू पढ़े-लिखे लोग ही शिक्षित कहलाने लगे। हिंदी की काव्य-परंपरा यद्यपि राजदरबारों के आश्रय में चलती थी, पर उसके पढ़ने वालों की संख्या भी घटती जा रही थी। नवशिक्षित लोगों का लगाव उसके साथ कम होता जा रहा था।..."

हिंदी और उर्दू का अंतर अपने मूल रूप में नागरी और फ़ारसी लिपि का अंतर था। तत्कालीन समय में सरकारी कामकाज में जो लिपि इस्तेमाल की जाती थी, वह फ़ारसी थी। इस कारण भाषा में फ़ारसी के शब्द भी ज्यादा आते थे। फ़ारसी का चलन हिंदी में कम और उर्दू में अधिक था। सरकारी दफ़्तरों में फ़ारसी का चलन होने से नौकरियों में वे ही प्रवेश पाते थे, जो फ़ारसी जानते थे। हिंदी भाषा में व्यवहार करने वालों को दफ़्तर की नौकरी करने का समान अवसर दिलाने के लिए सरकारी क्षेत्रों में हिंदी भाषा और नागरी लिपि को लागू करने की माँग वाजिब और तार्किक थी।

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में फ़्रेंच विद्वान गार्सां द तासी हिंदी और उर्दू दोनों का महत्त्व रखते हुए अपने इतिहास-ग्रंथ में उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं के कवियों का उल्लेख करते हैं। उन्होंने हिंदी और उर्दू दोनों का रहना आवश्यक समझा था और कहा था कि "यद्यपि मैं खुद उर्दू का बड़ा भारी पक्षपाती हूँ, लेकिन मेरे विचार में हिंदी को विभाषा या बोली कहना उचित नहीं।" अंग्रेज़ों में हिंदी के पक्ष में बोलने वालों में प्रमुख रूप से पहला नाम फ़्रेडरिक जॉन शोर का आता है, जिन्होंने "भारत की न्यायपालिका एवं कार्यपालिका की भाषा और लिपि के प्रश्न पर अत्यंत तर्कसंगत, गहन, निष्पक्ष, न्यायपूर्ण एवं व्यापक ढंग से विचार किया था। वे व्यवहार न्यायालय और दाण्डिक सत्र, फ़र्रुखाबाद के न्यायाधीश थे। भाषा और लिपि पर उनका प्रथम लेख 20 मई 1832 ई. का है। इस विषय पर उनके लेखों की लेखन-तिथियाँ मुख्यतः 20 मई 1832 से 1 जून 1834 ई. तक की हैं। न्यायाधीश शोर ने फ़ारसी लिपि बनाम देवनागरी लिपि के प्रश्न पर भी विचार किया था और देवनागरी लिपि को न्यायालयी लिपि बनाए जाने के लिए अपना निर्णय दिया। इन्होंने 'वर्नाक्यूलर लैंग्वेज' अर्थात् देशीय भाषा के रोमन लिप्यन्तरण के सुझाव की बड़ी तीखी आलोचना की और इसे अमान्य एवं निरस्त कर दिया।"

नागरी लिपि पश्चिमोत्तर प्रांत के सरकारी कामकाज में लागू हो, इसकी माँग शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' ने 1868 ई. में की। उन्होंने 1868 ई. में संयुक्त प्रांत की सरकार को एक मेमोरंडम 'कोर्ट कैरेक्टर इन दी अपर प्रोविंसेज ऑफ़ इंडिया' दिया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जो व्यापक हिंदी-आंदोलन चला, उसकी विधिवत शुरुआत इस मेमोरेंडम से मानी जा सकती है। पश्चिमोत्तर प्रांत की सरकार को सौंपे गए अपने मेमोरेंडम में राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' ने अदालतों में नागरी लिपि लागू करने की माँग की। उन्होंने भाषा में परिवर्तन का मुद्दा नहीं उठाया। दरअसल, वे हिंदी-उर्दू को अलग-अलग भाषाएँ मानते ही नहीं थे, इसलिए उनके लिए इस सवाल का कोई मतलब भी नहीं था, लेकिन लिपि का मुद्दा इस मेमोरेंडम में मौजूद था। मेमोरंडम में उन्होंने लिखा है – "हिंदी इस देश की भाषा है और इसी लिपि में यहाँ के सभी कारोबार होते हैं।... फ़ारसी शहरों के कुछ लोगों को, ऊपर-ऊपर के दस-एक हज़ार लोगों को छोड़कर आम लोगों की ज़ुबान कभी नहीं बन सकी। पटवारी आज भी अपने कागज़ हिंदी में ही रखता है। महाजन, व्यापारी और कस्बों के लोग अब भी अपना सारा कारोबार हिंदी में ही करते हैं। लोग अब भी तुलसीदास, सूरदास, कबीर, बिहारी इत्यादि की रचनाओं का आदर करते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि हर जगह हिंदी की सभी बोलियों में फ़ारसी के शब्द काफ़ी पाए जाते हैं। बाज़ार से लेकर हमारे जनाने तक में, वे घर-घर में बोले जाते हैं। भाषा का यह नया मिला-जुला रूप ही उर्दू कहलाता है।... मेरा निवेदन है कि अदालतों की भाषा से फ़ारसी लिपि को हटा दिया जाए और उसकी जगह हिंदी लिपि को लागू किया जाए।"

इस मेमोरंडम में भाषा-परिवर्तन का सवाल नहीं उठाते हुए भी हिंदुओं की आर्यभाषा का फ़ारसी से दूषित होने की बात राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' ने ज़रूर उठाई है। इन्होंने ब्रिटिश सरकार पर आरोप लगाया कि जनता पर फ़ारसी लिपि और फ़ारसीनिष्ठ उर्दू थोपने का काम अंग्रेज़ सरकार कर रही थी। वे लिखते हैं- "आजकल की फ़ारसी में आधी अरबी मिली हुई है। सरकार की इस नीति को विवेकपूर्ण नहीं माना जा सकता, जिसने हिंदुओं के बीच सामी तत्वों को खड़ा कर उन्हें अपनी आर्यभाषा से वंचित कर दिया है, न सिर्फ़ आर्यभाषा से बल्कि उन सभी चीज़ों से जो आर्य हैं, क्योंकि भाषा से ही विचारों का निर्माण होता है और विचारों से प्रथाओं तथा दूसरे तौर-तरीकों का।"

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' ने हिंदी-उर्दू को एक भाषा मानने के बावजूद लिपिगत भिन्नता के कारणों को दूर करने का आधार तय किया। इसके साथ ही अपने 'मेमोरेंडम' में न्यायालयों में नागरी प्रवेश के नौ-सूत्री लाभ को भी गिनाया, जिसका उल्लेख सम्मेलन पत्रिका में इस प्रकार है- "राजा शिवप्रसाद ने न्यायालयों में अक्षर-परिवर्तन अर्थात् देवनागरी लिपि-प्रवेश के नौ-सूत्री लाभ बताए, जो इस प्रकार हैं -

1. हिन्दू राष्ट्रीयता की पुनर्स्थापना होगी।
2. यदि हम सिकन्दर के काल के हिन्दू नहीं बन सकें जब पोरस ने उत्तर पश्चिम भारत में सिकन्दर के आक्रमण का अत्यन्त वीरतापूर्वक मुकाबला किया था, हम पृथ्वीराज और जयचंद के काल के हिन्दू बन सकते हैं, जिन्होंने बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में मुसलमानी आक्रमण के समय अपने प्राणों की आहुति दे दी।
3. संस्कृत का अध्ययन किया जायेगा।
4. एक वर्नाक्यूलर अर्थात् देशीय भाषा होगी।
5. कचहरी के कागज़ात दुर्बोध एवं जनता के लिए अभेद्य नहीं रहेंगे।
6. ज्ञानमार्ग अपेक्षाकृत सुगम हो जायेगा।
7. देशीय भाषा के साहित्य की विकास-गति तीव्रतर होगी।
8. सम्पूर्ण भारत में भाषागत ऐक्य का संचार होगा।
9. असैनिक और सैन्य पदाधिकारियों को दो लिपियों और दो देशीय भाषाओं के प्रभार से मुक्ति मिलेगी।"

राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' को किन परिस्थितियों में हिंदी के पक्ष में खड़ा होना पड़ा; इस संबंध में आचार्य शुक्ल ने लिखा है – "राजा शिवप्रसाद को हिंदी की रक्षा के लिए बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा। हिंदी का सवाल जब आता तब मुसलमान उसे 'मुश्किल ज़बान' कहकर विरोध करते। अतः राजा साहब के लिए उस समय यही संभव दिखाई पड़ा कि जहाँ तक हो सके ठेठ हिंदी का आश्रय लिया जाये, जिसमें कुछ फ़ारसी अरबी के चलते शब्द भी आएँ। राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' के बाद राजा लक्ष्मण सिंह का नाम हिंदी के पक्षधरों में लिया जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में राजा लक्ष्मण सिंह 'असली हिंदी का नमूना लेकर आगे बढ़े।' राजा लक्ष्मण सिंह ने 'रघुवंश' के गद्यानुवाद के प्राक्कथन में भाषा संबंधी अपना मत स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया है। "हमारे मत में हिंदी और उर्दू दो बोली न्यारी न्यारी हैं। हिंदी इस देश के हिंदू बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमान और पारसी पढ़े हुए हिंदुओं की बोलचाल है। हिंदी में संस्कृत के पद बहुत आते हैं, उर्दू में अरबी-पारसी के। परंतु कुछ आवश्यक नहीं है कि अरबी-पारसी के शब्दों के बिना हिंदी न बोली जाए और न हम उस भाषा को हिंदी कहते हैं, जिसमें अरबी, फ़ारसी के शब्द भरे हों।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं सदी में हिंदी के लिए जो संघर्ष हुआ, वह दरअसल फ़ारसी लिपि के स्थान पर नागरी लिपि की सरकारी मान्यता का आन्दोलन था। इस संघर्ष में तमाम विद्वानों ने तर्क और मत के साथ अपना पक्ष रखा और हिंदी के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

संदर्भ-सूची :

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सातवां संस्करण-2010
2. भाषा और समाज, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017
3. रस्साकशी, वीरभारत तलवार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2017
4. रस्साकशी, वीरभारत तलवार, सारांश प्रकाशन, दिल्ली-2002
5. सम्मेलन पत्रिका, सं. विभूति मिश्र, भाग-87, संख्या-2-4, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद, 2001
6. रस्साकशी, वीरभारत तलवार, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2000
7. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चैबीसवाँ संस्करण, 2010

gyanendra0793@gmail.com

नीदरलैंड में हिंदी भाषा

- डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पांडे
नीदरलैंड

भाषा किसी भी समुदाय की सांस्कृतिक, सामाजिक व ऐतिहासिक पहचान का एक महत्त्वपूर्ण स्तंभ होती है। जब एक भाषा अपनी मातृभूमि से दूर जाती है और नए सामाजिक एवं भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में जड़ जमाती है, तब उसकी यात्रा न सिर्फ़ भाषाई होती है, बल्कि पहचान, समायोजन, संघर्ष और पुनरुत्थान की भी होती है। विश्व में उपनिवेशवाद, व्यापार और प्रवासी/डायसपोरा समुदायों के कारण कई भारतीय भाषाएँ अपनी मातृभूमि से दूर-दूर तक फैली हैं। हिंदी भी भारत तक सीमित न रहकर विश्व के हर कोने में अपनी पहचान बना चुकी है। नीदरलैंड 'डच' संस्कृति, डच भाषा और यूरोपीय बहुभाषी समाज के लिए जाना जाता है, परंतु यहाँ हिंदी भाषा का एक महत्त्वपूर्ण इतिहास भी मौजूद है। यह इतिहास औपनिवेशिक युग में सांस्कृतिक आदान-प्रदान से जुड़ा है। इस देश में हिंदी कैसे पहुँची, उसका प्रचलन कैसे हुआ, किन माध्यमों से उसका प्रसार-प्रचार हुआ और यहाँ की सामाजिक व सांस्कृतिक उन्नति में हिंदी ने कैसी भूमिका निभाई; इन सबका मूल्यांकन प्रस्तुत शोध-पत्र में किया जाएगा।

नीदरलैंड का परिचय

नीदरलैंड में हिंदी की जड़ों को समझने के लिए इस देश का उचित परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। नीदरलैंड को 'हॉलैंड' नाम से भी जाना जाता है। अंग्रेज़ी में नीदरलैंड का शाब्दिक अनुवाद 'हॉलैंड' है। डच भाषा के दो शब्दों – नेदर (नीचा या गहरा) और लैंड (सतह या ज़मीन) के मेल से 'नीदरलैंड' शब्द बना। अंग्रेज़ी या लैटिन भाषा में 'Hol' और 'Land' को जोड़कर 'Holland' शब्द का निर्माण हुआ।

यूरोप महाद्वीप का एक प्रमुख देश नीदरलैंड है। यह उत्तरी-पूर्वी यूरोप में स्थित है। इसकी उत्तरी, पूर्वी तथा पश्चिमी सीमा पर समुद्र है। इसके दक्षिण में बेल्जियम तथा पूर्व में जर्मनी है। एम्स्टर्डम इस देश की राजधानी है। द हेग शहर को प्रशासनिक राजधानी माना जाता है। यहाँ की भाषा डच है। डच लोगों के अतिरिक्त यहाँ विभिन्न देशों जैसे – सूरीनाम, भारत, तुर्की, मोरक्को, यूरोप, चीन, इंडोनेशिया, अंटालिया और कैरिबियाई क्षेत्र के लोग भी निवास करते हैं। अतः नीदरलैंड एक बहुसांस्कृतिक देश है।

नीदरलैंड और भारत का प्रारंभिक संबंध

नीदरलैंड और भारत के बीच औपचारिक संपर्क 17वीं शताब्दी के आरंभ में हुआ, जब यूरोपीय राष्ट्रों ने एशिया में व्यापार और उपनिवेश स्थापित करना शुरू किया। डच पूर्व ईस्ट इंडिया कंपनी और अन्य उपनिवेशियों की गतिविधियों के कारण डच लोगों और व्यापारियों का भारत के विभिन्न हिस्सों से परिचय हुआ। संपर्क होने के बावजूद भी उस समय हिंदी भाषी लोगों की कोई बड़ी जनसंख्या नीदरलैंड में नहीं आई थी।

नीदरलैंड में हिंदी का उद्भव और विकास

नीदरलैंड में हिंदी के उद्भव और विकास के तीन मुख्य चरण इस प्रकार हैं -

(i) पहला चरण

17वीं शताब्दी में डच व्यापारी दक्षिण भारत के सीलोन और श्रीलंका में आधिकारिक रूप से व्यापार करने पहुँचे। 25 दिसंबर 1659 में जन्मे जैशुआ केतलार ने 1682 में एक सिपाही के रूप में भारत में नौकरी करना आरंभ किया। उसके बाद उनकी पदोन्नति हुई और वे राजदूत के रूप में वहाँ से सेवानिवृत्त हुए। उनका अधिकांश समय भारत में आगरा और सूरत में गुज़रा। भारत में रहने के कारण उन्होंने हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति को अच्छी तरह से आत्मसात् कर लिया। उन्हें हिंदी/हिन्दुस्तानी भाषा में निपुण माना जाता था। डच और हिन्दुस्तानी व्याकरण संबंधी उनका भाषिक कार्य उल्लेखनीय है। (ketelaar rediscover - The first Dutch grammar of Persian and Hindustani) इस पुस्तक को यूरोप में डच-हिंदी व्याकरण की पहली पुस्तक माना जाता है।

इसके बाद एक और डच व्यापारी भारत आए – 'इसाक फ़न दर हुफ़न' (Izak van dar hoeven')। उन्होंने उपर्युक्त पुस्तक का सहारा लेकर दूसरी हिंदी-डच पुस्तक की रचना की। इसके बाद 'दाविद मिल' ने इस पुस्तक का लैटिन भाषा में अनुवाद किया। सन् 1743 में इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ, जिसकी एक प्रति कलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय में संग्रहित है। इसके उपरांत डच के प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता 'फ़ोखल' (1871-1958) भारत आए, जो दक्षिण एशियाई भाषा के विशेषज्ञ और चित्रकार थे। अपने

पुरातत्व-सर्वेक्षण के दौरान उन्हें बहुत-से शिलालेख मिले, जिन पर संस्कृत भाषा में लिखा गया था, जिन्हें ब्रिटिश सरकार और डच शासकों द्वारा नीदरलैंड लाया गया था। उन्हीं शिलालेखों को पढ़ने के लिए उन्होंने एम्स्टर्डम में पढ़ाई करते समय अपनी प्राध्यापिका 'क्रिस्टियानुस कर्नेलिस उल्हेंनबेक' से संस्कृत भाषा की शिक्षा प्राप्त की। संस्कृत की वैज्ञानिकता को समझने और भारत के अन्य शिलालेखों का रहस्य जानने के लिए वे काफ़ी समय तक जयपुर, बनारस और कश्मीर में रहे। संस्कृत भाषा को आत्मसात कर वे 1914 में नीदरलैंड के लाईदन विश्वविद्यालय में संस्कृत और हिंदी के प्राध्यापक बने। 1925 में उन्होंने लाईदन विश्वविद्यालय में 'केर्न इंस्टिट्यूट', जो विशेष रूप से एशियाई भाषाओं को सीखने के लिए था, की स्थापना की। यहाँ संस्कृत और हिंदी की शिक्षा दी जाती थी। यह विभाग आज भी लाईदन विश्वविद्यालय में है, किन्तु अब यहाँ हिंदी की शिक्षा नहीं दी जाती है। फ़ोखल ने कई पुस्तकों का हिंदी से डच में अनुवाद किया, जिनमें 'संस्कृत एन प्राकृत', 'नागास इन हिन्दू' आदि हैं। इस तरह नीदरलैंड में हिंदी का फूल खिलने लगा, किन्तु कालान्तर में वह पुष्प मुरझा-सा गया।

(ii) दूसरा चरण

सन् 1873 से सन् 1914 के काल में पानी के जहाज़ 'लालारूख' द्वारा अनुबंध-प्रथा के तहत भारतीय श्रमिक गिरमिटिया के रूप में सूरीनाम पहुँचे। भारत के उत्तर प्रदेश के अवधी और भोजपुरी क्षेत्र से लगभग 34,000 श्रमिक सूरीनाम पहुँचे थे। वे भोजपुरी, अवधी, मैथिली, मगही, ब्रज आदि विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में संवाद करते थे। ये भाषाएँ आम तौर पर परस्पर समझी जाती थीं। इन भाषाओं का आपस में मिश्रण हुआ और सरनामी हिंदी का जन्म हुआ। सरनामी हिंदी का अर्थ है - सूरीनाम में बसे भारतीयों द्वारा बोली जाने वाली हिंदी भाषा। भारतीय मज़दूर बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे, किन्तु अपनी भाषा और संस्कृति के महत्त्व को वे भली-भाँति समझते थे। भारतीयों के आगमन से नीदरलैंड में हिंदी भाषा ने अपना पाँव रखा।

अनुबंध श्रमिक रामायण, गीता और अन्य पुस्तकें अपने साथ लाए थे। जब वे थक जाते थे तब शाम को एक जगह पर इकट्ठे होकर रामायण, गीता और कबीरदास के दोहों के साथ भजन गाया करते थे, इसे बैठक गाना कहते थे। यही उनके जीवन का आधार बना। इसी के सहारे उन्होंने हिंदी अक्षर का ज्ञान प्राप्त किया और अपनी संस्कृति को जीवित रखा।

नीदरलैंड में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए भारतीयों ने अथक प्रयास किए। उस समय मुद्रण की व्यवस्था नहीं थी। साहित्य हस्तलिखित होता था। मुंशी रहमान की दिनचर्या की डायरी उस समय का विशेष साहित्य है। यह डायरी पुस्तक का रूप लेकर नीदरलैंड में सूरीनाम हाउस संग्रहालय में संरक्षित है। मुंशी रहमान ने इस पुस्तक में अपनी दिनचर्या को दोहों के रूप में लिखा है। इसमें हिंदी-उर्दू के शब्दों का समावेश है। शुरुआत के कुछ सालों बाद जब पहला पाँच वर्ष का अनुबंध पूरा हुआ, तब डच सरकार ने भारतीय श्रमिकों का अनुबंध अतिरिक्त पाँच वर्ष के लिए बढ़ाकर उन्हें डच नागरिक घोषित किया। यह सूरीनाम में उनके स्थाई निवास का पहला चरण था।

डच सरकार ने अनेक योजनाओं के अंतर्गत सूरीनाम में बसे लोगों को शिक्षा का अधिकार देने के लिए डच विद्यालयों की स्थापना की। इन विद्यालयों में केवल डच भाषा में शिक्षा दी जाती थी तथा ईसाई धर्म के विषय में जानकारी दी जाती थी। भारतीय प्रवासियों के लिए यह सोच का विषय बन गया था कि वे अपने बच्चों को हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति की शिक्षा कैसे देंगे? उन्होंने डच सरकार से हिन्दुस्तानी विद्यालयों की स्थापना करने की माँग की। डच सरकार ने इस प्रस्ताव को पूर्णतः स्वीकार न कर 'कुली स्कूलों' की स्थापना की, जहाँ डच के साथ-साथ एक विषय के रूप में हिंदी भाषा की शिक्षा दी जाती थी। सन् 1929 से सूरीनाम के सरकारी विद्यालयों में हिंदी-शिक्षण को बंद कर दिया गया। यह भारतीय समुदाय के लिए बहुत कष्टदायी था। भारतीयों ने अपनी भाषा और संस्कृति को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने के लिए धार्मिक स्थलों में हिंदी का पठन-पाठन आरंभ किया।

सन् 1960 में भारतीय सरकार की ओर से हिंदी भाषा के शिक्षण के लिए बाबू महात्मा सिंह को सूरीनाम भेजा गया। उनके प्रयासों से हिंदी भाषा का विकास हुआ। उनके द्वारा शिक्षित छात्र-छात्राओं ने हिंदी की शृंखला को आगे बढ़ाया। सन् 1977 में भारत के वर्धा विश्वविद्यालय की सहायता से 'सूरीनाम हिंदी परिषद्' की स्थापना की गई। इस परिषद् में वर्धा विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा दी जाने लगी। यह पाठ्यक्रम धार्मिक स्थलों की हिंदी कक्षा और कुछ सरकारी विद्यालयों में अपनाया गया। इस तरह सूरीनाम में हिंदी का विकास हुआ।

(iii) तीसरा चरण

सन् 1975 में सूरीनाम में प्रवास करने वाले लगभग 65,000 प्रवासी भारतीय नीदरलैंड आए। परिणामस्वरूप यहाँ सूरीनामी समुदाय की एक स्थिर डायस्पोरा स्थापित हुई। नीदरलैंड में हिंदी भाषा की उपस्थिति सीधे भारत से नहीं, बल्कि एक द्विस्तरीय प्रवास - भारत से सूरीनाम और सूरीनाम से नीदरलैंड के माध्यम से हुई।

सन् 1915 में सूरीनाम में जन्मे पंडित जयजयराम ने सूरीनाम में हिंदी की शिक्षा प्राप्त की। वे 60 वर्ष की आयु में नीदरलैंड आए और यहाँ उन्होंने 'संगीत रत्न प्रकाश' पुस्तक हिंदी भाषा में प्रकाशित करवाई। इस पुस्तक में ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपदेश, ज्ञान, वैराग्य, वैदिक विवाह, महर्षि दयानंद सरस्वती का जीवन, आर्य समाज के नियम, शिक्षा आदि से संबंधित पाठ भजन के रूप में सम्मिलित थे। पाँच भागों में विभाजित 470 पृष्ठों की यह पुस्तक नीदरलैंड में हिंदी की पहली मुद्रित पुस्तक थी। इसके पश्चात् सरनामी हिंदी में साहित्य विकसित हुआ। पहली साहित्यिक रचना Bulahat ('The cry in the night") उपन्यास है। यह सन् 1968 में प्रकाशित हुआ। इसके रचनाकार थे - श्रीनिवासी (मार्टिनस लछमन)। उनके बाद सूरजन पुरोही, जीत नारायण, चान चुन्नी, रबीन्द्र बलदेव आदि लेखकों ने हिंदी भाषा को अपने लेखन से एक नई पहचान दी। भारतीय प्रवासियों ने धीरे-धीरे अपने घरों, सामुदायिक भवनों एवं मंदिरों से शुरुआत कर प्राथमिक विद्यालयों तक हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति पहुँचा दी।

सन् 1960 में भारत से एक नौजवान मोहन कांत गौतम पढ़ाई करने के लिए नीदरलैंड आए और यहाँ की लाईदन विश्वविद्यालय में अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद वे यहीं पढ़ाने लगे। बाद में, वे प्रोफ़ेसर के पद से सेवानिवृत्त हुए। उन्होंने सूरीनामी प्रवासी भारतीयों को एक नई राह दिखाई और उनके साथ मिलकर हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए 'मिलन' नाम की एक संस्था बनवाई। किन्तु आपसी मतभेद के चलते यह संस्था कुछ ही समय में बंद हो गई।

सन् 1983 में प्रोफ़ेसर मोहन कांत गौतम के मार्गदर्शन में एक नई समिति का गठन हुआ। इस समिति में प्रोफ़ेसर मोहन कांत गौतम के अतिरिक्त रामेश्वर रामअवतार सिंह, रबीन्द्र बलदेव सिंह, सूर्य प्रसाद बीरे, नारायण मथुरा शर्मा आदि शामिल थे। इस समिति का नाम रखा गया 'नीदरलैंड हिंदी परिषद्'। रामेश्वर रामअवतार सिंह सूरीनाम में हिंदी भाषा की उच्चशिक्षा प्राप्त कर कई वर्षों तक हिंदी भाषा के शिक्षक के रूप में कार्यरत रहे। वे 1969 में अपनी पत्नी सहित नीदरलैंड आए। वे और उनकी पत्नी ब्राह्मावती रामअवतार ननंन पाँडे, जोकि नीदरलैंड में शिक्षिका के रूप में कार्यरत थीं, ने मिलकर 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' की स्थापना की, जो आज भी नीदरलैंड में सक्रिय है। सन् 1960 से लेकर अब तक, 95 वर्ष की आयु में भी वे हिंदी भाषा की ऑनलाइन शिक्षा दे रहे हैं।

सन् 1962 में सूरीनाम हिंदी परिषद् ने भारत की 'राजभाषा समिति वर्धा' का पाठ्यक्रम निश्चित किया और अलग-अलग स्तरों पर हिंदी की परीक्षाएँ निर्धारित कीं। 'नीदरलैंड हिंदी परिषद्' ने इसी पाठ्यक्रम को अपनाया। इसके अंतर्गत प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, परिचय और कोविद की छः परीक्षाएँ, स्थानीय परीक्षा और राष्ट्रभाषा रत्न की परीक्षा देनी होती है।

हर वर्ष नीदरलैंड में 1200 से अधिक विद्यार्थी हिंदी की परीक्षा देते हैं। हज़ारों की संख्या में विद्यार्थी हिंदी की इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो चुके हैं। कोविद काल के बाद इन परीक्षाओं में भाग लेने वाले छात्रों की संख्या घटी।

नीदरलैंड में डच सरकार की अनुमति से पाँच सरनामी हिन्दुस्तानी प्राथमिक विद्यालय आरंभ किए गए। इन प्राथमिक विद्यालयों में डच भाषा में शिक्षा दी जाती है। साथ ही, भारतीय संस्कृति, धर्म और हिंदी भाषा की भी शिक्षा दी जाती है। भारत से आने वाली पाठ्य-पुस्तकें और भारतीय दूतावास के सांस्कृतिक केंद्र से मिलने वाली पुस्तकें यहाँ हिंदी पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए कठिन थीं। इसलिए सरनामी प्रवासी भारतीयों ने अपनी सुविधा के अनुसार हिंदी और डच भाषाओं में पुस्तकें तैयार करवाईं। फ़्रांक कन्हाई एवं नीदरलैंड हिंदी परिषद् के अध्यक्ष नारायण मथुरा शर्मा ने प्रारंभिक अक्षर-ज्ञान की हिंदी-डच पुस्तकें तैयार कीं। हिंदी भाषा के निर्धारित पाठ्यक्रम के अंतर्गत मुंशी प्रेमचंद, धर्मवीर भारती, निराला आदि साहित्यकारों की कृतियों को भी पढ़ाया जाता है। हिंदी परिषद् नीदरलैंड के अतिरिक्त सनातन धर्म महासभा एवं आर्य समाज जैसे धार्मिक संस्थानों ने हिंदी-शिक्षण के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

हिंदी के प्रचार में संचार-माध्यमों एवं रंगमंच की भूमिका

सूरीनामी प्रवासी भारतीयों के लिए हिंदी सिनेमा अधिक प्रिय रहा है। भले ही वे हिंदी भाषा पढ़ने-लिखने में अक्षम रहे, लेकिन फ़िल्मी गीतों के माध्यम से उन्होंने अच्छी-खासी हिंदी सीख ली। आज भी विवाह, जन्मदिन या अन्य विशेष अवसरों पर सरनामी गीतों के साथ हिंदी फ़िल्मों के पुराने गीत गाए जाते हैं।

सूरीनामी प्रवासी भारतीय अपने घरों में और आपस में सरनामी भाषा का उपयोग करते हैं। यहाँ पर सरनामी हिंदी में कई रेडियो चैनल हैं, जैसे - रेडियो आमोर, रेडियो सितारा, रेडियो एस.बी.एस., रेडियो उजाला आदि। इनमें कार्यक्रमों की उद्घोषणा, समाचार-प्रसारण, मृत्यु की सूचनाएँ आदि सरनामी हिंदी और डच भाषा में दी जाती हैं। हिंदी गीतों का लगातार प्रसारण किया जाता है। सन् 1980 में सूरीनामी प्रवासी भारतीयों द्वारा डच टेलीविजन पर 'ओहम' नाम का कार्यक्रम शुरू किया गया था, जिसकी नींव रखने

में भी प्रोफ़ेसर मोहन कांत गौतम की बड़ी भूमिका रही है। यह एक साप्ताहिक कार्यक्रम के रूप में शुरू किया गया, जिसमें भारतीय और सूरीनामी संस्कृति तथा हिंदी भाषा से संबंधित जानकारियाँ दी जाती थीं। इस कार्यक्रम की मासिक पत्रिका भी निकलती थी, जिसमें अन्य जानकारियों के साथ हिंदी भाषा का अक्षर-ज्ञान भी दिया जाता था। लगभग 25 वर्ष बाद यह पत्रिका और कार्यक्रम दोनों बंद हो गए। बैठक गाना और रंगमंच के द्वारा गाये जाने वाले गीत आज भी सरनामी हिंदी में होते हैं।

रंगमंच के क्षेत्र में अमर सिंह रमण और रामदेव रधुवीर जैसे लोग अग्रणी हैं। रामलीला का मंचन हिंदी भाषा में ही किया जाता है, लेकिन रोमन हिंदी में लिखा जाता है। इसके बाद इंटरनेट और टेलीविजन चैनल आने से लोगों को अधिक सुविधाएँ प्राप्त हो गईं। भारत में निर्मित सीरियल - रामायण, महाभारत और हिंदी फ़िल्मों के यहाँ आने से हिंदी भाषा के प्रति रुचि और अनुराग बढ़ा और हिंदी भाषा सीखने की प्रेरणा मिली।

नीदरलैंड में डच लोगों के साथ-साथ सूरीनामी प्रवासी भारतीयों ने भी भारतीय संस्कृति और इतिहास पर लेखन-कार्य किया है। किन्तु हिंदी भाषा में कम लेखन हुआ है। सूरीनाम व नीदरलैंड दोनों की राजकीय भाषा डच होने के कारण डच भाषा में अधिक साहित्य लिखा गया। हिंदी में लेखन सीमित रहा और इसका प्रचार-प्रसार बहुत कम हुआ। युवा-वर्ग के लिए साहित्य-संसाधन पर्याप्त नहीं है। कालांतर में डॉ मोहन कांत गौतम ने हिंदी, डच और अंग्रेज़ी, तीनों भाषाओं में प्रचुर लेखन किया। रबीन्द्र बलदेव ने भी हिंदी भाषा में स्तीफ़ा' (1984) और 'सुनाई कहाँ '(1987) की रचना की। पं. सूर्यप्रसाद बीरे की पुस्तक 'सूरीनाम देश तथा आप्रवासी जीवन और हिंदी भाषा '(1982) हिंदी में लिखी गई। फ़्रांक भगवान प्रसाद कृष्णा ने हिंदी और डच भाषाओं का एक छोटा-सा शब्दकोश तैयार किया। आर्य समाज की संस्थाओं ने धार्मिक पुस्तकों के माध्यम से हिंदी और संस्कृत को आगे बढ़ाया।

भारतीय प्रवासियों की नई आबादी और डायस्पोरा की विविधता

1980 के बाद, भारत से सीधे आने वाले NRIs, छात्रों, व्यवसायियों और प्रोफ़ेशनल लोगों की संख्या बढ़ी। ये प्रवासी भारतीय हिंदी भाषा से किसी-न-किसी रूप में सीधा संबंध रखते थे। वे हिंदी भली-भाँति बोल और समझ सकते थे। परंतु, उन्होंने हिंदी के प्रचार-प्रसार में ध्यान नहीं दिया, क्योंकि उनकी प्राथमिकता यहाँ रहकर डच भाषा और संस्कृति सीखनी रही। नीदरलैंड में भारतीय प्रवासी अब कई उपसमुदायों में बँट चुके हैं। इनमें से कुछ ऐसे हैं, जो हिंदी के प्रति समर्पित हैं। इन्हीं में से एक नाम रामा तक्षक का भी है। उन्होंने हिंदी भाषा में एक कविता-संग्रह और एक उपन्यास लिखा।

नीदरलैंड से 'अमसटल गंगा' नामक एक हिंदी पत्रिका की शुरुआत हुई। यह त्रैमासिक पत्रिका थी, जो तीन-चार संस्मरणों के बाद बंद हो गई। भारत से आए भारतीयों ने यहाँ हिंदी साहित्य लिखा, किन्तु वे हिंदी पढ़ने वाले पाठक तैयार करने में असफल रहे।

सन् 2003 में डॉ ऋतु शर्मा एक गिरमिटिया परिवार में विवाह करने के उपरांत नीदरलैंड आईं। उस समय उन्हें सूरीनामी भारतीय समुदाय में हिंदी भाषा बोलने और पढ़ने वाले कम लोग मिले। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी मिले, जो हिंदी पढ़ना-लिखना चाहते थे। नीदरलैंड के पुस्तकालयों में हिंदी की पुस्तकें पढ़ने को नहीं मिलती थीं। डॉ. ऋतु शर्मा ने अपने बच्चों के डच प्राथमिक विद्यालय के पुस्तकालय में हिंदी-वर्णमाला की पुस्तक उपलब्ध कराने में सहयोग किया। बाद में, उन्होंने डच की बाल-कहानियों का हिंदी में अनुवाद किया, जो विश्व की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं और हो रही हैं। सन् 2016 में उन्होंने डच बाल-साहित्यकार क्रिस फ़ेख्तर के बाल-उपन्यास का हिंदी में अनुवाद किया, जिसे नीदरलैंड में हिंदी पढ़ने वालों ने बहुत सराहा। इस उपन्यास का दूसरा संस्करण सन् 2023 में प्रकाशित हुआ। यह संस्करण देवनागरी और रोमन, दोनों लिपियों में प्रकाशित किया गया है। जिन लोगों को हिंदी समझ आती है, किन्तु इस भाषा को वे लिख-पढ़ नहीं सकते हैं, उनके लिए भी रोमन लिपि वाला संस्करण उपयोगी सिद्ध हुआ है। सन् 2024 में डॉ. ऋतु शर्मा द्वारा रचित 'नीदरलैंड की लोककथाएँ' प्रकाशित हुई। इसमें उन्होंने नीदरलैंड की लोककथाओं का डच से हिंदी में अनुवाद किया। भारत को नीदरलैंड की संस्कृति से परिचित कराने वाली इस पुस्तक को गीना देवी शोध-केंद्र हिसार तथा श्री नगर विश्वविद्यालय से 'अनुवाद भूषण' का सम्मान प्राप्त हुआ।

लगभग दो दशकों से डॉ. ऋतु शर्मा नीदरलैंड में टाउन हॉल आसन की परामर्श समिति की सदस्या होने के साथ हिंदी के प्रचार-प्रसार में संलग्न हैं। उनकी चार हिंदी पुस्तकें और दो नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। नीदरलैंड हिंदी परिषद् व सूरीनाम हिंदी परिषद् के लिए वे कई वर्षों से हिंदी भाषा का निःशुल्क शिक्षण कर रही हैं। अपने छात्रों को वे आभासी कार्यक्रमों और काव्य-गोष्ठियों में भाग लेने के लिए प्रेरित करती हैं और उनके लेख एवं कविताएँ पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाती हैं। हिंदी भाषा के प्रति उनका

प्रेम देखकर 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी संगठन शाखा नीदरलैंड' का गठन किया था, जिसका उद्देश्य सुदूर देशों में हिंदी के प्रति लगाव रखने वालों से संबंध स्थापित करते हुए हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार करना है। इस शाखा द्वारा हर माह एक ऑनलाइन मासिक कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है, जिसमें देश-विदेश के हिंदी साहित्यकार अलग-अलग विषयों पर अपने विचार व्यक्त करते हैं।

नीदरलैंड में हिंदी के महत्त्व की पहचान

नीदरलैंड में हिंदी के महत्त्व की पहचान इस रूप में हुई कि इस भाषा ने एक बहुआयामी भूमिका निभाई है। इसने सांस्कृतिक व सामुदायिक पहचान स्थापित की और प्रवासी भारतीयों को अपनी जड़ों से जुड़ने में सहायता प्रदान की।

सूरीनामी प्रवासी भारतीयों के खून-पसीने से सींचकर हिंदी भाषा का पौधा नीदरलैंड में विकसित हुआ है। हिंदी के माध्यम से भारतीय संस्कृति नीदरलैंड में जीवित है। भारतीय संगीत, त्यौहार, खान-पान, हिंदी सिनेमा और सांस्कृतिक मेलों के माध्यम से सूरीनामी हिन्दुस्तानी समुदाय के अतिरिक्त डच समाज के बीच भी सांस्कृतिक संवाद स्थापित हुआ है। सांस्कृतिक केन्द्रों ने हिंदी को जीवित भाषा बनाने में सहयोग किया। भारतीय सरकार द्वारा प्रदान की गयी ओ.सी.आई कार्ड की सुविधा ने नीदरलैंड के भारतीय प्रवासियों को भारत के अधिक समीप ला दिया है। युवा हिंदी भाषा की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए यहाँ से भारत जाते हैं। प्रवासी भारतीयों के लिए विशेषकर सूरीनामी प्रवासी भारतीयों के लिए भारत किसी तीर्थ-स्थल से कम नहीं है।

नीदरलैंड के सरनामी समाज में आज भी सोहर (बच्चे के जन्म के बाद का समय), थाटी (थाली), चिन्हा (पहचान), दुल्हनिया, बहूरानी, पतोहू (बेटे की पत्नी), कटलिस (हँसिया), अंजौर (उजाला), घाम (धूप), बिहान (कल), माँड़ो (मंडप), मटकोडवा (विवाह से पहले कुम्हार की मिट्टी पूजने जाना) आदि शब्दों को रोज़मर्रा की बोलचाल में सुन सकते हैं। कुछ शब्द डच भाषा के साथ मिल गये हैं, जैसे गंदा के लिए (डच भाषा का मॉर्सू शब्द), कूकरू (डच शब्द keuken), ओटोवा (auto कार), टफरवा (डच भाषा टेबल) आदि। हिंदी भाषा उन लाखों श्रमिकों की याद दिलाती है, जो वर्षों पूर्व भारत छोड़ गए थे। यह भाषा उनकी संस्कृति और उनकी कहानी की संवाहक है।

नीदरलैंड में हिंदी की यात्रा भारत से सूरीनाम और सूरीनाम से नीदरलैंड तक का एक लंबा इतिहास है। इस यात्रा में हिंदी ने अपनी विशेष पहचान बनाई। वह सिर्फ़ बोली न रही, बल्कि सामुदायिक व सांस्कृतिक पहचान तथा सामाजिक-आर्थिक समेकन का माध्यम बनी। यह भाषा डायस्पोरा संवाद का सेतु बनी। इसके भावी विकास की चुनौतियाँ कम नहीं हैं। नई पीढ़ी में भाषा-संक्रमण और पहचान का मिश्रण है। बहुभाषीय दबाब और नए प्रवासियों की विविधता हिंदी भाषा की स्थिति को कमज़ोर बना रही है।

हिंदी भाषा के भविष्य को नीदरलैंड में सुरक्षित रखने के लिए इस भाषा को सरल बनाना है। संस्थागत प्रयासों को जारी रखना है। हिंदी-शिक्षण, साहित्यिक प्रकाशनों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में वृद्धि करनी है। युवा वर्ग में हिंदी के प्रति रुचि जागृत करनी है। डायस्पोरा इतिहास को धरोहर के रूप में याद रखना और साझा करना महत्त्वपूर्ण है।

नीदरलैंड में हिंदी को तीसरी भाषा के रूप में विद्यालयों में स्थापित करने में शायद कुछ समय और लगे। हिंदी का भविष्य यहाँ बहुत उज्ज्वल तो नहीं, किन्तु निराशापूर्ण भी नहीं है। बदलती तकनीक और बढ़ते व्यवसायिक संबंधों के कारण हिंदी भाषा का वर्चस्व यहाँ बढ़ेगा, क्योंकि दुनिया में सबसे अधिक जनसंख्या वाले और सबसे ज्यादा आई. टी शिक्षित देश को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

संदर्भ-सूची :

1. भारतीय दूतावास दे हेग की वेबसाइट - भारतीय प्रवासी समुदाय पर प्रामाणिक जानकारी- https:/www.Indianembassynetherlands.gov.in/indiancommunity-in-Netherlands/
2. Vertovec, Sypteven, The Hindu Diaspora : Comparative Patterns London: (2000) Routledge
3. Choenni, Chan E.S. & Adhin, Rajkoemar
4. Hindustani Immigrants in de Netherlands, Amsterdam Universty Press
5. Sarnami, A Living Language in the Netherlands, Leiden University Papers
6. Choenni, Chan E.S., Hindustani, Sarnami and Hindi : Language and Identity in Suriname and de Netherlands, (2009) Caribbean Quartery, Vol55.no 3
7. Plüket, Dick, Teaching Hindi in the Netherlands, Leiden University

RituS0902@gmail.com

हिंदी : साहित्य एवं भारतीय संस्कृति

1. सूरसागर और भारतीय पशुचारण संस्कृति – डॉ. संतोष कुमार यादव

2. हिंदी का प्रतिबंधित साहित्य – श्री संजय चौधरी

3. 'रंगभमि' के सौ साल – डॉ. बृजराज कुमार

4. केदारनाथ सिंह की कविताओं में पारिस्थितिकी-बोध – श्री रजनीश कुमार

5. हिंदी काव्य में कश्मीर की विस्थापन पीड़ा – डॉ. उमर बशीर

6. भारतीय संस्कृति के प्रचार में हिंदी की भूमिका – डॉ. (श्रीमती) स्वाति चद्ढा

7. संस्कृति, साहित्य और लिपि – भाषाई अंतःसंबंध के आधार – डॉ. मनोज पाण्डेय

8. मॉरीशस की लोककथाओं में भारतीय संस्कृति की झलक – प्रो. राज शेखर

सूरसागर और भारतीय पशुचारण संस्कृति

- डॉ. संतोष कुमार यादव
उत्तर प्रदेश, भारत

'सूरसागर' की महत्ता और ख्याति कृष्णकाव्य की आधार रचना के अतिरिक्त ब्रजभाषा के प्रथम अत्यंत प्रौढ़ संगीतमय गीति-काव्य के रूप में है। महाकवि सूरदास की इस विपुल काव्य-निधि ने भारतीय गीति-कृष्ण-काव्य परंपरा का जो प्रवर्तन किया, उससे सांस्कृतिक स्तर पर हिंदी-काव्य के लोकानुरागी पक्ष को सुदृढ़ता और प्रगाढ़ता के साथ निरंतरता प्राप्त हुई। सूरकाव्य पर उसके भक्ति-दर्शन, प्रेम-माधुर्य और कृष्ण-लीला आधारित अनुशीलन का इतना अधिक भार रहा है कि उसके अन्य आनुषंगिक पक्षों पर आलोचना का ध्यान केन्द्रित नहीं हो पाया। भक्ति-दर्शन और लीला के गान ने इस महान् गीति-काव्य के अन्य पक्षों को सीमित किया। यद्यपि परवर्ती प्रगतिशील आलोचना ने इस एकांगिकता को कम करने हेतु यत्न किए और इस धारा को 'लोक' की ओर मोड़ने के प्रयास किए। मैनेजर पाण्डेय प्रभृति आलोचक इसे लोक से और आगे खींचकर वर्ग-भेद, किसान-जीवन तथा 'गोचारण-काव्य' पद तक ले गए हैं। प्रस्तुत आलेख सूरकाव्य के पशुचारण (Pastoral) पक्ष पर ध्यान देता है और कृष्ण-लीला में पशुचारण की भारतीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को देखते हुए सूरसागर के विषयगत प्रसंगों पर प्रकाश डालता है। इस आलेख के अन्तर्गत भूमंडलीकरण के पश्चात् उपजे घोर सांस्कृतिक और पर्यावरणिक संकट के समय मध्यकालीन हिंदी कविता में भारत की देशज पशुचारण-संस्कृति की ओर देखने, पर्यावरणीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को समझने एवं भारत की विविधतापूर्ण और पर्यावरण-सहयोगी जीवन-शैली के मूल तत्त्वों को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

सूरसागर में कृष्ण की लीलाओं के साथ भारतीय गोचारण संस्कृति का विशाल कैनवस फैला हुआ है। 'गोचारण' के स्थान पर 'पशुचारण' शब्द इसलिए उपयुक्त होगा, क्योंकि पशुचारण की एक वैश्विक (देशज) संस्कृति रही है। इस दृष्टि से सूरकाव्य वैश्विकता ग्रहण करता है। गोचारण की दृष्टि से गाय पश्चिम-उत्तर भारत की कृषक अर्थव्यवस्था का स्तंभ रही है। हिंदी-काव्य के आधार आलोचक रामचन्द्र शुक्ल ने बहुत पहले इस ओर ध्यान दिया था, किन्तु सीमित रहकर। वे इसे पशुचारण-काव्य से जोड़ तो रहे थे, किंतु आलोचनात्मक विस्तार न दे सके। सूरदास की काव्य-प्रवृत्तियों के विषय में वे लिखते हैं - "बाल-लीला के आगे फिर उस गोचारण का मनोरम दृश्य सामने आता है, जो मनुष्य जाति की अत्यंत प्राचीन वृत्ति होने के कारण अनेक देशों में काव्य का प्रिय विषय रहा है। यवन-देश (यूनान) के 'पशु-चारण काव्य' (Pastoral Poetry) का मधुर संस्कार यूरोप की कविता पर अब तक कुछ-न-कुछ चला ही जाता है। कवियों को आकर्षित करनेवाली गोप जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है, प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र में विचरने के लिए सबसे अधिक अवकाश। कृषि, वाणिज्य आदि और व्यवसाय जो आगे चलकर निकले, वे अधिक जटिल हुए - उसमें इतनी स्वच्छन्दता न रही।" आधुनिकता के दबाव में यह पशुचारण की संस्कृति को सीमित करने वाला कथन है, किन्तु शुक्ल जी का इस ओर दृष्टि रखना उनकी विलक्षण आलोचना दृष्टि का उदाहरण भी है। वास्तव में, गोप संस्कृति की ओर कवियों का आकर्षण 'प्रकृति क्षेत्र में विचरने के अवकाश' तक सीमित नहीं है। यह कवि और उसके काव्य के लिए अपरिहार्य है। परिवेश के पर्यावरण का चित्रण किए बिना काव्य-रचना जटिल और नीरस प्रक्रिया बन जाएगी। फिर कृष्ण का प्रारम्भिक जीवन यदि गोप का जीवन है, तो गोप जीवन में मवेशी और चरागाह, वन-प्रांतर, नदियाँ-सरोवर तो आएँगे ही। पशुचारण-काव्य प्राचीन हो सकता है, किन्तु परिवर्तित और संकुचित रूप में ही सही, पशुचारण की संस्कृति तो आज भी जीवित है। अब भी भारत में पशुचारण और उससे निर्मित होने वाले व्यवसाय की संस्कृति है। वर्तमान में जब पशुचारण को पर्यावरणीय संदर्भों के साथ साहित्यालोचना से भी जोड़ दिया गया है, तब यह विषय महत्त्वपूर्ण हो जाता है। किन्तु यह भी ध्यान रखना होगा कि पशुचारण सूरकाव्य का एक विशेष प्रभाग है। उसे वहीं तक महदूद करना भी आलोचकीय अतिवाद है, जिससे रामविलास शर्मा जैसे आलोचक भी नहीं बच सके हैं और संपूर्ण सूरकाव्य को पशुपालकों के काव्य में सीमित कर दिया है। मैनेजर पाण्डेय ने इस संदर्भ में संगत टिप्पणी करते हुए लिखा है - "सूर के काव्य में ऐसा समाज है, जिसमें पशुपालन कृषि व्यवस्था का अंग है और गोचारण किसान-जीवन के व्यापक अनुभवों का हिस्सा। ग्राम-समाज और किसान-जीवन में लोक-अनुभव और लोक-कला के पुराने रूप बहुत दिनों तक जीवित रहते हैं, इसलिए उस समाज और जीवन से जुड़ी कविता में नए के साथ पुराने अनुभवों और

कलारूपों का आना स्वाभाविक है। सूर के काव्य में गोचारण का जो चित्रण है, उसमें उस काल के गोचारण संबंधी अनुभवों के साथ अतीत के अनुभवों की स्मृति भी है, उनके गोचारण-गीतों में पुराने ग्वाल-गीतों की अनुगूँज मौजूद है। इसलिए सूर सागर के गोचारण-गीतों को चरागाह संस्कृति की कविता या आदिम गोचारण-काव्य समझना गलत है। सूर का काव्य अपने समय और समाज से जुड़ा हुआ काव्य है।" यह आलोचकीय प्रतिवाद गोचारण संस्कृति को प्राचीन या प्रागैतिहासिक प्रवृत्ति समझ लिए जाने या सूरकाव्य को गोचारण-काव्य सिद्ध करने के आग्रहों के कारण है। पशुचारण या गोचारण प्राचीन संस्कृति अवश्य है, किन्तु यह अभी तक कालिक परिवर्तनों के साथ प्रचलित है, अतः इसे भारतीय संस्कृति का एक अंग मानकर विवेचित करने की आवश्यकता है। क्या पशुचारण संस्कृति के बगैर मानवीय जीवन कोई आदर्श जीवन रह पाएगा ? आज भी चरवाहे भारत के गाँवों में अपनी गायें चरा रहे हैं, यद्यपि उनकी यह संस्कृति नवीन अतिऔद्योगिक, उपभोगवाद और कृत्रिम-जीवन शैली से विनष्ट अवश्य हो रही है। वर्गीय दृष्टि रखते हुए मैनेजर पाण्डेय पशुचारण के सांस्कृतिक तत्त्वों को कृषि और किसान से सामंतवाद तक सीमित करते हैं और इसे तनिक संकुचित कर देते हैं। सूरसागर निश्चय ही भक्ति-दर्शन और प्रेम का काव्य है, कृष्ण की लीला का राग-रागिनियों से परिपूरित उत्कृष्ट कलात्मक गान है, किन्तु इसमें भारत की रोमानी पशुचारण-संस्कृति (Romantic Indian Pastoral Culture) की धाराएँ बहती हैं। यह तथ्य इस काव्य को और अधिक सांस्कृतिक व जैविक नैरंतर्य प्रदान करता है, इसे ग्राह्य और समकालीन बनाता है। साथ ही इक्कीसवीं सदी के सबसे ज्वलंत पर्यावरणिक मुद्दों से संबद्ध करता है।

साहित्य की पर्यावरणवादी आलोचना (Ecocriticism) में पशुचारण को प्रायः शास्त्रीय पशुचारण (Classical Pastoral) और रोमानी पशुचारण (Romantic Pastoral) के दो भागों में देखा जाता है। पशुचारण के विषय में ग्रेग गैरेड ने अपनी पुस्तक Eco-criticism में टेरी गिफ़र्ड को उद्धृत करते हुए लिखा है -

'तो फिर यह 'देहाती' परंपरा क्या है और पर्यावरणवाद के लिए इसका क्या महत्त्व है ? टेरी गिफ़र्ड ने देहाती परंपरा के तीन प्रकार बताए हैं - विशिष्ट साहित्यिक परंपरा, जिसमें शहर से देहात की ओर वापसी शामिल है, जिसकी उत्पत्ति प्राचीन अलेक्जेंड्रिया में हुई और पुनर्जागरण के दौरान यूरोप में एक प्रमुख काव्य रूप बन गई; अधिक सामान्य रूप से, 'कोई भी साहित्य जो शहरी के साथ निहित या स्पष्ट व्यतिरेक के साथ देहात का वर्णन करता है' और हेय अर्थ, जिसमें 'देहाती' ग्राम्य-जीवन का आदर्शीकरण करता है, जो श्रम और कठिनाई की वास्तविकताओं को धुँधला करता है।'

उपर्युक्त कथन के आलोक में सूरकाव्य साहित्य की नवीन पारिस्थितिकीय आलोचना के मानदंडों पर भी खरा उतरता है, क्योंकि पशुचारण इसमें स्पष्ट, अंतर्निहित और उपलक्षित प्रत्येक रूप में है। सूरसागर के प्रारम्भिक भागों में ही पशुचारण की संस्कृति का जीवन्त और प्रभावी वर्णन है। कृष्ण की बाल-लीलाएँ पशुचारण के साथ अधिक सौन्दर्यमय, रोमानी और लोकोन्मुख हो उठती हैं। वात्सल्य और शृंगार के भाव भी गोचारण के परिवेश में अधिक जीवंत हुए हैं -

"मैं दुहिहौं मोहिं दुहुन सिखावहु।
कैसे गहत दोहनी घुटुवनि, कैसे बछरा थन लै लावहु।
कैसे लै नोई पग बाँधत, कैसे लै गैया अटकावहु।"

बालकृष्ण कह रहे हैं कि मुझे गाय दुहनी है और मुझे दोहना सिखाया जाए। घुटनों के बीच में दोहनी (दूध का पात्र) कैसे साधते हैं और बछड़े को कैसे थन (स्तन) तक लाते हैं, यह मुझे सीखना है। 'नोई' वह पतली रस्सी है, जिससे गाय के पिछले पाँव दुहते समय बाँधे जाते हैं। गाय दुहने के इस सांस्कृतिक कर्म को सूर बाल-लीला के साथ वर्णित करते हैं। अपने वर्णन में अनायास पशुपालकीय कौशल को भी वे चित्रित कर जाते हैं। जब कृष्ण यह कहते हैं कि आज मैं गाय चराने जाऊँगा, तो साथ में यह भी जोड़ते हैं कि वृन्दावन के नाना प्रकार के फल भी अपने हाथ से तोड़कर खाऊँगा-

"आजु मैं गाय चरावन जैहों।
वृन्दावन के भाँति-भाँति फल अपने कर मैं खैहों।"

इससे यह ज्ञात होता है कि पशुचारण एक गहन जैविक कर्म है, जिसमें प्राकृतिक परिवेश मसलन वन, नदी, पेड़, घास, फल-फूल इत्यादि अन्तर्निहित हैं, जो कि एक स्वस्थ प्राकृतिक जीवन की संस्कृति की ओर संकेत करते हैं। वह संस्कृति जिसे अति औद्योगिक आर्थिक सभ्यता ने क्षत-विक्षत करके लगभग समाप्त कर दिया है। एक गोप अपनी गायों से कैसा प्रेम करता है, यह हमें सूर के अधोलिखित पद से ज्ञात होता है -

"मैं बलि जाऊँ कन्हैया की।
करतै कौर डारि उठि धायौ, बात सुनी बन गैया की।"

भोजन कर रहे कृष्ण वन (चरागाह) में गाय ब्याने की बात सुने ही हाथ से कौर छोड़कर प्रसूता गाय को लाने चल देते हैं। इससे यह मालूम होता है कि गाय का बच्चा देना पशुपालक जीवन की कितनी महत्त्वपूर्ण और गंभीर घटना है। सूरसागर में ऐसे अनेक पद हैं, जो पशुपालकीय गोप संस्कृति की सूक्ष्म विशेषताओं को व्यक्त करते हैं और आज के कृत्रिम, अप्राकृतिक जीवन की ओर देखने के लिए

एक सांस्कृतिक दृष्टि प्रदान करते हैं।

दूसरी ओर सूरसागर के ही अनुभाग 'भ्रमरगीत' में गोचारण की स्मृतियाँ अधिक हैं। उद्धव से संवाद करती हुई गोपियाँ कई बार गोचारण के प्रसंगों और पशुपालकों की संस्कृति के उदाहरण देती हैं। यहाँ अर्बन और कंट्रीसाइड अथवा नागर और ग्रामीण संस्कृति के भेद भी मिलते हैं, जो हम इकोक्रिटिसिज़्म में पशुचारण के विषय में दिए गए उद्धरण में देखते हैं। मैनेजर पाण्डेय ने भी इसे चिह्नित किया है। वे लिखते हैं - "भ्रमरगीत में किसान-जीवन के अनुभवों का वस्तुपरक वर्णन नहीं है, क्योंकि उसमें कवि का मुख्य उद्देश्य है, गोपियों की प्रेमानुभूति के विभिन्न पक्षों की अभिव्यक्ति। लेकिन वहाँ प्रेम की अनुभूति की संस्कृति, उसकी संरचना और अभिव्यक्ति में अनेक स्तरों पर किसान-जीवन के अनुभव उपस्थित हैं। वैसे कविता में जीवन की सच्चाइयाँ केवल वस्तु-रूप में नहीं आतीं, अभिव्यक्ति के साधनों के माध्यम से भी आती हैं। भ्रमरगीत में भी प्रायः किसान-जीवन के अनुभव काव्य-शिल्प के विभिन्न साधनों के साथ कविता में आए हैं।" मैनेजर पाण्डेय जिसे किसान-जीवन कह रहे हैं, वास्तव में वह पशुपालक जीवन है। पशुपालन कृषि का उपांग है, किन्तु भारत की पशुपालक जातियों में यह प्रमुख है और कृषि के अन्य हिस्से गौण हैं।

भ्रमरगीत में ग्वाल-संस्कृति के प्रसंग गोपियों के उपालंभों से लेकर उनके वक्र-कथनों, वाग्वैदग्ध्य और उनकी वियोगानुभूति तक प्रसार पाते हैं। सूर के वाग्वैदग्ध्य में कहीं ग्वाल संस्कृति के अकिंचन और श्रमशील भाव भी अंतर्निहित हैं। उसमें भारत की पशुचारणीय परंपरा की मौखिक चपलता और भाषिक मधुरता खाद की भाँति पड़ी हुई है। इसलिए सूर के काव्य में यह संस्कृति मूल से ऊर्ध्व की ओर बढ़ती है और काव्यार्थ में लहलहा उठती है। भ्रमरगीत का आरंभ ही इसी सांस्कृतिक ऊष्मा के साथ होता है। अहीर से यादव हो गए कृष्ण जब मथुरा से उद्धव को भेजते हैं, तब यह हिदायत देना नहीं भूलते कि उन्हें वहाँ किस-किस से मिलना है और कैसे पेश आना है :

"पहिले करि परनाम नन्द सों समाचार सब दीजो।
और वहाँ वृषभानु गोप सों जाय सकल सुधि लीजो।।
श्रीदामा आदिक सब ग्वालन मेरे हुतो भेंटियो।
सुख-संदेस सुनाय हमारी गोपिन को दुख मेटियो।।"

कृष्ण की स्मृतियों में उनके ग्वाल-समाज के लोग बने हुए हैं। उनके वे मित्र बने हुए हैं, जो उनके साथ गोचारण के लिए जाया करते थे। वे जो संगी-साथी थे, साथ खेलते थे। इसलिए कृष्ण उद्धव को वे संस्कार मथुरा से सिखाकर भेजते हैं, जो भारतीय-गोप-संस्कृति के मूल हैं। यानी सबका सम्मान और आदर। सुख के संदेश सुनाकर दुख मिटाने की शुभेच्छा। उद्धव के आने पर ब्रज में क्या माहौल है -

"गोप-भीर आँगन भई मिलि बैठे यादवजात।
जलझारी आगे धरी, हो बुझति, हरि-कुसलाति।।"

'गोप-भीर आँगन भई' में पशुपालक संस्कृति और उसकी सामूहिकता की भावना का कैसा अद्‌भुत चित्र है। आँगन भी कितना विशाल और विस्तृत है, जिसमें भीड़ एकत्र हो सके। ऐसी सामूहिकता की संस्कृति वाले गोपों को उद्धव का बुद्धिवादी ज्ञान और निर्गुण कैसे रास आता? गोपियों की हाज़िरजवाबी में उनकी मासूमियत घुली हुई है, क्योंकि उनका विवेक उनकी जीवन-शैली है। उनका व्यावहारिक ज्ञान श्रमशील दैनिक जीवन की आँच में तपा हुआ है। वे किसी राजा और राजशाही से बढ़कर अपने पशुपालक कृष्ण को जानती हैं। वे उसे उसी रूप में स्वीकार करना चाहती हैं। इसलिए ज्ञान बाँच रहे उद्धव से वे स्पष्ट कह देती हैं -

"सुनि ऊधो ! हम समुझत नाहीं फिरि पूछति है तातें।।
को नृप भयो कंस किन मारयो को बसुधो-सुत आहि ?
यहाँ हमारे परम मनोहर जीजतु हैं मुख चाहि।।
दिनप्रति जात सहज गोचारन गोप सखा लै संग।
बासरगत रजनीमुख आवत करत नयन गति पंग।।"

गोपियाँ किसी कंस को मारने वाले राजा हुए कृष्ण को नहीं जानती हैं। वे तो तड़के गाएँ चराने गए और रजनीमुख लौटकर आने वाले कृष्ण को ही जानती हैं। उसे ही प्रेम करती हैं। इसलिए गोपियाँ किसी राजसत्ता की नागर भव्यता से प्रभावित नहीं होतीं। वे तो नंद की अहीर-बस्ती की निवासिनें हैं। जो गर्व से कहती हैं -

"हम तो नंदघोस की बासी।
नाम गोपाल, जाति कुल गोपहि, गोप-गोपाल-उपासी।।
राजा नंद जसोदा रानी, जलधि नदी जमुना सी।।"

अपने परिवेश और पर्यावरण का इतना प्रगाढ़ बोध है कि गोपियाँ अपना परिचय देते समय यमुना नदी का उल्लेख करना नहीं भूलतीं। यमुना नदी नहीं तो कैसा ब्रज ? कैसा पशुचारण और कैसे गोप ? उद्धव-गोपी संवाद में सामान्य पशुचारण ग्राम्य-पारिस्थितिकी (Pastoral Ecology) का सुंदर दृश्यांकन है। भाषा की शक्ति से ये दृश्य और कथन इतने जीवंत हो उठे हैं कि पर्यावरण से भाषा और संस्कृति के गहरे संबंध उजागर हो जाते हैं। पर्यावरणविद् अनुपम मिश्र ने ठीक ही कहा है कि 'पर्यावरण के नष्ट होने के साथ भाषा भी नष्ट होती जाती है।' गोपियों के व्यंग्य जिन कहावतों से पूर्ण होते हैं, वे गोप-जीवन की धारणीयता (Sustainability) को

प्रदर्शित करते हैं। ये प्रतीक पशुचारण जीवन के मूल्यों को धारण किए हुए हैं। जहाँ प्रकृति को कम-से-कम क्षति पहुँचाकर जीवन-यापन के साथ-साथ उल्लासमय प्रेम की अभिव्यक्ति है। प्रकृति की परिवर्तनशील और प्रत्येक क्षण गतिशील जैविकी और उसके स्थिर दिखने वाले जैव-तंत्र को एक पशुपालक अथवा कृषक की दृष्टि से ही भली-भाँति देखा जा सकता है। गोपियों के दृष्टांतमय कथन ऐसे प्रतीकों से ही अभिव्यक्त हुए हैं, जिन्हें कवि ने अपनी चपल भाषा से और भी रसमय बना दिया है। कुछ संवाद इस प्रकार हैं -

"इनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अजानी ?
अपनो दूध छाँड़ि को पीवै खार कूप को पानी।।
दाख छाँड़ि कै कटुक निंबौरी को अपने मुख खैहै ?
मूरी के पातिन के केना को मुक्ताहल देहै।
काकी भूख गई बयारि भखि बिना दूध घृत माँड़े।।
सूरदास तीनों नहीं उपजत धनिया धान कुम्हाँड़ें।।"

अपने मीठे दूध को छोड़कर खारे पानी को कौन पिएगा? अंगूर छोड़कर निंबौरी कौन खाएगा ? मूली के पत्तों के बदले मुक्ताहल कौन देगा ? बिना दूध-घी के भूख क्या हवा खाकर मिटेगी ? और धनिया-धान-कद्दू एक साथ नहीं उग सकते। मीठा दूध, खारा कुआँ, अंगूर और निंबौरी, मूली के पत्ते, दूध-घी, धनिया, धान और कद्दू सामान्य भारतीय ग्राम्य-जीवन की खाद्य-शृंखला के अंग हैं। ग्राम्य-जीवन में निंबौरी और मूली के पत्तों का भी एक मूल्य है, भले ही वह मुक्ताहल और अंगूर के समकक्ष न रखे जा सकें। कृषि-कर्म के विविध क्रमों को सूरदास ने पूरे सूरसागर में स्थान दिया है। ये किसान अनुभव पशुपालक जीवन के साथ घुल-मिलकर एक स्वस्थ पर्यावरणवादी संस्कृति का फलक विस्तृत करते हैं। भ्रमरगीत में पशुपालक संस्कृति की जो आभा है, वह राजमहल को भी अपने समक्ष कुछ नहीं समझती। कवि ने गोपियों की वचनवक्रता और गोप-संस्कृति के माध्यम से महाकुलों को चुनौती दी है। व्यापक अर्थों में यह आभिजात्य को जन-सामान्य की चुनौती है -

"जदपि अहीर जसोदानंदन तदपि न जात छंड़े।
वहाँ बने जदुबंस महाकुल हमहिं न लगत बड़े।।"

कृष्ण भले ही महाकुल यदुवंश से ताल्लुक रखने वाले हो गए हैं, राजा बन गए हैं, किन्तु गोपियों के लिए वे जसोदानंदन अहीर ही हैं। इसलिए उन्हें वे बड़े नहीं लगते, क्योंकि कृष्ण ने भी उनके सान्निध्य में उन जैसा ही पशुपालक जीवन जिया है। गायें चराई हैं। यह परिवेश से जुड़ा हुआ सहज स्थानिक लगाव है, जो गोपियों को कृष्ण की अधिकारिणी बनाता है। उद्धव गोपियों की सहजता के समक्ष टिक ही नहीं सकते थे। उनके पास ऐसे सूक्ष्म जीवनानुभव हैं, जो एक विशेष तरह की जीवन-शैली से ही प्राप्त होते हैं। उद्धव ब्रज में निर्मूल निर्गुण की गठरी लेकर जो ज्ञान की दुकान खोलने आए हैं, वह गोपियों के किस काम की भला ? गोपियों के पास अपनी सहज अव्यावसायिक वृत्ति है। पशु पालती हैं। दूध-घी बेचती हैं। उसमें भी बड़े नफ़े-नुकसान की संभावनाएँ नहीं हैं, न ही प्रकृति और पर्यावरण को गहरी क्षति पहुँचाने वाला कोई कारक है, न तो आज की भाँति उच्च आधुनिक पूँजीवाद और उत्पादन-उपभोग के असंतुलन से उपजा कोई पारिस्थितिकीय संकट। अतः उद्धव जो शहरी सौदा लेकर आए हैं, वह अव्यावसायिक रुचि वाली गोपियों को भाता नहीं है, फिर भी उद्धव से वे कहती हैं कि हम तो ग्वालिनें हैं, दूध-दही बेचो, तो अभी सब का सब खरीद लें -

"यह सौदा तुम ह्वाँ लै बेचौ जहाँ बड़ी नगरी।
हम ग्वालिन, गोरस दधि बेंचौ, लेहिं अबै सबरी।।"

जीवन की सभी प्रक्रियाएँ प्रकृति-प्रदत्त परिवेश में पूर्ण होती हैं। जन्म से मृत्युपर्यंत प्रत्येक प्राणी का प्रत्येक क्षण प्रकृति पर निर्भर है। प्रेम भी एक परिवेश में निर्मित होता है। प्रेम और प्रकृति का प्रगाढ़ संबंध है। सौंदर्य के प्रथम दर्शन प्रकृति में होते हैं। सौंदर्यबोध के निर्माण में प्रकृति का सौंदर्य आधारभूत संरचना की भूमिका अदा करता है। उद्धव गोपियों के प्रेम को कैसे समझेंगे, जब वे उनके सांस्कृतिक परिवेश को नहीं जानते। कृष्ण-गोपियों के पुरातन प्रेम को अलग रख दिया जाए, तो आज भी हम देखते हैं कि युवा प्रेमी-प्रेमिकाएँ कृत्रिम रूप से बनाए गए उद्यानों, पार्कों आदि में मेल-मिलाप अधिक करते हैं। अनेक रेस्तोराँ, शॉपिंग मॉल्स के होने के बावजूद वे प्राकृतिक एकांत खोजते हैं, जो यह सिद्ध करता है कि प्रेमालाप के लिए प्रकृति जो एकांत निर्मित करती है, वह सर्वोपरि है। वह एकांत प्रेम की त्वरा को और अधिक लपक देता है। यह प्राकृतिक एकांत खोजने की प्रवृत्ति एक आदिम प्रवृत्ति है। इस आदिम एकांत को हिंदी-काव्य परंपरा ने प्रचुर मात्रा में सहेजा है। इस तथ्य को सत्य का सौष्ठव देता है, भ्रमरगीत में गोपियों का उद्धव से यह बताना -

"एक बार खेलत वृन्दावन कंटक चुभि गयो पाँय।
कंटक सो कंटक लै काढ्यो अपने हाथ सुभाय।।
एक दिवस बिरहत बन-भीतर मैं जो सुनाई भूख।
पाकै फल वै देखि मनोहर चढ़े कृपा करि रूख।।"

काँटे ही से चुभ गया काँटा कैसे निकाला जाता है, यह वे लोग समझ पाएँगे, जिन्होंने वन-विहार किया है अथवा वन-प्रांतर में मवेशी चराए हैं। गोपी के प्रिय कृष्ण जब उसकी भूख सुनकर पके फल तोड़ने के लिए वृक्ष पर चढ़ते हैं, तब इससे प्रेम के साथ-साथ

उस परिवेश का पता चलता है, जिसमें यह प्रेम घटित हुआ है। इन प्रेमानुभूतियों में प्रकृति सबसे अहम पात्र है और उसके बाद है, गोपों की पशुचारण संस्कृति की विशेषताएँ, जिसमें ऐसे अवसरों की प्रायिकता है। जो नगर के आलीशान प्रासादों की कालीनों पर चलता हो, उसके पाँव में काँटा कैसे चुभेगा ? काँटा तो उन गोपों, कृषकों या प्राकृत जीवन जीने वालों के पाँवों में ही चुभेगा, जिनकी आवश्यकताएँ वन-प्रांतर या चरागाहों तक उन्हें ले जाती हैं।

संस्कृति और जीवन-शैली का प्रभाव भाषा-बोली के साथ-साथ उस व्यवहार पर भी पड़ता है, जो मनुष्य एक-दूसरे से करता है। सूरदास ने गोपियों की मुखर संवाद-शैली को रचते समय उनके परिवेश और उनकी सहज वृत्तियों पर विशेष ध्यान दिया है। कहीं-कहीं संवाद इतने सहज हैं कि वे किसी कवि की रचना नहीं लगते, बल्कि ऐसा लगता है कि गोपियाँ ही इन पदों की रचनाकार हैं। गोपियाँ अपने वचनों में गोरस, गोधन, गोचारण, अहीरिन, पनघट, गगरी आदि विषयों का प्रयोग करती हैं और इन्हें दृष्टांत बनाकर प्रस्तुत करती हैं। इन्हें ही प्रतीक बनाती हैं और इन्हीं से व्यंग्य या वचन-वक्रता उत्पन्न करती हैं। जैसे कि व्यंग्य में गोपियाँ उद्धव को संबोधित करते हुए कहती हैं -

"जुवतिन जोग सिखावन आए, यह तो उल्टी रीति।
जोतत धेनु दुहत पय वृष को, करन लगे जो अनीति।।"

बैल की जगह गाय को जोतने और वृष से दुग्ध-दोहन के इस वक्र वाक्य से सूरदास भले ही सिद्धों और निर्गुण-भक्तों की उलटबाँसियों पर व्यंग्य कर रहे हों, किन्तु रचना में यह गोपियों की संस्कृति की छाप है। गाय और बैल के मध्य तो उनका जीवन-यापन ही होता है। इसी तरह एक स्थान पर 'जिसको राजदोष यानी क्षय का कफ़ हो, उसे दही खिलाने' का दृष्टांत देकर व्यंग्य किया गया है। गोपियाँ अपने दुख, प्रेम, भक्ति और विरहानुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए भी अपनी जीवन-शैली और अपनी गोप-वृत्ति के उपादानों के प्रतीकों का प्रयोग करती हैं -

"टूटो जुरै बहुत जतनन करि तऊ दोष नहिं जाय।।
कपट हेतु की प्रीति निरंतर नोइ चोखाई गाय।
दूध फटे जैसे भइ कांजा, कौन स्वाद करि खाय ?"

दूध फट जाना तो सामान्य बात है। रसोई में आज भी कभी-न-कभी दूध फट ही जाता है। किन्तु 'नोइ चोखाई गाय' पशुपालक संस्कृति का एक सूक्ष्म अंग है। दुहने के दौरान टाँग उठाने या लात मारने वाली गायों को दुहने से पहले एक पतली रस्सी से बाँधकर दुहा जाता है। इस प्रक्रिया को नोइ लगाना कहते हैं। कपट-हेतु की प्रीति के लिए नोइ लगी गाय का दृष्टांत अपने आप में दुर्लभ है। यह भ्रमरगीत की विलक्षणता है कि उसने पशुपालक संस्कृति के ऐसे सूक्ष्म हिस्से को अपने रचाव में ग्रहण किया है। इसी प्रकार के अन्य प्रयोग भी भ्रमरगीत के पदों में नगीने की भाँति जड़े हुए हैं। कृष्ण के वियोग में गोपियाँ तो विरह की चरम दशाओं को पहुँच ही रही हैं, मानवेतर प्राणियों की स्थिति भी दयनीय है। वे गाएँ दुखी हैं, जिन्हें कृष्ण चराने जाते हैं। साहित्य की पर्यावरणवादी आलोचना में मनुष्य और पशु के संबंधों का सूक्ष्म अध्ययन किया जा रहा है। भ्रमरगीत इस मानक पर भी द्रष्टव्य है। इसमें मनुष्य और पशु के करुणामय संबंधों की अभिव्यक्ति है -

"ऊधो ! इतनी कहियो जाय।
अति कृसगात भई हैं तुम बिनु बहुत दुखारी गाय।।
जल समूह बरसत अँखियन ते हूँकत लीने नाँव।
जहाँ जहाँ गोदोहन करते ढूँढत सोइ सोइ ठाँव।।"

दुखारी गायों के साथ 'हूँकत' शब्द का प्रयोग दुखी गाय का चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देता है। गाय एक संवेदनशील और अपने स्वामी से अत्यंत आत्मीय हो जाने वाला पशु है। कई बार खूँटा बदलने पर गाय चार-पाँच दिनों तक चारा-पानी त्याग देती है। इसलिए कृष्ण के वियोग से उपजी गोपिकाओं की परमविरहासक्ति में कृत्रिमता या अतिशयोक्ति हो सकती है, जिसकी ओर कतिपय आलोचकों ने ध्यान भी खींचा है, किन्तु दुखारी गायों की स्थिति स्वाभाविक लगती है, क्योंकि उनका प्रिय चरवाहा उन्हें त्याग कर चला गया है। इसीलिए भ्रमरगीत के अंत में जब उद्धव ब्रज से लौटकर मथुरा कृष्ण के पास पहुँचते हैं, तब वे भी मानवेतरों की स्थिति का उल्लेख करना नहीं भूलते -

"दिन दस घोष चलहु गोपाल।
गैयन की अवसेर मिटावहु भेंटहु भुज भर ग्वाल।।
नाचत नहीं मोर वा दिन तें आए बरषा-काल।
मृग दूबरे दरस तुम्हरे बिनु सुनत न बेनु रसाल।।"

गैयन की अवसेर (दुख) के साथ सूर ने मृग और मोरों की उदासी का भी ध्यान रखा है। यह सूर की मानवेतर दृष्टि है, जो पशुचारण संस्कृति को सूक्ष्मता से जानने के चलते निर्मित हुई है। पशुचारण मनुष्य और मनुष्येतर के संबंधों से संभव है। अतः मनुष्येतर इस संस्कृति का आधार है। सूरसागर में रचित सगुण-निर्गुण के द्वंद्व, भक्ति, प्रेम, श्रृंगार, विरह और दर्शन जैसे गुणों को परिप्रेक्ष्य प्रदान करने वाली पशुचारणीय संस्कृति इसे और हृदयग्राही बनाती है। सूरसागर के विभिन्न अनुभागों में पशुचारणीय संदर्भों की व्याप्ति कृष्ण की सम्पूर्ण लीलाओं के साथ उस परिप्रेक्ष्य को निर्मित करती है, जिसके अन्तर्गत एक सांस्कृतिक बोध निर्मित होता है। इस

लोकानुरागी रसमय व्यंजना में पशुचारणीय संस्कृति के सूक्ष्म व स्थूल प्रभावों का दाय भी कम नहीं है। अतः पारिस्थितिकीय दृष्टि से भी भक्ति-काव्य की बड़ी रचना सूरसागर अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

संदर्भ-सूची :

1. (सं.), रामचन्द्र शुक्ल, सूरदास, भ्रमरगीत सार, 2012 संस्करण, लोकभारती प्रकाशन
2. पाण्डेय, मैनेजर, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, 2007 संस्करण, वाणी प्रकाशन
3. Garrard, Greg, Ecocriticism, 2004, Routledge
4. संपा. धीरेन्द्र वर्मा, वृन्दावन लीला, 2 सूरसागर सटीक, 2019 संस्करण, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद

poetarshbbk@gmail.com

हिंदी का प्रतिबंधित साहित्य

- श्री संजय चौधरी
नई दिल्ली, भारत

स्वाधीनता संग्राम के दौरान हिंदी साहित्य में देशभक्ति की भावना के साथ-साथ अतीत के गौरवगान को प्रमुखता दी गई। इस दौर में कई विद्वान और बुद्धिजीवी ऐसे हुए हैं, जिन्हें अंग्रेज़ों की शोषण की नीति एवं भारतीय लोगों की दुर्दशा रह-रहकर कचोटती रहती थी। अंग्रेज़ी शासन में प्रशासन की बर्बरता, भारतीयों के साथ भेदभावपूर्ण व निकृष्ट व्यवहार और लोगों की गरीबी ने कवियों और साहित्यकारों के मन में आक्रोश को जन्म दिया। लगभग सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य और साहित्य की हर विधा में हम अंग्रेज़ों के अनाचार और भारतीयों के मन में सुलगती विरोध की भावना की अभिव्यक्ति पाते हैं। राष्ट्रीय चेतना का भाव जागृत करने वाली कहानियों और नाटकों के साथ-साथ समकालीन साहित्यकारों के द्वारा अनेक देशभक्तिपूर्ण कविताएँ लिखी गईं, जिन्होंने स्वाधीनता की लड़ाई में लोगों को एकजुट करने का काम किया। अपनी सत्ता के लिए इन्हें खतरा मानकर और इनकी बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए सरकार ने इनके प्रकाशन पर पाबंदी लगाने एवं प्रकाशित साहित्य को ज़ब्त करने जैसे कई कदम उठाए। लेकिन इनमें से कई रचनाएँ और कृतियाँ सरकार की ओर से प्रतिबंधित होने के बावजूद लोगों में अच्छी खासी लोकप्रिय हुईं। हालाँकि देश की स्वाधीनता के लिए लोगों में जोश और आत्मोत्सर्ग की भावना भरने वाली इन प्रतिबंधित रचनाओं का हिंदी साहित्य के इतिहास में सम्यक मूल्यांकन नहीं हुआ है, तथापि भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में इनके महत्त्वपूर्ण योगदान को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। अंग्रेज़ सरकार ने हिंदी के जिस साहित्य को प्रतिबंधित किया था, आज वह मुद्रित रूप में तथा डिजिटल प्रारूप में उपलब्ध है। प्रतिबंधित पुस्तकों को देखकर स्पष्ट हो जाता है कि इस श्रेणी में सम्मिलित साहित्य में न केवल देश की दुर्दशा का वर्णन है, वरन् ब्रिटिश दमन के प्रतिकार स्वरूप उठने वाले विरोध के स्वर की इसमें सशक्त अभिव्यक्ति भी है। कुल मिलाकर देशभक्ति की अलख जगाने के उद्देश्य से लिखी गई युग-परिवर्तनकारी रचनाओं का यह एक अद्वितीय संग्रह तथा राष्ट्रीय महत्त्व का विशेष साहित्य है। अंग्रेज़ सरकार के द्वारा प्रतिबंधित इसी हिंदी साहित्य ने जन-जन में स्वाधीनता की अलख जगाई। मूल रूप से राष्ट्र-प्रेम को समर्पित इस प्रतिबंधित साहित्य ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम को इसकी अंतिम परिणति तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

प्रतिबंधित साहित्य

आज़ादी के अमृत महोत्सव के दौरान विभिन्न भारतीय भाषाओं के प्रतिबंधित साहित्य को बौद्धिक विमर्श के केंद्रबिंदु में लाने के गंभीर प्रयास किए गए। प्रतिबंधित साहित्य के बारे में भारत सरकार की वेबसाइट पर उपलब्ध जानकारी के अनुसार, "स्वतंत्रता के लिए भारत के संघर्ष के दौरान, कई कवियों और लेखकों ने साहित्य के क्रांतिकारी अंश लिखे, जिन्हें भारत की ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया था, क्योंकि ऐसे लेखन को भारत में उनके शासन की 'सुरक्षा' के लिए 'खतरा' माना जाता था। साहित्य के इस अंश का उद्देश्य लोगों के मन में देशभक्ति की भावना जगाना और उन्हें भारत को स्वतंत्र कराने के लिए खड़े होने का आह्वान करना था।"

प्रतिबंधित साहित्य का सरोकार ऐसे साहित्य से है, जो सत्ता द्वारा लगाए गए तमाम तरह के निषेधों के बावजूद प्रतिरोधी स्वर में अभिव्यक्त होता है, अथवा व्यवस्था द्वारा जिन रचनाओं पर निषेध की कार्रवाई की जाती है, वे सब प्रतिबंधित साहित्य के दायरे में आते हैं। यदि भारतीय प्रतिबंधित साहित्य की बात की जाए तो साम्राज्यवादी शक्तियों ने जिसे निषेध योग्य पाया, वह बांग्ला, गुजराती, हिंदी, कन्नड़, मराठी, ओडिया, पंजाबी, सिंधी, तमिल, तेलुगु और उर्दू जैसी विभिन्न भारतीय भाषाओं में रचा गया था। एन. जेराल्ड बैरियर के अनुसार बांग्ला में 226, गुजराती में 158, हिंदी में 1391, हिन्दुस्तानी में 320, मराठी में 185, अंग्रेज़ी में 273, पंजाबी में 135, उर्दू में 468, द्रविड़ भाषाओं में 224 और अन्य भाषाओं में 538 रचनाओं को ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत प्रतिबन्धित किया गया था।

अंग्रेज़ी शासन के दौरान हमारे स्वतंत्रता सेनानियों की भावनाओं, आकांक्षाओं और संकल्पों का प्रतिनिधित्व करने वाले साहित्य को प्रतिबंधित करने के पीछे सरकार का उद्देश्य यही था कि साहित्य में प्रकट होने वाले विरोध के हर स्वर और विद्रोह की सामान्य भावना को औरों के सामने आने से रोका जाए। लेकिन सरकार के कुकृत्यों और सरकारी लूट के अलावा लोगों के

अधिकारों का हनन जब बढ़ने लगा, तो विरोध का स्वर भी तेज़ होने लगा। इसी के साथ देशभक्त सेनानियों का नृशंसतापूर्वक दमन भारत में ब्रिटिश राज की पहचान बन गया। इस सबका विशद् वर्णन इतिहास की किताबों के अलावा हिंदी साहित्य और विशेष रूप से हिंदी के प्रतिबंधित साहित्य में मिलता है। इस पूरे आलेख में आगे जहाँ भी 'प्रतिबंधित साहित्य' का प्रयोग किया गया है, उसका आशय हिंदी के प्रतिबंधित साहित्य से है।

हिंदी का प्रतिबंधित साहित्य

विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रतिबंधित रचनाओं की संख्या को देखकर ज्ञात होता है कि अन्य भाषाओं के मुकाबले हिंदी में प्रतिबंधित रचनाओं की संख्या सबसे अधिक है। हिंदी के प्रतिबंधित साहित्य की बात करते समय हमें ध्यान रखना चाहिए कि अंग्रेज़ों के द्वारा प्रतिबंधित किए गए हिंदी साहित्य का कुछ हिस्सा अभी तक जनता के सम्मुख नहीं आया है। ऐसा विपुल साहित्य संग्रहालयों और अभिलेखागारों में मौजूद हज़ारों किताबों के रूप में अलक्षित एवं उपेक्षित पड़ा है।

लेकिन जितना भी साहित्य प्रकाश में आया है, साहित्य के इतिहास में उसे भी नज़रअंदाज़ किया गया है। अंग्रेज़ों में डर की भावना भरने तथा लाखों भारतीयों को विद्रोह के लिए प्रेरित करने वाले इस समृद्ध साहित्य की उपेक्षा सचमुच दुखद है। इसके महत्त्व पर बात करते हुए **मैनेजर पाण्डेय** लिखते हैं - "यह देखकर बहुत आश्चर्य होता है कि हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल के अन्तर्गत अंग्रेज़ी राज के दौरान प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता, ऐसी स्थिति में उनके विश्लेषण और मूल्यांकन की उम्मीद कैसे की जाए? "

प्रतिबंधित हिंदी साहित्य को पराधीन भारत का वास्तविक इतिहास कहा जा सकता है, जिसमें देश के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। इस साहित्य के लेखकों और प्रकाशकों ने आततायी सरकार के अत्याचारों और भारतीय जनता के कष्टों का निर्भीकतापूर्वक वर्णन किया है। यह वर्णन और इनमें व्यक्त विरोध का स्वर इतना तीखा था कि ब्रिटिश हुकूमत ने इनको रोकने के लिए पूरी ताकत झोंक दी। बिना किसी भय या दबाव के लिखी गई दो तरह की पुस्तकों पर अंग्रेज़ी राज में पाबंदी लगाई गई। उनमें से कुछ पुस्तकें वैचारिक थीं, जबकि अधिकांश रचनात्मक थीं।

वैचारिक पुस्तकों में अधिकांश का सम्बंध इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र से था, तो सृजनात्मकता के अंतर्गत कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध आदि पुस्तकें अर्थात् ललित साहित्य शामिल था। हिंदी साहित्य के इतिहास में इन दोनों ही प्रकार की पुस्तकों का कोई सम्यक मूल्यांकन नहीं हुआ है। हिंदी साहित्य के इतिहास की परंपरा को जाँचते हुए **एस. जानसन** ने कहा था कि "हिंदी साहित्य के इतिहास में हिंदी में लिखी गई और प्रतिबंधित हुई इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र की पुस्तकों पर विचार होना चाहिए। ऐसा करने के लिए हिंदी साहित्य के इतिहास को हिंदी वाङ्मय का इतिहास बनाना होगा जो वह अभी नहीं है।"

उल्लेखनीय है कि बीसवीं सदी में गांधीजी के सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन, अंग्रेज़ों की निर्ममता के प्रतीक जलियांवाला बाग हत्याकांड, भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव की फाँसी जैसी घटनाओं ने पूरे देश को झकझोर दिया। अंग्रेज़ी प्रचार स्रोतों के सामने भारतीय दृष्टिकोण को हिंदी साहित्यकारों ने कविता, नज़्म, गज़ल, लेखों, नाटकों आदि विधाओं में व्यक्त किया। इनमें अधिकांश रचनाएँ प्रतिबंधित हुईं, जिस कारण यह पढ़ी तो कम गईं लेकिन गायी ज़्यादा गईं। इस प्रकार श्रुति एवं वाचिक परंपरा के माध्यम से सफ़र करता हुआ यह साहित्य लोक चेतना के लक्ष्य को प्राप्त करता रहा। लोक-मानस में रचे-बसे इस साहित्य के कारण ही जन-जन के मन में स्वाधीनता का बिरवा लहलहाने लगा।

एक ओर समाज में मुक्ति की छटपटाहट थी, तो दूसरी ओर सरकार विरोधी रचनाओं का सृजन करके सत्ता का कोप-भाजन बनने का जोखिम था। अपनी जान के खतरे को जानते हुए भी लेखकों और प्रकाशकों ने अपने नाम और पते के साथ कदम बढ़ाए और उसके बाद गिरफ़्तारी, पुलिस अत्याचार, जुर्माना, ज़ब्ती आदि झेलते हुए साहित्य के जिस संसार का सृजन किया, वह ब्रिटिश हुकूमत के लिए नितांत असहनीय था। कड़े प्रेस कानून के तहत उन्हें ज़ब्त किया जाने लगा। सरकार ने 'प्रेस एक्ट' तथा 'रॉलेट एक्ट' जैसे अनीतिपूर्ण कानूनों द्वारा स्वतंत्रता आंदोलन को दबाना चाहा तथा प्रतिबंधों का काला दौर शुरू हुआ।

हिंदी की जिन पुस्तकों को प्रतिबंधित किया गया, किसी तरह से उनकी कुछ प्रतियाँ गुप्त रूप से बची रहीं, जो भारत के विभिन्न अभिलेखागारों तक पहुँची। ऐतिहासिक तथ्य है कि इस कालखंड में क्रांतिकारी वर्ग छुपे तौर पर क्रांतिकारी दस्तावेज़ लिख रहा था, जिनमें आत्मकथाएँ, निबंध, लेख, जीवनी आदि प्रमुख रहे। इस परिप्रेक्ष्य में सुभाषचंद्र बोस की 'एक भारतीय यात्री', लाला लाजपत राय की 'दुखी भारत', महात्मा गांधी की आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग', रामप्रसाद बिस्मिल की 'आत्मकथा' तथा स्वामी दयानंद सरस्वती की 'सत्यार्थ प्रकाश' आदि प्रमुख उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

'भगत सिंह के इंकलाबी दस्तावेज़' इस दौर का अत्यंत महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है, जो हिंदी में सुलभ है।

इस प्रकार, कई कवियों और साहित्यकारों ने गुमनामी के अंधेरे में रहते हुए साहित्य का सृजन किया। लेकिन इनके साहित्यिक योगदान की कभी कोई चर्चा नहीं होती। सबसे बड़ी विडंबना तो यह है कि प्रतिबंधित होने और अंग्रेज़ों के भीषण अत्याचार सहने वाले ऐसे तमाम साहित्यकारों और उनकी रचनाओं को आज तक उचित सम्मान नहीं मिला है।

प्रतिबंधित साहित्य का विविधतापूर्ण संसार

प्रतिबंधित साहित्य के विविधतापूर्ण संसार को समझने से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि इन रचनाओं के सृजन की पृष्ठभूमि को समझा जाए। हम जानते हैं कि ब्रिटिश राज में भारतीय अस्मिता पर सबसे अधिक प्रहार किया गया और भारतीयों से उनकी मूल पहचान छीनने के सभी उद्यम किए गए। सबसे पहले प्राचीन गुरुकुल शिक्षा-पद्धति को समाप्त करने के लिए अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली लागू की गई। हिंदू धर्म एवं स्थापित मान्यताओं को नीचा दिखाने का प्रयास हुआ। देश की स्वदेशी अर्थव्यवस्था को नष्ट करने की रणनीति अपनाई गई। इसके लिए अंग्रेज़ों ने अनीति और अनाचार का मार्ग चुना।

ब्रिटिश राज में सामान्य अधिकारों का हनन, विभिन्न प्रकार की दमनात्मक कार्रवाई और देशभक्तों पर अत्याचार के मामले लगातार बढ़ते जा रहे थे। जिस प्रकार, अंग्रेज़ शासक 'साम-दाम-दंड-भेद' की नीति अपनाकर भारत पर अन्यायपूर्ण शासन कर रहे थे और अनुचित कानून बनाकर भारतीयों की आवाज़ दबा रहे थे, उसकी मुखर अभिव्यक्ति हम समकालीन साहित्य में पाते हैं। साहित्यकारों ने जब इस निर्मम अत्याचार पर लिखना शुरू किया तब सरकार तिलमिला गई। चूँकि यह सारा साहित्य उपनिवेशवादी सत्ता की सच्चाई को उजागर करने वाला था, अत: सरकार ने इन्हें प्रतिबंधित कर दिया। मात्र संदेह के आधार पर बिना अग्रिम सूचना के भारतीयों की धर-पकड़ एवं प्रेस की रोक द्वारा आम जनता की आवाज़ को दबाया जाने लगा।

वास्तविकता यह थी कि अपने काले कारनामों की पोल खुलते देखकर अंग्रेज़ बौखला गए थे। बौखलाहट में उन्होंने वास्तविक स्थिति का वर्णन करने वाली सभी रचनाओं को प्रतिबंधित कर दिया। पंडित मसूरिया दीन तिवारी ने अपनी प्रतिबंधित पुस्तक 'हिंद के लुटेरे' के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित निम्नलिखित पंक्तियों में प्रतिबंधों की इस सच्चाई को प्रकट किया है- "कट गए लाखों बहादुर देश के हित काम में। कर रहे हो ऐश तुम आओगे फिर किस काम में॥ पोल खुलते देखली तो ज़ब्त करने को चले। ज़ब्त कर लो लाख पर तुम हिन्द से जाओ चले॥"

इस प्रकार, विदेशी शासन के अत्याचारों और देश की अधोगति को व्यक्त करने वाली अधिकतर साहित्यिक किताबों को सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया। ऐसे में किसी उपनाम के साथ या अज्ञात रहकर भी कई साहित्यकार जनता को जाग्रत करने के अपने मार्ग पर बढ़ते रहे। मूल रूप से ब्रिटिश अत्याचार के प्रतिरोध का प्रतीक होने के कारण ही अधिकतर प्रतिबंधित साहित्य अंग्रेज़ी शासन को नागवार था जबकि आम जनता में यह लोकप्रिय हुआ। जनता की भाषा में लिखा गया यह समूचा साहित्य जनता की भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति करने में सक्षम है और यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली के द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'धरती की पुकार' की प्रस्तावना में प्रतिबंधित साहित्य के बारे में सत्य लिखा गया है, "उस समय के गीत व कविताएँ जिन्हें प्रतिबंधित किया गया था, वे अपने आप में हमारे लिए एक उपलब्धि हैं। चाहे उस समय की परिस्थितियाँ तथा सरकारी तानाशाही हथकंडे इनके प्रकाशन में बाधक थे, परन्तु जनमानस का सरकार के प्रति रोष इतना अधिक था कि वे इस पीड़ा को रोक न सके।"

अन्याय का विरोध एवं मातृभूमि के लिए मर मिटने की भावना इस साहित्य का प्रमुख स्वर है। सरकार की शोषणपरक नीति के कारण भारतीयों में उपज रहे असंतोष एवं विरोध की इस साहित्य में प्रभावपूर्ण प्रस्तुति की गई है - "मैं हूँ तैयार मरने को आज़ादी का परवाना हूँ। मुझे जो कहते ये पागल न जाने कौन पागल है। मैं हूँ एक वीर हितैषी वतन का प्रेम दिवाना हूँ। डराते गन मशीनों गोलियों से क्या मुझे साहब। मैं हूँ एक शेर भारत का न यूरोप का जनाना हूँ।"

यह सत्य है कि शासन-प्रशासन के हर स्तर पर भारतीयों को सरकार की जिस भेदभावपरक नीति का सामना करना पड़ता था, प्रतिबंधित साहित्य में हमें उसका मुखर विरोध देखने को मिलता है। सरकार कानून बनाती है लेकिन स्वयं उन कानूनों का पालन नहीं करती जबकि उन्हीं कानूनों के बल पर वह भारतीयों पर भीषण अत्याचार करती है। इस प्रकार, आम आदमी के सामने अपने ही देश में परदेसी आक्रांताओं के अत्याचार और अपमान को झेलने की विवशता है। जन-जन के मन की इसी कसक और लाचारी को प्रतिबंधित साहित्य में स्वर मिला है -

"कानून पे खुद आप ही चलती नहीं सरकार है।
फिर क्या करे पब्लिक ही कहना उन्हें बेकार है॥
यह तोड़ते कानून खुद राया को देते दोष हैं।
ताँगों पे दो दो संतरी होते सदा सवार हैं॥
पीना नशा कोकीन शराबें जुर्म है कानून से।
पिकेटिंग से फिर क्यों करें वालिंटियर गिरफ़्तार हैं॥
निहत्थे निर्दोष पर भी चलती गोली लाठियाँ।
यह देख लो कानून और सरकार का उपकार है॥"

पराधीनता के लंबे दौर में प्राचीन सांस्कृतिक गौरव के पुनरुत्थान के प्रयोजन से साहित्यकारों ने प्रेरक साहित्य की रचना की। इस संपूर्ण साहित्य में विधाओं की विविधता देखी जा सकती है। कविता, नाटक, नज़्म, लेख, लोक-गीत, कहानी, उपन्यास आदि विधाओं में भारत की वर्तमान दुर्दशा की तुलना इसके प्राचीन गौरव से की गई। साथ ही, रचनाकारों ने जन-आक्रोश और सर्वव्यापी रोष को सकारात्मक दिशा देते हुए अपनी रचनाओं में जनमानस के लिए आदर्श, प्रेरणा एवं जन-जागरण के स्वर का समावेश किया –

"हो चुकीं शताब्दियाँ पराधीनता का पाश -
छिन्न-भिन्न करके क्लेश या कुराज हर दें।
होवें न कदापि विचलित शुभ ध्येय से जो –
आयें जो विपत्तियाँ तो भगा दूर धर दें॥
एकता का पाठ पढ़ा सत्याग्रह द्वारा शीघ्र –
देश को स्वतंत्र हम वीर बन्धु कर दें।
शांति से या क्रांति से हो मार्ग अहिंसा से ही,
'हों स्वतंत्र', 'हों स्वतंत्र' भव्य भाव भर दें॥"

प्रतिबंधित साहित्य के अंतर्गत वर्गीकृत तथा पराधीन भारत में प्रकाशित पुस्तकों में सम्मिलित उपर्युक्त पंक्तियों को पढ़कर स्पष्ट हो जाता है कि अन्याय, अत्याचार, शोषण और सार्वत्रिक घुटन के माहौल में जनता की आशाओं एवं आकांक्षाओं की इन रचनाओं में प्रभावपूर्ण प्रस्तुति की गई है। विशेष बात है कि ये रचनाएँ न केवल देश की दुर्दशा का वर्णन करती हैं, वरन् ब्रिटिश दमन के प्रतिकार स्वरूप उठने वाले विरोध के दबे-कुचले स्वरों को एक सशक्त मंच प्रदान करती हैं। देश की मुक्ति के लिए लोगों में जुनून पैदा करने के उद्देश्य से लिखी गई युग-परिवर्तनकारी इन रचनाओं में प्राचीन गौरव की स्थापना के लिए जन-जागरण का मर्म एवं जोश है। इनके कारण ही प्रतिबंधित साहित्य के अंतर्गत विविध दृष्टिकोणों और विश्लेषणों का समावेश संभव हो पाया है।

स्वाधीनता संग्राम में प्रतिबंधित साहित्य का योगदान

देश के मुक्ति आन्दोलन में स्वदेशी की पहचान के तौर पर हिंदी की लोकप्रियता थी। स्वतंत्रता सेनानियों ने अपने विचारों को हिंदी भाषा की विभिन्न विधाओं में जनता के मध्य रखा। स्वाधीनता के संग्राम को ध्यान में रखा जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि 1905 से 1931-32 तक की अवधि में राजनीतिक सरगर्मी पर सबसे अधिक साहित्य रचा गया, जिसने इस संग्राम में अपनी महती भूमिका निभाई। इस दौर में अनेक स्वतंत्रता सेनानियों को कालापानी एवं फाँसी की सज़ा सुनाई गई। "सन् 1900 के बाद शनैः शनैः प्रजातंत्रीय विचारधारा व्यापक होती गई और राजा को 'ईश्वर का अंश' मानने वाली प्रजा "जासु राज प्रिय, प्रजा दुखारी सो नृप अवसि नरक अधिकारी" में अधिक विश्वास करने लगी"।

प्रतिबंधित साहित्य के सर्जकों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से प्राचीन आख्यानों एवं भारतीय आदर्शों का महिमा-मंडन किया ताकि सत्य, धर्म और न्याय की विजय के प्रति जन-जन के विश्वास को सुदृढ़ किया जा सके। वर्तमान त्रासदीपूर्ण माहौल में साहस एवं उत्साह का संचार करने के लिए यह समय की माँग थी। धार्मिक आडंबरों, कुप्रथाओं, सामाजिक रूढ़ियों, ब्रिटिश राज की दमनकारी नीतियों के विरोध एवं स्वतंत्रता-संग्राम की अलख जगाने में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के अलावा सभा तथा मंडलियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन विविध प्रकाशनों का परिणाम यह हुआ कि आम जनमानस की चेतना-जागृति की गति तेज़ हो गई।

स्वतंत्रता सेनानियों से आम जनमानस की संवेदना जुड़ गई तथा आम जनता भी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से उनकी सहायता करने लगी। इनके कारण ब्रिटिश सरकार को कड़ी राजनीतिक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। अनेक राष्ट्रीय दलों, कवियों तथा राष्ट्रवादी नेताओं आदि ने ब्रिटिश राज का विरोध शुरू कर दिया था। सरकार की प्रशासनिक, आर्थिक तथा सामाजिक नीतियों का असहयोग आंदोलन, बायकॉट एवं अहिंसा व्रत के द्वारा बहिष्कार किया गया। वहीं कांग्रेस पार्टी के विभाजित गरम दल व नरम दल के विचारकों ने अपने उद्बोधनों द्वारा भारतीय जनमानस को स्वतंत्रता-आंदोलन के लिए प्रेरित किया। ऐसे कई उद्बोधनों एवं साहित्यिक उद्धरणों को सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया।

स्वतंत्रता-आंदोलन में हिंदी के कवियों ने भी अपनी महती भूमिका का निर्वहन किया। श्यामनारायण पांडेय की 'हल्दीघाटी', सुभद्रा कुमारी चौहान कृत 'झाँसी की रानी', माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा', रामधारी सिंह दिनकर रचित 'प्रण-भंग' आदि देशभक्ति के गीतों ने जनता में जोश भरने का महत्त्वपूर्ण कार्य

किया। हिंदी का प्रतिबंधित साहित्य इसका प्रमाण है कि क्रांतिकारी विचारधारा को भी पर्याप्त जन-समर्थन मिल रहा था। गणपतिचंद्र गुप्त का "स्वराज्य आंदोलन में गांधी के अहिंसावाद के समानांतर एक अन्य क्रांतिकारी विचारधारा का भी विकास होता रहा है। खुदीराम बोस, सावरकर, महेंद्र प्रताप, भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त, रामप्रसाद बिस्मिल, चंद्रशेखर आज़ाद, योगेश चटर्जी, सुभाषचंद्र बोस जैसे नेताओं ने क्रांतिकारी प्रयासों के द्वारा स्वराज्य प्राप्ति का प्रयास किया"।

प्रतिबंधित साहित्य के अंतर्गत आज जो भी साहित्य सुलभ है, उसे पढ़कर स्पष्ट हो जाता है कि इनमें विविधतापूर्ण संसार समाहित है। इसमें जन है, जन-भावना है, जन-साहित्य है, जन-चिन्तन है और उत्कट राष्ट्र-भक्ति है। स्वाधीनता संग्राम के लंबे कालखंड में अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध सर्जित तथा सरकार के द्वारा प्रतिबंधित साहित्य के अंतर्गत देश की अन्य भाषाओं की अपेक्षा हिंदी में सबसे अधिक लिखा गया। इस विपुल साहित्य भण्डार ने ब्रितानी हुकूमत की नींव पर निर्मम प्रहार किया और भारतीय समाज में स्वाधीन होने का अभूतपूर्व जोश उत्पन्न किया। प्रतिबंधित साहित्य में राष्ट्रीयता की चेतना अनेक रूपों में व्यक्त हुई है, जिससे स्वयं कविता अत्यधिक समृद्ध हुई। उसे भाषा से लेकर भाव तक नवीन विस्तार प्राप्त हुआ और यह साहित्य दासता की बेड़ियों को तोड़ने में सहायक बना। प्रतिबंधित साहित्य के रचनाकारों के संबंध में प्रेमचंद का यह कथन सही मालूम पड़ता है कि "वह (साहित्यकार) देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई ही नहीं, बल्कि आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सच्चाई है।"

संदर्भ-सूची :

1. आज़ादी का अमृत महोत्सव, भारत सरकार की वेबसाइट, https://amritmahotsav.nic.in
2. एन. जेराल्ड बैरीयर, 'बैण्ड कण्ट्रोवर्सियल लिटरेचर एण्ड पोलिटिकल कण्ट्रोल इन ब्रिटिश इण्डिया 1907-1947', सन् 1976
3. ई-पाठशाला सामग्री, 'हिंदी का प्रतिबन्धित साहित्य और हिंदी साहित्य का इतिहास' https://epgp.inflibnet.ac.in
4. डॉ. अखिल मिश्र, हिंदी का प्रतिबंधित साहित्य (1900 ई. से 1950 ई. तक) अपनी माटी, दिसंबर, 2022
5. पंडित मसूरिया दीन तिवारी, 'हिंद के लुटेरे', यूनियन जॉब प्रिंटिंग प्रेस, कटरा, इलाहाबाद
6. डॉ. राजेश कुमार परती, 'धरती की पुकार', 1991, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
7. बाबूराम शर्मा, 'भारत माता की लताड़', स्वाधीन प्रेस, आगरा
8. संपादक- के.एल. गुप्ता, 'स्वराज्य संग्राम का बिगुल', 1930, लक्ष्मी प्रिंटिंग प्रेस, आगरा
9. डॉ. मंजुलता तिवारी, (संपा.), भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी कवियों का योगदान, संस्करण-1998, उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ
10. गुप्त, गणपतिचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, द्वितीय खंड, संस्करण-2015, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
11. नंद किशोर नवल (संपा.), स्वतंत्रता पुकारती, संस्करण 2006, साहित्य अकादमी प्रकाशन

sanjayc1965@gmail.com

sanjayc.crri@nic.in

'रंगभूमि' के सौ साल

- डॉ. बृजराज कुमार सिंह
आगरा, भारत

प्रेमचंद के विपुल कथा साहित्य में 'रंगभूमि' उपन्यास एक नगीना है। 'रंगभूमि' का प्रकाशन 1925 में हुआ था। प्रेमचंद केवल हिंदी भाषा और साहित्य के ही नहीं, बल्कि समूचे भारतीय साहित्य के बहुमूल्य धरोहर हैं। अपने बारह उपन्यास और लगभग 350 कहानियों के माध्यम से उन्होंने भारतीय ग्रामीण समाज का जैसा चित्रण किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। नवजागरण और आधुनिकता की जैसी अनुगूँज और औपनिवेशिक शासन से मुक्ति की जैसी छटपटाहट उनमें देखने को मिलती है, वह उन्हें विशिष्ट बनाती है। प्रेमचंद हमारे सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक संघर्षों में हमारे साथ खड़े दिखाई देते हैं। यदि हिंदी प्रदेश के लोगों के रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, रोज़गार और दैनिक जीवन का अध्ययन करना हो, तो प्रेमचंद के साहित्य से बेहतर स्रोत दूसरा नहीं होगा। वह हमारा सामाजिक इतिहास है। प्रेमचंद का लेखनकाल 1900-1936 का है। उपन्यासों में यह उनका नौवाँ-दसवाँ उपन्यास है। आकार की दृष्टि से यह प्रेमचंद का सबसे बड़ा और महत्त्वाकांक्षी उपन्यास है, पात्रों की संख्या की दृष्टि से भी यह उनका सबसे बड़ा उपन्यास कहा जा सकता है। महत्त्व की दृष्टि से यदि इसे गोदान के बाद दूसरे स्थान पर रखें, तो शायद कोई गुरेज न होगा। प्रेमचंद के इस उपन्यास में कथानक-कथावस्तु, राजनीतिक वातावरण, सामाजिक समस्याएँ, विद्रोह-आंदोलन, आर्थिक विषमता, दार्शनिकता, मनोवैज्ञानिकता, स्वाधीनता-संघर्ष आदि का जैसा समावेश किया गया है, वैसा उनके पहले के उपन्यासों में कम दिखाई देता है।

'रंगभूमि' की शुरुआत 1 अक्टूबर, 1922 को हुई और 1 अप्रैल, 1924 को यह पूरा हुआ, प्रकाशन 1925 में हुआ। जैसा कि हम जानते हैं कि 'रंगभूमि' उपन्यास में सूरदास नाम का एक पात्र है, जो भीख माँगकर अपना जीवन-यापन करता है; हालाँकि उसके पास मौके की 10 बीघे ज़मीन भी है, लेकिन वह उसके किसी काम नहीं आती। उस ज़मीन पर वह खेती नहीं करता, बल्कि वह ज़मीन गाँव वालों के काम आती है, परती पड़ी रहती है। सूरदास पांडेपुर बस्ती का निवासी है, जो बनारस शहर के बिल्कुल समीप है, जिसे कस्बा भी कहा जा सकता है। लेकिन प्रेमचंद ने इसे एक गाँव के रूप में ही चित्रित किया है। जैसा कि हर गाँव में होता है, पांडेपुर में भी तरह-तरह के लोग रहते हैं। अलग-अलग व्यवसाय और अलग-अलग जातियों के लोग उस पांडेपुर गाँव में रहते हैं। शहर के एक व्यवसायी भारतीय ईसाई परिवार के जॉन सेवक अपनी सिगरेट के कारखाने के लिए शहर के नज़दीक ज़मीन की तलाश कर रहे हैं और उन्हें सूरदास की परती पड़ी ज़मीन अपने लिए सबसे मुफ़ीद दिखाई देती है। उपन्यास की कहानी यहीं से शुरू होती है कि जॉन सेवक किसी भी कीमत पर वह ज़मीन प्राप्त कर लेना चाहते हैं और सूरदास उसे किसी भी कीमत पर अपने हाथ से जाने नहीं देना चाहता है। एक तरफ़ सत्ता, पूँजी और बाहुबल सब है, वहीं दूसरी तरफ़ सामान्य भारतीय की भाँति सूरदास के पास केवल नैतिक साहस एवं न्याय के प्रति अटूट आस्था है। मुख्य कथा के बीच कई अन्य छोटी-छोटी कथाएँ भी चलती रहती हैं, जैसे-विनय और सोफ़िया की प्रेम कहानी, राजा महेंद्र सिंह और इंदू का दाम्पत्य जीवन, कुँवर भरतसिंह और रानी जान्हवी, प्रभु सेवक, सेवक दल के इंद्रदत्त और बागी वीरपाल, जॉन सेवक के मुनीम ताहिर अली की पारिवारिक कहानी भी इसके मध्य चलती रहती है जो इसे प्रामाणिक बनाती है। अंततः सूरदास हार जाता है और उसकी ज़मीन पर कारखाना खुल जाता है।

ऐतिहासिक महत्व :

'रंगभूमि' उपन्यास स्वाधीनता संग्राम की छाया में लिखा गया था। प्रेमचंद जब गोरखपुर में थे, तभी गांधीजी असहयोग आन्दोलन की शुरुआत कर रहे थे और 8 फ़रवरी, 1921 में गोरखपुर में असहयोग आंदोलन के समर्थन के लिए गांधी जी की सभा आयोजित की गई थी, जिसमें प्रेमचंद भी उपस्थित थे; गांधीजी के आह्वान पर प्रेमचंद ने अपनी सरकारी नौकरी छोड़ दी। प्रेमचंद के लिए यह आसान नहीं था, उनकी माली हालत ऐसी न थी कि वे नौकरी छोड़ देते। लेकिन गांधी और असहयोग आंदोलन के प्रभाव में उन्होंने यह नौकरी छोड़ दी। रामविलास शर्मा ने भी लिखा है कि जलियांवाला बाग हत्याकांड और असहयोग आंदोलन के छिड़ने पर प्रेमचंद ने नौकरी छोड़ दी थी। यह बीस साल की सरकारी नौकरी थी जिस पर उन्होंने लात मारी थी। प्रेमचंद ने स्वयं इस बात

को अपने एक लेख में स्वीकार किया है। "असहयोग आंदोलन ज़ोरों पर था। जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड हो चुका था। उन्हीं दिनों महात्मा गांधी ने गोरखपुर का दौरा किया। गाज़ी मियाँ के मैदान में ऊँचा प्लेटफ़ॉर्म तैयार किया गया। दो लाख से कम का जमाव न था। क्या शहर, क्या देहात, श्रद्धालु जनता दौड़ी चली आती थी। ऐसा समारोह अपने जीवन में मैंने कभी न देखा था। महात्मा के दर्शनों का यह प्रताप था कि मुझ जैसा मरा हुआ आदमी भी चेत उठा। उसके दो-चार दिन बाद ही मैंने अपनी बीस साल की नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया।" यही वह समय है जब प्रेमचंद 'रंगभूमि' की विषयवस्तु के बारे में सोच-विचार कर रहे थे। जिस प्रकार प्रेमचंद नौकरी से त्यागपत्र देकर अपने को औपनिवेशिक गुलामी से मुक्त कर लेते हैं, उसी प्रकार वे भारत को भी अंग्रेज़ी शासन से मुक्त होना देखना चाहते थे। 1920-25 के बीच स्वाधीनता-आंदोलन में ज़बरदस्त सक्रियता आ गई थी, सत्याग्रहियों के साथ-साथ क्रांतिकारियों का दल भी अंग्रेज़ों को नाकों चने चबवा रहा था। प्रेमचंद स्वराज की चेतना विकसित करना ही साहित्य का मुख्य उद्देश्य मानते हैं। 'रंगभूमि' के पीछे वास्तविक प्रेरणा भी थी। वे लमही और गोरखपुर में भी एक अंधे भिखारी के संपर्क में थे। प्रेमचंद ने इसको स्वीकार भी किया है कि कैसे एक छोटा-सा तन्तु इतना बड़ा चरित्र रच देता है। मदन गोपाल के अनुसार 1920-21 के आसपास बनारस के शिवपुर में रेलवे के काम के लिए सरकार द्वारा ज़मीन अधिग्रहण का प्रयास किया जा रहा था, ज़मीन के मालिकों ने इस ज़बरदस्ती अधिग्रहण का जमकर विरोध किया था। इस घटना ने भी 'रंगभूमि' के कथानक में अपनी भूमिका निभाई थी। इसी प्रकार जलियांवाला बाग हत्याकांड 1919 में घटित हुआ था, जिसने ब्रिटिश हुकूमत के दमन की पराकाष्ठा को दुनिया के सामने ला दिया था। उसकी भी कई छवियाँ इस उपन्यास में देखने को मिल जाती हैं। प्रेमचंद ने जनरल डायर के खूनी खेल को 'रंगभूमि' के एक प्रसंग में हूबहू चित्रित कर दिया है। जनरल डायर की ही भाँति क्लार्क ने भी निहत्थी जनता पर गोलियाँ चलवा दी थी, सूरदास उसी की गोली से घायल हुआ। 'रंगभूमि' के पात्रों और उनके चरित्र-चित्रण में भी तत्कालीन कई नेताओं और स्वाधीनता-आंदोलन से जुड़े व्यक्तित्व की छवियाँ दिखाई देती हैं। सूफ़िया का चरित्र एनी बेसेंट से प्रभावित था। प्रेमचंद ने इसको भी स्वीकार किया है। इसलिए अनायास सूरदास को गांधी का प्रतिबिंब मान लिया जाता है। सूरदास पूर्णतया गांधी का प्रतिबिंब भले न हो, परन्तु उस पर गांधी की छाया ज़रूर है, खासतौर पर जैसा नैतिक साहस सूरदास में है, उसका जोड़ यदि कहीं है, तो वह गांधी में ही है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। इस सबके अतिरिक्त अवध के किसान आंदोलन की छाया इस उपन्यास पर न पड़ी हो, ऐसा कहना मुश्किल होगा। सूरदास का संघर्ष व्यक्तिगत संघर्ष न होकर एक आंदोलन का स्वरूप ग्रहण कर लेता है; इसलिए किसान आंदोलन की छाया इस पर अवश्य ही है। क्षीण ही सही लेकिन चंपारण-सत्याग्रह का भी असर इस उपन्यास की कथावस्तु पर है। ऐसा नहीं है कि उपन्यास में सिर्फ़ गांधी, अहिंसा और सत्याग्रह ही है, बल्कि सशस्त्र क्रांतिकारी आंदोलन के संकेत भी दिखाई देते हैं। वीरपाल इसका प्रमुख उदाहरण है, उसने लड़ने के लिए एक छोटी-सी सेना बनाई है। उपन्यास के अंत में प्रेमचंद ने सूरदास की हार के बाद इस लड़ाई को ज़िंदा रखने का जो संकेत मिठुआ में दिया है, वह भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। मिठुआ उग्र है, हिंसा का जवाब प्रतिहिंसा से देना चाहता है। वह सूरदास की तरह सहनशील नहीं है; और तो और उसने बम बनाना भी सीख लिया है। क्या यह भगत सिंह और उनके साथियों के प्रभाव के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए? प्रेमचंद के लेखन से और विचारों से यह स्पष्ट है कि वे गांधी के विचारों और कार्यों से अत्यधिक प्रभावित थे। हालाँकि समय-समय पर वे उनकी आलोचना भी किया करते थे। इस उपन्यास की कथा पर गांधी की पुस्तक 'हिंद स्वराज' का भी प्रभाव देखा जा सकता है। जिस प्रकार गांधी 'हिंद स्वराज' में पश्चिमी सभ्यता और उसके औद्योगीकरण एवं मशीनीकरण के हानिकारक प्रभाव के बरक्स ग्राम स्वराज की वैकल्पिक व्यवस्था का पक्ष लेते हैं, उससे स्पष्ट है कि 'हिंद स्वराज' की संपोष्य (Sustainable) व्यवस्था का असर भी इस उपन्यास पर है।

'रंगभूमि' की मुख्य समस्या :

'रंगभूमि' उपन्यास की मुख्य समस्या क्या है? इसको लेकर आलोचकों ने अनेक प्रतिक्रियाएँ दी हैं। कोई इसे औद्योगीकरण एवं मशीनीकरण का विरोध बताता है, तो कोई इसे गाँव और शहर के द्वंद के रूप में देखने की हिमायत करता है। कभी इसे गांधी और उनके आंदोलनों के प्रभाव में लिखा हुआ उपन्यास के रूप में पढ़ने की सलाह दी जाती है; तो कभी क्रांति एवं परिवर्तन की आशा के रूप में। कई लोग इसे किसान एवं मज़दूर समस्या के रूप में भी पढ़ने की सलाह देते हैं। कोई इसे औद्योगिक विकास से उत्पन्न अपसंस्कृति की समस्या के लिए लिखा गया उपन्यास कहता है। कुछ विद्वान इसे किसान समस्या और किसान आंदोलन से उत्पन्न परिस्थितियों के मद्देनज़र पढ़ने की सिफ़ारिश करते हैं। कोई इसे अवध के किसान आंदोलन तो कोई गांधी के असहयोग आंदोलन

की छाया में लिखा गया बताता है।

इस उपन्यास के समीक्षकों में से अधिकांश ने इसका औद्योगीकरण और मशीनीकरण के साथ कृषि-संस्कृति के संघर्ष के रूप में ही समीक्षा की है। जिस तरह से उपन्यास में एक सिगरेट की फ़ैक्टरी स्थापित करने के पीछे संघर्ष शुरू होता है और वह धीरे-धीरे आंदोलन का रूप ग्रहण कर लेता है; उससे सहज ही यह किसी को अनुमान हो सकता है कि यह औद्योगिक-पूँजीवादी सभ्यता एवं मशीनीकरण के विरुद्ध लिखा गया उपन्यास है। रामदीन गुप्त लिखते हैं - "'रंगभूमि' की मुख्य समस्या औद्योगिक सभ्यता बनाम कृषि सभ्यता है। उपन्यास में जॉन सेवक औद्योगिक सभ्यता और सूरदास कृषि-सभ्यता का प्रतिनिधि है। 'रंगभूमि' सामंतवाद और पूँजीवाद, कृषि-सभ्यता और औद्योगिक सभ्यता के संघर्ष की गाथा है।" नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी 'रंगभूमि' उपन्यास की मुख्य समस्या औद्योगिक विकास के दुर्गुणों और उससे उत्पन्न अपसंस्कृति को ही माना है - "'रंगभूमि' में औद्योगिक विकास का प्रश्न मुख्य है। प्रेमचंद औद्योगिक सभ्यता के दुर्गुणों की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट कराते हैं। ग्रामीण जीवन की सरलता और स्वच्छता के स्थान पर औद्योगिक सभ्यता की जटिलता, पूँजी के केन्द्रीकरण, मज़दूरों के नैतिक पतन आदि दुर्गुणों का उल्लेख किया गया है।" इंद्रनाथ मदान ने भी 'रंगभूमि' को औद्योगिक सभ्यता, जिसने गाँव के सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धों को नष्ट करना शुरू कर दिया था, का दिग्दर्शन कराया है। सूरदास इसे समझ रहा था, इसीलिए राजा महेंद्र सिंह जब कहते हैं कि कारखाना खुल जाने से लोगों को रोज़गार मिलेगा, उनका जीवन सुधर जाएगा, तब सूरदास कहता है - "सरकार बहुत ठीक कहती है। मोहल्ले की रौनक ज़रूर बढ़ जाएगी, रोज़गारी लोगों को फ़ायदा भी खूब होगा, लेकिन जहाँ यह रौनक बढ़ेगी, वहाँ ताड़ी-शराब का भी तो परचार बढ़ जाएगा। कसाबियाँ भी तो आकर बस जाएँगी। परदेसी आदमी हमारी बहू बेटियों को घूरेंगे, कितना अधर्म होगा! दिहात के किसान अपना काम छोड़कर मजूरी के लालच से दौड़ेंगे। यहाँ बुरी-बुरी बातें सीखेंगे और अपने बुरे आचरण अपने गाँव में फैलाएँगे" परन्तु नामवर सिंह की राय इससे भिन्न है। वे कहते हैं कि प्रेमचंद औद्योगीकरण का विरोध नहीं करते हैं, बल्कि एक वैकल्पिक व्यवस्था की ताकीद करते हैं। वे पुरानी व्यवस्था या ग्रामीण व्यवस्था को बनाए रखना चाहते थे, ऐसा नहीं है। वे अपने औपनिवेशिक काल के चरित्र को यथार्थवादी नज़रिए से प्रस्तुत करते हैं। वे पूँजीवाद और सामंतवाद के गठजोड़ का पर्दाफ़ाश कर देते हैं।

कुछ विद्वान सूरदास को किसान मानकर इसे किसान समस्या अथवा किसान आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में देखने की बात करते हैं। अवध में 'एका' नाम से बाबा रामचंद्र के नेतृत्व में एक बड़ा किसान आंदोलन घटित हो चुका था। प्रेमाश्रम में प्रेमचंद किसान आंदोलन की संभावनापूर्ण स्थिति और पूर्वाभास दे चुके थे। हालाँकि सूरदास कोई किसान नहीं था और न ही उसकी बस्ती पांडेपुर पूरी तरह से गाँव था। पांडेपुर में कोई भी बड़ा किसान नहीं है। प्रेमचंद इस कथा के माध्यम से अनियंत्रित पूँजीवाद के खतरे, नैतिकताहीन औद्योगीकरण-मशीनीकरण का विकास और इसके साथ पूँजीवाद एवं सामंतवाद का गठजोड़ अथवा उसकी दुरभिसंधियों से चिंतित थे। मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार सामंतवाद से पूँजीवाद में आने में जो बीच का परिवर्तन काल (Transition Period) पड़ता है, उसका 'रंगभूमि' एक बहुत सजीव चित्र है। शंभुनाथ ने सूरदास द्वारा अपना झोपड़ा बचाने की लड़ाई को वर्ग-संघर्ष और वर्ग-चेतना की दृष्टि से जोड़कर देखा है। सूरदास सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि है, इसलिए उसका संघर्ष वास्तविक है।

गांधीवाद के प्रति आस्था :

ऊपर के प्रसंगों से यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद पर महात्मा गांधी के जीवन और विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था, विशेषकर सत्य, अहिंसा, स्वदेशी, आत्मबलिदान और सामाजिक समता, वैकल्पिक आधुनिकता जैसे सिद्धांतों का। इस उपन्यास का नायक *सूरदास* एक नेत्रहीन और निर्धन व्यक्ति है, जो तथाकथित निम्न जाति का होते हुए भी नैतिक दृष्टि से सबसे ऊँचा है। जब एक धनी व्यापारी उसकी ज़मीन पर मिल बनाना चाहता है, तब सूरदास उसका शांतिपूर्वक विरोध करता है। वह कहता है - अगर ज़मीन जाएगी, तो इसके साथ मेरी जान भी जाएगी। यह गांधीजी के सत्याग्रह और अहिंसक प्रतिरोध की भावना का जीवंत उदाहरण है। सूरदास किसी हिंसा का सहारा नहीं लेता, बल्कि सच्चाई के बल पर अन्याय का विरोध करता है। यह गांधीजी के उस सिद्धांत को दर्शाता है कि सच्चा बल बाहुबल में नहीं, आत्मबल में होता है। सूरदास दलित है, लेकिन उपन्यास में वह मंदिर में बैठकर औरों के साथ भजन-कीर्तन गाता है, बल्कि उसके बिना यह मंडली अधूरी है। यह गांधी के मंदिर-प्रवेश और अंबेडकर के अछूतोद्धार से प्रेरित है। ऊपर कहा जा चुका है कि उपन्यास में औद्योगीकरण की आलोचना भी गांधीवादी सोच को प्रतिबिंबित करती है। गांधीजी आधुनिक मशीनों और अनियंत्रित पूँजीवाद के विरोधी थे। 'रंगभूमि' गांधीवादी मूल्यों का सजीव चित्रण है। सूरदास जैसे पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद ने यह दिखाया कि सत्य, अहिंसा और नैतिक बल ही किसी समाज

को सच्चा परिवर्तन दे सकते हैं। नामवर सिंह कहते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है, जैसे सूरदास के रूप में प्रेमचंद ने स्वयं गांधीजी को ही अपनी समूची नैतिक शक्ति के साथ 'रंगभूमि' में उतार दिया हो। रामदीन गुप्त ने भी सूरदास के लिए कहा है कि सूरदास एक आदर्श सत्याग्रही की भाँति अहिंसा का अनन्य उपासक है। कथा में बार-बार ऐसा प्रतीत होता है कि सूरदास गांधी का ही प्रतिबिंब है। सूरदास को सुभागी के मामले में राजा महेंद्र प्रताप के प्रभाव में न्यायालय से जेल की सज़ा होती है, तब वह जाने से मना कर देता है, वह अवज्ञा करता है और जनता से मुखातिब होकर पूछता है कि क्या उसे जेल जाना चाहिए। चंपारण में किसानों का पक्ष लेने की वजह से न्यायाधीश ने जब गांधीजी पर जुर्माना लगाया था तब गांधीजी ने जुर्माना देने से मना कर दिया था। हालाँकि शंभुनाथ सूरदास को गांधी मानने से इनकार करते हैं; उनका कहना है कि प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' में सूरदास के माध्यम से आम आदमी की आकांक्षाओं और संघर्षों को चित्रित करने का प्रयास किया है, किसी खास नेता के जीवन-दर्शन को नहीं। इसी प्रकार नामवर सिंह ने भी एक जगह कहा है कि प्रेमचंद गांधी से प्रभावित ज़रूर थे, लेकिन गांधीवादी नहीं थे। विनय सिंह पर गांधी और उनके विचारों की गहरी छाप है। उदयपुर प्रवास के दिनों में उनके विचार और कार्य गांधीजी से प्रभावित दिखते हैं। अहिंसा और नैतिकता के बल पर जनसमूह के भीतर विश्वास उत्पन्न करना, जनता का उनके प्रति आस्थावान होना, उन्हें अपना नेता मान लेना, जेल में बंद होने पर वीरपाल द्वारा छुड़ा लेने की प्रक्रिया में इनकार कर देना, इस मामले में सोफ़िया की राय भी ठुकरा देना, उन्हें गांधीजी से जुड़ी घटनाओं से जोड़ देता है।

'रंगभूमि' अपने समय के तमाम संघर्षों और परिवर्तन के अंकुरों की पहचान कराती है और उन्हें बड़ी मज़बूती से चित्रित करती है। अपने रचनाकाल का अतिक्रमण करती है। सौ सालों के बाद भी नई है, प्रासंगिक है। भूमि अधिग्रहण और विस्थापन की समस्या को केंद्र में रखकर संक्रांति काल के अनेक उतार-चढ़ाव को प्रदर्शित करती है। वह तब भी प्रेरणा-स्रोत थी, अब भी है। पूँजीवाद के जिस खतरे से हमें आगाह कराती है, उसके दुष्परिणाम हम आज देख रहे हैं। भारतीयता और राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण है और उसकी सीमाओं को चिन्हित भी करती है। वर्ग-चेतना विकसित करती है और वर्ग शत्रुओं से सावधान भी करती है। वहाँ इतिहास है, समाज है, राजनीति है और साम्यवाद की उम्मीद है। शोषण है, संघर्ष है, तो प्रेरणा भी है। हार है, तो जीत की उम्मीद भी है। क्रूरता और षड्यन्त्र है, तो मानवीयता में विश्वास भी है। 'रंगभूमि' में करुणा है, वह विरेचित करती है।

अंत में, मैं अपनी बात उस प्रसंग से खत्म करूँगा, जो बहुउद्धृत है। 'रंगभूमि' के प्रत्येक पाठक का ध्यान, उसकी नज़र वहाँ अटक ही जाती है। यह उद्धरण एक संवाद है, जो सूरदास और मिठुआ के बीच में है। यह भारतीय मनुष्य की अदम्य जिजीविषा, संघर्षशील व्यक्तित्व, उदार एवं क्षमाशील हृदय का प्रमाण है। यह हमें हार से निराश न होने और लगातार निर्माण की प्रक्रिया से जुड़े रहने के लिए प्रेरित करता है। यह भारतीय किसानों और मज़दूरों के अदम्य साहस और जीवन के प्रति आस्था को दर्शाता है। सूरदास की झोपड़ी जला दी जाती है। मिठुआ उससे पूछता है कि दादा अब हम क्या करेंगे?

मिठुआ ने पूछा - दादा अब हम रहेंगे कहाँ?
सूरदास - दूसरा घर बनाएँगे।
मिठुआ - और कोई फिर आग लगा दे?
सूरदास - फिर बनाएँगे
मिठुआ - और फिर लगा दे?
सूरदास - तो हम भी फिर बनाएँगे।
मिठुआ - और कोई हज़ार बार लगा दे?
सूरदास - तो हम हज़ार बार बनाएँगे।

संदर्भ-सूची :

1. डॉ. उषा ऋषि, प्रेमचंद और उनके उपन्यास : विवरण विवेचन (1974) (1980), पृथ्वीराज पब्लिशर्स, दिल्ली
2. डॉ ज्ञान अस्थाना, हिंदी उपन्यासों में ग्राम-समस्याएँ (1979), जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
3. डॉ. रामबक्ष, प्रेमचंद और भारतीय किसान (1981), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
4. डॉ. तेज सिंह, प्रेमचंद की 'रंगभूमि' : एक विवाद एक संवाद (2008), स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली
5. अशफाक़ हुसैन, प्रेमचंद स्मृति अंक (संस्करण : 1982), हंस प्रकाशन
6. इंद्रनाथ मदान, प्रेमचंद : चिंतन और कला, सरस्वती प्रेस, बनारस (वाराणसी)
7. नन्ददुलारे वाजपेयी, प्रेमचंद साहित्यिक विवेचन (1979), दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इण्डिया लि0, नई दिल्ली
8. नामवर सिंह, प्रेमचंद और भारतीय समाज (2010), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
9. प्रेमचंद, प्रेमचंद रचनावली : भाग 19 (1996), जनवाणी

प्रकाशन, नई दिल्ली
10. प्रेमचंद, 'रंगभूमि' (1925) (2013), सुमित्र प्रकाशन, प्रयागराज
11. मन्मथनाथ गुप्त, कथाकार प्रेमचंद (1947), किताब महल, प्रयागराज
12. रामदीन गुप्त, प्रेमचंद और गांधीवाद (1961), हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली
13. रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग (1952) (1989), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
14. राजीव कुमार पाल, एका (2018), नवारुण प्रकाशन, नई दिल्ली
15. वीरभारत तलवार, किसान राष्ट्रीय आंदोलन और प्रेमचंद (1990), 1918-22, प्रेमाश्रम और अवध के किसान आंदोलन का विशेष अध्ययन : नार्दर्न बुक सेंटर, नई दिल्ली
16. शंभुनाथ, प्रेमचंद का पुनर्मूल्यांकन (1988), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
17. हंसराज रहबर, प्रेमचंद : जीवन, कला और कृतित्व (1951) (1962), आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
18. Madan Gopal, Munshi Premchand : A Literary Biography (1943), Asia Publishing House, Bombay

brijrajsingh@dei.ac.in

केदारनाथ सिंह की कविताओं में पारिस्थितिकी-बोध

- श्री रजनीश कुमार
त्रिपुरा, भारत

पारिस्थितिकी एक ऐसा अध्ययन, जो जीव समुदायों का उसके वातावरण के साथ पारस्परिक संबंधों को बताता है। पारिस्थितिकी का संबंध जीवविज्ञान और भूगोल की एक शाखा से है। प्रत्येक जंतु या वनस्पति जिस वातावरण में रहती है, उसी विशाल प्रकृति तथा वातावरण के संबंधों का विश्लेषण पारिस्थितिकी के अंतर्गत आता है। विश्वभर के पर्यावरणीय आंदोलनों ने साहित्य को प्रभावित किया है। पर्यावरण और पारिस्थितिकी का ह्रास साहित्य में विमर्श का केंद्र बना, जिसे आलोचना के सिद्धांत के रूप में 'पारिस्थितिक आलोचना' अथवा 'इको-क्रिटिसिज़्म' के रूप में जाना गया। साहित्य का एक पारिस्थितिक दर्शन भी है। पारिस्थितिक दर्शन अर्थात् पर्यावरणीय दृष्टिकोण, जिसे 'इको-फ़िलॉसफ़ी' भी कहा जाता है। के. वनजा अपनी पुस्तक 'साहित्य का पारिस्थितिक दर्शन' में लिखती हैं – *"इको-फ़िलॉसफ़ी (Eco-Philosophy) का आरंभ एवं विकास 1970 के बाद हुआ। इसकी मुख्य शाखाएँ चार हैं- 1.गहन परिस्थितिवाद (DeepEcology) 2.सामाजिक परिस्थितिवाद (SocialEcology) 3.पारिस्थितिक मार्क्सवाद (Eco-Marxism) 4.पारिस्थितिक स्त्रीवाद (Eco-Feminism)। इन चार शाखाओं के ज़रिए पारिस्थितिक दर्शन विकास प्राप्त कर रहा है। इन शाखाओं को प्रभावित करने वाली कुछ बुनियादी संकल्पनाएँ हैं – वे हैं, भौम सदाचार (EarthEthics or EnvironmentalEthics), साकल्यता (Holism), हरित आध्यात्मिकता (Green Spirituality)"*

हिंदी साहित्य में समकालीन कवियों की दृष्टि पर्यावरण की संकट को लेकर अधिक चिंतित व सजग दिखती है। पृथ्वी पर असंतुलन की रिपोर्ट तैयार करती समकालीन कविताएँ पारिस्थितिक चिंताओं का दस्तावेज़ है। केदारनाथ सिंह उनमें विशेष रूप से पहले आते हैं। पारिस्थितिक जैव वैविध्य को केंद्रित कर के. वनजा लिखती हैं- *"एक प्रदेश का जैव वैविध्य उस प्रदेश के सस्य, जानवर एवं सूक्ष्म-जीवियों की विविध जातियों का समूह है। इसकी रक्षा उस प्रदेश की मिट्टी की उर्वरता, जेल की लभ्यता, जलवायु आदि पर निर्भर है। इन्हें कृत्रिम रूप से बनाना मुश्किल है। इसलिए जैव वैविध्यों की स्थिति मनुष्य सहित सभी जीवजालों के लिए अनिवार्य है।"* मनुष्यता की दृष्टांत पद्धति को गठित भाव से रचनात्मक संलाप की भंगिमा में प्रस्तुत कवि केदारनाथ सिंह ने एक गतिशील रचनात्मक संसार को आदमी के भीतर प्रवेश करने का जागरूक यत्न किया है। वस्तुतः केदारनाथ सिंह एक तरफ़ प्रश्न-संस्कृति के कवि हैं, तो दूसरी तरफ़ उन्हीं प्रश्नों की संवेदनशीलता के प्रवक्ता भी। उनकी बेचैनी कभी-कभार सरल और सपाट शब्दों में भी दिख पड़ती है। यह अकारण नहीं कि जब वे लिखते हैं –

"उठता हाहाकार जिधर है
उसी तरफ़ अपना भी घर है"

हिंदी कविता का एक ऐसा दौर जहाँ सब कुछ अपनी सहजता से बेबाक कहा जाए, इसकी उपज के लिए एक विस्तीर्ण मैदानी भाग है-समकालीन कविता। समकालीन कविता में केदारनाथ सिंह अग्रणी कवि हैं। सामान्य से सामान्य और विशिष्ट से विशिष्ट महत्त्व का विक्षोभ केदारनाथ सिंह की कविताओं में स्पंदित होता है। केदारनाथ सिंह का कविता काल 1959 ईस्वी से 2018 ईस्वी तक की सुदीर्घ अवधि तक रहा। 1960 ईस्वी में 'अभी, बिल्कुल अभी' के प्रकाशन से 2018 ईस्वी में 'मतदान केंद्र पर झपकी' के प्रकाशन तक कुल नौ काव्य-संग्रह छपे। केदारनाथ सिंह आरंभ से प्रकृति से विशेष लगाव रखने वाले कवि हैं। किंतु, वह प्रकृति-चित्रण करने वाले कवि न होकर प्रकृति की अनुभूति अर्थात् सघन विक्षोभ पैदा करने वाले कवि के रूप में सामने आते हैं। प्रकृति की अनुभूति करने की सजगता उनके प्रथम काव्य-संग्रह में ही अंकित है। वे लिखते हैं –

"छोटे-से आँगन में
माँ ने लगाए हैं
तुलसी के बिरवे दो
पिता ने उगाया है
बरगद छतनार
मैं अपना नन्हा गुलाब
कहाँ रोप दूँ ?"

केदारनाथ सिंह को 'गुलाब' अत्यंत प्रिय है। वे इस नन्हे-से गुलाब के लिए सब्ज़ ज़मीन की तलाश कर रहे थे। इस पारिवारिक प्रश्न में अस्तित्व बोध ,साहचर्य, समानता तथा नवाचार का सम्मिलित भाव निहित है। कवि अपने बीज को अंकुरित कर उगाना चाहते हैं। वे उसे जीवन देना चाहते हैं, जिससे पृथ्वी का सौरभ सुरभित रहे।

कवि अपनी सब्ज़ ज़मीन की तलाश बेहतर दुनिया की संकल्पना के लिए करता है। पर्यावरण की सजगता और पृथ्वी के अस्तित्व का संकट केदारनाथ सिंह को धरती का कवि बनाता है। केदारनाथ सिंह उदास पृथ्वी को खुशहाल देखना चाहते हैं। पक्षियों को संगीत व उसकी उड़ान अबाध गति से देना चाहते हैं। केदारनाथ सिंह की कविताओं में पारिस्थितिकी के रूप में केवल जल, जंगल और ज़मीन की चिंता नहीं है, वे इस समूची पृथ्वी की रक्षात्मक सोच के साथ उपस्थित हैं। 'बाघ', 'बैलें', गिलहरी, सारस, गाय, सूअर, चींटी, कुत्ता, कौवा, कबूतर आदि मानवेतर प्राणियों की करुणा को मुक्त करने की उद्दाम लालसा उनकी कविताओं में उमड़ती हैं। केदारनाथ सिंह को पृथ्वी पर सब कुछ वैसा ही चाहिए जैसा फलों में स्वाद आता है। कवि जीवन के बीच सघन उपस्थित होकर कविता तलाश करता है और जीवन की अंतर्वस्तु में प्रकृति का सान्निध्य भी तलाशता है। प्रकृति के संरक्षण और उसकी चिंता समकालीन कवियों की कविताओं में सहज ही देखा जा सकता है। केदारनाथ सिंह की कविताएँ प्रारंभ से ही प्रकृति से विशेष लगाव रखती रही हैं और उसके बीच परस्पर गुणात्मक अनुभव का आदान-प्रदान होता रहा है। उनके काव्य के संदर्भों की अनुगूँज बिंब के बहुआयामी अर्थों का फैलाव है। 'कविता क्या है?' निबंध में आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सभ्यता के आवरण और सृष्टि-प्रसार के रूप में कविता की भूमिका स्पष्ट करते हुए लिखा है - *"बिंबग्रहण वहीं होता है, जहाँ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तु के अंग-प्रत्यंग वर्ण, आकृति तथा उनके आसपास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है। बिना अनुराग के ऐसे सूक्ष्म ब्यौरों पर न दृष्टि जा सकती है न रम ही सकती है।"* समकालीन हिंदी कविता का तापमान कवि के इस सूक्ष्म अवलोकन से सहज प्राप्त किया जा सकता है कि एक औसत ज़िंदगी की ज़मीन से जुड़ने की छटपटाहट केदारनाथ सिंह की कविताओं का सहज आकर्षण है और कवि उम्मीद का उजाला हमेशा अपने साथ लिए चलता है। वे सजग कवि होने के साथ-साथ बिंब के ताज़ा प्रयोग को गुरुत्व देते थे। उनकी कविता रोटी और नमक की तरह आस्वाद लिए रहती है। काव्य-विषय के साथ उनका रागात्मक संबंध हो जाता था। उनकी दृष्टि में कविता का सीधा संबंध भाषा से है और भाषा सम्प्रेषण का सर्वसुलभ माध्यम है। आधुनिक कवि के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह रही है कि भावों की सरल अभिव्यक्ति हेतु भाषा को भारविहीन कैसे बनाया जा सके ताकि वह सुगम और बोधगम्य हो । केदारनाथ सिंह कविता की भाषा में इसी सुगमता के रसज्ञ कवि हैं। उनकी कविताओं में गाँव और शहर के अनेक चित्र उपलब्ध हैं। ग्राम्य और नागर बिंब उनकी कविताओं में बहुविध हैं, किन्तु साधारण जीवन से लिए गए हैं। जीवन और प्रकृति के अनेक अनछुए पहलुओं पर कवि का ध्यान गया है, जो उनकी काव्य-कला को अलग मुहावरे से विभूषित करता है। पृथ्वी और प्रकृति की रक्षात्मक सोच से आपूरित कवि केदारनाथ सिंह की कविताओं में 'नदी' और 'घास' का उतना ही महत्त्व है, जितना कि कविता में लबालब एक-एक शब्द का। 'नदियाँ' शीर्षक कविता में केदारनाथ सिंह की गहरी संवेदना व्यक्त हुई है। नदी हमारे भीतर की संवेदन-तरलता है, जिसके बहने से अधिक संवेद्य और संवेदनशील मनुष्य बनते हैं। कवि का कहना है –

"वे हमें जानती हैं
जैसे जानती हैं वे अपनी मछलियों की बेचैनी
अपने तटों का तापमान
जो कि हमीं हैं"

नदी के रूप में हमारे भीतर की संवेदना को स्पंदित करने का प्रयास कितना श्लाघनीय हो जाता है जब कवि नदी को उसकी स्वतंत्रता देना चाहते हों। 'नदियाँ' हमारे जीवन में विशेष तौर पर महत्त्वपूर्ण हैं। एक स्थिति में नदियाँ सभ्यता का होना है। नदियों का स्वच्छंद प्रवास संवेदना का मुक्त बहाव है, जो जीवन में रस, गंध और खुशहाली का पुलक प्रकट करता है। किंतु, जब नदी की स्वच्छंदता पर पुल और बाँध की रेखा खींची जाती है, तब केदारनाथ सिंह पूरी ज़िम्मेदारी के साथ नदियों के पक्ष में लिख रहे होते हैं। वे लिखते हैं –

"पुल –
पृथ्वी के सारे के सारे पुल
एक गहरा षड्यंत्र है नदियों के खिलाफ़
और नदियाँ उन्हें इस तरह बर्दाश्त करती हैं
जैसे कैदी ज़ंजीरों को
हालाँकि नदियाँ इसीलिए नदियाँ हैं
कि वे जब भी चाहती हैं उलट-पुलट देती हैं सारा कैलेंडर
और दिशाओं के नाम
हमारे देश में नदियाँ
जब कुछ नहीं करतीं
तब वे शवों का इंतजार करती हैं"

उपर्युक्त कविता में बिंब भी है और चेतावनी की अर्थवत्ता भी, जिसका ऐतिहासिक महत्त्व है। सभ्यता के विकास में नदी का प्रवाह नहीं रुकना चाहिए। अपने समय की चुनौतियों का सामना करते

हुए कविता की कलात्मकता के लिए उन्होंने सौन्दर्य और गरिमा को अधिक महत्त्व दिया। समूची मानव सभ्यता के निमित्त वे प्रकृति के सूक्ष्म अवलोकन करते रहे हैं। उनकी कविताओं में विकास का सातत्य चलता है, जो जीवन को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर देखने की प्रतिबद्धता को केंद्रित करता है। केदारनाथ सिंह भाषा के प्रति विशेष रूप से चिंतित रहे हैं। उन्होंने भाषा में अपने को अभिव्यक्त करने के लिए आत्मीय सम्प्रेषण अर्जित किया है। पृथ्वी के सजग प्रहरी के रूप में केदारनाथ सिंह की स्पष्ट घोषणा है, जो 21वीं शताब्दी में उनकी कविता-यात्रा को बिल्कुल एक नयी राह प्रशस्त करती है। भाषा की संप्रेषणीयता उनकी आकांक्षाओं और अनुभवों का एकीकृत विश्वसनीय प्रयत्न है। वे अपनी भाषा के स्वरूप और स्वभाव को बदलकर अलग मिज़ाज से कहने की शैली अपनाते हैं। वे लिखते हैं –

"मैं उनकी तरफ़ से बोल रहा हूँ
जो चले गए हैं काम पर"

सबकी ओर से बोलना केदारनाथ सिंह के निर्माता का आदेश है। वे मोढ़े की ऊब, झाड़ू की उदासी, राख की यातना, बंद दीवारों की ओर से और यहाँ तक कि नागासाकी में बच गई अकेली चिउंटी की तरफ़ से भी बोल रहे हैं। सच कभी अकेले नहीं कहा जाता, जबकि उसमें शामिल होती है प्रकृति और प्रकृति की अभिव्यक्ति। उनके सच की भाषा में लोकरंग की स्निग्धता और कोमलता भी स्फुरित होती रहती है। एक आकुल अभिव्यक्ति, जिसके पार्श्व में कवि स्वयं को शिशु सदृश काव्य कौतुक भाव से अपनी भाषा का चयन करता है, तब पाठक को हतप्रभ हुए बिना नहीं छोड़ता। कवि जब 'घास' की ओर कविता में इशारा करता है तब मानो उसकी उपस्थिति कविता का शृंगार बन जाती है। एक कविता है 'लोरी', जिसमें घास की अनायास उपस्थिति देखने को मिलती है।

"मेरे सिर के ऊपर से जाता हुआ वायुयान
सोचता है मैं घास हूँ
घास का ख्याल है
मैं ही बैठा हूँ ऊपर वायुयान में"

कवि ने घास और वायुयान के बहाने लोरी की सभ्यता पर प्रश्नचिह्न खड़ा किया है कि यह कैसी सभ्यता है जिसमें देर हो रही यात्रा के लिए एक लोरी तक नहीं। दरअसल, घास का क्या जो एक मूर्त रूप में वायुयान देखकर सोचता है। आखिर एक घास का सोचना केदारनाथ सिंह के काव्य का वह मुहावरा है जो मानवीकरण अलंकार की सीमारेखा पार कर चुका है। इस दृष्टि से कवि ने घास के बहाने कविता की उस भावुकता की शुरुआत की है, जिसमें घास की पहचान बनी रहे। केदारनाथ सिंह की कविताओं में 'घास' का बड़ा महत्त्व है। यह केदारनाथ सिंह की विशेषता है कि उनकी कविताओं में घास अचानक से चला आता है कई बार। प्रकृति के निकटस्थ जीव-जन्तु अधिक सक्रिय रहते हैं। मौसम का अथवा किसी अनहोनी का आभास उन्हें पहले से विदित होता है। 'जड़ें' शीर्षक कविता, जिसमें घास को चींटियों के प्रजनन का समय पता है; की गवाही देती पंक्तियाँ हैं –

"जड़ें चमक रही हैं
ढेले खुश
घास को पता है
चींटियों के प्रजनन का समय
करीब आ रहा है"

कवि केदारनाथ सिंह की सबसे बड़ी खासियत यह है कि आदमी के जनतंत्र में घास के सवाल पर एक लंबी और अखंड बहस की माँग करते हैं। दरअसल, घास में दुनिया की सबसे खूबसूरत ज़िद है ताकि 'उगना' शब्द जीवित बचा रहे शब्दकोश में। घास की कहीं से भी उग आने की ज़िद कविता का प्राणतत्त्व है। अकेला होकर भी एक पत्ती का बैनर लिए मैदान में खड़े रहना प्रकृति के साथ खड़े रहना है। कवि दूब जैसी मामूली घास को स्वाभिमान के साँचे में ढालकर एक खास प्रकार की जैविक और जनतान्त्रिक दृष्टि का सूत्रपात करते हैं। केदारनाथ सिंह की कविताएँ मानवेतर प्राणी की संवेदना से गुंफित पुल की तलाश है। वे बाघ के चतुर्थ अनुच्छेद में एक जगह लिखते हैं –

"इस तरह दोनों के बीच
एक अजब–सा रिश्ता था
जहाँ एक ओर भूख ही भूख थी
दूसरी ओर करुणा ही करुणा
और दोनों के बीच
कोई पुल नहीं था"

कवि अपनी कविताओं में मानव और मानवेतर के बीच इसी पुल अथवा साहचर्य की तलाश करते हैं, जहाँ प्रकृति के अन्य जीव के साथ करुणा के साथ सान्निध्य प्राप्ति हो सके। कविता का यह श्लाघ्य सौन्दर्य कवि केदारनाथ सिंह के सृजन का प्रतिपक्ष है, जिसमें वे प्राकृतिक साहचर्य की बात करते हैं। वे चीज़ों को जोड़ने में विश्वास रखते हैं और यदि दो के बीच कोई पुल नहीं होता, तो वे गहरे अंतर्मन से उसकी व्यथा को मुखर करते हैं। केदारनाथ सिंह के यहाँ कविता का जो मनोजगत है, उसके माध्यम से मिथकीय संदर्भों को भी लोकजीवन से प्राप्त किया है। किन्तु इससे कहीं

अधिक प्रकृति की चित्रात्मक शैली हिंदी में नूतन प्रयोग है और इस दृष्टि से वे समकालीन हिंदी कविता के शिखर कवि के रूप में सम्मानित होते हैं। उन्होंने अपनी पीढ़ी तैयार की है। समकालीन मुहावरों को एक नया मोड़ दिया है। पारिस्थितिकी के बोध स्वरूप उन्होंने अपने जीवन के आखिरी काव्य-संग्रह 'मतदान केंद्र पर झपकी' में 'पानी' शीर्षक कविता में स्पष्ट घोषणा की है –

"मैं घोषित करता हूँ
कि पानी
मेरा धर्म है
आग मेरा वेदान्त
हवा से मैंने दीक्षा ली है
घास-पात मेरे सहपाठी"

इस पृथ्वी पर तीन-चौथाई पानी का हिस्सा है और मनुष्य के शरीर में भी लगभग तीन-चौथाई पानी का अंश है। पीने योग्य जल की समस्या पूरे विश्व में निकट भविष्य हेतु पर्यावरणीय चिंता की उपज है। प्रकृति का दोहन करके मनुष्य अपने लिए ही खतरा उत्पन्न कर रहा है। कवि केदारनाथ सिंह पारिस्थितिकी संयंत्र की इसी मूल समस्या को चोट करते हुए पानी, आग, हवा और घास-पात की बात करते हैं। केदारनाथ सिंह सच्चे अर्थों में अपने युग की नई भंगिमा को स्वीकार करते हुए विश्व को आगाह करते दिखते हैं। उनकी कविता आखिरी तक उम्मीद का उजाला जलाकर चलती है। आशान्वित होकर वे जीवन की सच्चाई से साक्षात्कार करते हैं। उनके संदर्भ में विष्णु खरे का अभिमत है कि *"आदमी से इतना रिश्ता रखते हुए भी उनकी कविताएँ मात्र मानव केंद्रित नहीं हैं। दरअसल, मानव और प्रकृति के बीच संबंध को उसके विभिन्न आयामों में जितना उन्होंने देखा है हिंदी के किसी भी समकालीन कवि ने शायद ही देखा हो।"*

केदारनाथ सिंह जितनी कलात्मकता के साथ शब्द चुनते हैं, उतनी ही सजगता से विषय चुनते हैं। उनकी कविताओं का एक हिस्सा एक ओर मानवीय सरोकारों से गुथी हुई भावुकता और छटपटाहट की चीज़ें ली हुई हैं, तो दूसरी तरफ़ मानवेतर प्राणियों की संवेदना मुखर प्रतीत होती हैं। वे उनकी तरफ़ से बोल रहे होते हैं। कुछ कविताएँ ऐसी भी हैं, जो जड़ पदार्थ हैं, उसकी भी पीड़ा अथवा उसे जीवन देने का बीड़ा उठाने का कार्य केदारनाथ सिंह ने किया। इन दिनों सद्‌गुरु जग्गी वासुदेव द्वारा 'रैली फ़ॉर रिवर्स' (नदी के लिए रैली) और 'सेव स्वायल' (मिट्टी बचाओ) जैसे अभियान चला रहे हों, तो इस दृष्टिकोण से केदारनाथ सिंह की कविताएँ और अधिक प्रासंगिक दिखती हैं। केदारनाथ सिंह मिट्टी के ममत्व से मुखरित कवि हैं और उनकी कविताओं का एक बड़ा आयाम पृथ्वी, ब्रह्मांड और उसमें रहने और बसने वाले सभी जीव-जंतुओं और उसकी अपनी-अपनी सभ्यता और संस्कृति को स्वतंत्र और स्वच्छंद देखना चाहते हैं। सहजता और जटिलता के समाहार में कवि केदारनाथ सिंह की कविताएँ अपनी दस्तावेज़ प्रस्तुत करती हैं। 'बाघ' सभ्यता के विकास के एक पशु-बिंब के रूप में एक लंबी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं, जिसमें पर्यावरण का विक्षोभ भी है और भविष्य की संचेतना भी। एक कवि को इससे अधिक क्या चाहिए कि वह धरती की नागरिकता प्राप्त कर ले।

संदर्भ-सूची :

1. के. वनजा, साहित्य का पारिस्थितिक दर्शन, 2011, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2. केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, एक कविता निराला को याद करते हुए, 2019, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. केदारनाथ सिंह, अभी, बिल्कुल अभी, 'एक पारिवारिक प्रश्न', 2020, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
4. चिंतामणि, 'कविता क्या है' रामचन्द्र शुक्ल, 2015, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
5. केदारनाथ सिंह, उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ, 2019, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
6. केदारनाथ सिंह, तालस्ताय और साइकिल, 'आईना', 2010, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
7. केदारनाथ सिंह, उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ, लोरी कविता
8. केदारनाथ सिंह, बाघ, 2009, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
9. केदारनाथ सिंह, मतदान केंद्र पर झपकी, 2018, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
10. विष्णु खरे, आलोचना की पहली किताब, 2004 संस्करण , वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

hirkjha@gmail.com

हिंदी काव्य में कश्मीर की विस्थापन पीड़ा

- डॉ. उमर बशीर
श्रीनगर कश्मीर, भारत

अंग्रेज़ी में 'विस्थापन' के लिए 'displacement' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ है - किसी वस्तु को उसके उस सामान्य स्थान अथवा स्थिति से हटा देना होता है, जिस स्थान पर वह आसीन हो। 'विस्थापन' शब्द का व्यवहार भूगोल, भौतिक-विज्ञान, मनोविज्ञान, राजनीति-विज्ञान, वायु-मंडल विज्ञान, साहित्य आदि क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न संदर्भों में किया जाता है। मानवीय विस्थापन के इतिहास की दृष्टि से एक व्यापक श्रेणी में विस्थापन - उजड़ने, बिछड़ने, बिखरने, उखड़ने, छिटकने और बेदखली की एक प्रक्रिया का नाम है। इसके अंतर्गत प्रवासन, निर्वासन, देशांतरगमन, निष्कासन और दासत्व सम्मिलित होता है। 'विस्थापन' के व्यापक अर्थ में अपने घर-बार, स्मृतियों, परंपराओं, अपने अस्तित्व, इतिहास, सभ्यता आदि से उजड़ने का भाव सम्मिलित होता है। विश्व भर में विस्थापन के कारण मानव-जाति का वह सब कुछ छिन जाता है, जिसमें उनके पूर्वजों का बिंब-प्रतिबिंब झलकता है। किसी निश्चित स्थान पर पीढ़ियों से निवास करते आ रहे लोग वहाँ से बेघर होते हैं। जिस स्थान के परिवेश में लोग पले-बढ़े होते हैं, जहाँ की मिट्टी से उनका अस्तित्व जुड़ा होता है, जहाँ के वातावरण में अपनत्व तथा सुरक्षा का एहसास छिपा होता है। 'विस्थापन' न केवल एक व्यक्ति का सीमा के पार होने का नाम-मात्र है, अपितु इसमें उन सभी व्यक्तियों के जीवन के समस्त आयाम, जीवन-पर्यंत प्रभावित होते हैं, जिनका आपसी सरोकार अविच्छिन्न व अविरल होता है। अतः इस प्रकार अपने जन्मस्थान व अपनी मातृभूमि से कट जाना ही विस्थापन की मूलभूत प्रवृत्ति है।

सामान्यतः विस्थापन विभिन्न प्रकार का होता है, जिसमें स्वैच्छिक विस्थापन (voluntary displacement) और बलकृत विस्थापन (forcible displacement) मुख्य हैं, अर्थात् कुछ लोग स्वेच्छा से विस्थापित होते हैं और कुछ को अपनी मातृभूमि छोड़ने के लिए विवश किया जाता है। मानवीय विस्थापन में स्वेच्छा से एक स्थान-परिवेश से दूसरे स्थान-परिवेश में प्रव्रजन अथवा स्थानान्तरगमन सुखात्मक तथा विकासोन्मुख सिद्ध होता है। इसके विपरीत बलकृत विस्थापन अर्थात् अनैच्छिक रूप से विस्थापित होने वाले व्यक्ति की दिशा, दशा, अवस्था दयनीय तथा दुष्कर होती है। "अपने पर्यावरण और इलाके से लोगों का बलपूर्वक पलायन विस्थापन के नवीन एवं प्रचलित रूप हैं। जब मानवराशि युद्ध, जातीय सफ़ाई, राजनीतिक भेद, नगरीय नवीनीकरण जैसे विषयों पर विचारपूर्वक कार्यवाही स्वीकृत करने के परिणामस्वरूप लोगों को अपने घर व बिरादरी छोड़कर निकलना पड़ता है, तब विस्थापन घटित होता है।"

कश्मीर घाटी दक्षिण भारत के एशिया और उत्तर-पश्चिमी हिमालय के समुद्र तल से लगभग 6000 फ़ीट की ऊँचाई पर स्थित है। कश्मीर का विस्तार उत्तर और पूर्व में चीन (शिनजियांग और तिब्बत); उत्तर-पश्चिम में अफ़गानिस्तान (वाखान कॉरिडोर); पश्चिम में पाकिस्तान (ख़ैबर पख्तूनख्वा) और पंजाब; और दक्षिण में भारत (हिमाचल-प्रदेश और पंजाब) की सीमाओं तक है। कश्मीर की स्थलाकृति अधिकतर पहाड़ी है। इसका अक्षांश और देशांतर क्रमशः 33˚_'22 और 37˚_60' उत्तर और 72˚_'30 और 77˚_30 ' पूर्व के बीच है।

समूचे विश्व में हुए कुछ महाविस्थापनों की दृष्टि से दुर्भाग्यतः सन् 1990 ई. का दशक कश्मीर के इतिहास का काला अध्याय माना जाता है, जिसने कश्मीर से एक वर्ग-विशेष के पलायन की पृष्ठभूमि तैयार की। यह दौर कश्मीर में राजनीतिक दृष्टि से बड़े उथल-पुथल का दौर रहा है। इस दशक ने कश्मीरी जनता को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा मानसिक रूप से पर्याप्त सीमा तक प्रभावित किया है, फिर चाहे वह वहाँ के मुसलमान हो अथवा हिंदू (जिन्हें सामान्यतः कश्मीरी-पंडित कहा जाता है)। इस दशक के कुछ वर्ष पूर्व जब कश्मीर में उग्रवाद का आरंभ हुआ, तो कश्मीर एक कॉन्फ़्लिक-ज़ोन (Conflict Zone) में परिवर्तित हुआ। घाटी में निरंतर विकृत होती जा रही चिंताजनक परिस्थितियों ने अल्पसंख्यकों को विशेष रूप से भयभीत किया। भय का वातावरण जब चरमोत्कर्ष पर पहुँचा, तब परिणामतः कश्मीरी वर्ग-विशेष (हिंदू-वर्ग) घाटी से पलायन करने के लिए विवश हुआ।

घाटी से पलायनोपरांत भी इन समर्थ साहित्य-साधकों ने कश्मीर की हिंदी कविता में एक विशेष भूमिका निभाई। वस्तुतः इन कवियों ने विद्रुप तथा वीभत्स स्थिति को देखा, भोगा, परखा और उसे अभिव्यक्त किया। इन्होंने विस्थापन की भीषण त्रासदी का सहज एवं स्वाभाविक ढंग से चित्रण किया है। तत्पश्चात् इन साहित्यकारों की सृजनात्मकता को विस्थापन-साहित्य की संज्ञा से अभिहित किया गया, जो तर्कसंगत भी है। साहित्य की कविता-

विधा ने इस काव्य-प्रवृत्ति को सबसे अधिक उभारा, जिसका एक सकारात्मक परिणाम यह हुआ कि कश्मीर के हिंदी साहित्य-पटल पर कई नए हस्ताक्षर सामने आए।

विस्थापन-चेतना की कविताओं की दृष्टि से कश्मीर-प्रदेश से विस्थापित कविगण महाराज कृष्ण संतोषी, कवि अग्निशेखर, महाराज कृष्ण 'भरत', रतन लाल शांत, मोहन निराश, पृथ्वीनाथ मधुप, अर्जुन देव 'मजबूर', रमेश मेहता, प्यारे लाल 'हताश', चंद्रकांता, क्षमा कौल, बृजनाथ वातल 'बेताब', महाराज कृष्ण शाह, उपेंद्रनाथ रैणा, निर्मल विनोद, दिलीप कुमार कौल आदि की कविताएँ विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं।

महाराज कृष्ण संतोषी की कविताओं का मुख्य स्वर विस्थापन और उससे उत्पन्न विवशताओं, हृदयविदारक वेदना तथा व्यथा-कथा का लेखा-जोखा रहा है। विस्थापन से उत्पन्न सामाजिक-सांस्कृतिक दुष्प्रभावों को कवि ने बड़ी कुशलता के साथ चित्रित किया है। इस दृष्टि से उनके यह समय कविता का नहीं (सन् 1996 ई.), *वितस्ता का तीसरा किनारा* (सन् 2005 ई.), *आत्मा की निगरानी में* (सन् 2015 ई.) आदि काव्य-संकलन अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। विस्थापन से उत्पन्न सामाजिक-सांस्कृतिक दुष्प्रभावों को कवि ने बड़ी कुशलता के साथ चित्रित किया है। कश्मीर - जिसे धरती का स्वर्ग कहा जाता है, वह अब नर्क बन गया है, यद्यपि उसका प्राकृतिक सौंदर्य अकश्मीरियों के लिए लुभावना-सा है, किंतु कश्मीर मूल के निवासियों के लिए वह धरती का एक क्षत-विक्षित टुकड़ा-मात्र है। प्रकृति द्वारा दिया सब कुछ भी एक सामान्य कश्मीरी के लिए कुछ भी न होने की अवस्था जैसा है। कवि संतोषी भी इस तथ्य से पूर्णतः अवगत हैं, इसीलिए कवि मुखरित-भाव से कहते हैं -

"सावधान !
यह पृथ्वी का स्वर्ग है
यहाँ नदियाँ, झील, पहाड़
फूल-वनस्पतियाँ सब हैं
पर आँखें भूल गई हैं देखना
और दिल धड़कना
सिर्फ़ सतर्क हैं कान
जिन्हें हवा ने सिखा दिया है
आवाज़ों का व्याकरण
सावधान !
यह पृथ्वी का स्वर्ग है
यहाँ दरवाज़े काँपते हैं दस्तकों से
और खिड़कियाँ हवा से
मौसम हो चाहे कोई भी
यहाँ परिंदों के लौटने का
कोई समय नहीं
क्योंकि यहाँ दिन का अवसान
सूर्य डूबने से नहीं
गोली चलने से होता है।"

डॉ. अग्निशेखर (वास्तविक नाम कुल्दीप सुम्बली, जन्म सन् 1956 ई., कश्मीर) इसी कड़ी के एक अन्य सशक्त कवि हैं। विस्थापन की दृष्टि से उनका *किसी भी समय* (सन् 1992 ई.), *मुझसे छीन ली गई मेरी नदी* (सन् 1996 ई.), *काल वृक्ष की छाया में* (सन् 2002 ई.), *जवाहर टनल* (सन् 2009 ई.), *जलता हुआ पुल* (2019 ई.) आदि काव्य-संग्रह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कवि अग्निशेखर स्वयं एक विस्थापित लेखक हैं, इसीलिए उनकी रचनाओं में विस्थापन के दुष्प्रभावों की यथार्थपरक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, जैसे कृपाशंकर चौबे का भी मत है - "अग्निशेखर की कविता अनायास लाखों निर्वासित कश्मीरियों की आवाज़ बन जाती है।" निःसंदेह यह एक निर्विवादित तथ्य है कि विस्थापन जैसी विकराल समस्या मानव-समाज को दूषित करती है। विस्थापन मनुष्य से वह सब कुछ छीन लेता है, जिससे उसके दैनिक जीवन को गति मिलती है और जिसमें उसकी जिजीविषा प्रबल होती है। विस्थापन एक ऐसी नीच त्रासदी है, जिससे हमारे समाज का वयस्क-वर्ग ही त्रस्त नहीं होता है, अपितु अप्रत्यक्षतः नन्हे-नन्हे बच्चे भी अपना मूल संसार खो बैठते हैं। कवि इसी तथ्य की ओर इंगित करते हुए कहते हैं -

"बच्चों का संसार खो जाना
कुछ अदृश्य फ़ैसलों का वास्तुशिल्प है
मेरी बुज़ुर्ग घाटी में
नहीं जानते अबोध विस्थापित बच्चे
कि वे नींद ले रहे हैं
हम सबकी अनींदी गोद में "

अग्निशेखर का संपूर्ण काव्य कश्मीर के विस्थापितों का पद्यात्मक इतिहास है, जिसमें कहीं घर से बिछुड़ने की पीड़ा की छटपटाहट है, तो कहीं शरणार्थी जीवन जीने की बाध्यता के तीख-तुरुष अनुभव हैं। कहीं आशा-निराशा के स्वर सुनाई पड़ते हैं, तो कहीं उग्रवाद का खंडन करते कटु प्रसंग। कुल मिलाकर अधिकतर कविताओं की केंद्रीय-संवेदना विस्थापन ही है।

इसी प्रकार महाराज कृष्ण भरत के दो काव्य-संग्रह - *फिरन*

में छिपाए तिरंगा (1995 ई.) और *नींव ! तुझे नमन* (2006 ई.) की कविताएँ विस्थापनपरक प्रवृत्तियों से परिपूर्ण रचनाएँ हैं। भरत की यह दोनों रचनाएँ विस्थापन के सूक्ष्म धरातल तथा उसके अकल्पनीय यथार्थ की हृदयभेदक अभिव्यक्ति का साक्षात् दर्शन कराती हैं। नॉस्टैल्जिया (Nostalgia) इन रचनाओं में अत्यंत प्रखर रूप में उभरकर सामने आई है। भारत के पूर्व प्रधान-मंत्री तथा कवि-हृदय श्रीयुत अटल बिहारी वाजपेयी महाराज कृष्ण भरत की कविताओं के संबंध में लिखते हैं - "श्री भरत की कविताएँ कश्मीर के देशभक्तों की वेदना, घुटन और क्षोभ को तो व्यक्त करती ही हैं, साथ ही उनमें सबल, सशक्त, अखंड भारत के निर्माण तथा गर्व से सिर ऊँचा किए फिर कश्मीर लौटने की आशा और संकल्प भी झलकता है।" भरत की कविताएँ कई बार शरणार्थी जीवन की दारुण परिस्थितियों की अदृश्य परतें खोलकर यथार्थ रूप में पाठक के समक्ष रखती हैं। शरणार्थी जीवन की यातनापरक, अश्रुसिक्त तथा विह्वल कर देने वाली अभिव्यक्ति कवि ने पग-पग पर की है -

"मुझसे मिलने के लिए
किसी को खटखटाना नहीं होगा दरवाज़ा...
केवल—
फटेहाल सरकारी तम्बू का
परदा सरकाना होगा ।"

जम्मू-कश्मीर में हिंदी के वरिष्ठतम कवि डॉ. रतन लाल शांत (जन्म 1938 ई.) कृत *कविता अभी भी* (1997 ई.) काव्य-संग्रह में विस्थापन की चेतना पर केंद्रित कविताएँ देखने को मिलती हैं। आलोच्य संग्रह की कविताओं में कवि के जीवन के गत तीन दशकों की धड़कन को स्पष्ट सुना जा सकता है । ये कविताएँ समसामयिक चिंताओं के विविध उपक्रमों का प्रस्तुतिकरण है। विस्थापन-चेतना की दृष्टि से इस संग्रह की "सपनों की ठिठोली", "ऋतुचक्र", "अवकाश", "बड़े ढीठ हो, कश्मीर", "बुलावा", "कोई मेरा घर देख आए !", "पोथियाँ", "पितृभूमि", "श्रीनगर : 175" आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अपनी मातृभूमि - कश्मीर से कवि की आसक्ति "पोथियाँ" कविता में देखी जा सकती हैं -

"कश्मीर
तुम मुझे तार-तार कर सकते हो
पन्ना-पन्ना बिखेर सकते हो
पर मैं टुकड़ा-टुकड़ा समेट कर जियूँगा
फिर संपूर्ण हो जाऊँगा
और तुम्हें फिर पाऊँगा ।"

विस्थापन की त्रासदी भोगने के पश्चात् भी कवि मोहन निराश (1934-2000 ई.) की अंतिम कविताओं में उद्दाम जिजीविषा दिखाई पड़ती है। इस दृष्टि से उनका शून्यकाल (1991 ई.) काव्य-संग्रह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वस्तुतः जब किसी संघर्ष-क्षेत्र में परिस्थितियाँ विकृत हो जाती हैं, तब व्यक्ति अर्थात् साधारण जन के मन में सुरक्षा संबंधी सैकडों प्रश्न जन्म लेते हैं, विशेषकर अल्पसंख्यक जनमानस में जन्मभूमि से उखड़ने की स्थिति जैसा हताशा का दुखद चित्र उभरता जाता है। ऐसे वातावरण में कवि के मन में भी एक तरह का आत्मसंघर्ष छिड़ जाता है -

"आँखों में अबाबीलें सुलाकर
पंख खोल
उड़कर चले जाना कहीं
अब आवश्यक हो गया है ।"

चंद्रकांता का एकमात्र काव्य-संग्रह *यहीं-कहीं आसपास* (1999 ई.) में विभिन्न विषयों के अतिरिक्त कुछ कविताएँ विस्थापन के परिप्रेक्ष्य में भी रचित हैं। कवयित्री कश्मीर को *मोज कशीर* (माता कश्मीर) कहकर पुकारती है और उसकी व्यथा-वेदना को स्वर देती है। समय की क्रूरता के परिणामस्वरूप *मोज कशीर* की दुर्दशा होने पर कवयित्री अपना शोक प्रकट करती हुई कहती हैं -

"तुम ज़ख्मी हो वक्त के इस कहर में
जानती हूँ, लेकिन मेरी माँ !...
फ़िलहाल मेरे पावों के निशान
सहेज लो माँ
मैं आऊँगी उन्हें ढूँढ़ती हुई
फिर तुम्हारी बाँहों में
सहलाने
अपने और तुम्हारे ज़ख्म !"

विस्थापन-साहित्य के परिप्रेक्ष्य में क्षमा कौल (जन्म 1956 ई.) एक महत्त्वपूर्ण नाम है। उनका *दर्दपुर* (2004 ई.) उपन्यास आज भी पाठकों के आकर्षण का केंद्र बना हुआ है। उनका एकमात्र काव्य-संकलन *बादलों में आग* (2000 ई.) मन की तारों को छू लेने वाला संग्रह है। लेखिका का अपनी मूलभूमि (कश्मीर) से अलगाव की पीड़ा की फलश्रुति *बादलों में आग* काव्य-संग्रह है। इन कविताओं में कवयित्री की भावनाओं का विकल स्वर गूँजता है। इस रचना के शीर्षक की सार्थकता को और भी स्पष्ट करते हुए हिंदी साहित्य जगत के अमर पुरोधा स्व. मंगलेश डबराल जी लिखते हैं - "इस किताब में बादलों से घिरी घाटियों, काले पड़ते आसमान और बर्फ़ और शीत के बीच अक्सर दिख जाने वाली आग और धूप का वह स्वप्न मौजूद है जो अपने 'स्वर्ग' से विस्थापित होकर

शहरों में लाचार भटकते कश्मीरियों के स्वप्न से भी जुड़ गया है।" अपनी मूलभूमि के वियोग में मनुष्य अपने अस्तित्व को अपूर्ण-सा अनुभव करता है। वह अपनी सहनशीलता की परीक्षा में स्वयं को झकझोड़ता फिरता है -

"न दौड़ मेरी रगों में
इस कदर
मेरे शहर
बाहर आ, आ बाहर
फाड़ मेरी रगें
और आ बाहर"

बृजनाथ बेताब (जन्म 1955 ई.) कृत *मैं कवि नहीं हूँ* (2003 ई.) पूर्णतः विस्थापनाधारित काव्य-संग्रह है। इस संग्रह की कविताओं में एक नई अनुभूति के दर्शन होते हैं। अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए कवि ने हताश होते हुए भी विश्वास की अलख जगाए रखा है। शरणार्थी जीवन की गोपित तथा अवर्णनीय किंतु हृदयविदारक यथार्थ की एक झलक निम्न कवितांश में देखी जा सकती है -

"मेरी कविता वह माईग्रेंट ख़ेमे हैं
जहाँ आज के युग का इनसान
दिन भर कम्प्यूटर तो चलाता है
मगर रात को
बारी-बारी सोता है
क्योंकि उसे भी
'कुछ-कुछ होता है'
तभी तो
पलायन के बाद
भरे घर में
अकेले रोता है
जैसे मैं रोता हूँ
अकेले में
अंधेरे में "

विस्थापन-विषय की दृष्टि से कश्मीर घाटी के समकालीन हिंदी काव्य-जगत के प्रतिनिधि कवि श्री निदा नवाज़ की *"खुश रंग परिंदे", "वे स्वयं कश्मीर थे", "बेघर हुए परिंदों का काफ़िला", "विरासत की रक्षा", "अंतर्विरोध", "यादों का शमशान", "युद्धक्षेत्र", "तुम लौट आओगे ज़रूर"* आदि कविताएँ विशेष महत्त्व के अधिकारी हैं। विशेष इस रूप में कि एक तो अहिंदी-प्रदेश में प्रतिकूल वातावरण में इनका सृजन किया गया है, दूसरा ये कविताएँ कश्मीरी मुसलमान कवि द्वारा विरचित हैं। कवि ने किसी भी प्रकार की सांप्रदायिक भावना से परे विस्थापितों के स्वर से स्वर मिलाकर अपनी कविताओं के माध्यम से समता-समानता का संदेश दिया है। निदा नवाज़ विरचित *अंधेरे की पाज़ेब* (2019 ई.) काव्य-संग्रह में संकलित कविता - *"बेघर हुए परिंदों का काफ़िला"* में विस्थापितों के अंतर्मन की पीड़ा को बड़े करुणास्पद ढंग से उद्घाटित किया गया है -

"परिंदों का एक क़ाफ़िला
अपनी बिफ़री यादों में
उजड़े नीड़ों के तिनकों
और
नोंचे गये पंखों के दृश्य लिये...
अपनी शहरगों और रीढ़ की हड्डियों में
अपने ख़िलाफ़ रचे गये हर षड्यंत्र के
घाव-चिन्ह को संभाले...
खट्टी-मीठी यादों के बिंब लिये
चल दिया अंधेरों को फलाँगते"

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त और भी कुछ कश्मीर के हिंदी कवि ऐसे हैं, जिनकी छुट-पुट रूप से एक दो विस्थापन-विषयक कविताएँ यत्र-तत्र प्रकाशित हुई हैं। वस्तुतः कश्मीर की समस्त विस्थापन-विषयक कविताएँ, विस्थापन का दंश झेल चुके व्यक्ति के मर्म को अभिव्यक्त तो करती ही हैं, साथ ही विश्व में हुए उन सभी विस्थापितों की पीड़ा को भी वाणी देती हैं, जो तीव्र परिवर्तनों वाली इस 21वीं शताब्दी में भी विस्थापन का दंश झेल रहे हैं। विस्थापन की यह त्रासदी मनुष्य की आत्मा को झकझोर कर रख देती है, क्योंकि विस्थापितों की बहुधा अभिव्यक्ति सरल तथा अतुकांत होते हुए भी मर्मस्थल को छू जाती है।

तात्पर्यतः समय की विडंबनाओं एवं विद्रुपताओं के फलस्वरूप विस्थापित कवि विश्वासों को ढहता देख आशाहीन होकर भी आशा के दीप जलाए रखने का भरसक यत्न करता रहता है। अतः स्पष्ट है कि कश्मीर की विस्थापन कविता में विस्थापन के विभिन्न धरातल देखने को मिलते हैं। वे विरोधाभास को झेलकर उसी में अपना जीवन-यापन व्यतीत कर रहे हैं, जिसकी अभिव्यक्ति वे साहित्य में विशेषतः कविता में भली-भाँति करते रहते हैं। भारतीय साहित्य में विस्थापन की यह चेतना पाठक तथा समीक्षक को उन अंधेरी खाइयों से अवगत कराती है, जहाँ केवल व्यथा ही जीवन की कथा होती है।

निष्कर्षतः कश्मीर की विस्थापन कविता में मुख्य रूप से घर छूट जाने की पीड़ा तथा पुनः उससे वापस जुड़ने की ललक, अपनी

मातृभूमि को स्पर्श करने की तड़प, भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति, नॉस्टैल्जिया, उग्रवाद का खंडन आदि केंद्रीय-विषय रहे हैं।

संदर्भ-सूची :

1. जेकॉब, डॉ. रूबी एलसा, समकालीन हिंदी उपन्यासों में विस्थापितों का यथार्थ, मार्च 2010, हिंदी विभाग, कोचिन यूनिवर्सिटी ऑफ़ साइन्स एंड टैकनॉलॉजी, कोचिन, केरल
2. संतोषी महाराज कृष्ण, आत्मा की निगरानी में, 2015 ई., मानस पब्लिकेशन्स, तुलारामबाग, इलाहाबाद (यू.पी.)
3. चौबे, कृपाशंकर, हिंदी साहित्य में कश्मीर का योगदान, बहुवचन, जनवरी-सितंबर - 2020 ई.
4. डॉ. अग्निशेखर, किसी भी समय, 1992 ई., संभावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड (यू.पी.)
5. भरत, महाराज कृष्ण. फिरन में छिपाए तिरंगा, 1995 ई., अनिल प्रकाशन, नई-सड़क, दिल्ली
6. भरत, महाराज कृष्ण, फिरन में छिपाए तिरंगा, 1995 ई., अनिल प्रकाशन, नई-सड़क, दिल्ली
7. शांत, रतन लाल, कविता अभी भी, 1997 ई., नीहार प्रकाशन, सुभाष नगर, जम्मू
8. निराश, मोहन, शून्यकाल, 1991 ई., उपमन्यु प्रकाशन, मालवीय नगर, नई दिल्ली
9. चंद्रकांता, यहीं कहीं आसपास, 1999 ई., नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरिया गंज, नई दिल्ली
10. कौल, क्षमा, बादलों में आग, 2000 ई., अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद (यू.पी.)
11. बेताब, बृजनाथ, मैं कवि नहीं हूँ, 2003 ई., (जे. के. ऑफसेट प्रिंटरेस दिल्ली) स्वंय लेखक द्वारा प्रकाशित,
12. नवाज़, निदा, अंधेरे की पाज़ेब, 2019 ई., सेतु प्रकाशन, पटपड़गंज, दिल्ली

umarku121@gmail.com

भारतीय संस्कृति के प्रचार में हिंदी की भूमिका

- डॉ. (श्रीमती) स्वाति चड्ढा
पुणे, भारत

भारतीय संस्कृति गंगा की तरह बहती हुई धारा है, जिस तरह गंगा के उद्गम स्रोत से लेकर समुद्र में प्रवेश होने वाली अनेक नदियाँ एवं धाराएँ मिलकर उसमें समाहित हैं, उसी तरह भारतीय संस्कृति भी है। यह संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। अनेक प्रहारों को सहते हुए भी इसने अपनी सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण रखा है। हमारे देश में शक, हूण, यवन, मंगोल, मुगल, अंग्रेज़ कितनी ही जातियाँ एवं प्रजातियाँ आईं, किन्तु सभी भारतीय संस्कृति में एकाकार हो गईं। डॉ. गुलाबराय के विचारों में - "भारतीय संस्कृति में एक संश्लिष्ट एकता है। भारतीय संस्कृति सारे विश्व को एक कुटुम्ब मानते हुए समस्त प्राणियों के प्रति कल्याण, सुख एवं आरोग्य की कामना करती है। विश्व में किसी प्राणी को दुखी देखना उचित नहीं समझा गया है। हमारी संस्कृति का ध्येय वाक्य है -

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुखभाग् भवेत्।।"

अर्थात् सभी सुखी होवें, सभी रोगमुक्त रहें, सभी मंगलमय के साक्षी बनें और किसी को भी दुख का भागी न बनना पड़े।

भारतीय संस्कृति व सभ्यता विश्व की सर्वाधिक प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति व सभ्यता है। इसे विश्व की सभी संस्कृतियों की जननी माना जाता है। जीने की कला हो, विज्ञान हो या राजनीति का क्षेत्र भारतीय संस्कृति का सदैव विशेष स्थान रहा है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ तो समय की धारा के साथ-साथ नष्ट होती रही हैं, किंतु भारत की संस्कृति व सभ्यता आदिकाल से ही अपने परंपरागत अस्तित्व के साथ अजर-अमर बनी हुई हैं। यही कारण है कि संपूर्ण विश्व के लोग भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर उसे करीब से समझना और जानना चाहते हैं। भारत की संस्कृति में कुछ ऐसा है, जो हमेशा से लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। संस्कृति दूसरों से व्यवहार करने का, सौम्यता से चीज़ों पर प्रतिक्रिया करने का, मूल्यों के प्रति हमारी समझ का तथा न्याय, सिद्धांत और मान्यताओं को मानने का एक तरीका है। भारत की संस्कृति में सब कुछ है, जैसे विरासत के विचार, लोगों की जीवन-शैली, मान्यताएँ, रीति-रिवाज़, मूल्य, आदतें, परवरिश, विनम्रता, ज्ञान आदि। पुरानी पीढ़ी के लोग अपनी संस्कृति और मान्यताओं को आगे नई पीढ़ी को सौंपते हैं।

हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति का संबंध

संस्कृति भाषा के विकास का मूलाधार होती है। फिर यही भाषा संस्कृति का संरक्षण एवं संवर्धन करती है। इसलिए भाषा और संस्कृति का परस्पर गहरा सम्बन्ध माना जाता है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति बहुत प्राचीन एवं सनातन है और संस्कृत भाषा इसकी मूलभाषा है। देवनागरी लिपि में रचित इस भाषा का विधान वैज्ञानिक पद्धति युक्त व्यवस्था पर आधारित है। भाषा का भौतिक आधार ध्वनि होता है। हिंदी भाषा की ध्वनियों का प्राचीनतम रूप वैदिक ध्वनि समूह है, जिन्हें वर्ण या अक्षर कहते हैं। हिंदी भाषा की लिपि देवनागरी है, जो ध्वनि-प्रधान है। इसे विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक, सरल एवं सुबोध भाषा माना गया है, क्योंकि इसमें सूक्ष्म-सी ध्वनि भेद होने पर नए ध्वनि-चिह्न का प्रावधान किया जाता है।

निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि हिंदी हमारी सांस्कृतिक अस्मिता का व्यक्त अभिधान है और अर्थ व मर्म में अभिव्यंजन भी है। भारत माता के भव्य भाल की शोभित बिन्दी हिंदी राष्ट्रीय अस्मिता का प्रतीक है। हिंदी भाषा का योगदान भारतीय संस्कृति में हमेशा से रहा है। बहुत सरल, सहज और सुगम भाषा होने के साथ हिंदी विश्व की संभवतः सबसे वैज्ञानिक भाषा है, जिसे दुनिया-भर में समझने, बोलने और चाहने वाले लोग बहुत बड़ी संख्या में मौजूद हैं। यह विश्व में तीसरी सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली भाषा है, जो हमारे पारम्परिक ज्ञान, प्राचीन सभ्यता और आधुनिक प्रगति के बीच एक सेतु भी है। हिंदी की सांस्कृतिक महत्ता को विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने रेखांकित करते हुए कहा था -"आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल के समान है, जिसका एक-एक दल, एक-एक प्रान्तीय भाषा और उसका साहित्य संस्कृति है। किसी एक को मिटा देने से उस कमल की शोभा नष्ट हो जाएगी। हम चाहते हैं कि भारत की सब प्रान्तीय बोलियाँ, जिसमें सुन्दर साहित्य की सृष्टि हुई है, अपने-अपने घर में रानी बन कर रहे। आधुनिक भाषाओं के हार के मध्य मणि हिंदी

भारत भारती होकर विराजती रहे।" हिंदी भाषा भारत की समस्त प्रादेशिक ही नहीं, बल्कि अनेक यूरोपीय एवं अरबी, तुर्की-पश्तो शब्दावली को सुपाच्य करने वाली 'महोदर' भी है। हिंदी की मूल प्रकृति अंग्रेज़ी की भाँति उपनिवेशवादी, साम्राज्यवादी तथा शोषक प्रवृत्ति न होकर औदार्य पूर्व विस्तृत 'चौड़े ललाट' से शोभित है। कबीर, तुलसी, जायसी, रैदास, प्रेमचन्द, टैगोर, निराला सरीखे लोग भारत की संस्कृति-साहित्य और समाज की धरोहर हैं। हिंदी भाषा को समृद्ध करने में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। हिंदी की पूरे देश में व्यापक स्वीकार्यता के कारण इसके स्वरूप में काफ़ी भाषागत बदलाव आए हैं। स्वाधीनता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली यह भाषा आज देश की सांस्कृतिक व राजनैतिक एकता को भी मज़बूत कर रही है। विविधता भरे इस देश में सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय एकता लाने में हिंदी की भूमिका जगज़ाहिर है।

विश्व में हिंदी और भारतीय संस्कृति के प्रति बढ़ती रुचि

वैश्विक धरातल पर होने वाले बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद तथा भूमण्डलीकरण जन्य अपसंस्कृति के संदर्भ में 'खुले विशाल कर्ण पटल' से युक्त हिंदी तद्विषयक समस्त चुनौतियों का समाधान भी देती है। हिंदी उत्तर, पश्चिम, पूर्व, दक्षिण चारों दिशाओं में अपने सुदृढ़ लोक आस्था की भूमि पर सशक्त चरण स्थापित कर चुकी है। हिंदी का जनाधार सनातन श्रद्धा से जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि विगत एक सहस्त्राब्दि में न जाने कितनी राजनैतिक, सांप्रदायिक, साम्राज्यवादी चुनौतियों के प्रचार झंझावात भी हिंदी की गरिमा को धूमिल नहीं कर सके। आज हिंदी का क्षेत्रफल कश्मीर से कन्याकुमारी या राजस्थान से त्रिपुरा, मेघालय और अरुणाचल प्रदेश तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसका प्रभाव क्षेत्र वैश्विक शिखर को स्पर्श कर रहा है। यह हिंदी की सामर्थ्य और शक्ति का प्रभाव है। अनेक विदेशी विद्वान वारान्निकोव, चैली शैव, जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, डॉ. कामिल बुल्के, डॉ. वूलर, कीथ, गार्सा द तासी प्रभृति न जाने कितने ख्याति प्राप्त विदेशी विद्वानजन हैं, जो हिंदीसेवी के रूप में अपनी अक्षुण्ण छवि निर्मित किए हुए हैं। आज बाज़ार की सर्वाधिक लोकगृहीत भाषा के रूप में हिंदी अपना मौलिक स्थान बना चुकी है। इसलिए आज हम हिंदी को मात्र राष्ट्रीय भाषा ही नहीं, बल्कि उसे वैश्विक भाषा का भी सम्मान प्रदान करें, तो अनुचित नहीं होगा। यह कहने में कोई संशय नहीं कि अब यूरोपीय महाद्वीप से लेकर अमेरिका तक एवं सम्पूर्ण दक्षिण पूर्व एशिया के सभी देशों में हिंदी की प्रायोगिक लोकप्रियता निरन्तर विस्तारित होती जा रही है।

वर्तमान में भारत के प्रति रुचि बढ़ी है। विश्व के अधिकांश विकसित देशों में ज्ञान-विज्ञान की एक नई शाखा 'भारतविद्या' प्रचलन में आई है। विश्व के बहुत-से गैर हिंदी-भाषी लोग भारतीय संस्कृति और भारतीय भाषाओं के अध्ययन की ओर आकर्षित हो रहे हैं। इस क्रम में हिंदी पठन-पाठन का अन्य देशों में तेज़ी से विस्तार हो रहा है। ताज़ा सर्वेक्षण के अनुसार हिंदी विश्व की पहली भाषा है। वैश्वीकरण के दौर की हिंदी जानने वाले 982 मिलियन लोग हैं, जबकि चीनी जानने वाले 874 मिलियन हैं। यही हाल बाज़ारीकरण का है। रूपर्ट मरडोक ने 'सोनी' जैसे चैनल की शुरुआत अंग्रेज़ी में की, परन्तु हिंदी की माँग और बाज़ार को देखते हुए, चैनल को हिंदी में परिवर्तित किया। हिंदी की शब्द संख्या 2.50 लाख है, जबकि अंग्रेज़ी के मूल शब्द 10, 000 हैं।

वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा के विस्तार के साथ भारतीय संस्कृति का विस्तार

आज सम्पूर्ण विश्व में दो सौ पचास करोड़ से अधिक भारतवंशी रहते हैं, उन सबकी संपर्क भाषा हिंदी ही है और वे वहाँ एक भारतीय के रूप में जाने जाते हैं और हिंदी भाषा के साथ ही भारतीय संस्कृति के संवाहक बनते हैं। वे भारत के किसी भी कोने या क्षेत्र से आए हों, उनकी संपर्क भाषा हिंदी है। इंटरनेट, मोबाइल, सेटेलाईट फ़ोन आदि में हिंदी के प्रयोग में बढ़ोतरी हुई है। इंटरनेट पर हिंदी के अनेक पोर्टल हैं। फ़ेसबुक, वाट्सएप, ट्विटर, ब्लॉग आदि पर सभी लोग बखूबी हिंदी का प्रयोग कर रहे हैं।

चीनी भाषाओं एवं अंग्रेजी की विश्व स्तरीय अवस्था से तुलना करते हुए यदि हिंदी भाषा की स्थिति पर विचार किया जाए, तो उसे मज़बूती देने वाले अनेक कारक दृष्टिगत होते हैं। मॉरीशस, टोबैगो, त्रिनिदाद, सूरीनाम, फ़िजी, ब्रिटिश गयाना, ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका आदि देशों में भारतीय मूल के 5 करोड़ से अधिक लोग रहते हैं। 1834 ई0 में पहली बार यहाँ पदार्पण करने वाले भारतीय मूल के लोग आज भी वहाँ अपनी भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा को जीवंत बनाए हुए हैं। इनकी प्रेरणा से उनके संपर्क में रहने वाले अन्य भाषा-भाषी लोग भी भारतीय संस्कृति व हिंदी भाषा की तरफ़ आकर्षित हो रहे हैं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है - भारत के बाहर 200 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी की उच्च शिक्षा की व्यवस्था तथा विश्व के अनेक देशों में हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं का नियमित प्रकाशन, साथ ही, विभिन्न साहित्यिक हिंदी गोष्ठियों का आयोजन।

आज 77 से भी अधिक राष्ट्रों के लगभग 200 विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन व अनुसंधान की सुविधा उपलब्ध है। हिंदी विश्व के प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण देशों के विश्वविद्यालयों में

अध्ययन-अध्यापन में भागीदार है। अकेले अमेरिका में ही लगभग 150 से ज़्यादा शैक्षणिक संस्थानों में हिंदी का पठन-पाठन हो रहा है। इसके अलावा रूस के 07, जर्मनी के 17, जापान के 02, श्रीलंका के 03 विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन हो रहा है। चीन के बीजिंग विश्वविद्यालय तथा आकाशवाणी में हिंदी का बोलबाला है। पाकिस्तान के पंजाब व कराची विश्वविद्यालय में हिंदी पठन की व्यवस्था है। जापान के क्योतो और ओसाका विश्वविद्यालय में हिंदी अध्ययन की सुविधा उपलब्ध है। वहाँ से 'ज्वालामुखी', सर्वोदय तथा 'जापान भारती' पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। यूरोप और अमेरिका में भी हिंदी कार्य प्रशंसनीय स्तर पर है। लंदन, केम्ब्रिज व यॉर्क विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग इसके प्रमाण हैं। बी.बी.सी. द्वारा निरंतर हिंदी का प्रसारण हो रहा है। फ़्रांस, इटली, स्वीडन, ऑस्ट्रिया, नॉर्वे, डेनमार्क, स्विट्ज़रलैंड, हॉलैंड, पोलैंड, चेक गणराज्य, जर्मन, रोमानिया, बुल्गारिया, हंगरी आदि राष्ट्र भी हिंदी के संदर्भ में कदापि पीछे नहीं हैं।

तुर्की, इराक, मिस्र, लीबिया, संयुक्त अरब अमीरात, दुबई, अफ़गानिस्तान, उज़्बेकिस्तान तथा मध्य एशिया के राष्ट्रों में भी हिंदी का प्रचार-प्रसार है। इस प्रकार हिंदी आज विश्व के कोने-कोने तक पहुँच चुकी है। अंग्रेज़ी, रूसी, स्पेनिश, फ़्रेंच, अरबी एवं चीनी को संयुक्त राष्ट्र संघ में आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है। हिंदी भाषा अब भी वह स्थान पाने में संघर्षरत है। लेकिन आज हिंदी ने अपनी क्षमता के बल पर वैश्विक स्तर पर विश्वभाषा बनने का सम्मान पाया है, इसमें कदापि संदेह नहीं है। हिंदी को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाने में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा विदेशों में स्थापित भारतीय विद्यापीठों की केन्द्रीय भूमिका रही है, जो विश्व के अनेक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों में फैली हुई हैं।

अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में हिंदी संवर्धन में यदि कोई ऐतिहासिक कदम हो सकता है, तो वह है- संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा हिंदी को एक औपचारिक दर्जा दिया जाना। शुरुआत में संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषाओं में चीनी, फ़्रेंच, अंग्रेज़ी, रूसी और स्पेनिश ही शामिल थी, लेकिन बाद के कुछ वर्षों में ही संयुक्त राष्ट्र के दो-तिहाई प्रस्ताव से वर्ष 1973 में अरबी को भी एक औपचारिक भाषा का स्थान मिल गया। ठीक इसी तरह संयुक्त राष्ट्र में हिंदी के आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त करने हेतु दो-तिहाई सदस्यों के वोटों को सुरक्षित करने का तीव्रता से प्रयास भारत द्वारा किया जा रहा है।

विश्व की तमाम भाषाओं के बीच में सेतु के रूप में हिंदी

आज जब 21 वीं सदी में वैश्वीकरण के दबावों के चलते विश्व की तमाम संस्कृतियाँ एवं भाषाएँ आदान-प्रदान व संवाद की प्रक्रिया से गुज़र रही हैं, ऐसे में हिंदी इस दिशा में विश्व मनुष्यता को निकट लाने के लिए सेतु का कार्य कर रही है। उसके पास पहले से ही बहुसांस्कृतिक परिवेश में सक्रिय रहने का अनुभव है, जिससे वह अपेक्षाकृत ज्यादा रचनात्मक भूमिका निभाने की स्थिति में है। हिंदी सिनेमा अपने संवादों एवं गीतों के कारण विश्व स्तर पर लोकप्रिय है। उसने सदा सर्वदा से विश्वमन को जोड़ा है। हिंदी की मूल प्रकृति लोकतांत्रिक तथा रागात्मक संबंध निर्मित करने की रही है। यह विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की ही राष्ट्रभाषा नहीं है, बल्कि पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, फ़िजी, मॉरीशस, गयाना, त्रिनिदाद तथा सूरीनाम जैसे देशों की संपर्क भाषा भी है। यह भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों के बीच खाड़ी देशों, मध्य एशियाई देश, रूस, समूचे यूरोप, कनाडा, अमेरिका तथा मैक्सिको जैसे प्रभावशाली देशों में रागात्मक जुड़ाव तथा विचार-विनिमय का सबल माध्यम है। हिंदी विश्वव्यापी भाषा होने के साथ-साथ भारतीय संस्कृति की संवाहिका भी है। हम अपनी संस्कृति की व्याख्या अपनी भाषा में जितनी सरलता से कर सकते हैं, उतनी सरलता से दूसरी भाषा में नहीं कर सकते। भाषा हृदय की अभिव्यक्ति के साथ ही संस्कृति और सभ्यता की वाहक भी है। हिंदी अपनी आंतरिक चुनौतियों से जूझते हुए आज राजभाषा ही नहीं, बल्कि विश्वभाषा बनने के निकट है। इसमें अन्य भाषाओं को आत्मसात करने की क्षमता है, जो कि हिंदी की सबसे बड़ी पहचान है। वैश्विक स्तर पर भारतीय संस्कृति की संवाहिका के रूप में हिंदी बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती आ रही है। यहाँ की संस्कृति आज भी अपने मूल अस्तित्व में हिंदी के द्वारा विश्व भर में लोकप्रिय है।

अंतरराष्ट्रीय साहित्य में हिंदी की भूमिका

विदेशों से निकलने वाली हिंदी पत्रिकाओं ने भी हिंदी को वैश्विक फलक पर ले जाने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को बढ़ावा देने वाली संस्थाओं में अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति (संयुक्त राज्य अमेरिका), विश्व हिंदी सचिवालय (मॉरीशस), हिंदी संगठन (मॉरीशस), हिंदी सोसाइटी (सिंगापुर), हिंदी परिषद् (नीदरलैंड) आदि ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। आज हिंदी जो वैश्विक आकार ग्रहण कर रही है, उसमें रोज़ी-रोटी की तलाश में अपना वतन छोड़कर गए गिरमिटिया मज़दूरों के योगदान को कभी नहीं भुलाया जा सकता। गिरमिटिया मज़दूर अपने साथ अपनी भाषा

और संस्कृति भी लेकर गए, जिसके कारण आज हिंदी वैश्विक स्तर पर फैल रही है। मसलन, एशिया के अधिकतर देशों चीन, श्रीलंका, कंबोडिया, लाओस, थाइलैंड, मलेशिया, जावा आदि में रामलीला के माध्यम से राम के चरित्र पर आधारित कथाओं का मंचन किया जाता है। वहाँ के स्कूली पाठ्यक्रम में रामलीला को शामिल किया गया है। हिंदी की रामकथाएँ भारतीय सभ्यता और संस्कृति का संवाहक बन चुकी हैं। रेडियो सीलोन और श्रीलंकाई सिनेमाघरों में चल रही हिंदी फ़िल्मों के माध्यम से हिंदी की उपस्थिति समझी जा सकती है। आज हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में जितने रचनाकार सृजन कर रहे हैं, उतने बहुत सारी भाषाओं के बोलने वाले भी नहीं हैं। केवल संयुक्त राज्य अमेरिका में ही दो सौ से अधिक हिंदी साहित्यकार सक्रिय हैं, जिनकी पुस्तकें छप चुकी हैं। यदि अमेरिका से 'विश्वा', हिंदी जगत तथा श्रेष्ठतम वैज्ञानिक पत्रिका 'विज्ञान प्रकाश' आदि पत्रिकाएँ हिंदी की दीपशिखा जला रही हैं, तो मॉरीशस से 'विश्व हिंदी समाचार', 'सौरभ', 'वसंत' जैसी पत्रिकाएँ हिंदी के सार्वभौम विस्तार को प्रामाणिकता प्रदान कर रही हैं। संयुक्त अरब अमीरात से वेब पर प्रकाशित होने वाले हिंदी पत्रिकाएँ 'अभिव्यक्ति' और 'अनुभूति' पिछले ग्यारह से भी अधिक वर्षों से लोकमानस को तृप्त कर रही हैं और दिन-पर-दिन इनके पाठकों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। आज हिंदी ई-सहचर, जनकृति, हस्ताक्षर जैसी सैकड़ों ई-पत्रिकाएँ अपनी वैश्विक उपलब्धता का उद्घोष कर रही है। अब हिंदी के अधिकांश समाचार-पत्र भी गूगल पर ई-पेपर के रूप में उपस्थित हैं। आज के वैश्विक फलक पर हिंदी एक संपर्क भाषा, प्रचार भाषा और राजभाषा के साथ-साथ वैश्विक भाषा के रूप में स्वयं को स्थापित करती जा रही है। हिंदी अपनी सरलता और सुगमता के कारण हमेशा से लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती रही है और इसलिए आज पूरे विश्व में भारत की संस्कृति को जानने की इच्छा लोगों में है। अत: भारतीय संस्कृति की वैश्विक स्तर पर जोत जगाए रखने वाली हिंदी सम्वाहिका के रूप में अपना योगदान देते आ रही है।

हिंदी भाषा के साहित्य में भी विश्व स्तर पर बड़ी तेज़ी से विकास हो रहा है, उसमें हिंदी कविताओं, लघु कहानियों, आधुनिक उपन्यासों तथा लेखों की संख्या विश्व स्तर पर बहुत बढ़ी है। हिंदी में विश्व का महत्त्वपूर्ण साहित्य अनुसृजनात्मक लेखन के रूप में उपलब्ध है और उसके साहित्य का उत्तमांश भी विश्व की दूसरी भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से जा रहा है। आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक ओर जहाँ हिंदी विदेशों में उनके विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों और साहित्यिक परिवेश में वर्चस्व स्थापित कर चुकी है, तो दूसरी ओर अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में अपनी साख बनाए रखने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हिंदी अपनाने के प्रति प्रतिबद्ध हो गई हैं। वर्ष 1980 और 1990 के दशक में भारत में उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा औद्योगीकरण की प्रक्रिया काफ़ी बढ़ी, जिसके परिणामस्वरूप अनेक विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारत में आई थीं। इसी दौरान यहाँ विविध टीवी चैनलों का भी चलन बढ़ा था, जिनके माध्यम से इन कम्पनियों ने अपने उत्पादों के विज्ञापन हिंदी में देने के लिए इन चैनलों का प्रयोग शुरू किया। देखा जाए तो तब से लगातार विज्ञापन की दुनिया में अंतरराष्ट्रीय व्यापार जगत् में उसके बढ़ते प्रयोग के आधार पर हिंदी सबसे अधिक लाभ की भाषा साबित हुई है। कुल विज्ञापनों का लगभग 75 प्रतिशत हिंदी माध्यम से होता है। विश्वभाषा के इन मानदण्डों पर वर्तमान में हिंदी की अंतरराष्ट्रीय भूमिका का संबंध उसके बढ़ते अंतरराष्ट्रीय शैक्षणिक, साहित्यिक व व्यावसायिक संपर्कों व स्वरूपों से ही है।

सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में हिंदी भी अब कम्प्यूटर जैसे यांत्रिक और इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों पर अपनी पहचान बना चुकी है। कम्प्यूटर पर देवनागरी लिपि से लेकर हिंदी शब्द संसाधनों के संबंध में द्रुत गति से कार्य हुए हैं। हिंदी भाषा के लिए विकसित किए गए सफल सार्थक विविध सॉफ़्टवेयरों ने हिंदी को एक अलग ही वैज्ञानिक आधुनिक स्वरूप प्रदान किया है। हिंदी के इसी स्वरूप के बल पर वह आज इंटरनेट और सोशल मीडिया पर विश्व में सरल रूप में उपलब्ध हो गई है। जैसे-जैसे इंटरनेट पर हिंदी की वेबसाइटें बढ़ती जा रही हैं, उसी के अनुपात में हिंदी पाठकों की संख्या में भी तीव्रता से वृद्धि दिखने लगी है। इलेक्ट्रॉनिक संचार-माध्यम और कम्प्यूटर आदि के उपयोग में हिंदी ने अपना स्थान बना लिया है। हिंदी आज कागजों से निकलकर इंटरनेट की दुनिया में अपना सशक्त स्थान बना चुकी है। अब हिंदी में भी ई-रचनाएँ, ई-साहित्य, ई-पत्रिकाएँ, ई-कवि सम्मेलन होने लगे हैं।

पूरा विश्व जब 'वैश्विक-ग्राम' बनकर 'साइबर-कैफ़े', 'आई-पैड' या 'कम्प्यूटर स्क्रीन' पर चौपाल की पहचान बनता जा रहा है और हिंदी भाषा मात्र भारत की भाषा न रहकर अपनी विश्व स्तरीय पहचान अंकित करने में तत्पर होती दिखाई पड़ रही है, तब हिंदी की मानकता का प्रश्न और भी समसामयिक हो जाता है। हिंदी अब अपनी सार्वभौमिक सत्ता को अर्जित करने के लिए निरंतर अग्रसर हो रही है। यह हमारी राष्ट्रभाषा है और किसी भी देश की राष्ट्रभाषा को उस देश का गौरव माना जाता है, साथ ही यह राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यवहार करने और सामाजिक व मानवीय संबंधों को सुदृढ़ करने का प्रमुख साधन है।

भारतीय संस्कृति में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उक्ति को चरितार्थ करने के लिए हिंदी जहाँ विभिन्न संस्कृतियों के उच्च संस्कारों तथा व्यावहारिक शब्दों को सहजता से अपनाती जा रही है वहीं यह अपने भाषायी स्वरूप को भी परिष्कृत करने में संलग्न है। हिंदी अपने बलबूते पर गतिमान रही है और विभिन्न स्तरों पर पहली आवश्यकता बनी है। यही कारण है कि आज हिंदी विश्व क्षितिज पर अपना परचम लहराने में सफल हो सकी है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिंदी समकालीन चुनौतियों का सामना करते हुए विश्व स्तर पर भारतीय संस्कृति की पताका निरंतर फहरा रही है। हिंदी भाषा के माध्यम से ही भारतीय संस्कृति, भारतीय रीति-रिवाज़, विविध क्षेत्रीय तथा लोक भाषाएँ, खान-पान और गीत-संगीत विदेशों में पहुँचा है। हमारी राजभाषा, मातृभाषा, देवनागरी लिपि, संविधान, राष्ट्रध्वज हमारे स्वाभिमान के प्रतीक हैं। इन कंठहारों से ही गीता की वाणी, वेदों की ऋचाएँ, रामायण की चौपाइयाँ प्रतिध्वनित होती है, इसी में मीरा, सूर, कबीर और तुलसी के पद गूँजते हैं, इसी में शहीदों का त्याग बलिदान, स्वतन्त्रता की हुंकार, विश्व-कल्याण और राष्ट्रीय एकता का गान उद्घोषित हुआ है। कला, संस्कृति, राजनीति, शिक्षा, आन्तरिक चिन्तन, आध्यात्म और योग का सशक्त माध्यम भाषायी सम्प्रेषण ही है। विगत दशकों में हिंदी का अंतरराष्ट्रीय विकास बहुत तेज़ी से हुआ है। आज के वैश्वीकरण के युग में माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने सभी अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हिंदी का प्रयोग कर प्रत्येक देशवासी का, विशेषकर हिंदी भाषी का सिर गौरव से ऊँचा किया है। हिंदी की लोकप्रियता इस बात से देखी जा सकती है कि बॉलीवुड की फ़िल्में सारे विश्व में चाव से देखी जा रही हैं। विश्व के सभी देशों में भारतीय फ़िल्मों का गीत-संगीत अत्यंत लोकप्रिय है। 'मेरा जूता है जापानी, ये पतलून इंग्लिस्तानी, सर पे लाल टोपी रूसी, फिर भी दिल है हिंदुस्तानी', 'बोल राधा बोल', 'मुझे बुड्ढा मिल गया', 'नीले गगन के तले' जैसे गीतों के बोल लगभग 50 वर्ष पूर्व से विश्व के कई देशों में सुनाई दे रहे हैं। इसके साथ न जाने कितने ही हिंदी गीत भारत ही नहीं विश्व के अनेक देशों में गाए व समझे जाते हैं। यह भारतीय संस्कृति का ही कमाल था कि भारतीय गाने विदेशी लोगों की भी ज़ुबाँ पर गाए जाते हैं।

भारतीय संस्कृति का एक सिद्धान्त 'तत्वमसि' का है। अमृत हमारी आत्मा में ही मौजूद है, जो सभी बाह्य वस्तुओं का आन्तरिक तत्व है, वह हमारी आत्मा का भी तत्व है। भारतीय संस्कृति कहती है कि मनुष्य ईश्वर का प्रतिबिम्ब है, इसलिए मनुष्य पवित्र है। वह तत्वतः एक द्रष्टा है, दृश्य नहीं। यह भारतीय संस्कृति का एक अद्वितीय रूप है कि मनुष्य के अंदर के मनुष्यत्व का परिचय आत्ममंथन द्वारा किया जाता है। कुल मिलाकर भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों में आत्मा में छिपी हुई ईश्वरीयता, लोकतंत्र में आस्था, अनेकता में एकता तथा सबसे महत्त्वपूर्ण मानव-जाति की एकता की वृद्धि के लिए विभिन्न विश्वासों और संस्कृतियों के समन्वय पर ज़ोर शामिल है। भारतीय संस्कृति का प्रभाव एशियाई देशों पर तो है ही, विश्व के बाकी हिस्से पर भी यह प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वैश्विक स्तर पर भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में हिंदी भाषा की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रही है। एक सच्चे भारतीय होने के नाते यदि हमें हिंदी का विस्तार विश्वपटल पर और भी महत्त्वपूर्ण रूप से रेखांकित करना है, तो इसकी भाषाई व सांस्कृतिक उत्कृष्टता को आत्मसात् करने की प्रवृत्ति को भी विश्व पटल तक विस्तृत करने के प्रयास इसकी मानकता को सुनिश्चित करते हुए करने होंगे।

संदर्भ-सूची :

1. डॉ. सुरेश माहेश्वरी (सम्पा.), हिंदी राष्ट्रभाषा से विश्व भाषा की ओर (भूमिका)
2. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, विश्व भाषा हिंदी संस्कृति और समाज
3. डॉ. सुरेश माहेश्वरी (सम्पा.), हिंदी राष्ट्रभाषा से विश्व भाषा की ओर
4. राजभाषा भारती, अप्रैल-जून, 2018
5. राजभाषा भारती, अक्तूबर-दिसम्बर, 2017
6. मधुमति मासिक पत्रिका, दिसंबर 98, राजस्थान साहित्य अकादमी
7. यूनियन सृजन पत्रिका, भारतीय संस्कृति एवं परंपरा विशेषांक, अप्रैल-जून, 2019
8. महिपाल सिंह, विश्व बाज़ार में हिंदी

s.chadha@ncl.res.in

संस्कृति, साहित्य और लिपि - भाषाई अंत:संबंध के आधार

- डॉ. मनोज पाण्डेय
नागपुर, भारत

"भारतीय सभ्यता की तरह, भारतीय साहित्य का विकास, जो एक प्रकार से उसकी सटीक अभिव्यक्ति है, सामासिक रूप में हुआ है। इसमें अनेक युगों, प्रजातियों तथा धर्मों का प्रभाव परिलक्षित होता है और सांस्कृतिक चेतना तथा बौद्धिक विकास के विभिन्न स्तर मिलते हैं।" आचार्य कृष्ण कृपलानी के इस कथन में भारतीय भाषाओं की आपसी संबद्धता की अनिवार्यता स्पष्ट झलक रही है। संस्कृति, साहित्य और लिपि, वे बुनियादी आधार हैं, जिन पर न सिर्फ़ भारतीय भाषाओं की अंत:संबद्धता को आँका जा सकता है, बल्कि उन संदर्भों और साक्ष्यों को पुनर्विचार के दायरे में लाया जा सकता है, जो भाषाई चौहद्दियों के परे जाकर राष्ट्रीय एकात्मता का सुदृढ़ आधार उपलब्ध कराते हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं, भाषा मनुष्य के जातीय संस्कारों से जुड़ी हुई है, इसलिए भाषा का प्रश्न मानवीय अस्मिता का प्रश्न होता है। इतिहास प्रमाण है जब भी मानवीय अस्मिता पर आँच आई है, भाषाई दूरियाँ मिट गई हैं और भारत राष्ट्र ने हमेशा उनका मुकाबला एकजुट होकर किया है। भाषाई धरातल पर निर्मित उत्तर और दक्षिण, पूर्व और पश्चिम, आर्य और अनार्य, हिंदी और हिंदीतर जैसी चौहद्दियाँ अपने आप मिट गई हैं। कहना यह भी है कि जब-जब इस राष्ट्र की संस्कृति और सभ्यता को बर्बाद करने की कोशिश हुई है, तब-तब इस राष्ट्र ने अपनी सांस्कृतिक अखंडता का परिचय दिया है। डॉ. महावीर सिंह चौहान ठीक कहते हैं - "हमारी भाषाओं का साहित्य हमारी सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। जब तक हमारे जीवन का सांस्कृतिक आधार क्षीण नहीं होगा, हम अपनी विविधताओं में भी एक बने रहेंगे।" ध्यातव्य है कि सांस्कृतिक अस्मिता कोई एक दिन की निर्मिति नहीं है और सांस्कृतिक एकता का मतलब रूढ़ियों का परिपालन भी नहीं है। सांस्कृतिक एकता हमारी आत्मा में अंतर्भूत संस्कारों से जुड़ी हुई है। इसका सबसे ठोस प्रमाण है, हमारे रीति-रिवाज़, पर्व-त्यौहार। दिवाली, दशहरा, दुर्गोत्सव, ओणम, ईद आदि की शुरुआत इस देश के सभी कोनों में एक साथ नहीं हुई थी, परंतु यह सच्चाई है कि इन उत्सवों को पूरे देश में एक साथ और एक ही भावना के साथ मनाया जाता है। यह हमारी सांस्कृतिक एकात्मता के ठोस साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं।

जातीय और सांस्कृतिक चेतना प्रत्येक राष्ट्र की अपनी विरासत होती है, जो वसीयत के रूप में भाषा, साहित्य, पर्व, त्यौहार, व्यवहार आदि माध्यमों से अनवरत गतिशील बनी रहती है, उसमें कुछ नया जुड़ता रहता है, कुछ पुराना खारिज़ होता रहता है। यह भी उल्लेख है कि भारतवर्ष की जातीय व सांस्कृतिक चेतना की अपनी एक पहचान है, उसका अपना मुकम्मल इतिहास और वर्तमान है। इतिहास के किसी भी अध्याय को देखें; चाहे वह धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक हो या साहित्यिक, सर्वत्र एक संगठनात्मक एकता दिखाई देती है। साहित्येतिहास का कोई भी कालखंड ऐसा नहीं है, जिसमें समूचे भारतीय मानस का स्वर एक-सा न सुनाई देता हो, टोन में कमी-वेशी हो सकती है, अभिव्यक्ति के माध्यम भिन्न हो सकते हैं, अभिव्यंजना के धरातल भिन्न हो सकते हैं, परंतु अभिव्यंजित वस्तु अभिन्न है, उसमें एक सावयविक एकता है।

सांस्कृतिक एकता का एक महत्वपूर्ण पक्ष हमारी भाषाई विविधता में अंतर्निहित एकता भी है। भाषा-सर्वेक्षणों से यह तथ्य साबित हो चुका है कि इस राष्ट्र की समस्त भाषाओं की शब्द-संपदा में कहीं साठ तो कहीं सत्तर प्रतिशत तक शब्द संस्कृत के हैं। इसकी एक वजह यह भी है कि भारतीय भाषा परिवार संसार के किसी भी देश, राज्य अथवा राष्ट्र की भाषाओं की अपेक्षा, सबसे लंबे समय से साथ-साथ रहते आए हैं। अनेक भाषाविद् भारत को इसीलिए भाषागत इकाई (लिंग्विस्टिक एरिया) के रूप में देखते हैं। कारण यह है कि एक ही भूखंड में बहुत दिनों तक साथ रहने के कारण भिन्न भाषा-परिवारों ने ऐसी सामान्य विशेषताएँ विकसित कर ली हैं, जो भारत के बाहर के इन परिवारों से संबद्ध अन्य भाषाओं में नहीं मिलती। उदाहरण के लिए, भारत का आर्य भाषा परिवार, इंडो - यूरोपियन परिवार की शाखा माना जाता है। साथ रहने के कारण उसमें और द्रविड़ भाषा परिवार में ऐसी अनेक सामान्य विशेषताएँ उत्पन्न हुई हैं, जो यूरोप की आर्य भाषाओं में नहीं मिलती। इससे यह पता चलता है कि भारतीय भाषा परिवारों में परस्पर आदान-प्रदान होता रहा है। विद्वानों ने इसके कई साक्ष्य भी प्रस्तुत किए हैं। श्री भगवान सिंह ने अपने ग्रंथ 'आर्य - द्रविड़ भाषाओं की मूलभूत एकता में बताया है कि "बहुत अधिक शब्द एक ही बुनियादी संकल्पना से, समानांतर, पर सर्वथा सामान नहीं,

विकसित होते हुए देखने में आते हैं, तो यह मानने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रह जाता कि दोनों भाषाओं का उत्स कभी एक रहा हो सकता है और इस प्रकार के बुनियादी शब्दों की ओर उनसे भी व्युत्पन्न शब्द-भंडार की संख्या वृद्धि के साथ यह संभावना एक निश्चय में बदलने लगती है।" आज द्रविड़ भाषा परिवार के भाषाई अभिलक्षणों को आर्य भाषाओं में और आर्य भाषा कुल के अभिलक्षणों को द्रविड़ कुल की भाषाओं में स्पष्ट अंतरित होते हुए पाया जाता है। यही नहीं, द्रविड़ और मुंडा भाषा परिवार के बीच भी भाषिक अभिलक्षणों का अंतरण पाया जाता है। इससे स्पष्ट है कि जो संभावना श्री भगवान सिंह ने व्यक्त की है कि भारतीय भाषाओं के बीच एक पारस्परिकता, लंबे समय तक एक साथ रहने के कारण निर्मित होती गई है, वह अकारण नहीं है। डॉ. रामविलास शर्मा ने भी कहा है कि 'भारत में आर्य द्रविड़ भाषा परिवारों का विकास परस्पर एक-दूसरे के संपर्क से ही हुआ है। इस बात के भी दृष्टांत मिलते हैं कि इसका मूल कारण प्राचीनकाल से ही संस्कृत का भारतीय भाषाओं पर प्रभाव है। आर्यभाषाएँ तो संस्कृत के विभिन्न रूपों से विकसित हुई ही हैं, द्रविड़ भाषा भी संस्कृत से कम प्रभावित नहीं रही है। एक तरह से संस्कृत की अंतर्धारा ही समस्त भारतीय भाषाओं में व्याप्त होने के कारण बाह्य रूप से भिन्न भारतीय भाषाओं में पारस्परिकता के तत्व समाहित हैं। हाँ, इनके उच्चारण में अंतर हो सकता है, क्योंकि भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उच्चारणावयवों पर भौगोलिक प्रभाव किन्हीं अन्य प्रभावों से अधिक होता है। किंतु इनकी संजीवनी शक्ति एक ही मूल चेतना से अनुप्राणित है। इसे हम अपनी संस्कृति और सभ्यता की विरासत के संवाहक साहित्य और कलाओं में देख सकते हैं। समूचा भारतीय साहित्य एक ही चेतना से अनुप्राणित है, यह कथन उत्तर का ही नहीं, दक्षिण का भी है। तमिल के राष्ट्रकवि सुब्रमण्यम भारती का कथन है - 'भारत माता भले ही अठारह भाषाओं में बोलती हो, तो भी उनकी चिंतन प्रक्रिया एक ही है।'

भारतवर्ष एक बहुभाषी राष्ट्र है। पर सभी भारतीय भाषाओं में विभिन्नता के बावजूद एक अंत:संबद्धता है। सभी भाषाएँ एक तरह से परस्परावलंबित हैं। इनमें पाई जाने वाली एकसूत्रता विविधताओं को एक सूत्र में पिरोने का काम करती है। इसके उत्तर भाग में पंजाबी, हिंदी, उर्दू है, पूर्व में उड़िया, बंगला, असमिया, पश्चिम में मराठी, गुजराती तथा दक्षिण में तमिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़। इसके अतिरिक्त कश्मीरी, डोगरी, सिंधी, कोंकणी, मणिपुरी आदि भाषाएँ हैं, जिनका व्यवहार देश के किसी-न-किसी क्षेत्र में होता है। इनका अपना साहित्यिक वैशिष्ट्य भी है। वर्ण्य विषय और वर्णन शैली के आधार पर इनमें अनेकशः समानताएँ-असमानताएँ हैं, जो इन्हें एक-दूसरे से अविच्छिन्न तो दर्शाती ही हैं, इनके अंत:संबंधों को भी रेखांकित करती हैं। डॉ. नगेंद्र ने इन विविध भाषाओं के साहित्य और इनके अंतर्संबंधों को रेखांकित करते हुए लिखा है - "प्रत्येक साहित्य का अपना स्वतंत्र एवं प्रखर वैशिष्ट्य है, जो अपने देश के व्यक्तित्व से मुद्रांकित है। पंजाबी और सिंधी, इधर हिंदी और उर्दू की प्रदेश सीमाएँ कितनी मिली हुई हैं, किंतु उनके अपने-अपने साहित्य का वैशिष्ट्य कितना प्रखर है। इसी प्रकार गुजराती और मराठी का जनजीवन परस्पर ओतप्रोत है, किंतु क्या उनके बीच में किसी प्रकार की भ्रांति संभव है। दक्षिण की भाषाओं का उद्गम एक है। सभी द्रविड़ परिवार की विभूतियाँ हैं, परंतु क्या कन्नड़ और मलयालम या तमिल और तेलुगु के स्वरूप के विषय में शंका हो सकती है।" कहने का आशय यह है कि सभी भारतीय भाषाएँ अपनी विशिष्ट पहचान रखती हैं, पर साथ ही उनमें एक अंत:सूत्रता भी विद्यमान है, जो राष्ट्र की एकात्मता को मज़बूत आधार प्रदान करती है। डॉ. इंद्रनाथ चौधुरी ने लिखा है - "सर्व भारतीय संवेदना भारतीय साहित्य की विशेषता है, जो कतिपय आद्य प्रारूपों, मूल्यों, संस्कृति, इतिहास और विचारधाराओं की विरासत है। आधुनिक भारतीय साहित्य भले ही विभिन्न भाषाओं में लिखा जाता हो, मगर उनमें एक सर्व भारतीय संवेदना दिखाई पड़ती है - ऐसी संवेदना जिसके मूल में संस्कृत के अपार समृद्ध साहित्य का प्रभाव है और विविधताओं के बीच इसकी एकता प्रकट करती है।"

तमिल का संगम साहित्य, तेलुगु के द्विअर्थी काव्य तथा अवधान साहित्य, मलयालम का संदेश काव्य एवं वीरगीत तथा मणिप्रवालम, मराठी के पावडे, गुजराती के आख्यान और फागु, बांग्ला के मंगल काव्य, असमिया के बड़गीत, पंजाबी के रम्याख्यान तथा वीर गीत, उर्दू की गज़ल और हिंदी का रीतिकाव्य तथा छायावाद आदि भारतीय भाषाओं के अपने वैशिष्ट्य हैं। इनमें वस्तु और शैली की भिन्नता के बावजूद एक अंत:सूत्रता विद्यमान है। इसे साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या भाषाई-विकास के इतिहास के किसी भी पृष्ठ को पलटकर देखा जा सकता है।

साहित्यिक दृष्टि से वैदिक काल से लेकर आज तक भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य में एकसूत्रता का आदर्श परिलक्षित होता है। भारतीय वाङ्मय के रूप में उपलब्ध वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि महाकाव्य सब एक हैं। वैदिक भाषा से लेकर संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में प्रणीत साहित्य समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं के लिए आधारभूत साबित हुआ है। यह भी द्रष्टव्य है कि जो प्रारंभिक साहित्य उपलब्ध

होता है, उस पर प्राचीन संस्कृत के महाकाव्यों का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। आदिकवि वाल्मीकि प्रणीत रामायण समस्त भारतीय भाषाओं में राम कथा का मुख्य प्रेरक ग्रंथ रहा है। यह ठीक है कि इसमें कुछ मौलिक उद्भावनाएँ भी यत्र-तत्र देखने में आती हैं, साथ ही प्रदेशों की परिवेशगत विशेषताएँ भी इसमें लक्षित हुई हैं, परंतु मूल कथानक अर्थात् वर्ण्य विषय एक ही रहा है। एक ही वर्ण्य विषय को लेकर लिखा गया साहित्य रामायण ही नहीं अन्य अनेक ग्रंथों के प्रसंगों में भी देखा जा सकता है। यह एकात्मता हमारी सांस्कृतिक अविच्छिन्नता का द्योतक है। यह साहित्य समस्त भारतीय भाषाओं का नियामक रहा है। इसी प्रकार भक्ति, रीति और लक्षण ग्रंथ समस्त भारतीय भाषाओं में समान रूप से देखे जा सकते हैं। रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, रामानंदाचार्य, संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, नानक देव, नरसी मेहता, चैतन्य महाप्रभु आदि ने जो कार्य किया, वह किसी एक भाषा की थाती नहीं है। उनके कार्यों से भाषाई अंत:संबंधों की दीवार सुदृढ़ हुई है।

द्रष्टव्य है कि समूचे भारतीय भाषाओं के साहित्य में संस्कृत काल से चली आ रही परंपरा मिलती है। प्रत्येक भारतीय भाषा में रामायण, भागवत की कथा पर आधारित महाकाव्यात्मक ग्रंथों का प्रणयन इस तथ्य का सबूत है कि समूचा भारतीय भाषा-साहित्य भाव संवेदन के धरातल पर समान है। यह भी लक्षित होता है कि देश की अनेक भाषाओं में सृजित रामायण या महाभारत केवल वाल्मीकि या व्यास के ग्रंथों के रूपांतरण नहीं हैं, बल्कि स्थानीय लोक कथाओं, परंपराओं और रंगों की छटाएँ भी इन पर पड़ी हैं। यह भी द्रष्टव्य है कि उत्तर भारत की जनता के गले का कंठहार बनी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' के पूर्व ही अन्य भारतीय भाषाओं में कई महाकाव्यात्मक ग्रंथों का प्रणयन राम कथा पर हो चुका था। कंब रामायण की रचना दसवीं शताब्दी तक हो चुकी थी। कन्नड़ में पम्पा, मलयालम में एडूउत्तचन, बांग्ला में कृतिवास, उड़िया में सरलादास, बलरामदास, असमिया में माधव कंदली, मराठी में एकनाथ, रामदास तथा हिंदी में तुलसीदास और विष्णु दास ने इसी परंपरा को आगे बढ़ाया। इस प्रकार 6ठी - 7वीं शताब्दी में भक्ति का जो सोता दक्षिण में फूटा, वह महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान होते हुए 13वीं -14वीं शताब्दी तक कश्मीर, तत्पश्चात् 15वीं - 16 वीं शती तक समूचे भारतवर्ष में फैल गया। इस आंदोलन ने भागवत पुराण आदि संस्कृत के अन्यान्य ग्रंथों से प्राप्त आदर्शों, मिथकों, विश्वासों को समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य का वर्ण्य विषय बना दिया और इस प्रकार भारतीय मनीषा द्वारा गढ़े गए सांस्कृतिक मूल्य भक्ति आंदोलन के माध्यम से समग्र भारतीय भाषाओं की अक्षय निधि बन गए। यह आश्चर्य का विषय नहीं है कि भक्ति आंदोलन जिसका प्रभाव समूचे भारतीय साहित्य में लक्षित होता है, उसके सिद्धांतकार और सूत्रकार दक्षिण के थे। अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद आदि दक्षिण से चलकर उत्तर आते हैं, रामानंद कांजी से काशी आते हैं, शैवमत कश्मीर से दक्षिण जाता है - यह विचारों और भावों की अंतर्यात्रा भारतीय भाषाओं की अंत:संबद्धता के प्राण है। यही नहीं, भक्ति आंदोलन की मूल वस्तु भक्ति, ईश्वर के प्रति आस्था आदि सभी भारतीय भाषाओं की वस्तु है। भक्त और भगवान के बीच प्रेम का माध्यम बनी भक्ति के भाव देशकालगत सीमाओं के बावजूद सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में समान रूप में विद्यमान हैं। लोकभाषाओं में व्यक्त भारतीय साहित्य के विविध रूपों में एक ही स्वर है। इसीलिए कबीर, सूर, तुलसी, नरसी मेहता, शंकरदेव, नामदेव, तुकाराम, चंडी दास को समझने के लिए दक्षिण के आलवार भक्तों के भावबोध से परिचित होना ज़रूरी है। यह भी उल्लेखनीय है कि संत परंपरा समूचे भारतीय साहित्य में लगभग एक जैसी है। अंडाल, कबीर, अखा, अक्क महादेवी, वसण्णा, लेमन, सर्वज्ञ, रैदास आदि के विचार और दर्शन को एक रखकर देखा जा सकता है और यह कहा जा सकता है कि भौगोलिक दूरियों और देशकालगत प्रभावों के बावजूद इनमें अद्‌भुत वैचारिक समानता है। यही नहीं, भक्ति साहित्य में विभिन्न सांस्कृतिक विशिष्टताओं, प्रादेशिक अस्मिताओं का प्रयोग हुआ है। परंतु इन विभिन्नताओं के बावजूद उसमें समानता के सूत्र कहीं अधिक सुदृढ़ और मज़बूत हैं, जो समस्त भारतीय भाषाओं की आपसी अतःसंबद्धता को संसूचित करते हैं।

इसी प्रकार 1857 के स्वाधीनता की आगाज़ के साथ यह देखा जा सकता है कि इस देश में धर्म, जाति व प्रदेश की संकुचित परिधि से निकलकर राष्ट्रीय भावना की सशक्त अभिव्यक्ति सभी भाषाओं में एक जैसी त्वरा और ऊर्जा के साथ मिलती है। स्वतंत्रता-आंदोलन और राष्ट्रीय चेतना ऐसा मोड़ सिद्ध हुआ है, जिसने समूचे राष्ट्र को एक कर दिया, राष्ट्र की वाणी को एक लक्ष्य और एक स्वर प्रदान किया। भाषाई पत्र-पत्रिकाओं ने भी इस दौर में महती भूमिका निभाई। हिंदी में 'कवि वचन सुधा', असमिया में 'जोनाको', उड़िया में 'उत्कल दीपिका', मराठी में 'केसरी', गुजराती में 'सुदर्शन', बांग्ला में 'बंगदूत' आदि पत्र-पत्रिकाओं ने न सिर्फ़ स्वाधीनता आंदोलन को मुखरित किया, अपितु सोई हुई जन-भावना को जागृत कर एक नई क्रांति का बीजवपन किया। हिंदी में भारतेंदु, बांग्ला में ईश्वरचंद्र, माइकल मधुसूदन दत्त, रवीन्द्रनाथ, नवीन चंद्र घोष, उर्दू में हाली, इकबाल, मराठी में केशवसुत, दत्तात्रेय, तिलक, शारदाताई परांजपे,

कन्नड़ में गुंडप्पा, मलयालम में वल्लतोण, कुमार आसन, तेलुगु में वीरेश लिंगम, सुब्बाराव, कृष्णमूर्ति, विश्वनाथ, तमिल में सुब्रमण्यम भारती, भारतीदासन, रामलिंगम पिल्लई, कश्मीर में गुलाम अहमद, अब्दुल आज़ाद, हाली, पंजाब में भाई वीर सिंह, प्रीतम सिंह, गुजराती में नर्मद, दलपतराम, रणछोड़ भाई, गोवर्धनराम त्रिपाठी, उमाशंकर जोशी, असमिया में लक्ष्मीकांत बेजबरुआ, कमलाकांत, उड़िया में फकीर मोहन, चिंतामणि मंहति आदि ने अपने सृजन-कर्म से राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना को भाषाई धरातल पर जागृत और प्रतिष्ठित किया।

भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास इस बात का गवाह है कि भाव, भाषा और संस्कृति के धरातल पर यह राष्ट्र सदैव एकजुट रहा है। अंग्रेज़ों के दमन के विरुद्ध चला संघर्ष एक भाषा-भाषी की विरासत नहीं है। उस संघर्ष को चलाने वालों ने चाहे वे दक्षिण के हों या उत्तर के, इस देश को एक सूत्र में बाँधने के लिए प्रयास किया, भाषाई वैभिन्य उनके इस लक्ष्य में दीवार नहीं बन सका और आश्चर्य होता है कि यह उस समय हुआ, जब विदेशी शासन हर दृष्टि से 'फूट डालो और राज करो' की नीति का पालन कर रहा था। गौरतलब है कि उन दिनों भाषाई अंतर्संबंधों को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से राष्ट्रभाषा की वकालत उन महान् व्यक्तियों ने की, जो कि स्वयं हिंदी भाषी नहीं थे और जिनका प्रभामंडल समूचे देश में व्याप्त था, चाहे वह तिलक हों या गांधी, विनोबा हों या शारदा चरण मित्र!

हाँ, यह बात अवश्य चिंतनीय है कि जिस भाषाई एकता का परिचय इस राष्ट्र ने अंग्रेज़ों को खदेड़ने में दिया, वह देश के स्वतंत्र होते ही क्यों क्षीण हो गई। कहना न होगा कि इसके लिए ज़िम्मेदार मात्र इस देश का राजनीतिक तंत्र रहा है। उसी ने सत्ता के लिए हमारी शिक्षा-नीति और भाषा-नीति में ऐसा ज़हर भर दिया कि वह नासूर हो गया। कल्पना नहीं की जा सकती, आज भाषाई मतभेद हिंदी-हिंदीतर में ही नहीं, अपितु हिंदी में स्वयं इतना ज़्यादा हो गया है कि हिंदी की बोलियों को भाषा का दर्जा दिलाने और उससे अपनी क्षेत्रीय प्रभुता कायम रखने का स्वांग रचा जा रहा है और इसका पूरा का पूरा लाभ मिल रहा है - अंग्रेज़ी को। परिणाम, हम आज भी औपनिवेशिक मानसिकता से उबर नहीं पाए हैं। राजनीतिक स्वतंत्रता के बावजूद मानसिक परतंत्रता के हम शिकार बने बैठे हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय भाषाओं के साहित्य में केवल भावनात्मक समानता नहीं मिलती, बल्कि काव्य-शैलियों एवं काव्य-रूपों में भी अद्‌भुत संबद्धता दिखाई पड़ती है। प्रायः सभी भाषाओं के साहित्य में संस्कृत एवं पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओं से प्राप्त काव्य-शैलियाँ मिलती हैं। इनमें संस्कृत से प्राप्त महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक काव्य, कथा-आख्यायिका आदि के साथ अपभ्रंश से प्राप्त चरित्र-काव्य, प्रेम-गाथा शैली, रास-शैली, पद-शैली आदि समान रूप से प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में दृष्टिगत होती हैं। यही नहीं, दोहा,चौपाई जैसे छंद सभी भाषाओं की अपनी विशेषता बन गई है। आधुनिक काल में पाश्चात्य प्रभाव से प्रगीत काव्य, शोक गीत, मुक्त छंद, गद्य गीत आदि का प्रयोग भी सभी भारतीय भाषाओं की आपसी संबद्धता का सूचक है।

इस प्रकार साहित्येतिहास की दृष्टि से यह कहना होगा कि समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य में सूक्ष्म अंतर के बावजूद विषयगत समानता सभी कालों में रही है। चाहे साहित्य के इतिहास का स्वर्ण काल रहा हो, चाहे पतनकाल और चाहे वर्तमान काल, सर्वत्र भाव ही नहीं, विषय और अभिव्यक्तिगत समानता भी, किसी-न-किसी रूप में लक्षित होती है। इसमें अंतर्निहित एकता को ही दृष्टिगत रखते हुए डॉ. राधाकृष्णन ने कहा था - 'समस्त भारतीय वाङ्मय एक है, जो विविध भाषाओं में रचा गया है।' दक्षिण के क्रांतिकारी कवि सुब्रमण्यम भारती ने भी कहा है - 'अठारह भाषाओं की क्षमता वाली माँ तेरी चिंतनधारा एक ही है।'

संस्कृति और साहित्य के साथ लिपि के धरातल पर भी भारतीय भाषाओं की आपसी संबद्धता की कल्पना साकार दिखती है। साक्ष्य बताते हैं कि ईसापूर्व तीसरी शताब्दी में ब्राह्मी लिपि का विस्तार लगभग संपूर्ण भारतवर्ष में था। आगे चलकर गुप्तकाल में उत्तर और दक्षिण की लिपियों का उद्भव हुआ। देवनागरी इसमें सबसे उन्नत और सरल थी, इसलिए उसका प्रचार-प्रसार अपेक्षाकृत अधिक हुआ। भाषाविद् समस्त भारतीय भाषाओं की लिपियों का देवनागरी से या तो सहगोत्रजा भगिनीवत् संबंध मानते हैं या प्राचीन नागरी की आत्मजावत्।

स्पष्ट है कि लिपि भाषा की पीठिका होती है और भाषा संस्कृत की वाहिका, अर्थात् लिपि, भाषा और संस्कृति दोनों की संवाहिका होती है। जैसे भाषा की पहचान लिपि है, वैसे ही संस्कृति की पहचान भाषा है। भाषा के बिना यदि संस्कृति पंगु है, तो संस्कृति के अभाव में भाषा अंधी है और लिपि के बिना दोनों ही निष्प्राण हैं। भाषाओं में दृष्टिगत होने वाले अंतर को पाटने के लिए, विभिन्न भारतीय भाषाओं को पास लाने के लिए ही तिलक, गांधी, विनोबा, काका कालेलकर जैसे राष्ट्र-नायकों ने नागरी लिपि को अपनाने की वकालत की।

तिलक ने तो यूरोप का उदाहरण देते हुए कहा - "यूरोप में कई देश और कई भाषाएँ हैं और उन सबकी एकमात्र रोमन लिपि होने के कारण सारे शिक्षित लोगों के पारस्परिक आदान-प्रदान

तथा विभिन्न भाषाओं का अध्ययन सहज और सुलभ हो सका है। उसी प्रकार यदि भारत में सभी आर्य-अनार्य परिवार की भाषाओं के लिए एक लिपि हो, तो भारतीय जनता की एकता और ज्ञान का अंतर-प्रांतीय आदान-प्रदान सुलभ हो जाएगा।"

यह तय है कि अगर हमारे देश में एक लिपि व्यवस्था अपना ली जाए, तो समस्त भारतीय भाषाएँ स्वयं नज़दीक आती चली जाएँगी। क्योंकि लिपि ही है जो भाषा को आधारभूत ढाँचा प्रदान करती है। दुनिया की कोई भी भाषा बगैर लिपि के जीवित नहीं रह सकती। इस संसार में न जाने कितनी भाषाएँ अपनी कोई लिपि न बना पाने के कारण काल-कवलित हो गई। आज भी यह क्रम जारी है। हमारे देश में ही कई लिपिविहीन भाषाएँ हैं। लिपिविहीन होने के कारण उनका कोई साहित्य नहीं बन पा रहा है। फलत: वे मात्र बोली की भूमिका निभा रही हैं, पर उनकी अपनी संस्कृति है, जिसे लिपिबद्ध किया जा सकता है। इस तरह भारतीय भाषाओं की अंत: संबद्धता का एक पुख्ता आधार भी बन सकता है।

उल्लेख्य है कि सभी भारतीय भाषाओं में एकात्मता की भावना इसलिए है, क्योंकि उनकी लिपियाँ एक ही मूल से उद्धृत हैं। सभी आक्षरिक हैं। यह समानता ही कहीं-न-कहीं इस संघीय राज-व्यवस्था को कायम रखी हुई है। यह तय है कि भौगोलिक चौहद्दी किसी धर्म और जाति की चहारदीवारी से कायम नहीं रह सकती। उदाहरण के तौर पर पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान का बँटवारा मातृभाषा के धरातल पर हुआ है। यह विभाजन भाषा की जातीय अस्मिता से जुड़ा मसला था, इसलिए जिस उर्दू की दुहाई देकर और धर्म की भाषा का दर्जा देकर भारत-पाक बँटवारे में एक अस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया गया, वह उर्दू एक ही मज़हब के लोगों को बाँध रखने में असफ़ल सिद्ध हो गई। इसका एकमात्र कारण भाषाई दूरियाँ थी, पूर्वी पाकिस्तान बांग्ला भाषा के जितना निकट है, उतना उर्दू के नहीं। यह भाषाई अंतर हमारे देश में भी है, किंतु उसके अंतरतम में जो धारा प्रवाहित हो रही है, वह लिपिगत एकता की धारा है, उसमें जो 'अंडर करंट' है, वह भावगत एकता का है और उससे जुड़े संस्कारों का है। यही कारण है कि तमाम विभिन्नताओं के बावजूद हम एक हैं।

निष्कर्षत: यह कहना होगा कि भारतीय भाषाओं में विविधता के बावजूद एक अंत:संबद्धता है, जिसे संस्कृति, कला, साहित्य, लिपि आदि आधारों पर आसानी से समझा जा सकता है। ये आधार न केवल देश के एक हिस्से से दूसरे हिस्से को जोड़ने का मार्ग दिखाते हैं, अपितु भौगोलिक, वैचारिक अंतर-मतभेदों के बावजूद हमारी एकात्मता को रेखांकित करते हैं। कहना न होगा, एक ही सांस्कृतिक परिवेश और जीवन के प्रति एक जैसी दृष्टि समस्त भारतीय समाज की विशेषता है। भाव-संवेदन की यही विशेषता समस्त भारतीय भाषाओं की अंत:संबद्धता का सेतु है।

संदर्भ-सूची :

1. रामछबीला त्रिपाठी, भारतीय साहित्य (2012), वाणी प्रकाशन, दिल्ली : 22 से उद्धृत
2. महावीर सिंह चौहान, तुलनात्मक साहित्य (1994), पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद : 92
3. भगवान सिंह, आर्य-द्रविड़ भाषाओं की मूलभूत एकता (1974), सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली :123
4. बी. के. गर्ग, भारतीय साहित्य: प्रमुख दिशाएँ (2017), हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला : 08 से उद्धृत
5. इन्द्रनाथ चौधुरी, तुलनात्मक साहित्य-भारतीय परिप्रेक्ष्य, (2010, द्वितीय संस्करण), वाणी प्रकाशन, दिल्ली : 117

mkprtmnu@gmail.com

मॉरीशस की लोककथाओं में भारतीय संस्कृति की झलक

- प्रो. राज शेखर
महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस

लोक साहित्य किसी भी समाज की सांस्कृतिक अस्मिता और सामूहिक अनुभव का दर्पण होता है। विशेषतः लोककथाएँ समाज के जीवन-दर्शन, आस्था, रीति-रिवाज़, खान-पान, परिधान, मनोरंजन और मूल्यबोध को सुरक्षित रखते हुए पीढ़ी-दर-पीढ़ी संप्रेषित करती हैं। मॉरीशस की लोककथाएँ इस संदर्भ में अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनमें प्रवासी भारतीयों की सांस्कृतिक धरोहर और स्थानीय परिवेश के साथ उनका सामंजस्य स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

1834 ई. में गिरमिट प्रथा के अंतर्गत भारतीय श्रमिकों का आगमन मॉरीशस में हुआ। ये श्रमिक विशेषतः भोजपुरी भाषी क्षेत्र से आए थे और अपने साथ वे न केवल श्रमशक्ति लाए, बल्कि भाषा, गीत-संगीत, पर्व-त्यौहार, धार्मिक अनुष्ठान और लोककथाओं जैसी सांस्कृतिक संपदाएँ भी लेकर आए। प्रवास की कठिनाइयों में ये लोककथाएँ उनके लिए आत्मिक संबल और सामुदायिक एकता का साधन बनीं। मॉरीशस की लोककथाओं में भारतीय संस्कृति के विविध आयाम - भोजन, परिधान, शृंगार, गहनों का सौंदर्य, कृषि-उपकरण, वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था, पूजा-पद्धतियाँ और संगीत की परंपराएँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं।

सर्वप्रथम मॉरीशस में गिरमिट प्रथा के अंतर्गत गन्ने की खेती करने के लिए 36 भारतीय जन लाए गए। इसके बाद नियमित रूप से यहाँ भारतीय लोग आते रहे और 1920 तक इनकी संख्या लगभग साढ़े चार लाख हो गई। आज के समय में यहाँ भारतीय मूल के लोगों की संख्या लगभग 68% अर्थात् लगभग साढ़े आठ लाख है। इन भारतीय लोगों में अधिकांश भोजपुरी जानने वाले हैं। स्वाभाविक रूप से यहाँ भारतीय लोगों के आगमन के साथ-साथ भारत की लोक संस्कृति भी आई। खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज़, पर्व-त्यौहार, लोक संगीत के साथ लोककथाएँ भी आईं। भारत में भोजपुरी भाषा की क्षेत्रीय स्थिति देखें, तो स्पष्ट होता है कि यह भाषा पूर्वी उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बिहार, उत्तर-पश्चिमी झारखंड तथा सीमावर्ती अन्य क्षेत्रों में बोली जाती हैं।

मॉरीशस में लोग भोजपुरी लेकर आए और बाद में रामायण पाठ के माध्यम से उन्होंने हिंदी भाषा भी सीखी। यह सर्वविदित है कि यहाँ की सायंकालीन बैठका में लोगों ने अपने दुख-दर्द को साझा किया। साथ ही, लोगों के बीच परंपरागत लोककथाओं का आदान-प्रदान भी होता रहा। मॉरीशस की भोजपुरी ने भारत की भोजपुरी से अलग अपना रूप धारण किया, तो लोककथाओं ने भी अपने स्वरूप को प्राप्त किया। भारत से अलग परिदृश्य में मॉरीशस की लोककथाएँ भारतीय तत्वों के साथ-साथ यूरोपीय और अफ़्रीकी तत्वों से भी प्रभावित हुईं या यों कहें कि भारत की लोककथाओं पर यूरोपीय और अफ़्रीकी तत्व आकर समाहित हो गए हैं। कुछ कथाएँ तो शुद्ध मॉरीशस में ही निर्मित हुई हैं, जिनमें भारत की सांस्कृतिक झलक दिखाई देती है। ऐसी कथाओं में मारीच देश की सृष्टि, परी तालाब, सिंह पर्वत, मुड़िया पहाड़ आदि उल्लिखित हैं। इस सम्बन्ध में प्रह्लाद शरण ने ज़िक्र किया है - "मॉरीशस की लोककथाओं का अवलोकन करने से कुछ लोक सांस्कृतिक तत्वों का उद्घाटन होता है। इन कथाओं की ऊपरी सतत पर थोड़ा बहुत परिवर्तन तो अवश्य दिखाई देता है, पर अन्दर से अनके मूल अपने-अपने देशीय सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़े हुए होते हैं।"

मॉरीशस देश के निर्माण पर भी एक रोचक लोककथा है, जिसका संबंध सीधे-सीधे रामायण काल अर्थात् मर्यादा पुरुषोत्तम राम से है। लोककथा में वर्णन है कि "वन के रास्ते पर राम-लक्ष्मण को दबोचने के लिए ताड़का जब झपटी, तब राम ने एक ही बाण में उसका वध कर दिया और जब मारीच अपने साथी सुबाहु के साथ मारने आया, तब राम ने बिना फल वाले बाण से मारीच को सौ योजन सागर में फेंक दिया। जहाँ मारीच गिरा, वहाँ एक द्वीप बन गया। यही मारीच (मॉरीशस) देश बना।" इसी कथा में वर्णन है कि "मायावी होने से वह सोने के हिरण का रूप धारण कर सीता की ओर से गुज़रा। सोने का हिरण पाने के लिए सीता ने राम से हठ किया। राम ने हिरण पर बाण चलाया। मरते समय उसने राम नाम पुकारा और वह अपने असली रूप में हो गया। जीवन के अंतिम क्षण में राम ने उसकी अंतिम इच्छा पूछी तो भाव-विह्वल होकर मारीच ने हाथ जोड़कर विनम्रता पूर्वक कहा - "महाराज मेरी अंतिम इच्छा यही है कि जहाँ मारीच (मॉरीशस) द्वीप बना है, वहाँ राम नाम की गूँज से वातावरण राममय हो जाए, तभी मेरी आत्मा को तृप्ति मिलेगी।"

श्री राम ने उनके शीश पर हाथ रखते हुए कहा - 'तथास्तु!

कलियुग में ऐसा अवश्य होगा।'

कलियुग आया तो मारीच द्वीप (मॉरीशस) के कोने-कोने में मंदिर बने। राम नाम सभी लोग लेने लगे। राम कथा, राम भजन, रामायण गान, रामायण सत्संग सर्वत्र होने लगे। इस तरह मारीच द्वीप राममय हो गया और मारीच की इच्छा पूरी हुई।"

मॉरीशस की लोककथाओं में भारतीय संस्कृति की झलक बिखरी पड़ी हैं। 'मृग कुंड' लोक कहानी में यज्ञ करने का वर्णन है - "देवता कोई भी काम एकान्त में करना पसन्द करते हैं। इसलिए बृहस्पति के आदेश से नारद मुनि एकांत देश की खोज में निकल पड़े। घूमते-घूमते निर्जन देश मॉरीशस उनको दिख पड़ा। तब देवताओं ने यहीं पर यज्ञ करने का निश्चय किया।" 'गौसाल के मुखिया' कहानी में गौ पालन से लाभ का वर्णन इस प्रकार है - "एक मज़दूर नेता पंडित शिबू ने उस गाँव में आकर लोगों को समझाया कि गौ माता की सेवा अच्छी तरह से करनी चाहिए। उसको गौशाला में रखना चाहिए। उसे कड़ी धूप और बारिश से बचाना चाहिए। उसे समय पर चारा-पानी देना चाहिए। यदि गौ-माता की इस प्रकार से सेवा की जाए, तो बरकत होगी और हम सुखी होंगे।" ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ की लोककथाओं में आध्यात्मिक आदर्श के तत्व सभी जगह उपस्थित हैं, जिससे लोग प्रेरणा लेकर समाज में कहानी के माध्यम से एक आदर्श एवं मर्यादित जीवन जी सकें।

खान-पान की ही बात करें, तो परंपरागत भोज्य पदार्थों में दूध, दही, लड्डू, मलीदा, खीर, पुआ, दाल-रोटी, चावल और सत्तू-पानी का उल्लेख मिलता है। 'जन्नत की हांडी' में भारत की एक कहावत का मज़ेदार ज़िक्र मिलता है। उसमें वर्णन है कि "किसान के छोटे बेटे को दिमाग कम है, क्योंकि प्रायः उसे माँ पिछली रोटी खिलाती है। आज भी यह बात बिहार में बोली जाती है - "वह छोटा था, इसलिए माँ उसके लिए पिछली रोटी सेंकती थी।" 'कौआ हँकनी' कहानी में चावल और तिल का वर्णन एक जगह आया है - "महाराज बोले - 'बाबा! तीसरी रानी से भी कोई संतान लाभ नहीं हुआ।' साधु बोले - 'राजन! उदास मत हो। आपकी इच्छा अवश्य पूरी होगी।' उन्होंने राजा से तिल और चावल माँगे। तिल और चावल का ताबीज़ बनाकर राजा को दिया।" भारतीय लोगों के आने से पहले अफ़्रीकी मूल के दासों का भरण-पोषण मकई और अरबी कंद से होता था। भारतीयों ने इस देश में चावल प्रारंभ किया। 'कछुए की चतुराई' कहानी में एक जगह कच्चू सब्ज़ी का ज़िक्र मिलता है - "पहरेदार ने बंदूक ली और वह तालाब पर जा पहुँचा। उसने निश्चय किया कि वह रात-भर जागकर तालाब को गन्दा करने वाले को पकड़ेगा। वह तालाब के किनारे उगने वाले कच्चू (जंगली अरवी) के घने झुरमुट में छिप गया।" यहाँ पर कच्चू और टमाटर की सब्ज़ी बनती है, जो रोटी में लपेटकर खाई जाती है। स्थानीय लोग इसे 'रोची' कहते हैं, जो भारतीयता की पहचान है। यह व्यंजन यहाँ के सभी संप्रदाय और वर्ग के लोग बड़े चाव से खाते हैं। इसी तरह और भी भारतीय व्यंजन का वर्णन 'भाग्यवान ज्योतिषी' में देखने को मिलता है - "उसकी पत्नी ने सोचा, उसका पति विदेश चला गया है। वह घर का काम करती रही और बढ़िया-बढ़िया पकवान पकाकर खाती रही। उसने पूरियाँ बनाईं और लड्डू, पुआ और खीर बनाकर वह दिन-भर खाती रही। पति दिन-भर इन पकवानों को खाने के लिए तरसता रहा, परन्तु वह नीचे नहीं आ सकता था। शाम तक वह मचान पर ही छिपा रहा।"

इसी प्रकार भारतीय परिधानों का उल्लेख यहाँ की लोककथाओं में मिलता है। महिलाओं के आभूषणों का उल्लेख 'साहसी वृद्ध' और 'सास एवं बहू' तथा 'भाग्यवान ज्योतिषी' में मिलता है। भाग्यवान ज्योतिषी में नौलखा हार का ज़िक्र आया है - "राजा ने तुरन्त दासी को महारानी के पलंग के नीचे नौलखा हार ढूँढने का आदेश दिया। हार मिल गया। राजा ने प्रसन्न होकर नकली ज्योतिषी को बहुत सारा धन दिया और उसे बड़े आदर-सत्कार से विदा किया।" कई कथाओं में 'पायल' का भी वर्णन मिलता है। शृंगार के रूप में 'सोलह शृंगार' एवं 'सिंदूर' के प्रचलन का उल्लेख है। 'दासी बनी रानी' में इनके वर्णन के साथ-साथ मेहंदी लगाने एवं गुदना-गुदवाने का भी उल्लेख है।

जन-जीवन और घर-गृहस्थी से संबंधित उपकरणों का भी उल्लेख यहाँ की लोककथाओं में मिलता है। 'कौवा हँकनी' में 'सूप' का और 'कछुआ और बंद' में 'बोरे' का वर्णन है।, 'दुलारी बहन' में 'ओखली-मूसल' का उल्लेख इस प्रकार मिलता है - "परन्तु भाभियों को इससे भी चैन नहीं मिला। तीसरे दिन उन्होंने छोटी बहन को एक मन धान दिया और कहा - इसे बिना ओखली-मूसल की सहायता से अपनी नाक से कूटकर लाओ।" यहाँ की लोककथाओं में यहाँ के विभिन्न समुदायों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले पारंपरिक पात्रों और कृषि उपकरणों का चित्रण मिलता है। अफ़्रीकी दासों द्वारा सूखे कद्दू की बोतल से बने पात्रों और नारियल के छिलके से बने पात्रों का प्रयोग किया जाता था। वहीं, भारतीय समुदाय टीन के पात्र, मिट्टी के बर्तन और घास-फूस से बनी टोकरियों का उपयोग करता था, जिनका उल्लेख इन कथाओं में है। कृषि संबंधी उपकरणों जैसे कुदाल, कुल्हाड़ी, हथौड़ा, छुरी और चाकू का भी लोककथाओं में विवरण मिलता है। भारत की परंपरागत खेती, जिसमें ज्वार और मक्का (मकई) शामिल है, का चित्रण 'जन्नत की हांडी' नामक

कहानी में हुआ है। परिवहन के साधनों में घुड़सवार और बग्घी का वर्णन है, जबकि बैलगाड़ी का ज़िक्र विशेष रूप से 'साहसी वृद्ध' और 'बेवकूफ़ी की हद' जैसी लोककथाओं में मिलता है।

मॉरीशस की लोककथाओं में भारतीय संस्कृति की वर्ण-व्यवस्था और उससे जुड़े पारंपरिक व्यवसायों का स्पष्ट चित्रण मिलता है। कहानी 'भाग्यवान ज्योतिषी' में ब्राह्मण वर्ण के कार्यों का उल्लेख है, जहाँ पात्र धार्मिक अनुष्ठानों और विभिन्न मंदिरों में पूजा-पाठ का कार्य करते हैं। क्षत्रिय वर्ण का प्रतिनिधित्व 'सूरज, चाँद और तारे' तथा 'उड़ने वाला घोड़ा' जैसी कथाओं में मिलता है, जहाँ राजाओं द्वारा किए गए शासन का वर्णन है। वहीं, वैश्य वर्ण के जीवन और व्यवसाय का वर्णन 'सबुर की कथा' और 'दो यात्री' में किया गया है। इसके अतिरिक्त, 'मोची के दुस्साहस' नामक कहानी में पारंपरिक कारीगरों और सेवा प्रदान करने वाले लोगों जैसे मोची और धोबी का भी ज़िक्र है, जो समाज में इन व्यवसायों की उपस्थिति को दर्शाता है। 'गंगू की ससुराल' में भी धोबी का एक चरित्र है - "तभी एक धोबी अपनी गधा-गाड़ी के साथ उधर आ निकला। गंगू ने उससे सहायता माँगी। धोबी ने गधा-गाड़ी ठीक गंगू के नीचे लाकर खड़ी कर दी। धोबी गाड़ी पर खड़ा हो गया और गंगू को पैरों से पकड़कर नीचे उतारने लगा।" 'राजा के सिर में सिंग' में नाई, 'मुड़िया पहाड़' तथा 'गूलर का फूल' में ग्वालों का, 'अनोखा तालाब' में लकड़हारे का वर्णन है। इसी तरह यहाँ आश्रम-व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है। प्रह्लाद रामशरण ने इस संबंध में लिखा है - "मॉरीशस एक बहुजातीय देश है। अतः यहाँ केवल भारतीय मूल की लोककथाओं में आश्रम-व्यवस्था का वर्णन मिलता है। 'उड़ने वाला घोड़ा' के अंत में महाराज को संन्यास लेते दिखाया गया है। अनेक कथाओं में राजकुमारों के विवाह के बाद 'गृहस्थ' कार्यों का उल्लेख हुआ है। इस तरह केवल तीन आश्रमों का ही उल्लेख हमारी कथाओं में वर्णित है। ब्रह्मचर्य का उल्लेख 'साहसी वृद्ध' कहानी में हुआ है। हमारी लोककथाओं में केवल 'वानप्रस्थ' का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है।"

भारतीय मनोरंजन से जुड़े संसाधनों की भी झलक मॉरीशस की लोककथाओं में मिलती है। 'गुलबकावली' में चौपड़ और पासे खेल का उल्लेख है - "जादू नगरी की राजकुमारी की शर्त यह थी कि जो भी नगाड़े को बजाएगा, उसे मेरे साथ पासा खेलना होगा और पासे के खेल में जो भी राजकुमारी को हरा देगा, उसी के साथ राजकुमारी शादी कर लेगी। मगर जो खेल में राजकुमारी से हार जाएगा, उसे राजकुमारी कैद कर लेगी।" 'कई कथाओं में गुल्ली-डंडा' का भी वर्णन है। कुछ लोककथाओं जैसे 'मुड़िया पहाड़', 'परी तालाब' एवं 'शामारैल की रंगीन भूमि' में सरोवरों के तट पर परियों, अप्सराओं और गंधर्वों के नृत्य का वर्णन है। सारंगी, मृदंग, मंजीरा, वीणा, एकतारा, झाल एवं ढोलक का भी उल्लेख है, जो भारतीय पारंपरिक संगीत के तत्वों को उजागर करता है। 'राजा के सिर में सिंग' में भारतीय वाद्य यंत्र ढोलक का वर्णन है - "एक मदारी उस ढोलक और मंजीरे को खरीद ले गया। मदारी बन्दर नचाने का खेल दिखाता था। बन्दर की कमर में मंजीरा बाँध देता। बन्दर नाचता-कूदता रहता मदारी ढोलक बजाता। ढोलक से आवाज़ आती, राजा के सिर पर दो सींग हैं।" इसी प्रकार का वर्णन 'गौसाल के मुखिया' में भी दिखता है - "शां-दे-मार्स में जनता की भारी भीड़ लगी थी। भारत से खेल-तमाशा दिखाने वाले कलाकार आए हुए थे। सँपेरे अपनी करामात से लोगों को मुग्ध कर रहे थे। बच्चों ने बन्दर नचाने वाले को घेर रखा था, दल-के-दल बिरहा तथा आल्हा गाने वाले पहुँचे थे। बिरहा की प्रतियोगिता चल रही थी। लोग झाल-ढोलक पर भजन गा रहे थे। कठपुतली का नृत्य भी कम आकर्षक नहीं था।"

भारतीय संस्कृति में पोखर-पूजन की परंपरा रही है। 'गूलर का फूल' में सरोवर-पूजन का ज़िक्र है। मॉरीशस में एक गंगा तालाब है, जो परी तालाब के नाम से भी जाना जाता है। इस पर भी एक लोककथा 'परी तालाब' के नाम से है, जिसका निर्माण मॉरीशस में ही हुआ है। इसमें वर्णन है - "इस घटना की चर्चा गाँव-गाँव में हुई। लोगों ने तालाब को पवित्र समझा और उसे तीर्थ स्थान माना। आज भी सैकड़ों भक्त प्रतिवर्ष इस तालाब का पवित्र जल श्रद्धा से लाते और मंदिरों में चढ़ाते हैं।" 'सास और बहू' कहानी में शिव-पूजन महोत्सव का उल्लेख मिलता है। आज मॉरीशस में भगवान शिव के बहुत-से भक्त हैं। इसी प्रकार 'मेढ़वाँ तालाब' में व्रत करने का उल्लेख मिलता है - "उस समय यहाँ ऊबड़-खाबड़ पगडंडी थी। एक ओर खुला मैदान था, तो दूसरी ओर पतली-सी नहर थी, जिसका पानी सदा स्वच्छ और निर्मल था। यह जगह एक पवित्र स्थल मानी जाती थी। इसका कारण यह था कि हिन्दू सम्प्रदाय की महिलाएँ उपवास के दिनों में यहाँ अपना पूरा दिन बिताती थीं। भजन-सत्संग की गूँज तथा अगरबत्ती और कपूर की सुगन्ध से यहाँ का वातावरण सुगन्धमय हुआ करता था। आते-जाते लोगों के मन प्रफुल्लित हो उठते थे।" फुलियार बस्ती के नाम से ही एक लोककथा प्रचलित है, जिसमें भगवान गणेश के नाम से इस बस्ती के बनने की घटना का वर्णन है - "वे भारतीय मज़दूर धर्मनिष्ठ थे। पूजा-पाठ की उनमें प्रबल प्रवृत्ति विद्यमान थी। उस कोठी में एक वटवृक्ष के पास विघ्न विनाशक श्री गणेश जी की मूर्ति स्थापित कर उनकी पूजा करते। उन भारतीयों में कुछ तमिल भाषी भी थे। वे

भी गणेश जी की बड़ी श्रद्धा-भक्ति से पूजा करते थे। तमिल में श्री गणेश जी को 'पिलैयार' कहते हैं। तमिल भाषी कहते कि हम 'पिलैयार' की पूजा करते हैं। लेकिन बहुसंख्यक जो भोजपुरी भाषी थे 'पिलैयार' को 'फुलियार' बोलने लगे। धीरे-धीरे सभी लोग उस बस्ती को 'फुलियार' कहने लगे।"

इसी प्रकार मॉरीशस की लोककथाएँ भारतीय सामाजिक रीति-रिवाज़ों और महिलाओं की स्थितियों को भी दर्शाती हैं। कहानियाँ 'मुझे भूलना मत' और 'धोखेबाज़ दोस्त' में विधवा महिलाओं का मार्मिक चित्रण हुआ है, जो अपने पति की मृत्यु के बाद सोलह शृंगार का त्याग कर देती हैं और सफ़ेद साड़ी धारण करती हैं। इसके अतिरिक्त, कहानी 'दो भाई' में सती प्रथा जैसी कठोर सामाजिक प्रथा का भी उल्लेख मिलता है, जहाँ एक महिला अपने पति की मृत्यु से अत्यधिक विचलित होकर, उनकी चिता में कूदकर सती हो जाती है। बच्चों के सिर पर हाथ रखकर कसम खाने की परंपरा भारत में भी है और यहाँ भी - 'धोखेबाज़ दोस्त' में वर्णन है - "मैं आपकी बातों का विश्वास कैसे कर लूँ? ठीक है। आप अपने पुत्र के सिर पर हाथ रखकर कहिए। अगर इन्होंने मेरे पति के दो सौ रुपये वापस कर दिये हों, तो मेरा बच्चा मर जाये और अगर नहीं लौटाये हैं, तो वह ज़िंदा ही रहे।"

यहाँ की लोककथाओं में अधिकांश जीव-जंतु भी भारत के ही हैं। जैसे बंदर, कुत्ता, हाथी, घोड़ा, सूअर, बकरी, बैल, गाय, चूहा, हिरण, भेड़िया, सिंह, गिलहरी, ऊँट, गधा, भालू, चीता, कौवा, मैना, हंस, कबूतर, मुर्गा, मोर, डोडो, बत्तख, तोता, उल्लू, मगरमच्छ, मकड़ी, बर्रा, मधुमक्खी, घोड़ा, साँप, अजगर, चींटी, मेंढक, गिरगिट और छिपकली आदि का भी उल्लेख है। डोडो, सॉलिटेयर, अफ़्रीकी डव जैसे पक्षी मॉरीशस की जैव विविधता के अभिन्न अंग थे, जो अब विलुप्त हो गए हैं।

मॉरीशस की लोककथाओं में आध्यात्मिक आदर्शों के तत्व गहराई से विद्यमान हैं, जो इन कथाओं को मात्र मनोरंजन से ऊपर उठाकर नैतिक और सांस्कृतिक मार्गदर्शन का स्रोत बनाते हैं। ये कहानियाँ रामायण से जुड़ी कथाओं, गंगा तालाब जैसे पवित्र स्थानों के प्रति आस्था और शिव-पूजन महोत्सव जैसे धार्मिक अनुष्ठानों के उल्लेख के माध्यम से प्रवासी भारतीयों की आध्यात्मिक अस्मिता को दृढ़ करती हैं। साथ ही, सत्य, मर्यादा, पारिवारिक कर्तव्य और सती प्रथा जैसे सामाजिक-नैतिक मूल्यों को दर्शाते हुए ये लोककथाएँ समुदाय के लिए एक आदर्श एवं मर्यादित जीवन जीने की प्रेरणा का कार्य करती थीं, विशेष रूप से गिरमिट प्रथा के दौरान आए संघर्ष भरे माहौल में ये कहानियाँ आत्मिक संबल प्रदान करने का एक सशक्त माध्यम थीं।

इस प्रकार मॉरीशस की लोककथाओं में प्रवासी भारतीयों की सांस्कृतिक स्मृति, अनुभव और संघर्षों की जीवंत अभिव्यक्ति मौजूद हैं। 1834 ई. से आए भारतीय गिरमिटिया श्रमिक अपने साथ भाषा, रीति-रिवाज़, पर्व-त्यौहार, भोजन, परिधान, गीत-संगीत और लोककथाएँ लेकर आए, जिन्होंने प्रवास की कठोर परिस्थितियों में उन्हें मानसिक संबल और सामाजिक एकता प्रदान की। इन कथाओं में भारतीय संस्कृति के विविध आयाम - खान-पान, शृंगार, धार्मिक अनुष्ठान, सामाजिक व्यवस्था, मनोरंजन और लोक-व्यवसाय स्पष्ट रूप से अंकित हैं। कालांतर में ये कथाएँ स्थानीय अफ़्रीकी और यूरोपीय तत्वों से प्रभावित होकर एक विशिष्ट सांस्कृतिक स्वरूप धारण करती हैं, किंतु भारतीयता का मूल स्वर अब भी उनमें विद्यमान है। यही कारण है कि मॉरीशस की लोककथाएँ भारतीय संस्कृति के वैश्विक प्रसार की प्रामाणिक साक्षी कही जा सकती हैं। ये न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, बल्कि प्रवासी भारतीयों की पहचान, अस्मिता और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण का भी प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

संदर्भ-सूची :

1. प्रह्लाद रामशरण, प्रस्तावना, इन्द्रधनुषी मॉरीशस गणराज्य की लोककथाएँ, प्रथम संस्करण : 2019, एस. एन. पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110041
2. मारीच देश की सृष्टि, मॉरीशस की लोककथाएँ, संस्करण : 2006, हिंदी लेखक संघ, मॉरीशस, स्टार पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002
3. मृग कुंड, मॉरीशस की लोककथाएँ, संस्करण : 2006, हिंदी लेखक संघ, मॉरीशस, स्टार पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002
4. गोसाल के मुखिया, मॉरीशस की लोककथाएँ, संस्करण : 2006, हिंदी लेखक संघ, मॉरीशस, स्टार पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002
5. प्रह्लाद रामशरण, जन्नत की हांडी, मॉरीशस की रोचक लोककथाएँ-1, प्रथम संस्करण : 2017, स्टार पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002
6. कौआ हँकनी, मॉरीशस की लोककथाएँ, संस्करण : 2006, हिंदी लेखक संघ, मॉरीशस, स्टार पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002
7. प्रह्लाद रामशरण, कछुए की चतुराई, मॉरीशस की लोककथाएँ,

प्रथम संस्करण : 1974, शिक्षा भारती प्रेस, शाहदरा, दिल्ली-110032

8. प्रह्लाद रामशरण, भाग्यवान ज्योतिषी, मॉरीशस की लोककथाएँ, प्रथम संस्करण : 1974, शिक्षा भारती प्रेस, शाहदरा, दिल्ली-110032
9. गंगू का ससुराल, मॉरीशस की लोककथाएँ, संस्करण : 2006, हिंदी लेखक संघ, मॉरीशस, स्टार पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002
10. प्रह्लाद रामशरण, मॉरीशस : लोक साहित्य और संस्कृति
11. प्रह्लाद रामशरण, गुलबकावली, मॉरीशस की लोककथाएँ, प्रथम संस्करण : 1974 शिक्षा भारती प्रेस, शाहदरा, दिल्ली-110032
12. राजा के सिर पर दो सींग, मॉरीशस की लोककथाएँ, संस्करण : 2006, हिंदी लेखक संघ, मॉरीशस, स्टार पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002
13. गोसाल के मुखिया, मॉरीशस की लोककथाएँ, संस्करण : 2006, हिंदी लेखक संघ, मॉरीशस, स्टार पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002
14. प्रह्लाद रामशरण, परी तालाब, मॉरीशस की लोककथाएँ, प्रथम संस्करण : 1974, शिक्षा भारती प्रेस, शाहदरा, दिल्ली-110032
15. मेढ़वाँ तालाब, मॉरीशस की लोककथाएँ, संस्करण : 2006, हिंदी लेखक संघ, मॉरीशस, स्टार पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002
16. फुलियार, मॉरीशस की लोककथाएँ, संस्करण : 2006, हिंदी लेखक संघ, मॉरीशस, स्टार पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002
17. प्रह्लाद रामशरण, धोखेबाज़ दोस्त, मॉरीशस की रोचक लोककथाएँ-1, प्रथम संस्करण : 2017, स्टार पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002

drrajshekhar@loyolacollege.edu

हिंदी का ई-संसार

1. कृत्रिम बुद्धिमत्ता और हिंदी भाषा : संभावनाएँ, चुनौतियाँ और समाधान – डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी

2. कृत्रिम मेधा और हिंदी भाषा का भविष्य – डॉ. साकेत सहाय

3. कृत्रिम मेधा और हिंदी भाषा-साहित्यः संभावनाएँ, उपयोगिता और प्रभाव – श्री रोहित कुमार 'हैप्पी'

4. हिंदी आज का प्रश्नः कृत्रिम बुद्धिमत्ता और समाचार चैनल – श्री हिमांशु जोशी

5. डिजिटल मीडिया में हिंदी व्यंग्य के विश्वव्यापी वितान व्यापक संभावनाएँ – डॉ. शैलेश शुक्ला

6. डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार – श्री विश्वनाथ चौबे

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और हिंदी भाषा : संभावनाएँ, चुनौतियाँ और समाधान

- डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी
राजस्थान, भारत

यह शोध हिंदी भाषा के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) संसाधनों का एक व्यवस्थित विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसका उद्देश्य वर्तमान संभावनाओं, चुनौतियों और व्यावहारिक समाधानों का पता लगाना है। द्वितीयक डेटा विश्लेषण और तुलनात्मक मूल्यांकन के आधार पर, यह पाया गया कि हिंदी एनएलपी टूल्स की औसत सटीकता अंग्रेज़ी भाषा के समकक्षों की तुलना में लगभग 35% कम है। डेटा की कमी, हिंदी की समृद्ध भाषिक विविधता और वैश्विक तकनीकी प्रभुत्व, हिंदी एआई विकास में प्रमुख चुनौतियाँ हैं।

इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए कुछ उपाय सुझाए गए हैं। इनमें राष्ट्रीय हिंदी कॉर्पस परियोजना, एडेप्टिव ट्रांसफ़र लर्निंग जैसी उन्नत एआई तकनीकों का उपयोग, यूनिफ़ाइड टोकनाइज़ेशन पद्धतियों के निर्माण और मानकीकृत मूल्यांकन मैट्रिक्स की स्थापना पर बल दिया गया है। यह अध्ययन-नीति निर्माताओं, शोधकर्ताओं और तकनीकी कंपनियों के लिए एक रोडमैप प्रदान करता है, ताकि हिंदी को सशक्त बनाकर भाषाई समावेशन को बढ़ावा दिया जा सके।

इक्कीसवीं सदी में कृत्रिम बुद्धिमत्ता हर क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव ला रही है। संप्रेषण का मूल आधार भाषा अब मशीनों के साथ संवाद भी कर रही है। विश्व की चौथी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा हिंदी, आज एआई और प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (एनएलपी) के क्षेत्र में अपनी पहचान बना रही है। इस यात्रा में भविष्य में असीमित संभावनाएँ तो हैं ही, साथ-साथ गंभीर चुनौतियाँ भी हैं।

हिंदी भाषा से संबंधित उपलब्ध एआई संसाधनों का विश्लेषण करते हुए, तकनीकी विकास में हिंदी की भूमिका और इसके महत्त्व का आकलन करके तथा एआई तकनीकों की सहायता से हिंदी के समृद्धिकरण की संभावनाओं का पता लगाकर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि हिंदी भाषा के लिए कौन-कौन से प्रमुख एआई संसाधन उपलब्ध हैं, वर्तमान संसाधनों की गुणवत्ता और सीमाएँ क्या हैं, हिंदी को वैश्विक भाषाओं (जैसे अंग्रेज़ी, चीनी, स्पेनिश) की तुलना में तकनीकी रूप से किस स्तर पर रखा जा सकता है और हिंदी भाषा के एआई विकास में किन सामाजिक और तकनीकी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

यह शोध गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों दृष्टिकोणों का मिश्रण है। इसमें मुख्य रूप से द्वितीयक डेटा विश्लेषण और तुलनात्मक मूल्यांकन विधि का उपयोग किया गया है। उपलब्ध अकादमिक साहित्य, शोध-पत्रों, रिपोर्टों और केस स्टडीज़ का व्यापक अध्ययन किया गया। इसमें विभिन्न एआई मॉडल्स, डेटासेट और उपकरणों पर प्रकाशित सामग्री तथा Google Scholar, IEEE Xplore, व TDIL पोर्टल से शोध-पत्रों/रिपोर्ट्स का विश्लेषण किया गया। प्रमुख हिंदी एआई संसाधनों और उपकरणों (जैसे हिंदी वर्डनेट, भाषाणी, गूगल ट्रांसलेट, आदि) से संबंधित जानकारी विभिन्न ऑनलाइन डेटाबेस, अकादमिक प्रकाशनों और सरकारी रिपोर्टों से एकत्र की गई। एकत्र किए गए आँकड़ों का मूल्यांकन व विश्लेषण उनकी कार्यक्षमता, सटीकता, डेटासेट आकार, प्रमुख सीमाएँ और सामाजिक प्रभाव जैसे मापदंडों पर किया गया।

एआई और एनएलपी के संदर्भ में भाषा संसाधन वे उपकरण और डेटासेट हैं, जिनके माध्यम से मशीनें किसी भाषा को समझना, बोलना, लिखना और अनुवाद करना सीखती हैं। इनमें निम्नलिखित प्रमुख घटक शामिल होते हैं [Jurafsky & Martin, 2020]:

- **कॉर्पस (Corpus):** ये बड़े पैमाने पर भाषा का प्रयोग कर रहे संसाधनों का संग्रह है, उदाहरणस्वरुप समाचार-पत्रों, पुस्तकों और चर्चाओं का डेटाबेस।
- **शब्दकोश (Lexicon):** ये शब्दों के अर्थ, पर्यायवाची, विलोम और व्याकरणिक जानकारी का संकलन है।
- **एनोटेटेड डेटा (POS Tagging, Dependency Parsing):** ये वाक्यों में शब्दों के भाषिक गुणों (जैसे संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया) को चिह्नित करने वाले डेटा हैं।
- **टेक्स्ट-टू-स्पीच और स्पीच-टू-टेक्स्ट:** मशीनों को हिंदी बोलने और सुनकर समझने में सक्षम बनाने वाली तकनीकें।
- **NER (Named Entity Recognition):** व्यक्तियों, स्थानों, संस्थाओं की पहचान और भावनात्मक विश्लेषण करने वाले सॉफ्टवेयर NER कहलाते हैं।

यद्यपि एआई में हिंदी का प्रयोग अभी सीमित है, तथापि IndicNLP, AI4Bharat, Hindi WordNet, TDIL और HuggingFace के IndicBERT जैसे प्रयासों ने हिंदी भाषा को तकनीकी स्तर

पर सक्षम बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है [Joshi et al., 2020]।

वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन

भारत सरकार तथा आईआईटी एवं आईआईआईटी जैसे प्रमुख संस्थानों के सहयोग से हिंदी भाषा के लिए कई एआई आधारित उपकरण निर्मित किए गए हैं। इन संसाधनों की सहायता से हिंदी में मशीनी अनुवाद, वाक्-पहचान, वाक्य-विश्लेषण और भाव-विश्लेषण जैसे कार्य संभव हुए हैं। इनमें से कुछ उपकरण निम्नलिखित हैं:

तालिका 1: हिंदी एआई संसाधनों की तुलना

एआई संसाधन	प्रकार	प्रमुख कार्यक्षमता	डेटासेट आकार (अनुमानित)	सटीकता/ प्रदर्शन (बेंचमार्क)	प्रमुख सीमाएँ	हिंदी अनुकूलता	उपलब्धता/ लागत
Hindi Word-Net	लेक्सिकल डेटाबेस	शब्दार्थ संबंध, पर्यायवाची, विलोम	~100,000 शब्द युग्म	उच्च (>90% कवरेज)	कुछ बोलियों के लिए कवरेज सीमित	उच्च	निःशुल्क (शैक्षणिक उपयोग)
Bhashini ASR	स्वचालित भाषण पहचान (ASR)	हिंदी भाषण को टेक्स्ट में बदलना	~10,000 घंटे (विविध ऑडियो)	मध्यम (70-80% WER)	क्षेत्रीय उच्चारणों पर पक्षपाती, पृष्ठभूमि शोर में कमी	उच्च	निःशुल्क (API एक्सेस)
IndicTrans (NMT)	न्यूरल मशीन ट्रांसलेशन	हिंदी-अंग्रेज़ी अनुवाद (और अन्य भारतीय भाषाएँ)	~50 मिलियन वाक्य युग्म	उच्च (25-30 BLEU स्कोर)	काव्य या विशिष्ट डोमेन के लिए सटीकता में कमी	उच्च	निःशुल्क (ओपन-सोर्स)
Google Translate	मशीन ट्रांसलेशन	बहुभाषी अनुवाद (हिंदी सहित)	विशाल (स्वामित्व)	उच्च (BLEU स्कोर अज्ञात)	मुहावरों और सांस्कृतिक संदर्भों में कभी-कभी चूक	उच्च	निःशुल्क
ChatGPT (OpenAI)	लार्ज लैंग्वेज मॉडल (LLM)	टेक्स्ट जनरेशन, सारांश, प्रश्नोत्तर	विशाल (स्वामित्व)	उच्च (गुणात्मक)	हिंदी में कभी-कभी अस्पष्ट उत्तर, तथ्यात्मक त्रुटियाँ	मध्यम से उच्च	सशुल्क/ निःशुल्क (सीमित)

BERT आधारित मॉडल्स (जैसे **mBERT, IndicBERT)**	लैंग्वेज मॉडल	टेक्स्ट एम्बेडिंग, NER, टेक्स्ट वर्गीकरण	विशाल (पूर्व-प्रशिक्षित)	उच्च (संदर्भानुसार)	विशिष्ट हिंदी बारीकियाँ पकड़ने में कमी	मध्यम से उच्च	निःशुल्क (ओपन-सोर्स)
IndicNER	नामित इकाई पहचान (NER)	व्यक्तियों, स्थानों, संगठनों की पहचान	~100,000 एनोटेटेड इकाइयाँ	मध्यम (80-85% F1-स्कोर)	विशिष्ट डोमेन में प्रशिक्षण डेटा की कमी	उच्च	निःशुल्क (ओपन-सोर्स)
IndicASR	स्वचालित भाषण पहचान (ASR)	हिंदी भाषण को टेक्स्ट में बदलना	~1000 घंटे (विभिन्न बोलियाँ)	मध्यम (75-85% WER)	कम संसाधन वाली बोलियों के लिए प्रदर्शन में कमी	उच्च	निःशुल्क (ओपन-सोर्स)
Hindi GPT (अनुमानित)	लार्ज लैंग्वेज मॉडल (LLM)	हिंदी केंद्रित टेक्स्ट जनरेशन	विशाल (विशिष्ट हिंदी डेटा)	उच्च (विकासधीन)	सीमित उपलब्धता, विशिष्ट डोमेन पर ध्यान केंद्रित	उच्च	विकासधीन/ निजी
Bing Translator	मशीन ट्रांसलेशन	बहुभाषी अनुवाद (हिंदी सहित)	विशाल (स्वामित्व)	उच्च (BLEU स्कोर अज्ञात)	Google Translate के समान सीमाएँ, कुछ भिन्नताएँ	उच्च	निःशुल्क

हिंदी एआई के विकास में कई तकनीकी और सामाजिक चुनौतियाँ सामने आती हैं:

(क) तकनीकी चुनौतियाँ

- **हिंदी की भाषिक विविधता :** मानक हिंदी के अलावा अवधी, ब्रज, बुंदेली जैसी कई क्षेत्रीय बोलियाँ हैं, जिनके लिए अलग-अलग मॉडल्स की आवश्यकता है।
- **उच्च गुणवत्ता वाले कॉर्पस और एनोटेटेड डेटा की कमी :** अधिकांश एआई मॉडल्स के लिए बड़े पैमाने पर विभिन्न डेटा की आवश्यकता होती है, जो हिंदी में सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं [Kumar et al., 2015]।

हिंदी कॉर्पस की कमी के तीन प्रमुख कारण हैं -

1. **आर्थिक :** अंग्रेज़ी की तुलना में हिंदी एनएलपी परियोजनाओं में निवेश 80% कम (NITI Aayog, 2023)।
2. **तकनीकी :** हिंदी के लिए यूनिकोड स्टैंडर्ड का देर से विकास (2005 में अपनाया गया)।
3. **सामाजिक :** भारत के तकनीकी संस्थानों में हिंदी डेटा-संग्रह को 'कम प्राथमिकता' देना।

- **भाषिक मानकीकरण की अस्पष्टता :** हिंदी में कई शब्दों के एक से अधिक अर्थ होते हैं, जिससे मशीन लर्निंग मॉडल्स को सटीकता से काम करने में कठिनाई होती है।
- **टेक्स्ट-टू-स्पीच तकनीकों की सीमित दक्षता :** हिंदी के लिए ऐसी एप्लीकेशंस अभी भी अंग्रेज़ी की तुलना में कम दक्ष हैं [Sharma & Bali, 2019]।
- **उपलब्धता में कमी :** अधिकांश हिंदी एनएलपी टूल्स

सशुल्क हैं या सीमित प्रयोग के साथ निःशुल्क उपलब्ध हैं।

(ख) सामाजिक चुनौतियाँ

- **अंग्रेज़ी का तकनीकी प्रभुत्व :** भारत में तकनीकी और शैक्षणिक क्षेत्रों में अंग्रेज़ी का वर्चस्व होने के कारण हिंदी का उपयोग कम होता है।
- **तकनीकी साक्षरता :** हिंदी शिक्षकों और छात्रों में एआई और एनएलपी के बारे में जागरूकता की कमी है।
- **ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल पहुँच :** भारत के ग्रामीण इलाकों में इंटरनेट और स्मार्टफ़ोन की सीमित उपलब्धता के कारण हिंदी एआई टूल्स का लाभ नहीं मिल पाता।

संभावनाएँ और समाधान

हिंदी एआई के विकास की असीमित संभावनाएँ हैं, जो प्रभावी समाधानों के माध्यम से संभव हो सकते हैं -

(क) संभावनाएँ

1. **डिजिटल समावेशन :** हिंदी भाषी क्षेत्रों, विशेषकर ग्रामीण अंचलों में एआई आधारित हिंदी टूल्स डिजिटल समावेशन की दिशा में क्रांतिकारी भूमिका निभा सकते हैं। भारत की 65% आबादी गाँवों में निवास करती है, जहाँ अंग्रेज़ी भाषा की पहुँच सीमित है। इस संदर्भ में हिंदी एआई समाधानों के निम्नलिखित अनुप्रयोग महत्त्वपूर्ण हैं -
   - **स्वास्थ्य सेवाओं में :** हिंदी वॉइस असिस्टेंट्स (जैसे गूगल अस्सिस्टेंट) ग्रामीण महिलाओं को प्रसव पूर्व देखभाल, टीकाकरण और आयुष्मान भारत योजना की जानकारी प्रदान कर सकते हैं। आँकड़ों के अनुसार, 72% भारतीय गाँवों में डॉक्टरों की कमी है, ऐसे में एआई चैटबॉट्स (जैसे स्वास्थ्य मित्र) रोग निदान में प्राथमिक सहायता प्रदान कर सकते हैं।
   - **कृषि क्षेत्र में :** किसानों के लिए हिंदी भाषी एआई सिस्टम (जैसे किसान सुझावक) मौसम पूर्वानुमान, कीट प्रबंधन और फ़सल बाज़ार मूल्यों की वास्तविक समय में जानकारी दे सकते हैं। केरल में 'कृषिगुरु' इसका उदाहरण है।
   - **सरकारी सेवाओं में :** चैटबॉट्स जैसे भारत सरकार का 'उमंग', पेंशन, आधार कार्ड, राशन कार्ड आदि हेतु सहायता प्रदान करते हैं। यह वरिष्ठ नागरिकों के लिए भी उपयोगी है, जो ई-गवर्नेंस पोर्टल्स का उपयोग नहीं कर पाते।
2. **शिक्षा में नवाचार :** हिंदी माध्यम के शिक्षण संस्थानों में एआई की भूमिका को निम्नलिखित तरीकों से उत्तम किया जा सकता है:
   - **इंटरैक्टिव वर्चुअल शिक्षक :** आईआईटी मद्रास द्वारा विकसित "ShikshaGPT" जैसे टूल्स हिंदी में छात्रों के प्रश्नों का तत्काल समाधान दे सकते हैं। ये छात्रों की समझ के अनुसार विषयवस्तु को समझा सकते हैं।
   - **स्वचालित मूल्यांकन प्रणाली :** हिंदी निबंधों और उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करने के लिए एआई मॉडल्स (जैसे BERT हिंदी वेरिएंट) का उपयोग किया जा सकता है। यह शिक्षकों के कार्यभार को 40% तक कम कर सकता है, जैसा कि NCERT की 2022 की रिपोर्ट में उल्लेखित है।
   - **भाषा सीखने के एप्लिकेशन :** डुओलिंगो जैसे उपकरण हिंदी-अंग्रेज़ी अनुवाद अभ्यासों के लिए एनएलपी का उपयोग करते हैं। ऐसे टूल्स अन्य भारतीय भाषाओं को सीखने में भी सहायक हैं।
   - डिजिटल शिक्षण प्लेटफ़ॉर्म्स (जैसे दीक्षा) पर हिंदी में स्वचालित पाठ्य-सामग्री, इंटरैक्टिव शिक्षण बॉट्स और भाषा अनुवादक छात्रों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुलभ बना सकते हैं।

तालिका 2 : हिंदी-अनुकूल शैक्षणिक एआई टूल्स की तुलना

टूल	कार्यक्षमता	हिंदी अनुकूलता	प्लान
Jenni AI	लेखन सहायक	सीमित	Free/Paid
Grammarly	व्याकरण सुधार	सीमित	Free/Paid
QuillBot	पुनर्लेखन, संक्षेपण	आंशिक	Free/Paid
ChatGPT	बहुउद्देश्यीय संवाद	अच्छा (GPT-4)	Free/Paid

CopyAI	रचनात्मक लेखन	सीमित	Free/Paid
Google Bard	रियल टाइम डेटा, अनुवाद	उच्च	Free
Doctrina AI	नोट्स, क्विज़ निर्माण	अच्छा	Free/Paid
Tutor AI	पर्सनल ट्यूटर अनुभव	सीमित	Free/Paid
Smodin	ऑटो-संक्षेपण, लेखन	अनुकूल	Free/Paid
Notion AI	डॉक्यूमेंटेशन, संगठन	आंशिक	Free/Paid
Writesonic	विज्ञापन/ब्लॉग लेखन	हिंदी आउटपुट	Free/Paid
Lumen5	वीडियो प्रस्तुति	हिंदी स्वीकार्य	Free/Paid
SlidesAI	प्रजेंटेशन निर्माण	हिंदी स्वीकार्य	Free/Paid

3. **अनुवाद और न्याय-प्रणाली :** भारतीय न्याय-प्रणाली में लंबित 4 करोड़ से अधिक मामलों के समाधान में हिंदी एआई टूल्स महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं:
    - **स्वचालित कानूनी अनुवाद:** AI4Bharat के 'IndicTrans' जैसे मॉडल्स अंग्रेज़ी कानूनी दस्तावेज़ों का हिंदी में शुद्ध अनुवाद कर सकते हैं [AI4Bharat Project]। यह विशेष रूप से उन वकीलों और न्यायाधीशों के लिए उपयोगी है, जो अंग्रेज़ी में पारंगत नहीं हैं।
    - **वर्चुअल कोर्ट प्रक्रियाएँ:** हिंदी स्पीच-टू-टेक्स्ट टूल्स (जैसे Bhashini ASR) कोर्ट कार्यवाही को वास्तविक समय में ट्रांसक्राइब कर सकते हैं। सुप्रीम कोर्ट के 2023 के एक प्रयोग में यह पाया गया कि इससे केस प्रोसीडिंग्स की अवधि 30% तक कम हो सकती है।
    - **कानूनी सहायता चैटबॉट्स:** नेशनल लीगल सर्विसेज़ अथॉरिटी द्वारा निर्मित 'न्याय मित्र' बॉट हिंदी में कानूनी सलाह प्रदान करता है। यह महिलाओं और गरीबों को घरेलू हिंसा, भूमि-विवाद जैसे मुद्दों में निःशुल्क कानूनी जानकारी दे सकता है।

इन संभावनाओं के साथ ही, सरकारी नीतियों और निजी क्षेत्र के निवेश से यह क्षेत्र और अधिक गतिशील हो सकता है। हालाँकि, इन्हें साकार करने के लिए उच्च गुणवत्ता वाले हिंदी डेटासेट्स और कम्प्यूटेशनल संसाधनों की आवश्यकता होगी, जिस पर वर्तमान में TDIL और AI4Bharat जैसे संगठन कार्य कर रहे हैं [TDIL Annual Report, 2022]।

(ख) समाधान

1. **ओपन-सोर्स हिंदी डेटा को बढ़ावा :** हिंदी एनएलपी के विकास में सबसे बड़ी बाधा उच्च गुणवत्ता वाले विविध और व्यापक डेटासेट्स की कमी है। इस समस्या के समाधान हेतु निम्नलिखित उपाय कारगर हो सकते हैं:
    - **सरकार-शिक्षण संस्थान सहयोग :** भारत सरकार के टीडीआईएल विभाग और आईआईटी/आईआईआईटी जैसे प्रमुख संस्थानों को संयुक्त रूप से 'राष्ट्रीय हिंदी कॉर्पस परियोजना' शुरू करनी चाहिए। इसके तहत विभिन्न क्षेत्रों (चिकित्सा, कानून, शिक्षा) के हिंदी वाक्यों का संग्रह, मानव-एनोटेटेड डेटा (POS टैगिंग, नामित इकाई चिह्नांकन) और बहु-विषयक शब्दकोश तैयार किए जाएँ।
    - **सार्वजनिक भागीदारी मॉडल :** विकिपीडिया की तरह 'भारतीय भाषा समुदाय' बनाया जा सकता है, जहाँ सभी हिंदी टेक्स्ट/ऑडियो डेटा योगदान कर सकें और क्राउडसोर्सिंग के माध्यम से डेटा लेबलिंग हो। योगदानकर्ताओं को डिजिटल बैज/प्रोत्साहन भी दिए जा सकते हैं।
    - **ओपन डेटा रिपॉज़िटरी :** आईआईटी हैदराबाद के 'इंडिक कॉर्पस' की तर्ज़ पर एक केंद्रीय स्टोरेज विकसित हो, जिसमें सभी हिंदी एनएलपी डेटासेट्स एकीकृत हों, API एक्सेस के माध्यम से शोधकर्ताओं को उपलब्ध हों और CC-BY लाइसेंस के तहत डेटा साझा किया जाए। उदाहरणार्थ फ़िनलैंड की 'स्पीच फ़िन' परियोजना ने 2 वर्षों में 7,000+ घंटे का ओपन सोर्स स्पीच डेटा तैयार किया - इसी मॉडल को हिंदी के लिए अपनाया जा सकता है।
2. **बहुभाषी मॉडल्स का हिंदीकरण :** हिंदी और उसकी बोलियों (ब्रज, अवधी, भोजपुरी) के लिए एआई मॉडल विकसित करने हेतु निम्न सहायक हो सकते हैं:

- **एडेप्टिव ट्रांसफर लर्निंग :** मेटा के एनएलएलबी (No Language Left Behind) मॉडल की तर्ज़ पर हिंदी-अंग्रेज़ी समानांतर कॉर्पस पर प्री-ट्रेनिंग, क्षेत्रीय बोलियों के लिए फ़ाइन-ट्यूनिंग और डोमेन-विशिष्ट (कृषि, चिकित्सा) अनुकूलन किया जा सकता है।
- **यूनिफ़ाइड टोकनाइज़ेशन:** गूगल के mT5 मॉडल की भाँति हिंदी-क्षेत्रीय भाषाओं के लिए संयुक्त शब्दावली व स्क्रिप्ट-फ़्री इनपुट/आउटपुट निर्मित और डायलेक्ट-अवेयर एम्बेडिंग्स तैयार हो।
- **लो-रिसोर्स अनुकूलन :** माइक्रोसॉफ़्ट के इंडिक ट्रांसफ़ॉर्मर प्रोजेक्ट जैसी सेमी-सुपरवाइज़्ड लर्निंग तकनीकों का उपयोग, बहुभाषी बैकट्रांसलेशन द्वारा डेटा वृद्धि और टीचर-स्टूडेंट मॉडल आर्किटेक्चर अपनाना। उदाहरणार्थ आईआईटी बॉम्बे द्वारा निर्मित 'इंडिक बर्ट' ने हिंदी और 11 अन्य भारतीय भाषाओं के लिए शब्द एम्बेडिंग्स तैयार किए हैं। [Hugging-Face Indic Models]।
- **बहु-भाषाई और बहु-शैली कॉर्पस :** केवल हिंदी ही नहीं, बल्कि हिंदी की बोलियों और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच के अंतर्संबंधों को दर्शाने वाले बहु-भाषाई कॉर्पस का निर्माण हो। यह एआई मॉडल्स को कोड-स्विचिंग (एक वाक्य में कई भाषाओं का उपयोग) और भाषाई मिश्रण को बेहतर ढंग से समझने में सक्षम करेगा। इसके अतिरिक्त, विभिन्न शैलियों (जैसे औपचारिक, अनौपचारिक, साहित्यिक, तकनीकी, सोशल मीडिया) से डेटा संग्रह भी हो।
- **अनुकूलित और प्रासंगिक मॉडल** : एआई मॉडल्स को इस तरह से निर्मित किया जाना चाहिए कि वे विशिष्ट क्षेत्रीय बोलियों या उपयोग के लिए अनुकूलित हो सकें। इसमें 'डोमेन एडेप्टेशन' और 'लोकलइज़ेशन' तकनीक शामिल हैं, जो मॉडल्स को नए भाषाई इनपुट के साथ सीखने को बेहतर बनाता है।

3. **नीतिगत सुधार :** हिंदी को एआई के क्षेत्र में प्रमुखता दिलाने हेतु नीति स्तर पर निम्न कदम उठाए जा सकते हैं -
   - **राष्ट्रीय एआई भाषा नीति :** हिंदी को 'प्राथमिक एआई भाषा' का दर्जा देने संबंधी प्रावधान कर सभी सरकारी एआई परियोजनाओं में हिंदी इंटरफ़ेस अनिवार्य करें और भाषा प्रौद्योगिकी अनुसंधान किए जाएँ।
   - **मानकीकरण एवं प्रमाणन :** बीआईएस (Bureau of Indian Standards) द्वारा हिंदी एनएलपी मानकों का निर्धारण, हिंदी एआई अनुपालन प्रमाण-पत्र और सरकारी खरीद में हिंदी-अनुकूल सॉफ़्टवेयर को प्राथमिकता मिले।
   - **शिक्षा :** एआई/एमएल पाठ्यक्रमों में हिंदी एनएलपी को अनिवार्य मॉड्यूल बनाना, हिंदी टेक्नोलॉजी सेंटर्स ऑफ़ एक्सीलेंस की स्थापना और भाषा प्रौद्योगिकी में पीएचडी फ़ेलोशिप कार्यक्रम शुरू हों।
   - **उद्योग :** हिंदी एआई स्टार्टअप्स के लिए कर रियायत, भाषाई डेटासेट्स को 'राष्ट्रीय डिजिटल संसाधन' घोषित करना और सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP) मॉडल को बढ़ावा देना। उदाहरणार्थ यूरोपीय संघ की "डिजिटल डेक्ड" नीति के तहत सभी सदस्य देशों ने अपनी-अपनी भाषाओं के लिए समर्पित एआई रणनीतियाँ बनाई हैं।

चित्र 1 : हिंदी एआई विकास की बहु-स्तरीय कार्य-योजना

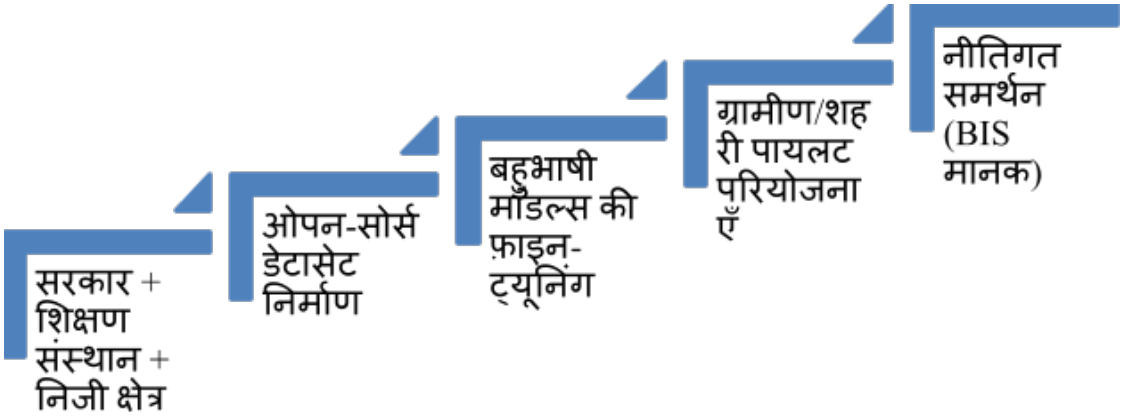

चित्र 2: रणनीतियाँ

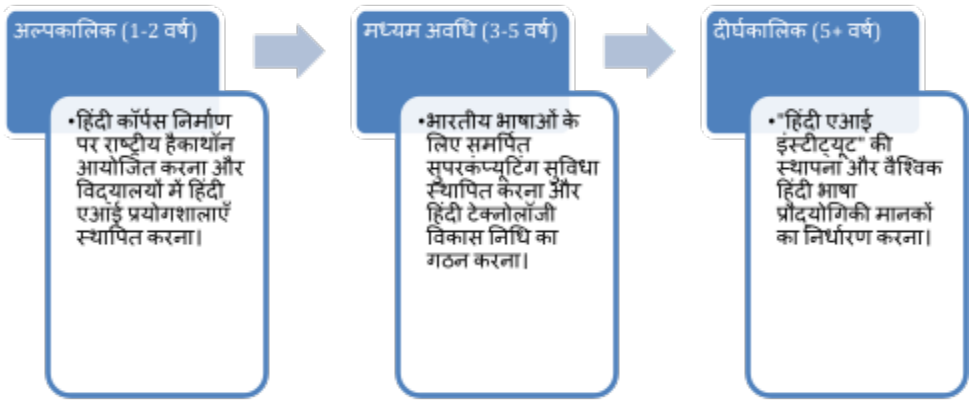

इन उपायों के कार्यान्वयन से हिंदी न केवल भारत बल्कि वैश्विक डिजिटल पारिस्थितिकी तंत्र में एक प्रमुख भाषा के रूप में उभर सकती है।

हिंदी भाषा के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित संसाधन धीरे-धीरे विकसित हो रहे हैं, किंतु गुणवत्ता, मानकीकरण और डेटासेट की उपलब्धता जैसी बाधाएँ अब भी विद्यमान हैं। यदि नीति स्तर पर ठोस पहल की जाए, उच्च गुणवत्ता वाले ओपन-सोर्स डेटासेट बनाए जाएँ और विश्वविद्यालयों में हिंदी एनएलपी पाठ्यक्रम चलाए जाएँ, तो हिंदी वैश्विक स्तर पर तकनीकी भाषाओं की अग्रणी पंक्ति में शामिल हो सकती है।

भविष्य के शोध के लिए निम्न आवश्यक हैं -

- **भावनात्मक विश्लेषण :** हिंदी सोशल मीडिया डेटा पर विशेषज्ञता वाले मॉडल्स।
- **बहु-मॉडल एआई :** टेक्स्ट, स्पीच और इमेज का संयुक्त प्रसंस्करण।
- **अंतरराष्ट्रीय सहयोग :** यूनेस्को की 'डिजिटल भाषाई विविधता' पहल से जुड़ाव।

संदर्भ-सूची :

1. Aggarwal, C. C., Machine Learning for Text (2018), Springer
2. Bhattacharyya, P., Indic Language Computing: History and Development, महत्त्व (2017), Oxford University Press
3. Joshi, A., et al., Natural Language Processing for Indian Languages (2020), Springer
4. Jurafsky, D., & Martin, J. H., Speech and Language Processing (3rd ed., 2020), Pearson
5. Kulkarni, M., & Sharma, R., Computational Linguistics and Hindi Language Processing (2019), Cambridge Scholars Publishing
6. Manning, C. D., & Schütze, H., Foundations of Statistical Natural Language Processing (1999), MIT Press
7. Searle, J., The Rediscovery of the Mind (1992), MIT Press
8. COLIN., Patel, A., & Joshi, N, "Named Entity Recognition for Hindi Using Deep Learning" (2020)
9. Singh, V., & Choudhury, P, IEEE Transactions on एनएलपी (2018), "Neural Machine Translation for Hindi-English", Vol. 12, no. 3
10. Sharma, D., & Bali, K, Interspeech (2019), "Building Speech Recognition Systems for Low Resource Indian Languages"
11. Kumar, R., et al., "Hindi Natural Language Processing : Challenges and Opportunities"(2015), Proceedings of ACL-IJCएनएलपी
12. LREC, Mishra, P., et al, "Evaluation of Hindi Word Embeddings for एनएलपी Tasks" (2022)
13. Ministry of Electronics and IT, National Language Translation Mission: Bhashini Project Report, Govt. of India, (2021)

14. NITI Aayog, National Strategy for Artificial Intelligence: Language Technology Focus, (2020)
15. TDIL, Annual Report on Indian Language Technology Development, (2022)
16. AI4Bharat Project (n.d.), Retrieved June 29, 2025, from https://ai4bharat.org
17. Analytics India Magazine (2021), "Challenges in Hindi एनएलपी", Retrieved June 29, 2025, from https://analyticsindiamag.com/challenges-in-hindi-एनएलपी
18. Bhashini Platform (n.d.), Retrieved June 1, 2025, from https://bhashini.gov.in
19. Google AI Blog (2022), "mT5: Multilingual T5." Retrieved May 4, 2025, from https://ai.googleblog.com/2022/05/mt5-multilingual-t5.html
20. Google Research Blog, "Zero-shot Learning for Indian Languages", (2023)
21. Hindi Dependency Treebank (IIIT Hyderabad). (n.d.)
22. Hindi WordNet (n.d.), Retrieved June 29, 2025, from http://www.cfilt.iitb.ac.in/wordnet/webhwn/
23. HuggingFace Indic Models (n.d.), Retrieved May 3, 2025, from https://huggingface.co/ai4bharat
24. Indic एनएलपी Library (n.d.), Retrieved May 2, 2025, from https://github.com/anoopkunchukuttan/indic_एनएलपी_library
25. Towards Data Science (2022), "Building Hindi Chatbots"

writerchandresh@gmail.com

कृत्रिम मेधा और हिंदी भाषा का भविष्य

- डॉ. साकेत सहाय
हैदराबाद, भारत

कृत्रिम मेधा (आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस) और हिंदी भाषा का भविष्य एक अत्यंत रोचक और महत्त्वपूर्ण विषय है, जो तकनीक और भाषा के संगम को दर्शाता है। आज के तकनीकी युग में आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस या कृत्रिम मेधा ने जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है। जीवन का शायद ही ऐसा कोई क्षेत्र है, जहाँ आज कृत्रिम मेधा (एआई) का दखल नहीं है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी से लेकर लेखन और वैचारिकी तक एआई हमारे जीवन का अनिवार्य हिस्सा बन चुकी है। ऐसे में हिंदी भला इससे कैसे अछूती रह सकती हैं? वैसे हिंदी भाषा भी एआई के असर से मुक्त नहीं है और विशेषज्ञों के अनुसार एआई तकनीक न केवल हिंदी के विकास को गति प्रदान करेगी, बल्कि उसे नई वैश्विक पहचान दिलाने में भी सहायक होगी।

कृत्रिम मेधा वह तकनीक है, जो मशीनों को मानव जैसी सोचने और कार्य करने की क्षमता देती है। उदाहरणस्वरूप, वॉइस असिस्टेंट, चैटबॉट्स, अनुवाद टूल्स और रोबोटिक्स – ये सब एआई के अनुप्रयोग हैं। एआई का उपयोग शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यापार और संचार जैसे क्षेत्रों में तेज़ी से बढ़ रहा है। कृत्रिम मेधा की सहायता से हिंदी भाषा में रोज़गार की नई राह भी खुलेगी। नई तकनीक हिंदी भाषा को प्रयोग-प्रसार के स्तर पर सहज बनाएगी, बल्कि इस डिजिटल दौर में उसे बेहतर समन्वय के भी योग्य बनाएगी। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा और एआई बेहद महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कृत्रिम मेधा के साथ भाषा-प्रौद्योगिकी के विकास की बात की गई है और इस आधार पर देश की शिक्षा में गुणात्मक बदलाव की उम्मीद भी है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी एआई को भारतीय संदर्भों के अनुरूप विकास और भारतीय भाषिक तथा सामाजिक विविधता के अनुरूप उपयोगी बनाने का आह्वान करते हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के शब्दों में - **''हमारी शिक्षा प्रणाली अब तक 'क्या सोचें पर केन्द्रित रही है, लेकिन नई नीति 'कैसे सोचें' पर ज़ोर देती है। आज हम जिस समय में हैं उसमें जानकारी और संसाधन की कोई कमी नहीं है। बच्चों को सीखने में मदद करने के लिए नई शिक्षा नीति में इन्क्वायरी बेस्ड, डिस्कवरी बेस्ड और एनालिसिस-बेस्ड तरीकों पर ज़ोर देने का प्रयास किया गया है।''** इसमें एआई की भूमिका अहम् है।

कृत्रिम मेधा की भूमिका (हिंदी के विशेष संदर्भ में)

भाषा को आधुनिक प्रयोजनों के लिए तैयार करना ही भाषिक आधुनिकीकरण है। भाषा का प्रयोजन व विस्तार यथार्थ से जुड़ा होता है और राष्ट्र व समाज एक निश्चित योजना के तहत ही विविध आवश्यक प्रयोगों या प्रयुक्ति के माध्यम से यह विस्तार करती है। भाषा की सार्थकता भी तभी है, जब वह लोक के व्यापक हितों की पूर्ति करे। प्रौद्योगिकी के प्लेटफ़ॉर्म पर आरूढ़ भाषा केवल प्रबुद्ध वर्ग का ही भला नहीं करती, अपितु जन-साधारण के भी काफ़ी काम आती है। हिंदी ने तकनीक के साथ कंधे-से-कंधा मिलाने की सामर्थ्य विकसित कर ली है और इसके नित नए-नए अनुप्रयोग भी देखने को मिल रहे हैं। कृत्रिम मेधा ने यह सम्भव कर दिखाया है कि कोई एक भाषा जानने पर भी आप सब भाषा-भाषियों के बीच संवाद, कारोबार कर सकते हैं। इसमें यह उल्लेखनीय है कि हिंदी प्रयोक्ताओं की संख्या ही आज इस भाषा की सबसे बड़ी शक्ति है, जो अंतर्राष्ट्रीय कारोबार में हिंदी को हमेशा केंद्रीय भूमिका में रखेगी।

भारत योग, आयुर्वेद, गणित, भाषा इत्यादि में प्राचीनकाल से ही विश्व गुरु रहा। वसुधैव कुटुम्बकम् की उदार भावना से ही हमने 'शून्य' और संख्याओं का ज्ञान पूरी दुनिया को दिया है। जब खगोल अध्ययन का दुनिया में कोई वैज्ञानिक ढाँचा तक नहीं था, उस समय भी हम ज्योतिष-शास्त्र के द्वारा सूर्य-ग्रहण, चंद्र-ग्रहण, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि की सटीक भविष्यवाणी कर लेते थे। हल्दी, नीम, पीपल, तुलसी, बरगद एवं जड़ी बूटियाँ, जिनके आयुर्वेदिक प्रयोग से हम पुरातन काल से परिचित थे, को हमने पूरी दुनिया को सिखाया, कोरोना काल में इसे दुनिया ने देखा। यह तब और प्रतिध्वनित हुआ जब ब्राजील के राष्ट्रपति ने प्रभु हनुमान जी की संजीवनी बूटी लाते हुए एक पोस्टर चित्रित कर भारत के सहयोग हेतु आभार व्यक्त किया था। समय की माँग है कि सरकार और समाज मिलकर पुरातन ग्रंथों, श्रुतियों में निहित ज्ञान-विज्ञान और लोकविद्याओं को संरक्षित करें। यह काम हम संस्कृत के सरलतम रूप 'हिंदी' में ही सहजता से कर सकते हैं। कृत्रिम मेधा के द्वारा इस ज्ञान को हिंदी में संजोकर न केवल हम उसे पुनर्स्थापित कर सकते हैं, अपितु बहुउद्देश्यीय भी बना सकते हैं।

एआई के अनुप्रयोग से आने वाले कुछ वर्षों में हिंदी भाषा

के प्रचार-प्रसार में क्रांतिकारी बदलाव देखने को मिल सकता है। आज चैट जीपीटी (ChatGPT) नामक आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस अनुप्रयोग ने पूरी दुनिया का ध्यान कृत्रिम मेधा की आश्चर्यजनक शक्तियों की ओर बरबस खींचा है। मशीनें अब न केवल गणना कर सकती हैं, बल्कि सोचने, समझने, बोलने और सीखने में भी सक्षम हो रही हैं। एआई के प्रयोग से हिंदी दुनिया से अधिक बेहतर तरीके से जुड़ सकेगी। हिंदी में लिखित या वीडियो कंटेंट या शोध-कार्य दूसरी भाषाओं के लोगों तक सहजता से पहुँच सकेगा, क्योंकि अब इसका त्वरित एवं सटीक अनुवाद सुलभ एवं संभव होगा। जेनरेटिव एआई और गूगल तथा अन्य टूल्स के सटीक अनुवाद के कारण दूसरी भाषाओं में हो रहे बेहतर काम के लिए अब हिंदी के पाठकों को अनुवाद की प्रतीक्षा नहीं करनी होगी। अब वे स्वयं अपनी पसंदीदा भाषा की कृतियों का अनुवाद अपने स्क्रीन पर पढ़ सकते हैं।

आज कृत्रिम मेधा हम सभी के जीवन के हर पहलू को प्रभावित कर रही है और ऐसा माना जा रहा है कि अगले एक-डेढ़ दशक में कृत्रिम मेधा के माध्यम से हमारी दुनिया का कायाकल्प होने वाला है। आज के दौर में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, बाज़ार और बदलाव एक वास्तविकता है और उनके संग-संग चलने में ही हम सबका और हमारी भाषाओं का भी लाभ है।

कृत्रिम मेधा 1950 के दशक के मध्य से कम्प्यूटर विज्ञान में शोध का विषय रहा है। इसकी शुरुआत आर्टिफ़िशियल न्यूरल नेटवर्क के लिए 1958 में पर्सेपट्रॉन एलॉगरिद्म के आविष्कार के साथ ही हो गई थी। तर्क, सोच, बोली, धारणा, प्रतिक्रिया और संवाद जैसी मानवीय समझ की बराबरी करने वाली मशीन विकसित करना लम्बे समय से शोधकर्ताओं का उद्देश्य रहा है और कृत्रिम मेधा पर ज़ोर इसी का परिणाम है। जब मानवीय समझ की बराबरी की बात आती है, तब भाषा की महत्ता का प्रश्न स्वत: उठता है। भारत के संदर्भ में कृत्रिम मेधा की सफलता काफ़ी हद तक इसके हिंदी एवं भारतीय भाषाओं के साथ धनात्मक सम्बन्धों पर टिकी है। इस धनात्मक संबंध में भाषा की क्या भूमिका होगी, इसे प्रस्तुत आलेख में एआई और हिंदी भाषा के विभिन्न पहलुओं के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे कि दुनिया की प्रमुख भाषाओं में से एक, हिंदी का नई तकनीक के साथ क्या भविष्य है। क्या हिंदी भाषा आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस के सहारे नई ऊँचाइयों तक पहुँचेगी?

कृत्रिम मेधा और भाषा (हिंदी) : आवश्यकता एवं संभावना

भारत में करोड़ों लोग हिंदी बोलते और समझते हैं। एआई के माध्यम से इन लोगों को तकनीक से जोड़ा जा सकता है।

विश्व में कृत्रिम मेधा का सबसे पहले प्रयोग संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा किया गया था। कृत्रिम मेधा प्रौद्योगिकी का यह अनुप्रयोग संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा उस समय किया गया था, जब रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच शीत युद्ध चल रहा था। तो ऐसे में, सुरक्षा के दृष्टिकोण से संयुक्त राज्य अमेरिका ने रूसी भाषा को अंग्रेज़ी भाषा में अनुदित करने के लिए इस तकनीक का विकास किया था। आज भाषाई बाधाओं को दूर करने में कृत्रिम मेधा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। फ़ेसबुक की स्वामित्व वाली कम्पनी मेटा 'नो लैंग्वेज लेफ़्ट बिहाइंड', यूनिवर्सल स्पीच ट्रांसलेटर आदि परियोजनाओं के माध्यम से भाषाई बाधाओं को दूर करने का प्रयास कर रही है।

कृत्रिम मेधा के प्रयोग द्वारा नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेस (प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण) के माध्यम से वार्तालाप को यथासंभव मानवीय और आत्मीय बनाने के उद्देश्य से किया जाता है, ताकि ग्राहक को मशीन के साथ संवाद में वास्तविक जुड़ाव का अनुभव हो। आत्मीयता के लिए ग्राहक की भाषा में संवाद ज़रूरी है, इसलिए भारत में कृत्रिम मेधा से संचालित जनोन्मुखी प्रणालियों के लिए हिंदी उपयुक्त विकल्प है। आज गूगल, फ़ेसबुक, ई-कामर्स वेबसाइट की कृत्रिम मेधा हमारी पूर्व की गतिविधियों के आधार पर हमारी पसंद या नापसंद का सहज अनुमान लगा लेती है। कृत्रिम मेधा पूर्व के अनुभवों, व्यवहार विश्लेषण और पैटर्न की पहचान के द्वारा एक विशिष्ट एल्गोरिद्म पर कार्य करती है, अतएव, वेब पर हिंदी का जितना अधिक कंटेट होगा, कृत्रिम मेधा के साथ हिंदी उतनी ही प्रभावी तरीके से कार्य करेगी। आज विभिन्न संगठनों द्वारा ग्राहकों के मुद्दों को प्रभावी ढंग से हल करने के लिए एआई चैटबॉट का उपयोग किया जा रहा है, जिससे हिंदी प्रयोग की नई संभावनाएँ उत्पन्न हुई हैं। भारत में कृत्रिम मेधा का भविष्य सूचना, ज्ञान और आँकड़ों पर आधारित है और इन सब के उपयोग में हिन्दी की भूमिका है।

हिंदी अपने भाषाई गुण, व्याकरणिक गुण, संस्कृत से निकटता, देवनागरी लिपि इत्यादि की वजह से एक संपन्न भाषा है। ये सभी गुण इसे कृत्रिम मेधा प्रौद्योगिकी की भाषा के रूप में समृद्ध सिद्ध करते हैं, वहीं इसके साथ कुछ जटिलताएँ भी हैं। यथा, भारत में अलग-अलग राज्यों में भाषाओं की विभिन्न डायलेक्ट्स होती हैं। इससे अनुवाद करने में चुनौतियाँ आती हैं, क्योंकि एक भाषा का अर्थ दूसरी भाषा में सही रूप से प्रकट नहीं हो सकता। हिंदी अन्य भाषाओं की तरह अपने स्वयं के व्याकरणिक नियमों, वाक्य-

संरचनाओं और शब्दावली के साथ आती है। जबकि अंग्रेज़ी काफ़ी हद तक विश्लेषणात्मक है, हिंदी एक सिंथेटिक भाषा है, जिसमें समृद्ध रूपात्मक संरचनाएँ हैं। इसका मतलब है कि शब्द, काल, लिंग और संख्या के आधार पर अर्थ बदल सकते हैं, जिससे एआई एल्गोरिद्म के लिए उन्हें संसाधित करना और समझना चुनौतीपूर्ण हो जाता है।

प्रौद्योगिकी की अपेक्षाओं के अनुरूप हिंदी भाषा का प्रयोजनमूलक स्वरूप उभरकर आया है, जिससे हिंदी भाषा का विकास, व्यवहार और शिक्षण-प्रशिक्षण अनिवार्य हो गया है। कंवर्जेंस के बहुलप्रयोग से भी हिंदी का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। संचार माध्यमों के क्षेत्र में हिंदी भाषा की प्रौद्योगिकी विशेषता संस्थापित हो चुकी है। सूचना प्रौद्योगिकी के विकसित होने से हिंदी भी समान रूप से विकसित हो रही है। कहा गया है - 'सही चिन्तन की भाषा सदा अपनी ही होती है। दूसरों की समृद्धि से समृद्ध भाषा को व्यवहार में लाकर उसे मौलिक तथा स्वतंत्र चिन्तन की भाषा के रूप में कतई प्रयोग नहीं किया जा सकता।

कृत्रिम मेधा से हिंदी कैसे जुड़े

स्वामी विवेकानंद कहते हैं - ''एक राष्ट्र उसी अनुपात में विकास करता है, जिस अनुपात में वहाँ की जनता शिक्षित होती है।" स्वामी जी का यह कथन किसी भी देश या समाज के लिए शिक्षा की अहम् भूमिका को सार्थक करता है। भारत सरकार की नई शिक्षा-नीति में सैद्धांतिक ज्ञान के साथ-साथ शिक्षा के इन तीनों मूल तत्त्वों को भी महत्त्व दिया गया है। इसमें भाषा और प्रौद्योगिकी की महत्त्वपूर्ण भूमिका स्थापित है।

कृत्रिम मेधा का एक सिरा लगातार भाषा के साथ जुड़ा होता है, क्योंकि बिना भाषा के ज्ञान के अभिव्यक्ति की क्षमता प्रभावित होती है। इसमें संसार भर की सूचनाओं को कृत्रिम मस्तिष्क में निवेशित करने और समय पर उसको व्यवहार में लाने के लिए एक भाषा की आवश्यकता होगी। आज समाज के हर वर्ग तथा हर आयु के लोग कृत्रिम मेधा के विभिन्न पक्षों के विषय में अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं। यहीं पर हिंदी एवं भारतीय भाषाओं की सबसे अधिक आवश्यकता है।

यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि हिंदी भाषा के लिए कृत्रिम मेधा की क्या प्रासंगिकता है और वह इस भाषा के भविष्य को किस तरह प्रभावित कर सकती है? इसका उत्तर समझने के लिए हमें हिंदी की वर्तमान चुनौतियों, अवसरों तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता में निहित शक्तियों पर विचार करने की आवश्यकता है। आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस का अर्थ तकनीक की उस शक्ति से है, जिसका प्रयोग करते हुए वह इंसानों की ही तरह (किंतु उनकी तुलना में बहुत बड़े पैमाने पर) सीख सकती है, विशाल स्तर पर आँकड़ों का विश्लेषण कर सकती है, चीज़ों पर निगरानी (ऑब्ज़र्वेशन) कर सकती है, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का मंथन कर सकती है, अपनी क्षमताओं में वृद्धि कर सकती है, निर्णय ले सकती है और परिणाम दे सकती है। यह सामान्य प्रौद्योगिकी से अलग है, जो पहले से निर्धारित काम करती है, अपनी सीमाओं में रहती है और पहले से दिए गए निर्देशों (प्रोग्रामिंग) के आधार पर परिणाम देती है। वह स्वयं को बदलती नहीं है और स्वयं को निरंतर बेहतर बनाने में सक्षम नहीं है।

कृत्रिम मेधा हिंदी के स्थायी भविष्य को सुनिश्चित कर सकती है। यूनेस्को ने अपनी एक रिपोर्ट में कहा था कि दुनिया की 7200 भाषाओं में से लगभग आधी इस शताब्दी के अंत तक विलुप्त हो जाएँगी। अगर हम हिंदी को विलुप्त होने वाली इन भाषाओं की सूची में नहीं देखना चाहते, तो हमें कृत्रिम मेधा को खुले दिल से अपनाना चाहिए। वजह यह कि यह प्रौद्योगिकी भाषाओं के बीच दूरियाँ समाप्त करने में सक्षम है।

जिस अविश्वसनीय और चमत्कारिक अंदाज़ में कृत्रिम मेधा चीज़ों को बदल रही है, उसे देखते हुए अगले एक-दो दशकों में हम भाषा-निरपेक्ष विश्व की ओर बढ़ सकते हैं। ऐसा विश्व जिसमें हिंदी जैसी भाषाएँ बोलने-लिखने वाला व्यक्ति अवसरों से वंचित न हो, क्योंकि प्रौद्योगिकी एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद को इतना सटीक, सहज, सरल तथा सार्वत्रिक बना सकती है कि आप अंग्रेज़ी की सामग्री को हिंदी में पढ़ सकेंगे और हिंदी की सामग्री को अंग्रेज़ी में।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का दूसरा बड़ा प्रभाव होगा, अन्य प्रमुख भाषाओं के साथ हिंदी के गहरे संबंधों का विकसित होना। प्रेमचंद, रवींद्रनाथ ठाकुर, सुब्रमण्य भारती, रामधारी सिंह दिनकर, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', महादेवी आदि के साहित्य से लेकर रामायण, महाभारत, श्रीमद्भग्वद्गीता, वेद, पुराण, उपनिषद् जैसे ग्रंथ, आयुर्वेद-योग जैसी ज्ञान-संपदा, हमारी पत्रकारिता और विश्वविद्यालयों के शोध आदि दुनिया भर में गैर-हिंदी पाठकों तक पहुँच सकते हैं। यह हमारी साहित्यिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक तथा शैक्षणिक संपदा को वैश्विक पहचान दिलाने में योगदान देगा। इतना ही नहीं, बल्कि इससे कहीं अधिक आवश्यक है विश्व के ज्ञान, शोध, साहित्य का हिंदी भाषी लोगों तक पहुँचना। हिंदी में विज्ञान, तकनीक, चिकित्सा, अर्थव्यवस्था आदि विषयों पर विश्वस्तरीय

सामग्री की कमी है।

हिंदी में शिक्षण-सामग्री तैयार करना आसान तथा तेज़ हो जाएगा। आज केंद्र सरकार तथा कुछ राज्य सरकारों के निर्देश पर हिंदी में पाठ्य-सामग्री तैयार करने के लिए कृत्रिम मेधा का प्रयोग हो रहा है। यह प्रक्रिया समय के साथ सटीक और तीव्र होती चली जाएगी। अंग्रेज़ी-फ्रेंच या जर्मन की किताबों को स्कैन करके चंद मिनटों में सीधे हिंदी में अनुवाद करना संभव हो गया है। कल्पना कीजिए कि हम हिंदी में जिन विषयों में अच्छी सामग्री की कमी से परेशान रहे हैं, उन विषयों में अचानक ही दर्जनों या सैकड़ों पुस्तकें उपलब्ध हो जाएँ। हिंदी में पारंपरिक ज्ञान का दस्तावेज़ीकरण आसान हो जाएगा। वाचिक ज्ञान को डिजिटल स्वरूपों में सहेजा जा सकेगा। हिंदी भाषी लोग वैश्विक संस्थानों में पढ़ सकेंगे, भाषाओं की सीमाओं से मुक्त रहते हुए कौशल प्राप्त कर सकेंगे और विश्व को अपनी सेवाएँ दे सकेंगे। ऐसी अकल्पनीय घटनाएँ आने वाले वर्षों में सामान्य परिपाटी बन सकती हैं, यदि हमारी भाषा अपने दौर के इन आधुनिक अनुप्रयोगों को आशंका, उपेक्षा या घृणा की दृष्टि से न देखे, बल्कि उनके प्रति खुला दृष्टिकोण रखे।

हिंदी में कृत्रिम मेधा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य घटित हो रहा है। ध्वनि प्रसंस्करण की बदौलत वाक् से पाठ और पाठ से वाक् (स्पीच टु टेक्स्ट) प्रौद्योगिकी उपलब्ध हो गई है। कंप्यूटर विज़न के कारण हिंदी के दस्तावेज़ों को स्कैन करके उनके पाठ को कंप्यूटर में टाइप किए गए पाठ के रूप में सहेजना संभव हो गया है। डेढ़ सौ से अधिक वैश्विक भाषाओं और बीस से अधिक भारतीय भाषाओं के साथ हिंदी के पाठ का दोतरफ़ा अनुवाद संभव है। अलेक्सा, कोर्टाना, सिरी और गूगल असिस्टेंट जैसे डिजिटल सहायकों के साथ या तो हिंदी में संवाद करना संभव है या इंटरनेट सर्च तथा अनुवाद आदि के लिए उनकी मदद ली जा सकती है। माइक्रोसॉफ़्ट और गूगल जैसी कंपनियों की एपीआई का प्रयोग करके हिंदी में आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस से युक्त एप्लीकेशन बनाना संभव हो गया है। बात चैटजीपीटी तक जा पहुँची है, जो ऐसी कृत्रिम मेधा है, जिसके साथ संवाद किया जा सकता है और अपने प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किए जा सकते हैं।

हिंदी समाज में इस तरह की तकनीकी उपलब्धियों को गिनाने और उन पर प्रसन्न होने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। लेकिन हिंदी, अन्य भारतीय भाषाओं या भारतीय समाज की प्रगति पर इससे कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह प्रभाव तब पड़ेगा जब हम इन उपलब्धियों की जानकारी देने से आगे बढ़ेंगे और इनमें कौशल प्राप्त करेंगे। विश्वविद्यालयी शिक्षा इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। हम कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर आधारित सुविधाओं के कुशल प्रयोक्ता तो बनेंगे ही, उनके विशेषज्ञ, शोधकर्ता और विकासकर्ता (डेवलपर) बनने की तरफ़ आगे बढ़ेंगे। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा था कि भारत दुनिया में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का केंद्र (ग्लोबल हब ऑफ़ आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस) बनने की क्षमता रखता है। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाएँ बोलने वाले हम लोग यह सपना सच करने में मदद कर सकते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी भारत के लिए एक नया अवसर लेकर आई है। उस देश के लिए, जिसकी 65 प्रतिशत आबादी युवाओं की है। ऐसे युवा, जिनके लिए प्रौद्योगिकी कोई पहेली नहीं है, बल्कि उनकी जीवनशैली का हिस्सा है और जो सीखने-सिखाने तथा परिणाम देने की उम्र में हैं। शर्त यह है कि हम उन्हें ऐसा पारिस्थितिकी तंत्र प्रदान करें, जिसमें वे अपनी ही भाषा में कृत्रिम मेधा, डेटा विश्लेषिकी, क्लाउड कंप्यूटिंग तथा इसी तरह के विज्ञान-तकनीक आधारित विषयों में कौशल तथा विशेषज्ञता हासिल कर सकें।

अगर हम ठोस तकनीकी प्रवीणता की ओर बढ़ते हैं, तो कृत्रिम मेधा हमें अब तक की सीमाओं, वैश्विक व भाषाई असमानताओं आदि से मुक्त होकर विकास की नई दौड़ में बढ़त लेने का मौका दे सकती है। वैसे ही, जैसे विनिर्माण (मैन्युफ़ैक्चरिंग) ने चीन की सूरत बदल दी, कृत्रिम मेधा हमारी शक्ल बदलने में सक्षम है। वह यकीनन दुनिया के भविष्य को प्रभावित करेगी।

परंतु इन सभी के बीच सबसे अधिक विचारणीय यह है कि कृत्रिम मेधा के विकास में अधिक-से-अधिक डिजिटल आँकड़ों की आवश्यकता पड़ेगी, जिसमें भाषाई आँकड़े भी शामिल है। पर, इंटरनेट डेटा का अधिकांश हिस्सा गूगल, फ़ेसबुक जैसी अमेरिकी कंपनियों के सर्वर में सुरक्षित है। हमारे देश में अभी तक ऐसा कोई ढाँचा नहीं बन पाया है, जिसमें इतनी बड़ी आबादी का डिजिटल आँकड़ा संग्रहित और उसको समय की माँग के अनुरूप संसाधित और उपयोग किया जा सके। देश की सार्वजनिक और निजी स्वामित्व की हज़ारों वेबसाइटें भी विदेशी सर्वर के सहयोग से चलती हैं, क्योंकि निर्बाध संचालन और कम लागत के स्तर पर ये देश के सर्वर से बेहतर सिद्ध होते हैं। हालाँकि सरकार द्वारा इस दिशा में कानून-निर्माण की पहल ज़रूर हुई है, लेकिन अभी परिणाम को व्यावहारिक बनाना चुनौतीपूर्ण है, जो भारत जैसे देश में कृत्रिम मेधा के भविष्य के लिए बेहद ज़रूरी है।

सूचना-प्रौद्योगिकी के उभार के बाद से डेटा, सूचना और ज्ञान के आपसी संबंधों पर गहरी धुंध छाई हुई है। पर्याप्त ज्ञान के अभाव में हम सूचना को ही ज्ञान मान लेते हैं, जो गलत है और

इस आधार पर कृत्रिम मेधा की कार्य-प्रणाली को नहीं समझा जा सकता। आज हिंदी एवं भारतीय भाषाओं में इसकी विशेष कमी है। हमारी परम्परा में ज्ञान का महत्त्व था, जो व्यावहारिक अनुभवों पर आधारित था। उदाहरण के लिए हम सब तुलसी के महत्त्व से परिचित हैं, स्वस्थ रहने के लिए इसकी पत्तियों को मिलाकर हम सब काढ़ा पीते हैं, साथ ही इस पवित्र पौधे के अन्य लाभों से भी हम सब परिचित हैं।

मशीन को इतना समझाने के लिए ढेर सारे एल्गोरिद्म की आवश्यकता पड़ती है। साथ ही, मनुष्य की ज्ञानेंद्रियों के सापेक्ष मशीन में सेंसर की आवश्यकता भी होती है। मानव-मस्तिष्क जिस तरह उद्दीपन और अनुक्रिया के आधार पर काम करता है, उसी के अनुरूप कृत्रिम मेधा के लिए प्रोग्रामिंग हो रही है। जिस प्रकार मनुष्य भंगिमा की भाषा को ग्रहण करता है, उसी प्रकार एक रोबोट में भी संकेत-भाषा के व्याकरण को समझने का प्रयास हो रहा है, जिसमें कंप्यूटर विज्ञान से लेकर तर्कशास्त्र की भी आवश्यकता पड़ती है। जिस प्रकार आग और धुएँ के संबंध को तर्कशास्त्र से हल किया जाता है, उसी प्रकार लाल संकेत और गाड़ी के रुकने के संबंध को एल्गोरिद्म के माध्यम से जोड़ा जाता है। इसी आधार पर दिल्ली मेट्रो में चालक के बिना भी मेट्रो का संचालन हो रहा है। खेती-सुरक्षा के लिए भी कृत्रिम मेधा से आशा की जानी चाहिए कि वह किसी फ़सल की जिजीविषा और विकास के चरणों के अध्ययन और मौसम की उपयुक्तता के आधार पर किसान के लिए उपयोगी भविष्यवाणी कर दे और किसान अपनी फ़सल के साथ उसी अनुरूप व्यवहार करें। देश की सीमा-सुरक्षा के लिए भी यह अद्वितीय साधन हो सकता है।

कृत्रिम मेधा व ज्ञान के अन्य क्षेत्र में भी हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषओं में तकनीकी सामग्री बहुत सीमित है। कृत्रिम मेधा के क्षेत्र में भी बेहतर प्रगति के लिए यह ज़रूरी है कि भाषिक सहजता के लिए उपयुक्त हिंदी को समतुल्य बनाने की दिशा में कार्य हो। इस क्षेत्र में जर्नल्स, पुस्तकें तथा लेखों के साथ ही अखबारों में भी कृत्रिम मेधा के सम्बन्ध में नियमित स्तम्भ देना होगा। आम तौर पर मीडिया चैनल एवं अखबारों में प्रौद्योगिकी संबंधी लेखों और सूचनाओं का नितान्त अभाव रहता है। हिंदी से मोटे तौर पर देश में 90 करोड़ लोग परिचित हैं। इसके अलावा हिंदी की पहुँच दुनिया भर के 60 देशों तक हो चुकी है तथा विश्व के करीब 200 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। इन सभी के बावजूद, देश के अधिकांश युवाओं के बीच यह सोच विद्यमान है कि हिंदी का हमारे देश में कोई भविष्य नहीं है।

कृत्रिम मेधा की भाषा बनने में हिंदी के समक्ष उपस्थित समस्याओं को दूर करने हेतु सामूहिक प्रयास करना होगा। यथा -

1. भाषा से संबंधित तकनीकी समस्याएँ।
2. पढ़े-लिखे या शैक्षिक जगत् द्वारा हिंदी की घोर उपेक्षा।
3. समुचित मंचों का अभाव।
4. हिंदी भाषा का समुचित मानकीकरण न होना।
5. भाषिक क्षमता के विकास हेतु भाषा-प्रौद्योगिकीय चेतना विकसित करना।

आज के युग में प्रौद्योगिकी के ज्ञान को जनसाधारण तक पहुँचाना बेहद महत्त्वपूर्ण है। केवल इसे कहने या दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि प्रौद्योगिकी को सरल भाषा में जन–जन तक पहुँचाना विदेशी भाषा के द्वारा असंभव है। बल्कि इस हेतु हिंदी को शिक्षण-प्रशिक्षण की सार्थक भाषा बनाने हेतु सरकार को नए कदम उठाने होंगे।

निष्कर्षत: कृत्रिम मेधा हिंदी भाषा को एक नई ऊँचाई पर ले जा सकती है, बशर्ते हम पर्याप्त डेटा, संसाधन और नीति-समर्थन दें। यह तकनीकी क्रांति हिंदी को केवल एक भाषा नहीं, बल्कि एक डिजिटल शक्ति बना सकती है। एआई और हिंदी का संबंध केवल तकनीकी नहीं, सांस्कृतिक और सामाजिक भी है। यदि हम हिंदी को एआई के साथ सही दिशा में जोड़ने में सफल होते हैं, तो यह भाषा भविष्य में न केवल भारत में, बल्कि विश्व मंच पर भी एक सशक्त और प्रभावशाली भूमिका निभा सकती है। इसलिए, यह आवश्यक है कि हम हिंदी में डिजिटल नवाचार को प्रोत्साहन दें और तकनीक के साथ अपनी भाषा की गरिमा बनाए रखें।

भारत सदा से एक बहुभाषी देश रहा है और आगे भी रहेगा। उसे ऐसा रहना भी चाहिए। यह इस देश की खूबसूरती है और ताकत भी है। जो हिंदी कभी ग्रामीण पाठशालाओं में महज अभिव्यक्ति और शास्त्रीय ज्ञान के सामान्य प्रयोजन से पढ़ी-पढ़ाई जाती थी, वह तकनीक का दामन थामकर अपनी वैश्विक उपस्थिति दर्ज करा रही है। हिंदी की अंतरराष्ट्रीय स्वीकृति बढ़ती रहे, इसके लिए देश में आर्थिक, वैज्ञानिक, सामरिक, राजनीतिक और ज्ञान के स्तर पर जितना अधिक सशक्त कार्य होगा, विश्व फलक पर हिंदी का परचम उतनी ही तेज़ी से लहराएगा और इस परचम में समय के साथ कृत्रिम मेधा एवं हिंदी के जुड़ाव से हिंदी शिक्षा, चिकित्सा, सुरक्षा, मौसम विज्ञान और प्रशासन में और अधिक गतिमान होगी। कृत्रिम मेधा और भाषा के भावी अनुप्रयोग में ज्ञान, संस्कार, प्रेम, नैतिकता के विशिष्ट स्थान को समझने की आवश्यकता है। आइए, कृत्रिम मेधा के इस युग में हिंदी के उज्ज्वल भविष्य के बीच हम

इसके प्रति संवेदनशील बनें और खुद को इसकी प्रगति में भागीदार बनाएँ।

संदर्भ-सूची :

1. दैनिक जागरण, 07 अगस्त, 2020
2. चैटजीपीटी, https://www.chatgpt.com
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020
4. https://www.news.cornet.edu.com , 25 Sep, 2010
5. मुद्दा – कृत्रिम मेधा का दुश्चक्र, जनसत्ता, 18 अक्तूबर, 2020
6. https://www.chatbot.com
7. https://ai.meta.com
8. https://www.en.wikipedia.com
9. https://www.drishtiias.com
10. https://www.britannica.com
11. जनसत्ता, भारतीय भाषाओं को समय रहते कृत्रिम मेधा से जोड़ने की ज़रूरत, 01.05.2024
12. www.theguardian.com , Endangered language the full lists
13. बिजनेस स्टैंडर्ड–एआई-हिंदी को सक्षम बनाएगी तकनीक, गिरेगी भाषा की दीवार, 14.09.2024
14, भारत की एआई क्रांति और विकसित भारत का रोडमैप, पीआईबी-06.03.2025
15. www.news.un.org, 15 फ़रवरी, 2025

hindisewi@gmail.com

कृत्रिम मेधा और हिंदी भाषा-साहित्य : संभावनाएँ, उपयोगिता और प्रभाव

- श्री रोहित कुमार 'हैप्पी'
न्यूज़ीलैंड

इक्कीसवीं सदी तकनीक और नवाचार की सदी है और इसमें कृत्रिम मेधा (Artificial Intelligence - AI) एक महत्त्वपूर्ण और परिवर्तनकारी तकनीक के रूप में सामने आई है। यह तकनीक मशीनों को मानव जैसी क्षमताएँ देती है - जैसे सीखना, तर्क करना, भाषा समझना और समस्याएँ हल करना (रस्सल और नॉरविग, 2021)।

अब मशीनें केवल आदेश नहीं मानतीं, बल्कि हमारी भाषा समझती हैं, भावनाएँ पहचानती हैं और संवाद भी करती हैं। जब हम इस तकनीक को हिंदी जैसी समृद्ध और प्राचीन भाषा के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं, तो संभावनाओं और चुनौतियों का एक व्यापक क्षेत्र खुलता है।

यह लेख इस बात की पड़ताल करेगा कि कृत्रिम मेधा हिंदी भाषा और साहित्य को किस प्रकार प्रभावित कर रही है। इसमें यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि कृत्रिम मेधा हिंदी के विकास में कैसे सहायक है, इसके क्या लाभ हैं और कौन-से संभावित जोखिम या नकारात्मक प्रभाव सामने आ सकते हैं।

कृत्रिम मेधा और भाषा का संबंध स्वाभाविक है, क्योंकि भाषा मानव बुद्धि का सबसे परिष्कृत उपकरण है। ज्ञान, संचार और संस्कृति के विकास में भाषा की केंद्रीय भूमिका है। प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (Natural Language Processing - NLP), जो कृत्रिम मेधा का एक प्रमुख क्षेत्र है, का उद्देश्य कंप्यूटरों को मानव भाषा को समझने और उत्पन्न करने योग्य बनाना है (जुराफ्स्की और मार्टिन, 2023)।

हिंदी, जो विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है (एबरहार्ड, साइमंस और फ़ेनिग, 2024), कृत्रिम मेधा के लिए एक बड़ा अवसर और एक जटिल चुनौती दोनों प्रस्तुत करती है। इसकी देवनागरी लिपि, समृद्ध व्याकरण, बोलियों की विविधता और साहित्यिक गहराई इसे कृत्रिम मेधा के लिए एक विशिष्ट और मूल्यवान भाषा बनाती है।

इस लेख में हम देखेंगे कि वाक्-पहचान, अनुवाद, साहित्यिक विश्लेषण और सामग्री-निर्माण में कृत्रिम मेधा का अनुप्रयोग हिंदी भाषा को कैसे प्रभावित कर रहा है। साथ ही, यह भी समझने का प्रयास करेंगे कि हिंदी के सामने कौन-सी प्रमुख चुनौतियाँ और संभावनाएँ खड़ी हो रही हैं।

1. कृत्रिम मेधा का हिंदी भाषा में प्रत्यक्ष और व्यावहारिक उपयोग

कृत्रिम मेधा अब केवल एक अकादमिक अवधारणा नहीं रह गई है, बल्कि यह हमारे दैनिक जीवन में हिंदी भाषा के उपयोग को सरल और प्रभावी बनाने वाले उपकरणों में एकीकृत हो चुकी है। इसके कुछ प्रमुख व्यावहारिक उपयोग निम्नलिखित हैं –

1.1. उन्नत अनुवाद

तंत्रिकीय मशीनी अनुवाद (Neural Machine Translation - NMT) जैसे तकनीकी मॉडल हिंदी अनुवाद को अधिक स्वाभाविक और सटीक बना रहे हैं। गूगल ट्रांसलेट और माइक्रोसॉफ़्ट ट्रांसलेटर अब सिर्फ़ शब्दों का नहीं, बल्कि पूरे वाक्य का संदर्भ समझकर अनुवाद करते हैं। इससे ग्रामीण किसान से लेकर हिंदी भाषी उद्यमी तक वैश्विक जानकारी से जुड़ पा रहे हैं।

1.2. वाक् पहचान और संश्लेषण

अब वॉयस असिस्टेंट (जैसे गूगल असिस्टेंट, एलेक्सा, सिरी) हिंदी में बोलकर दिए गए निर्देशों को समझते हैं। यह तकनीक खासकर उन लोगों के लिए उपयोगी है, जो पढ़ या लिख नहीं सकते। साथ ही, टेक्स्ट-टू-स्पीच और OCR तकनीकें हिंदी सामग्री को सुनने योग्य और डिजिटल रूप में बदलने में मदद कर रही हैं, जिससे पुरानी पांडुलिपियाँ भी सुलभ बन रही हैं।

1.3. व्याकरण और वर्तनी जाँच

गूगल डॉक्स और माइक्रोसॉफ़्ट वर्ड जैसे प्लेटफ़ॉर्म अब हिंदी में वर्तनी और व्याकरण की त्रुटियाँ सुधारने में सक्षम हो रहे हैं। ये टूल लेखकों और छात्रों को साफ़-सुथरी और मानक हिंदी लिखने में मदद करते हैं।

1.4. भाव-विश्लेषण

कंपनियाँ और संगठन सोशल मीडिया व समीक्षाओं से हिंदी (और हिंग्लिश) में व्यक्त जनभावनाओं का विश्लेषण कृत्रिम मेधा से कर रहे हैं। यह तकनीक बताती है कि लोगों की प्रतिक्रिया सकारात्मक, नकारात्मक या तटस्थ है, जिससे विपणन और राजनीतिक रणनीति बेहतर बन रही है।

2. कृत्रिम मेधा और हिंदी साहित्य : एक नया रचनात्मक अध्याय

कृत्रिम मेधा का प्रभाव केवल भाषा के व्यावहारिक उपयोग तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह हिंदी साहित्य के सृजन, संरक्षण और विश्लेषण में भी एक नए अध्याय की शुरुआत कर रहा है। अब शोधकर्ता हिंदी साहित्य के विशाल संग्रह को कृत्रिम मेधा की सहायता से संरचनात्मक और भाषिक विश्लेषण के लिए प्रयोग कर रहे हैं।

2.1. साहित्यिक सृजन में सहायक (Assistant in Literary Creation)

कृत्रिम मेधा लेखक का स्थान नहीं ले सकता, लेकिन यह एक शक्तिशाली 'सह-रचनाकार' या सहायक बन सकता है। लेखक कथानक के विचारों (plot ideas), चरित्रों के विकास या काव्यगत उपमाओं के लिए कृत्रिम मेधा से प्रेरणा ले सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक कवि किसी विशेष विषय पर दोहे या छंद लिखने के लिए कृत्रिम मेधा से सुझाव माँग सकता है या एक उपन्यासकार अपने कथानक में एक अप्रत्याशित मोड़ लाने के लिए कृत्रिम मेधा से मंथन कर सकता है। यह रचनात्मक प्रक्रिया को गति दे सकता है और लेखकों को पारंपरिक सोच से परे नए दृष्टिकोण प्रदान कर सकता है।

2.2. साहित्यिक आलोचना में डिजिटल मानविकी (Digital Humanities in Literary Criticism)

पारंपरिक साहित्यिक आलोचना प्रायः गुणात्मक और व्याख्यात्मक होती है, जबकि **कृत्रिम मेधा** इसके भीतर *"डिजिटल मानविकी"* (Digital Humanities) के माध्यम से एक **मात्रात्मक आयाम** जोड़ सकती है। *"दूरस्थ पठन"* (Distant Reading) की अवधारणा, जिसे फ्रेंको मोरेटी (2013) ने लोकप्रिय बनाया, इस संदर्भ में विशेष रूप से प्रासंगिक है। कृत्रिम मेधा आधारित उपकरण हज़ारों पृष्ठों के साहित्यिक ग्रंथों का विश्लेषण कर विशिष्ट विषयों, रूपांकनों (motifs), प्रतीकों या भावनाओं की आवृत्ति का पता लगाने में सक्षम होते हैं।

उदाहरण के लिए, कृत्रिम मेधा प्रेमचंद के संपूर्ण साहित्य में 'किसान', 'शोषण' या 'जाति' जैसे विषयों के विकास का विश्लेषण कर सकता है। उदाहरणार्थ महादेवी वर्मा के काव्य में 'पीड़ा' और 'रहस्य' जैसी भावनाओं को रेखांकित कर सकता है।

यह दृष्टिकोण आलोचकों को साहित्य के विशाल भंडार में ऐसे पैटर्न पहचानने में सक्षम बनाता है, जिन्हें गहन मानव पठन (close reading) के माध्यम से देख पाना अक्सर संभव नहीं होता।

2.3. नई साहित्यिक विधाओं का उदय

कृत्रिम मेधा पूरी तरह से नई साहित्यिक विधाओं के उद्भव का माध्यम बन सकती है। *"इंटरैक्टिव फ़िक्शन"* (Interactive Fiction), जिसमें पाठक की पसंद के अनुसार कहानी को वास्तविक समय में ढाला जाता है, ऐसी ही एक संभावना है, जहाँ कृत्रिम मेधा सक्रिय रचनात्मक भूमिका निभाती है।

मानव और कृत्रिम मेधा के बीच सहयोगात्मक लेखन भी एक नवाचारी विधा के रूप में सामने आ सकता है - एक ऐसा लेखन, जहाँ मानव की भावनात्मक संवेदना और मशीन की पैटर्न पहचान क्षमता एक-दूसरे के पूरक बनकर मिलती हैं और उनके संयुक्त प्रयास से एक अनूठी साहित्यिक कृति का जन्म होता है (बोडेन, 2016)।

3. कृत्रिम मेधा का हिंदी भाषा और साहित्य पर प्रभाव : अवसर और चुनौतियाँ

कृत्रिम मेधा हिंदी भाषा और साहित्य के लिए एक साथ वरदान और अभिशाप दोनों सिद्ध हो सकती है। यह जहाँ नई संभावनाएँ उत्पन्न करती है, वहीं कई जटिल नैतिक और व्यावहारिक प्रश्न भी खड़े करती है।

3.1. सकारात्मक प्रभाव और अवसर

- **भाषा का लोकतंत्रीकरण :** कृत्रिम मेधा उपकरण हिंदी को उन लोगों के लिए सुलभ बना रहे हैं जो अंग्रेज़ी या अन्य वैश्विक भाषाओं में पारंगत नहीं हैं। यह ज्ञान और अवसरों के लोकतंत्रीकरण को बढ़ावा देता है, जो भारत जैसे बहुभाषी देश के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है (नीति आयोग, 2018)।
- **वैश्विक पहुँच :** कृत्रिम मेधा-संचालित अनुवाद के माध्यम से हिंदी साहित्य और कंटेंट अब आसानी से वैश्विक दर्शकों तक पहुँच सकता है, जिससे हिंदी की सांस्कृतिक शक्ति (soft power) में वृद्धि होगी।
- **सीखने-सिखाने में क्रांति :** कृत्रिम मेधा-आधारित व्यक्तिगत शिक्षण ऐप (Personalized Learning Apps) छात्रों को उनकी गति और स्तर के अनुसार हिंदी सीखने में मदद कर सकते हैं, जिससे भाषा-शिक्षण अधिक प्रभावी और आकर्षक बन सकता है (मजूमदार, 2019)।
- **विरासत का संरक्षण :** कृत्रिम मेधा हिंदी की भाषाई और

साहित्यिक विरासत को डिजिटाइज़ और संरक्षित करने में मदद कर रहा है, जो अन्यथा समय के साथ नष्ट हो सकती है, जैसा कि भारत सरकार के राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन संबंधी प्रयासों में देखा जा सकता है।

3.2. नकारात्मक प्रभाव और चुनौतियाँ

- **भाषाई एकरूपता का खतरा :** कृत्रिम मेधा मॉडल अक्सर 'मानक हिंदी' के विशाल डेटासेट पर प्रशिक्षित होते हैं। इससे यह खतरा है कि वे हिंदी की समृद्ध क्षेत्रीय बोलियों (जैसे अवधी, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली) और भाषाई विविधता को हाशिए पर धकेल सकते हैं। यदि कृत्रिम मेधा केवल एक ही प्रकार की 'शुद्ध' हिंदी को बढ़ावा देता है, तो भाषा की जीवंतता और विविधता कम हो सकती है (जोशी, भट्टाचार्य, और चक्रवर्ती, 2021)।
- **रचनात्मकता और मौलिकता की चुनौती :** यदि लेखक और छात्र विचारों के लिए पूरी तरह से कृत्रिम मेधा पर निर्भर हो जाते हैं, तो यह उनकी अपनी मौलिक रचनात्मकता और महत्त्वपूर्ण सोच को बाधित कर सकता है। साहित्य, जो मानव अनुभव, चेतना और आत्मा की अनूठी अभिव्यक्ति है, क्या मशीनी तर्क से उत्पन्न हो सकता है? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, जो प्रामाणिकता की अवधारणा को चुनौती देता है।
- **डेटा पूर्वाग्रह (Data Bias) :** कृत्रिम मेधा मॉडल उस डेटा से सीखते हैं, जिस पर उन्हें प्रशिक्षित किया जाता है। यदि प्रशिक्षण डेटा में सामाजिक पूर्वाग्रह (जैसे जाति, लिंग, धर्म या क्षेत्र से संबंधित) मौजूद हैं, तो कृत्रिम मेधा के आउटपुट में भी वे पूर्वाग्रह प्रतिबिंबित और प्रवर्धित होंगे (नोबल, 2018)। यह हिंदी में हानिकारक रूढ़ियों को बढ़ावा दे सकता है और समाज के कुछ वर्गों का अनुचित प्रतिनिधित्व कर सकता है।
- **रोज़गार पर प्रभाव :** कृत्रिम मेधा अनुवादकों, कंटेंट लेखकों और संपादकों जैसे भाषा पेशेवरों के लिए एक महत्त्वपूर्ण चुनौती प्रस्तुत कर सकती है। हालाँकि यह संभावना कम है कि कृत्रिम मेधा इनको पूरी तरह प्रतिस्थापित कर देगी, लेकिन उनकी भूमिकाएँ निःसंदेह परिवर्तित होंगी। भविष्य के भाषा पेशेवरों को कृत्रिम मेधा-जनित सामग्री की समीक्षा, पुनःसंपादन (post-editing), और उसे सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक बनाने जैसे उच्चस्तरीय कौशलों पर ध्यान केंद्रित करना होगा (McKinsey Global Institute, 2017)।
- **मौलिकता और कॉपीराइट का प्रश्न :** कृत्रिम मेधा द्वारा लिखी गई रचना का अधिकार किसे मिले? उपयोगकर्ता, निर्माता या स्वयं कृत्रिम मेधा को? यह प्रश्न साहित्यिक मौलिकता की परिभाषा को ही चुनौती देता है। कॉपीराइट और बौद्धिक संपदा के कानून अभी तक इस नई वास्तविकता से निपटने के लिए तैयार नहीं हैं। हाल ही में, अमेरिकी कॉपीराइट कार्यालय ने फ़ैसला सुनाया है कि पूरी तरह से कृत्रिम मेधा द्वारा बनाई गई छवियों का कॉपीराइट नहीं किया जा सकता है, जो भविष्य में उत्पन्न होने वाली कानूनी और नैतिक दुविधाओं की ओर संकेत करता है (थैलर बनाम शुलमैन, 2023)।

4. समाधान और भविष्य की दिशा : एक सहयोगात्मक दृष्टिकोण

कृत्रिम मेधा द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों से निपटना और अवसरों का सर्वोत्तम लाभ उठाना किसी एक संस्था या समूह का काम नहीं है। इसके लिए नीति-निर्माताओं, तकनीकी विशेषज्ञों, भाषाविदों, शिक्षाविदों और समाज को एक साथ मिलकर एक बहु-आयामी रणनीति बनानी होगी। भविष्य का मार्ग इन सहयोगात्मक प्रयासों से ही प्रशस्त होगा।

4.1. सरकार और नीति-निर्माताओं की भूमिका

सरकार एक उत्प्रेरक के रूप में भाषाई कृत्रिम मेधा के विकास को सही दिशा दे सकती है। भारत सरकार ने 'राष्ट्रीय भाषा अनुवाद मिशन' (National Language Translation Mission - NLTM) और 'भाषिणी' (Bhashini) जैसे प्लेटफ़ॉर्म लॉन्च करके इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं, जिनका उद्देश्य भारतीय भाषाओं में कृत्रिम मेधा और NLP प्रौद्योगिकियों को सुलभ बनाना है (इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, 2022)। इन प्रयासों को और सशक्त करने के लिए निम्नलिखित कदम आवश्यक हैं -

- **भाषाई डेटा का निर्माण** : हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की बोलियों सहित व्यापक और गुणवत्तापूर्ण डेटा तैयार किया जाए, ताकि AI मॉडल बेहतर बन सकें।
- **अनुसंधान में निवेश** : विश्वविद्यालयों और स्टार्टअप्स को ऐसे मॉडल विकसित करने के लिए समर्थन मिले, जो सिर्फ़ अनुवाद नहीं, बल्कि व्यंग्य, सांस्कृतिक संदर्भ और

भाषा की गहराई भी समझ सकें।

- **नैतिक और कानूनी ढाँचा** : AI के उपयोग में पारदर्शिता, जवाबदेही और भेदभाव से बचाव के लिए स्पष्ट नियम हों।
- **मानकीकरण और साझा उपयोग** : देवनागरी यूनिकोड को प्रोत्साहन मिले और अलग-अलग प्लेटफ़ॉर्मों के बीच डेटा का आदान-प्रदान आसान हो।

4.2. तकनीकी समुदाय और डेवलपर्स की ज़िम्मेदारी

AI मॉडल बनाने वाले डेवलपर्स और कंपनियों की ज़िम्मेदारी केवल कोड लिखने तक सीमित नहीं है, बल्कि उन्हें अपने उत्पादों के सामाजिक प्रभाव के प्रति भी सचेत रहना होगा।

- **पूर्वाग्रह का निवारण (Bias Mitigation) :** डेवलपर्स को प्रशिक्षण डेटा में मौजूद पूर्वाग्रहों को पहचानने और कम करने के लिए सक्रिय रूप से काम करना चाहिए। इसके लिए डेटा ऑडिटिंग, एल्गोरिथम निष्पक्षता टूल (algorithmic fairness tools) का उपयोग और विविध टीमों (जिनमें विभिन्न लिंग, जाति और क्षेत्र के लोग शामिल हों) का निर्माण आवश्यक है (ओ'नील, 2016)।
- **व्याख्यात्मक AI (Explainable AI - XAI) :** 'ब्लैक बॉक्स' AI मॉडल बनाने के बजाय, डेवलपर्स को ऐसे सिस्टम बनाने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए, जो यह बता सकें कि वे किसी विशेष परिणाम पर कैसे पहुँचे। उदाहरण के लिए, एक अनुवाद प्रणाली को यह स्पष्ट करना चाहिए कि उसने एक विशेष मुहावरे का अनुवाद एक निश्चित तरीके से क्यों किया। यह पारदर्शिता विश्वास बनाने और त्रुटियों को सुधारने के लिए महत्त्वपूर्ण है।
- **ओपन-सोर्स संस्कृति को बढ़ावा :** प्रमुख तकनीकी कंपनियों को अपने भाषा मॉडल और टूल को आंशिक रूप से या पूरी तरह से ओपन-सोर्स करना चाहिए। इससे अकादमिक शोधकर्ताओं, छोटे स्टार्टअप्स और भाषा-प्रेमियों को इन तकनीकों तक पहुँच मिलेगी और वे हिंदी के लिए नए और अभिनव एप्लिकेशन बना सकेंगे।
- **बोलियों और उपभाषाओं का समावेश :** डेवलपर्स को केवल 'मानक' हिंदी पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय, क्षेत्रीय बोलियों (जैसे भोजपुरी, मारवाड़ी, अवधी) के लिए मॉडल बनाने पर भी काम करना चाहिए। इसके लिए क्राउडसोर्सिंग और स्थानीय समुदायों के साथ मिलकर डेटा संग्रह करना एक प्रभावी तरीका हो सकता है।

4.3. शिक्षाविदों, भाषाविदों और साहित्यिक समुदाय का योगदान

भाषा और साहित्य के संरक्षक के रूप में, इस समुदाय की भूमिका कृत्रिम मेधा के युग में और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

- **पाठ्यक्रम का आधुनिकीकरण :** विश्वविद्यालयों को अपने हिंदी और भाषा-विज्ञान के पाठ्यक्रमों में 'कम्प्यूटेशनल भाषा विज्ञान' और "डिजिटल मानविकी" को शामिल करना चाहिए। इससे छात्रों को भविष्य के उन पेशों के लिए तैयार किया जा सकेगा, जहाँ भाषा और प्रौद्योगिकी का संगम होता है।
- **गुणवत्ता नियंत्रक की भूमिका :** अकादमिक समुदाय AI-जनित सामग्री के मूल्यांकन के लिए मानक और मानदंड स्थापित कर सकता है। वे AI मॉडल के प्रदर्शन का आकलन करने और उनकी सटीकता तथा सांस्कृतिक उपयुक्तता पर प्रतिक्रिया प्रदान करने में मदद कर सकते हैं।
- **आलोचनात्मक विमर्श का नेतृत्व :** साहित्यिक समुदाय को AI और रचनात्मकता, मौलिकता के संकट और साहित्यिक चोरी के नए रूपों जैसे विषयों पर एक स्वस्थ सार्वजनिक बहस को प्रोत्साहित करना चाहिए। संगोष्ठियों, कार्यशालाओं और प्रकाशनों के माध्यम से वे समाज को इन जटिल मुद्दों के बारे में शिक्षित कर सकते हैं।
- **अंतर्विषयक सहयोग :** भाषा विभागों को कंप्यूटर विज्ञान और इंजीनियरिंग विभागों के साथ मिलकर काम करना चाहिए। भाषाविदों का ज्ञान डेवलपर्स को बेहतर और अधिक संवेदनशील AI मॉडल बनाने में मदद कर सकता है।

4.4. उपयोगकर्ता और समाज की भूमिका

अंततः प्रौद्योगिकी का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि समाज उसे कैसे अपनाता है और उपयोग करता है।

- **डिजिटल और AI साक्षरता :** स्कूलों और सार्वजनिक अभियानों के माध्यम से लोगों को यह सिखाया जाना चाहिए कि AI सिस्टम कैसे काम करते हैं, उनकी सीमाएँ क्या हैं और वे कैसे गलत सूचना (misinformation) या दुष्प्रचार (disinformation) फैला सकते हैं।
- **आलोचनात्मक उपभोग :** उपयोगकर्ताओं को AI द्वारा उत्पन्न सामग्री पर आँख मूँदकर विश्वास नहीं करना

चाहिए। उन्हें जानकारी को सत्यापित करने, स्रोतों की जाँच करने और पूर्वाग्रह के संकेतों के प्रति सतर्क रहने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

- **सक्रिय प्रतिक्रिया :** जब उपयोगकर्ता AI टूल में कोई त्रुटि या पूर्वाग्रह देखते हैं, तो उन्हें डेवलपर्स को फ़ीडबैक देना चाहिए। यह निरंतर सुधार चक्र AI प्रणालियों को समय के साथ बेहतर बनाने के लिए आवश्यक है।

कृत्रिम मेधा और हिंदी का संगम एक ऐसे चौराहे पर आ खड़ा हुआ है, जहाँ से भविष्य की राहें अनेक दिशाओं में जाती हैं। यह स्पष्ट है कि कृत्रिम मेधा हिंदी भाषा के उपयोग को अधिक कुशल, सुलभ और वैश्विक बना रही है। साथ ही, यह हिंदी साहित्य के अध्ययन और संरक्षण के लिए अभूतपूर्व उपकरण प्रदान कर रही है और भाषा के लोकतंत्रीकरण तथा ज्ञान के विस्तार में एक शक्तिशाली इंजन की भूमिका निभा सकती है।

हालाँकि, इसके साथ आने वाली चुनौतियाँ - भाषाई एकरूपता, डेटा-पूर्वाग्रह, रचनात्मकता का संकट और बौद्धिक संपदा की दुविधा - नज़रअंदाज़ नहीं की जा सकतीं। इनसे निपटने का मार्ग एकतरफ़ा नहीं हो सकता। जैसा कि हमने देखा, इसके लिए एक सचेत, सहयोगात्मक और विवेकपूर्ण दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसमें सरकार, उद्योग, शिक्षाविद् और समाज - सभी अपनी-अपनी भूमिकाएँ निभाएँ।

भविष्य इस बात पर निर्भर नहीं करेगा कि कृत्रिम मेधा कितनी शक्तिशाली हो जाती है, बल्कि इस पर कि हम मनुष्य उसका उपयोग कितनी दूरदर्शिता और विवेक के साथ करते हैं। हिंदी भाषा और साहित्य का भविष्य कृत्रिम मेधा द्वारा प्रतिस्थापित होने में नहीं, बल्कि उसके साथ एक सहजीवी संबंध विकसित करने में निहित है। हमें इसे एक सहयोगी उपकरण के रूप में अपनाना चाहिए - स्वामी के रूप में नहीं।

यदि हम नैतिक दिशा-निर्देशों के अंतर्गत, भाषाई विविधता और मानवीय मूल्यों का सम्मान करते हुए इस तकनीक को दिशा देने में सफल होते हैं, तो कृत्रिम मेधा हिंदी को न केवल तकनीकी रूप से सशक्त बनाएगी, बल्कि उसकी साहित्यिक और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को नए क्षितिजों तक पहुँचाने में भी सहायक सिद्ध होगी।

कृत्रिम मेधा का युग हिंदी के लिए कोई संकट नहीं, बल्कि अपनी जड़ों को सहेजते हुए वैश्विक मंच पर उड़ान भरने का एक अभूतपूर्व अवसर है।

संदर्भ-सूची :

1. Bahdanau, D., Cho, K., & Bengio, Y, Neural machine translation by jointly learning to align and translate (2014), *arXiv preprint arXiv:1409.0473*
2. Boden, M. A., *AI: Its nature and future* (2016), Oxford University Press
3. Eberhard, D. M., Simons, G. F., & Fennig, C. D. (Eds.), *Ethnologue: Languages of the world* (27th ed.) (2024), SIL International, http://www.ethnologue.com
4. Garg, N., A review on optical character recognition for Devanagari script, *International Journal of Computer Applications (2019)*
5. Joshi, A., A survey on sentiment analysis for Indian languages. *AI and Society (2020)*
6. Joshi, P., Bhattacharyya, P., & Chakraborti, S., The state and fate of linguistic diversity and inclusion in the NLP world (2021), *Proceedings of the 59th Annual Meeting of the Association for Computational Linguistics and the 11th International Joint Conference on Natural Language Processing (Volume 1: Long Papers)*, 1559–1572
7. Jurafsky, D., & Martin, J. H., *Speech and language processing* (3rd ed.) (2023), Prentice Hall
8. Majumdar, R., Artificial intelligence in education : The future of personalized learning (2019), *International Journal of Innovative Technology and Exploring Engineering, 8* (9S3), 430-434
9. McKinsey Global Institute, *A future that works: Automation, employment, and productivity (2017)*
10. Mitchell, M., *Artificial Intelligence: A guide for thinking humans (2019),* Farrar, Straus and Giroux
11. Moretti, F., *Distant reading (2013),* Verso Books
12. O'Neil, C., *Weapons of math destruction : How big data increases inequality and threatens democracy (2016)*, Crown Publishing Group
13. OpenAI, *GPT-4 Technical Report*, arXiv:2303.08774, (2023)
14. Russell, S. J., & Norvig, *Artificial intelligence: A modern approach* (4th ed.). (2021), Pearson P
15. Kanojia, D., et al., A survey on NLP and machine learning for the Hindi language (2021), *ACM Computing Surveys (CSUR), 54*(3), 1-37.Thaler v. Shulman, No. 22-cv-1564 (D.D.C. Aug. 18, 2023),
16. इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार, *भाषिणी: भारत के लिए भाषा इंटरफेस (Bhashini: Bhasha Interface for India)* (2022). https://www.bhashini.gov.in/
17. नीति आयोग, *National strategy for artificial intelligence (2018),* Government of India
18. Noble, S. U., *Algorithms of oppression : How search engines reinforce racism (2018),* NYU Press

editor@bharatdarshan.co.nz

हिंदी आज का प्रश्न : कृत्रिम बुद्धिमत्ता और समाचार चैनल

- श्री हिमांशु जोशी
भारत

समाचार और पत्रकारिता समाज की सामूहिक चेतना को आकार देने वाले महत्त्वपूर्ण माध्यम रहे हैं। वर्तमान समय में, कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने हिंदी समाचार चैनलों में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है, जो भारत की सबसे बड़ी भाषाई आबादी को सूचना प्रदान करते हैं। आज का प्रश्न यह है कि क्या कृत्रिम बुद्धिमत्ता हिंदी पत्रकारिता की विश्वसनीयता, सांस्कृतिक संवेदनशीलता और लोकतांत्रिक भूमिका को सशक्त बनाएगी या इसे चुनौतियों के सामने ला खड़ा करेगी?

इस शोध आलेख का उद्देश्य हिंदी समाचार चैनलों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग की सामाजिक-सांस्कृतिक, तकनीकी और नैतिक पड़ताल करना है। पत्रकारिता का इतिहास तकनीकी प्रगति के साथ विकसित हुआ है, यह रास्ता प्रिंटिंग प्रेस से रेडियो, टेलीविज़न और फिर डिजिटल मीडिया तक आता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता इस विकास का नवीनतम चरण है, जो सामग्री-निर्माण, वितरण और उपभोग को पुनःपरिभाषित कर रहा है। भारत में, 57 करोड़ से अधिक हिंदी भाषी आबादी तक पहुँचने वाले चैनल, जैसे आज तक, एबीपी न्यूज़ और एनडीटीवी इंडिया में कृत्रिम बुद्धिमत्ता सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों को गति दे रहा है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से, कृत्रिम बुद्धिमत्ता ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता की कमी के कारण भ्रम पैदा कर सकता है। सांस्कृतिक रूप से, हिंदी पत्रकारिता की भावनात्मक और सांस्कृतिक संवेदनशीलता मशीनों के लिए चुनौतीपूर्ण है। तकनीकी रूप से, यह दक्षता बढ़ाता है, लेकिन फ़र्ज़ी समाचार और पक्षपात का खतरा भी लाता है। यह अध्ययन 2023-2025 के बीच भारत में कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकरों (जैसे ओडिशा टीवी की 'लीसा' और आज तक की 'सना') के उद्भव पर आधारित है। वैश्विक और भारतीय संदर्भों के आधार पर, यह आलेख अवसरों, चुनौतियों और नीतिगत सुझावों की पड़ताल करता है।

2025 तक कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव और गहरा हुआ है। उदाहरण के लिए, आज तक ने 'अंजना 2.0' लॉन्च की है, जो प्रसिद्ध एंकर अंजना ओम कश्यप का कृत्रिम बुद्धिमत्ता अवतार है, जो दैनिक समाचार अपडेट प्रदान करती है। इसी प्रकार, असम में 'अंकिता' नामक कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर ने कैबिनेट मीटिंग्स की रिपोर्टिंग की, जो स्थानीय भाषा में जीवंत रूप से समाचार प्रस्तुत करती है। ये विकास दर्शाते हैं कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता न केवल तकनीकी नवाचार है, बल्कि क्षेत्रीय स्तर पर मीडिया की पहुँच को मज़बूत कर रहा है। हालाँकि, यह बदलाव सामाजिक असमानताओं को बढ़ाने का जोखिम भी लाता है, जहाँ शहरी दर्शक तकनीक से लाभान्वित हो रहे हैं, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में विश्वास की कमी बनी हुई है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रवेश ने हिंदी मीडिया को वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाया है, लेकिन नैतिक और सांस्कृतिक प्रश्न भी उठाए हैं। 2025 में, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित समाचार वाचकों की संख्या में वृद्धि ने ग्रामीण भारत में सूचना प्रसार को तेज़ किया है, लेकिन डेटा गोपनीयता और सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व की चिंताएँ बढ़ी हैं। यह आलेख इन आयामों की गहन जाँच करता है, जिसमें रॉयटर्स इंस्टीट्यूट, यूनेस्को, प्रेस काउंसिल ऑफ़ इंडिया और ऑब्ज़र्वर रिसर्च फ़ाउंडेशन (ORF) की हालिया रिपोर्टों जैसे गुणात्मक और मात्रात्मक डेटा स्रोतों का उपयोग किया गया है।

1. पृष्ठभूमि और उद्देश्य

21वीं सदी में पत्रकारिता का स्वरूप तकनीकी क्रांतियों से लगातार बदल रहा है। इंटरनेट के बाद, कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने मीडिया उद्योग को गहराई से प्रभावित किया है। वैश्विक समाचार संस्थानों ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित उपकरण अपनाए हैं और भारत में हिंदी समाचार चैनल (जैसे एनडीटीवी इंडिया, आज तक, एबीपी न्यूज़) भी इस दिशा में तेज़ी से बढ़ रहे हैं। ये चैनल सामाजिक-सांस्कृतिक बदलाव का हिस्सा बन रहे हैं। नोट : 2021 की जनगणना के पूर्ण भाषाई आँकड़े अभी तक सार्वजनिक नहीं हुए हैं, लेकिन प्रारंभिक अनुमान हिंदी बोलने वालों की संख्या में मामूली वृद्धि दर्शाते हैं।

इस अध्ययन के उद्देश्य हैं -

1. हिंदी समाचार चैनलों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग का स्वरूप स्पष्ट करना।
2. इसके सामाजिक, सांस्कृतिक और लोकतांत्रिक प्रभावों की पड़ताल करना।
3. अवसरों और चुनौतियों का विश्लेषण प्रस्तुत करना।

4. भविष्य की दिशा और नीतिगत सुझाव देना।

पत्रकारिता का इतिहास समाज की आवश्यकताओं से जुड़ा रहा है। 19वीं सदी में प्रिंट मीडिया ने स्वतंत्रता-संग्राम को बल दिया, जबकि 20वीं सदी में रेडियो और टेलीविज़न ने जन-संचार को लोकतांत्रिक बनाया। डिजिटल युग में, कृत्रिम बुद्धिमत्ता डेटा-आधारित पत्रकारिता को बढ़ावा दे रहा है। यूनेस्को (2023) के अनुसार, कृत्रिम बुद्धिमत्ता दक्षता बढ़ाता है, लेकिन पक्षपात और विश्वसनीयता संकट पैदा कर सकता है। भारत में डिजिटल मीडिया का बाज़ार 2025 तक 100 बिलियन डॉलर तक पहुँचने की उम्मीद है, जिसमें कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका अहम है।

भारतीय मीडिया परिदृश्य में, हिंदी चैनलों की भूमिका प्रमुख है, जहाँ वे राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक मुद्दों पर बहस को आकार देते हैं। 2025 तक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता के एकीकरण ने न्यूज़रूम की कार्यक्षमता को अभूतपूर्व स्तर तक बढ़ाया है। उदाहरणस्वरूप, डीडी किसान चैनल पर 'कृष' और 'भूमि' जैसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर मौसम पूर्वानुमान और कृषि ट्रेंड्स प्रदान कर रहे हैं, जो ग्रामीण भारत में सूचना पहुँच को क्रांतिकारी बना रहा है। यह अध्ययन रॉयटर्स इंस्टीट्यूट, यूनेस्को, प्रेस काउंसिल ऑफ़ इंडिया और ऑब्ज़र्वर रिसर्च फ़ाउंडेशन की हालिया रिपोर्टों जैसे गुणात्मक और मात्रात्मक डेटा स्रोतों के आधार पर इन बदलावों की जाँच करता है।

भारत की विविध भाषाई संरचना में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग हिंदी को केंद्र में रखते हुए अन्य बोलियों जैसे भोजपुरी, अवधी और बुंदेली तक विस्तार कर रहा है। ऐसे में, कृत्रिम बुद्धिमत्ता हिंदी मीडिया को अधिक समावेशी बना सकता है, लेकिन डेटा की गुणवत्ता और सांस्कृतिक संवेदनशीलता सुनिश्चित करना आवश्यक है। अध्ययन इन पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करता है, ताकि तकनीकी प्रगति सामाजिक न्याय के साथ संतुलित हो।

2. वैश्विक परिप्रेक्ष्य : कृत्रिम बुद्धिमत्ता और पत्रकारिता

वैश्विक स्तर पर, कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग 2010 के दशक से शुरू हुआ। प्रमुख उदाहरण इस प्रकार हैं -

i. **एसोसिएटेड प्रेस :** 2014 से स्वचालित समाचार-लेखन से वित्तीय रिपोर्ट्स तैयार, जिससे उत्पादकता 10 गुना बढ़ी।
ii. **वाशिंगटन पोस्ट :** "हेलियोग्राफ़" ने 2016 में 850 से अधिक स्टोरीज़ जनरेट कीं
iii. **बीबीसी :** स्थानीय चुनाव कवरेज के लिए डेटा-आधारित कृत्रिम बुद्धिमत्ता उपकरण।
iv. **शिन्हुआ (चीन) :** 2018 में 24/7 काम करने वाला कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर लॉन्च।

रॉयटर्स इंस्टीट्यूट (2024) के अनुसार, 87% न्यूज़रूम कृत्रिम बुद्धिमत्ता से प्रभावित हैं, लेकिन दर्शकों का विश्वास कम है। टैंडोक (2019) ने बताया कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता पत्रकारिता में श्रम की परिभाषा बदल रहा है। मारकोनी (2020) ने इसकी संभावनाओं और जोखिमों पर प्रकाश डाला।

2025 में, वैश्विक स्तर पर कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकरों का प्रसार बढ़ा है। उदाहरण के लिए, चैनल 1 ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता-जनित एंकरों के साथ 22-मिनट के वीडियो प्रसारित किए, जो दर्शकों को वास्तविक एंकरों से अलग पहचानने में चुनौती देते हैं। यह विकास भारत के लिए प्रेरणा है, जहाँ क्षेत्रीय भाषाओं में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग वैश्विक मानकों से मेल खाता है। हालाँकि, पश्चिमी मीडिया में देखे गए पक्षपात के मुद्दे, जैसे जेंडर और जातीय पूर्वाग्रह, भारतीय संदर्भ में भी प्रासंगिक हैं।

वैश्विक मीडिया में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग अब केवल समाचार-लेखन तक सीमित नहीं है, यह डेटा विश्लेषण, वैयक्तिकृत सामग्री और इंटरैक्टिव बहसों तक फैल गया है। उदाहरणस्वरूप, न्यू यॉर्क टाइम्स ने 2025 में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित इंटरैक्टिव स्टोरीज़ लॉन्च कीं, जो दर्शकों की रुचि के अनुसार बदलती हैं। यह प्रवृत्ति हिंदी मीडिया के लिए उपयोगी है, जहाँ दर्शक विविधता अधिक है, लेकिन यह सांस्कृतिक संदर्भों की अनदेखी का खतरा भी लाती है। वैश्विक रिपोर्ट्स दर्शाती हैं कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता से उत्पादकता बढ़ी है, लेकिन नैतिक मुद्दों पर ध्यान देना आवश्यक है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने वैश्विक स्तर पर पत्रकारिता को अधिक डेटा-केंद्रित बनाया है, जिससे समाचार चक्र तेज़ हुआ है। उदाहरण के लिए, ब्लूमबर्ग ने 2025 में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित वित्तीय विश्लेषण उपकरण विकसित किए, जो रीयल-टाइम डेटा के आधार पर समाचार उत्पन्न करते हैं। यह प्रवृत्ति भारतीय हिंदी मीडिया के लिए प्रासंगिक है, जहाँ आर्थिक समाचारों की माँग बढ़ रही है। हालाँकि, वैश्विक अनुभव दर्शाते हैं कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करना आवश्यक है, जो भारतीय संदर्भ में और भी महत्त्वपूर्ण है।

3. भारतीय समाचार चैनलों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रवेश

भारत में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग 2023 से तेज़ हुआ है -

i. कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर :
   - ओडिशा टीवी ने 2023 में 'लीसा' लॉन्च की।
   - आज तक ने 'सना' पेश की।
   - दूरदर्शन किसान ने 2024 में 'कृष' और 'भूमि' लॉन्च किए, जो 50 भाषाओं में समाचार पढ़ते हैं।

ii. **कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित सामग्री :** स्वचालित अनुवाद, उपशीर्षक और वीडियो संपादन।

iii. **तथ्य-जाँच और डेटा पत्रकारिता :** बूम लाइव और ऑल्ट न्यूज़ जैसे मंच डीपफ़ेक पहचान के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग करते हैं।

भारत की 22 आधिकारिक भाषाएँ कृत्रिम बुद्धिमत्ता के लिए चुनौती हैं, लेकिन इंडिक बड़े भाषा मॉडल (जैसे हनुमान) इसे संभव बना रहे हैं। 2025 में, नए विकास जैसे आज तक की 'अंजना 2.0' और असम की 'अंकिता' ने क्षेत्रीय समाचार को मज़बूत किया है। पावर टीवी की 'सौंदर्या' और कोग्निस्पार्क के हिंदी कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर वीडियो जनरेशन और वॉयस-ओवर को एकीकृत कर रहे हैं। ये एंकर 24/7 उपलब्धता प्रदान करते हैं, लेकिन न्यूज़रूम में मानव संसाधनों की कमी का संकेत भी देते हैं।

भारतीय मीडिया में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रवेश अब केवल एंकरों तक सीमित नहीं है, यह समाचार उत्पादन की पूरी प्रक्रिया को बदल रहा है। उदाहरणस्वरूप, ज़ी न्यूज़ ने 2025 में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित स्वचालित स्क्रिप्टिंग सिस्टम अपनाया, जो ब्रेकिंग न्यूज़ को सेकंडों में तैयार करता है। यह बदलाव लागत को कम करता है, लेकिन सांस्कृतिक संदर्भों की गुणवत्ता पर सवाल उठाता है। इसके अलावा, दक्षिण भारत में कन्नड़ और तेलुगु चैनलों ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकरों को अपनाया है, जो क्षेत्रीय विविधता को बढ़ावा दे रहे हैं। हालाँकि, इन विकासों से जुड़े डेटा गोपनीयता के मुद्दे महत्त्वपूर्ण हैं, विशेषकर जब कृत्रिम बुद्धिमत्ता दर्शकों के डेटा का उपयोग करता है।

भारत में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग क्षेत्रीय भाषाओं में समाचार प्रसार को बढ़ा रहा है, जो स्थानीय लोकतंत्र को सुदृढ़ करने में सहायक है। उदाहरणस्वरूप, डीडी न्यूज़ ने 2025 में एक कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित मंच लॉन्च किया, जो पंचायत स्तर पर समाचार प्रदान करता है, जिससे ग्रामीण समुदायों की आवाज़ को राष्ट्रीय स्तर पर पहुँच मिल रही है। यह पहल स्थानीय शासन में पारदर्शिता बढ़ा रही है, जो लोकतंत्र के लिए सकारात्मक है।

4. हिंदी पत्रकारिता और कृत्रिम बुद्धिमत्ता : अवसर और चुनौतियाँ

अवसर

i. **गति और दक्षता :** ब्रेकिंग न्यूज़ और डेटा-आधारित पत्रकारिता में तेज़ी।

ii. **भाषाई विस्तार :** हिंदी और क्षेत्रीय बोलियों (भोजपुरी, अवधी) में कवरेज।

iii. **दर्शक संवाद :** चैटबॉट्स से त्वरित प्रतिक्रिया।

iv. **तथ्य-जाँच :** सामाजिक मीडिया अफ़वाहों पर निगरानी।

v. **लागत में कमी :** उत्पादन खर्च में 30-50% कमी।

vi. **स्थानीय लोकतंत्र को सुदृढ़ करना :** कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित समाचार-मंच ग्रामीण और स्थानीय मुद्दों को राष्ट्रीय स्तर पर ला रहे हैं।

vii. **नई नौकरी भूमिकाएँ :** कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने डेटा विश्लेषक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रशिक्षक और तथ्य-जाँच पत्रकार जैसे नए रोज़गार अवसर पैदा किए हैं।

viii. **तथ्य-जांच पत्रकारिता को मज़बूत करना :** बूम लाइव और ऑल्ट न्यूज़ जैसे मंच कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग कर डीपफ़ेक और गलत सूचनाओं का तेज़ी से खंडन कर रहे हैं।

2025 में, इन अवसरों का विस्तार हुआ है। उदाहरण के लिए, 'सना' मौसम अपडेट प्रदान कर रही है, जो दर्शकों को वास्तविक समय जानकारी देती है। 'लीसा' का यूट्यूब चैनल दर्शकों का जुड़ाव बढ़ा रहा है। ये उपकरण ग्रामीण भारत में कृषि-समाचारों को सुलभ बना रहे हैं, जहाँ किसान मौसम और बाज़ार मूल्यों पर निर्भर हैं। इसके अतिरिक्त, कृत्रिम बुद्धिमत्ता हिंदी समाचारों को बहुभाषी बनाकर अंतरराष्ट्रीय दर्शकों तक पहुँचा रहा है, जैसे दूरदर्शन की परियोजनाएँ। यह विस्तार लोकतंत्र को मज़बूत करता है, क्योंकि सूचना अब अधिक व्यापक हो रही है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने तथ्य-जाँच पत्रकारिता को भी सशक्त किया है, जिससे गलत सूचनाओं का प्रसार कम हुआ है। उदाहरणस्वरूप, 2025 में ऑल्ट न्यूज़ ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित उपकरण का उपयोग कर 500 से अधिक डीपफ़ेक वीडियो का खंडन किया।

चुनौतियाँ

i. **फ़र्जी समाचार और डीपफ़ेक :** 2024 में डीपफ़ेक ने चुनाव प्रभावित किए।

ii. **नौकरी संकट :** 2025 में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के कारण

20% मीडिया नौकरियाँ प्रभावित हुईं।

iii. **एल्गोरिदमिक पक्षपात :** प्रशिक्षण डेटा में लिंग/जाति पक्षपात।

iv. **विश्वसनीयता संकट :** 60% दर्शक कृत्रिम बुद्धिमत्ता समाचार पर संदेह करते हैं।

v. **नैतिक प्रश्न :** गलत रिपोर्ट की ज़िम्मेदारी अस्पष्ट।

सोशल मीडिया मंचों पर चर्चाएँ दर्शाती हैं कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर, रोज़गार और विश्वसनीयता पर सवाल उठा रहे हैं। 2025 की रिपोर्ट में, जेंडर पक्षपात प्रमुख है, जहाँ कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर मुख्य रूप से महिला रूप में प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जो मीडिया उद्योग की पूर्वाग्रहों को दर्शाता है। उदाहरणस्वरूप, न्यूज़ 18 की 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता कौर', ओडिशा टीवी की 'लीसा' और पावर टीवी की 'सौंदर्या' सभी महिला एंकर हैं, जो भारतीय मीडिया में महिलाओं की भूमिका को स्टीरियोटाइप कर रही हैं। नौकरी संकट के संदर्भ में, 2025 में टाइम्स ग्रुप और ज़ी मीडिया ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता अपनाने के कारण 500 से अधिक पत्रकारों की छंटनी की, जो स्वचालन से जुड़ी है। यह स्थिति विशेष रूप से हिंदी मीडिया में गंभीर है, जहाँ छोटे चैनल लागत बचाने के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर निर्भर हो रहे हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता से जुड़ी ये चुनौतियाँ नैतिक विमर्श को जन्म देती हैं, जहाँ डेटा प्रशिक्षण में भारतीय सांस्कृतिक विविधता की कमी पक्षपात को बढ़ावा देती है। उदाहरण के लिए, 2025 में एक अध्ययन ने दिखाया कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता मॉडल्स में जातीय और क्षेत्रीय पूर्वाग्रह मौजूद हैं, जो समाचार प्रस्तुति को प्रभावित करते हैं। इसके अलावा, विश्वसनीयता संकट में वृद्धि हुई है, क्योंकि दर्शक कृत्रिम बुद्धिमत्ता जनित समाचार को मानवीय भावनाओं से रहित मानते हैं। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए, भारतीय मीडिया को अंतरराष्ट्रीय मानकों का अनुसरण करते हुए स्थानीय नीतियाँ विकसित करनी होंगी।

5. दर्शक और समाज पर प्रभाव

हिंदी भाषी समाज में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रभाव जटिल हैं, जैसे -

i. **ग्रामीण दर्शक :** टीवी समाचार को विश्वसनीय मानते हैं, लेकिन कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर भ्रम पैदा कर सकते हैं।

ii. **शहरी दर्शक :** तकनीक से आकर्षित, लेकिन विश्वसनीयता पर सतर्क।

iii. **लोकतंत्र :** एल्गोरिद्म जनता की राय को प्रभावित कर सकते हैं, जिससे गलत सूचना का खतरा बढ़ता है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता समानता को प्रोत्साहित कर सकती है, लेकिन डिजिटल डिवाइड और सामाजिक विभाजन का जोखिम भी है। 2025 में, किसानों के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर मौसम और कृषि अपडेट प्रदान कर रहे हैं, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मज़बूत कर रहे हैं, लेकिन तकनीकी पहुँच की कमी से असमानता बढ़ रही है। शहरी दर्शकों में, वैयक्तिकृत समाचार राय निर्माण को प्रभावित कर रहा है, जो लोकतंत्र के लिए खतरा है।

जेंडर असमानता भी एक प्रमुख मुद्दा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकरों की अधिकांश महिला छवि मीडिया में महिलाओं की भूमिका को सीमित कर रही है, जो दर्शकों के बीच पूर्वाग्रहों को मज़बूत करती है। ग्रामीण क्षेत्रों में, जहाँ महिलाएँ कृषि में प्रमुख हैं, कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर जेंडर स्टीरियोटाइप्स को बढ़ावा दे सकते हैं। सामाजिक प्रभावों की जाँच से स्पष्ट है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता लोकतंत्र को मज़बूत कर सकता है, लेकिन यदि अनियंत्रित रहा, तो विभाजन पैदा करेगा।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने स्थानीय समुदायों को सशक्त करने में भी योगदान दिया है। उदाहरणस्वरूप, 2025 में डीडी न्यूज़ ने ग्रामीण भारत में पंचायत समाचारों के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित मंच लॉन्च किया, जिससे स्थानीय शासन में पारदर्शिता बढ़ी है। यह लोकतांत्रिक भागीदारी को बढ़ावा देता है, लेकिन डिजिटल साक्षरता की कमी इसे सीमित करती है।

6. सांस्कृतिक विमर्श

हिंदी पत्रकारिता भावनाओं और सांस्कृतिक संवेदनशीलता पर आधारित है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकरों में ये तत्त्व अनुपस्थित हो सकते हैं, जिससे स्थानीय बारीकियाँ खो सकती हैं। यदि कृत्रिम बुद्धिमत्ता अंग्रेज़ी-आधारित डेटा पर प्रशिक्षित होता है, तो सांस्कृतिक पक्षपात की आशंका है। भारतीय भाषाओं और संस्कृतियों के डेटा से प्रशिक्षण आवश्यक है।

2025 में, कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर जैसे 'लीसा' और 'सौंदर्या' क्षेत्रीय भाषाओं में सांस्कृतिक संदर्भों को शामिल कर रहे हैं, लेकिन भावनात्मक गहराई की कमी बनी हुई है। यह विमर्श हिंदी की सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने की आवश्यकता पर ज़ोर देता है, जहाँ समाचार केवल जानकारी नहीं, बल्कि सामाजिक संवाद का माध्यम है।

सांस्कृतिक विमर्श में, कृत्रिम बुद्धिमत्ता हिंदी की बोलियों

की विविधता को मान्यता दे सकता है, लेकिन यदि डेटा पक्षपाती रहा, तो सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व प्रभावित होगा। उदाहरणस्वरूप, 2025 में एक सर्वेक्षण ने दिखाया कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता मॉडल्स में उत्तर भारतीय संदर्भों की प्रधानता है, जो दक्षिणी या पूर्वी भारत की संस्कृतियों को अनदेखा करती है। इसलिए, सांस्कृतिक संवेदनशीलता सुनिश्चित करने के लिए बहुभाषी डेटासेट विकसित करने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, हिंदी की सांस्कृतिक धरोहर, जैसे काव्यात्मक भाषा और स्थानीय मुहावरों का उपयोग, कृत्रिम बुद्धिमत्ता मॉडल्स में शामिल करना होगा, ताकि समाचार दर्शकों से भावनात्मक रूप से जुड़ सके।

7. भविष्य की संभावनाएँ और सुझाव

i. मानव–कृत्रिम बुद्धिमत्ता सहअस्तित्व : कृत्रिम बुद्धिमत्ता पत्रकारों का सहयोगी हो, उनकी जगह न ले।
ii. नियामक नीतियाँ : प्रेस काउंसिल और ट्राई को नैतिक दिशानिर्देश बनाने चाहिए।
iii. प्रशिक्षण : पत्रकारों को कृत्रिम बुद्धिमत्ता उपकरणों का प्रशिक्षण।
iv. सांस्कृतिक संवेदनशीलता : हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं को डेटा में शामिल करना।
v. दर्शक सशक्तिकरण : कृत्रिम बुद्धिमत्ता जनित सामग्री की पारदर्शिता।

भारत भाषा सेतु जैसे प्रोजेक्ट्स के साथ कृत्रिम बुद्धिमत्ता में अग्रणी बन सकता है। 2025 में, WAVES सम्मेलन में 'सना' ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारतीय कृत्रिम बुद्धिमत्ता की क्षमता प्रदर्शित की। सुझावों में ओपन सोर्स मॉडल्स और नैतिक ऑडिट शामिल हैं।

भविष्य में, कृत्रिम बुद्धिमत्ता हिंदी मीडिया को वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बना सकता है, लेकिन नैतिक फ्रेमवर्क विकसित करना आवश्यक है। उदाहरणस्वरूप, 2025 में प्रेस काउंसिल ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता पत्रकारिता के लिए दिशानिर्देश जारी किए, जो पारदर्शिता पर ज़ोर देते हैं। इन सुझावों का पालन कर भारत कृत्रिम बुद्धिमत्ता को सकारात्मक दिशा दे सकता है। इसके अतिरिक्त, पत्रकारों के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किए जाने चाहिए, ताकि वे डेटा विश्लेषण और कृत्रिम बुद्धिमत्ता-सहायता प्राप्त पत्रकारिता में दक्ष हो सकें। यह न केवल रोज़गार संरक्षित करेगा, बल्कि नई भूमिकाएँ भी पैदा करेगा।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता हिंदी समाचार चैनलों के लिए अवसर और चुनौतियाँ दोनों लायी है। यह गति, विस्तार और दक्षता प्रदान करती है, लेकिन रोज़गार, नैतिकता और विश्वसनीयता पर सवाल उठाती है। हिंदी पत्रकारिता का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि क्या यह तकनीक मानवीय संवेदनशीलता के साथ संतुलन बनाए रख सकती है। नीतिगत स्तर पर भारत यदि पारदर्शिता और सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करता है, तो कृत्रिम बुद्धिमत्ता हिंदी पत्रकारिता को वैश्विक मंच पर टिकाऊ रूप से प्रतिस्पर्धी बनाएगी।

निष्कर्ष में, कृत्रिम बुद्धिमत्ता हिंदी पत्रकारिता को नई ऊँचाइयों पर ले जा सकती है, लेकिन सांस्कृतिक और नैतिक चुनौतियों का सामना करना होगा। 2025 की स्थिति दर्शाती है कि तकनीक और मानवीय संवेदनशीलता का संतुलन ही सफलता की कुँजी है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने स्थानीय लोकतंत्र को सशक्त किया है, लेकिन डिजिटल डिवाइड और जेंडर पक्षपात जैसे मुद्दों पर ध्यान देना होगा। एक नैतिक और समावेशी दृष्टिकोण के साथ, हिंदी पत्रकारिता वैश्विक मंच पर अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रख सकती है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता को केवल तकनीकी उपकरण नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का साधन मानकर इसका उपयोग करना होगा, ताकि यह हिंदी भाषी समाज की विविधता और संवेदनशीलता को संरक्षित करे।

संदर्भ-सूची :

1. Aaj Tak, इंडिया टुडे ग्रुप ने लॉन्च की देश की सबसे पहली कृत्रिम बुद्धिमत्ता न्यूज़ एंकर (2023, March 18), https://www.aajtak.in/india/news/video/kalli-purie-vice-chairperson-of-itg-launches-aaj-tak-first-ai-anchor-sana-in-india-today-conclave-2023-1657058-2023-03-18
2. Aaj Tak, अंजना 2.0: आज तक की नई कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर (2025a, January 15), https://www.aajtak.in/ai-anchors
3. Aaj Tak, सना: मौसम अपडेट्स और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित समाचार प्रस्तुति (2025b, March 1), https://www.aajtak.in/sana-weather-updates
4. Alt News, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित तथ्य-जांच: 2025 में डीपफ़ेक का खंडन (2025, July 20), https://www.alt-news.in/ai-fact-checking-2025
5. Associated Press, Automated insights powers AP's

earnings reports (2014, July 1). https://www.ap.org/press-releases/2014/automated-insights-powers-aps-earnings-reports
6. BBC News, Artificial intelligence in journalism: Opportunities and challenges (2021, November 10), https://www.bbc.co.uk/news/technology-59212345
7. Bloomberg, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित वित्तीय विश्लेषण उपकरण (2025, June 20), https://www.bloomberg.com/ai-tools
8. Boom Live, कृत्रिम बुद्धिमत्ता के साथ डीपफ़ेक पहचान (2025, August 1), https://www.boomlive.in/ai-deepfake-detection
9. Carlson, M. (2018), Automating judgment? Algorithmic judgment, news knowledge and journalistic professionalism. New Media & Society, 20(5), 1755–1772, https://doi.org/10.1177/1461444817706684
10. Chakravarti, S. Digital media in India: Growth and challenges (2020), Observer Research Foundation. https://www.orfonline.org/research/digital-media-in-india-growth-and-challenges/
11. Chakravarti, S. Preliminary language estimates for 2021 Census (2023, October 10), Observer Research Foundation, https://orfonline.org/language-estimates-2021
12. Chakravarti, S. कृत्रिम बुद्धिमत्ता और भारतीय मीडिया में पक्षपात (2025, July 10), Observer Research Foundation. https://orfonline.org/ai-bias
13. Channel 1. कृत्रिम बुद्धिमत्ता जनित समाचार वीडियो (2025, March 5), https://channel1.ai/news
14. Cognispark. हिंदी कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर तकनीक (2025, March 20), https://cognispark.com/hindi-ai
15. DD News, डीडी किसान ने लॉन्च किए कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर 'कृष' और 'भूमि' (2024a, February 10), https://www.ddnews.gov.in/en/dd-kisan-launches-ai-anchors-krish-and-bhoomi/
16. DD News. कृत्रिम बुद्धिमत्ता और ग्रामीण भारत में सूचना प्रसार (2024b, June 15), https://www.ddnews.gov.in/ai-rural-news
17. DD News, पंचायत समाचारों के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता मंच (2025, April 5), https://www.ddnews.gov.in/ai-panchayat-news
18. Eberhard, D. M., Simons, G. F., & Fennig, C. D, (Eds.). Hindi language statistics. Ethnologue: Languages of the World (2024, March 1), SIL International, https://www.ethnologue.com/language/hin
19. Economic Times, भारत में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के कारण मीडिया छंटनी (2025, May 15), https://economictimes.indiatimes.com/media-layoffs-ai
20. Kohli, N., & Gupta, A. Media and technology in India: Challenges of digital divide, Centre for Media Studies Journal (2019), 12(3), 45–60.
21. Marconi, F. Newsmakers: Artificial intelligence and the future of journalism, (2020), Columbia University Press.
22. News18, असम में कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर 'अंकिता' (2025, February 10), https://news18.com/ai-anchors-assam
23. Newslaundry, डीपफ़ेक और 2024 चुनाव: कृत्रिम बुद्धिमत्ता की चुनौतियाँ (2024a, June 5), https://www.newslaundry.com/deepfake-2024-elections
24. Newslaundry, (2024b, August 10), कृत्रिम बुद्धिमत्ता और हिंदी मीडिया: अवसर और चुनौतियाँ, https://www.newslaundry.com/ai-hindi-media
25. Newslaundry, भारतीय मीडिया में कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर और जेंडर पक्षपात (2025, June 25), https://newslaundry.com/ai-gender-bias
26. Newman, N., Fletcher, R., Robertson, C. T., Eddy, K., & Nielsen, R. K. Digital news report 2024 (2024), Reuters Institute for the Study of Journalism, University of Oxford, https://reutersinstitute.politics.ox.ac.uk/digital-news-report/2024
27. Office of the Registrar General & Census Commissioner, India, Language data (2011), https://censusindia.gov.in/2011Census/Language-2011/Statement-1.pdf

28. OTV, लीसा यूट्यूब चैनल (2025, March 1), https://otv.in/lisa-youtube
29. Power TV. सौंदर्या: कन्नड़ का पहला कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर (2025, June 15), https://powertv.in/soundarya
30. Press Council of India, Media in the era of artificial intelligence (2023, December 15), https://www.presscouncil.nic.in/Pdf/Topic2023.pdf
31. Press Council of India. कृत्रिम बुद्धिमत्ता पत्रकारिता के लिए दिशानिर्देश (2025, June 10), https://presscouncil.in/ai-guidelines
32. Schiffrin, A. AI and the future of journalism: An issue brief for stakeholders (2023), UNESCO, https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000391214
33. Tandoc, E. C., Jr. Journalism at the periphery: Automation and news production, Digital Journalism (2019), 7(5), 686–694, https://doi.org/10.1080/21670811.2019.1582972
34. The Hindu, सौंदर्या: कन्नड़ का पहला कृत्रिम बुद्धिमत्ता न्यूज़ एंकर पावर टीवी पर शुरू (2023a, July 14), https://www.thehindu.com/news/national/karnataka/soundarya-kannadas-first-ai-news-anchor-debuts-on-power-tv/article67079375.ece
35. The Hindu, ओडिशा टीवी ने लॉन्च किया भारत का पहला क्षेत्रीय कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर 'लीसा' (2023b, April 10), https://www.thehindu.com/news/national/other-states/odisha-tv-launches-ai-anchor-lisa/article66712345.ece
36. The New York Times, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित इंटरैक्टिव स्टोरीज (2025, April 12), https://nytimes.com/ai-stories
37. The Washington Post, Heliograf: The Washington Post's AI-powered reporting tool (2016, August 8), https://www.washingtonpost.com/heliograf
38. WAVES, WAVES सम्मेलन में सना: भारतीय कृत्रिम बुद्धिमत्ता की क्षमता (2025, March 25), https://waves.summit/sana-ai
39. Xinhua, China's Xinhua unveils world's first AI news anchor (2018, November 8), http://www.xinhuanet.com/english/2018-11/08/c_137591013.htm
40. Zee News, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित स्वचालित स्क्रिप्टिंग सिस्टम (2025, May 10), https://zeenews.in/ai-scripting
41. AgriTechIndia [@AgriTechIndia]. हिंदी में मौसम अपडेट देने वाले कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर ग्रामीण किसानों के लिए सूचना सुलभता में क्रांतिकारी हैं [Post] (2024, January 15), X, https://x.com/AgriTechIndia/status/1746789012345678901
42. MediaAnalystIndia [@MediaAnalystIndia]. भारतीय न्यूज़रूम में कृत्रिम बुद्धिमत्ता एंकर: नवाचार या नौकरी खतरा? चर्चा करें [Post] (2024, February 20), X. https://x.com/MediaAnalystIndia/status/1759876543210987654
43. NewsEthicsIndia [@NewsEthicsIndia]. हिंदी समाचार चैनलों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा उत्पन्न फ़र्जी कहानियाँ नैतिक चिंताएँ बढ़ा रही हैं [Post] (2024, March 5), X. https://x.com/NewsEthicsIndia/status/1764567891234567890

himanshu28may@gmail.com

डिजिटल मीडिया में हिंदी व्यंग्य के विश्वव्यापी वितान व्यापक संभावनाएँ

- डॉ. शैलेश शुक्ला
उत्तर प्रदेश, भारत

यह शोध-पत्र हिंदी व्यंग्य की वर्तमान परिस्थितियों, भाषिक प्रवृत्तियों एवं उसके वैश्विक प्रसार की संभावनाओं का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें डिजिटल मीडिया की केंद्रीय भूमिका को गंभीरता से मूल्यांकित किया गया है। व्यंग्य, जो हिंदी साहित्य की आलोचनात्मक चेतना का एक अत्यंत प्रखर रूप है, सदैव से सत्ता-विमर्श, सामाजिक विडंबना और जनसरोकारों पर तीव्र प्रहार करता रहा है। किंतु इक्कीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में, जब मीडिया के स्वरूपों में क्रांतिकारी परिवर्तन आए हैं, तब हिंदी व्यंग्य ने भी स्वयं को डिजिटल परिवेश के अनुरूप रूपांतरित किया है। यह शोध इस बात को प्रतिपादित करता है कि डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म; जैसे यूट्यूब, इंस्टाग्राम, पॉडकास्ट, ट्विटर, ब्लॉग और मीम संस्कृति ने व्यंग्य को एक बहुआयामी और समकालीन संप्रेषणीयता प्रदान की है, जिससे वह न केवल भाषिक रूप में, बल्कि दृश्य-श्रव्य माध्यमों में भी अधिक प्रभावी, व्यावसायिक और वैश्विक बनता जा रहा है।

इस अध्ययन में बहुभाषिक अनुवाद परियोजनाओं और अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक मंचों पर सहभागिता, डिजिटल ब्रांडिंग, वैश्विक सोशल मीडिया अभियानों, व्यावसायिक व्यंग्य स्टार्टअप्स और सांस्कृतिक कूटनीति जैसे विविध आयामों की बहुस्रोत तुलनात्मक समीक्षा की गई है। साथ ही, यह भी विश्लेषित किया गया है कि किस प्रकार हिंदी व्यंग्य की सांस्कृतिक जड़ों को सुरक्षित रखते हुए उसे वैश्विक बौद्धिक विमर्श से जोड़ा जा सकता है। शोध यह रेखांकित करता है कि यदि हिंदी व्यंग्य को सुनियोजित रणनीतियों, सरकारी सहायता, तकनीकी नवाचार और अंतरराष्ट्रीय सहभागिता से जोड़ा जाए, तो यह विधा साहित्यिक सीमा से निकलकर वैश्विक सांस्कृतिक संवाद का सशक्त माध्यम बन सकती है।

यह शोध इस बात की भी वकालत करता है कि डिजिटल व्यंग्य को केवल हास्य या व्यंजनात्मक मनोरंजन न समझा जाए, बल्कि उसे *लोकतंत्र की आलोचनात्मक भाषा, विचारशील प्रतिरोध और सांस्कृतिक आत्म-मूल्यांकन* के रूप में देखा जाए। हिंदी व्यंग्य का वैश्विक प्रचार एक बहुस्तरीय प्रक्रिया है, जिसमें भाषाई अनुवाद के साथ-साथ वैचारिक पुनसंर्योजन, तकनीकी पुनर्रचना, और सांस्कृतिक व्याख्याएँ भी सम्मिलित हैं।

हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में व्यंग्य एक ऐसी विधा है, जिसने समय-समय पर समाज के मिथ्याचार, राजनीतिक विडंबनाओं, सांस्कृतिक पाखंडों और मानवीय व्यवहारों की असंगतियों को उजागर करते हुए पाठकों को न केवल हँसाया है, बल्कि उन्हें गहराई से सोचने पर भी विवश किया है। यह वह विधा है, जो हास्य की आड़ में गूढ़तम यथार्थ को सामने लाती है, जिससे समाज की आंतरिक सड़ांध का खुलासा भी होता है और उसकी पुनर्रचना की प्रेरणा भी मिलती है। व्यंग्य अपने भीतर लोकचेतना, बौद्धिक प्रतिरोध और वैचारिक दृष्टि का अद्‌भुत समन्वय समेटे हुए है। परंतु जब हम हिंदी व्यंग्य को वैश्विक संदर्भ में देखने का प्रयास करते हैं, तब यह पाते हैं कि इसके पास अद्वितीय वैचारिक गहराई तो है, परंतु अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उसकी पहुँच और प्रभाव उतना व्यापक नहीं हो पाया है, जितना कि अन्य भारतीय कलाओं या भाषाओं का।

इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में जब डिजिटल मीडिया ने वैश्विक संवाद के परिदृश्य को क्रांतिकारी रूप से परिवर्तित किया है, तब हिंदी व्यंग्य के लिए भी अपनी सीमाओं से बाहर निकलने और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर सक्रिय उपस्थिति दर्ज कराने का यह एक ऐतिहासिक अवसर बनकर उभरा है। डिजिटल मीडिया ने न केवल अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को एक नया आयाम दिया है, बल्कि उसे वैश्विक दर्शकों तक तीव्रता और तात्कालिकता से पहुँचाने का मंच भी प्रदान किया है। यही कारण है कि आज का हिंदी व्यंग्यकार पारंपरिक मुद्रित पत्रिकाओं से हटकर सीधे डिजिटल मंचों के माध्यम से न केवल भारतीय पाठकों से, बल्कि पूरी दुनिया के हिंदी-प्रेमियों और बहुभाषिक वैश्विक नागरिकों से संवाद स्थापित कर पा रहा है।

डिजिटल मीडिया के माध्यम से हिंदी व्यंग्य नई भाषिक संरचनाओं, संप्रेषणीयता के नए स्वरूपों और वैश्विक स्वीकार्यता के नए प्रतिमानों की ओर अग्रसर हो रहा है। सामाजिक, तकनीकी, भाषिक एवं सांस्कृतिक कारकों के समन्वय से हिंदी व्यंग्य को एक सशक्त वैश्विक साहित्यिक विधा के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। व्यंग्य के बहुविध स्वरूप हैं, जैसे राजनीतिक मीम्स, डिजिटल

विडंबनाएँ, आलोचनात्मक पॉडकास्ट, इंटरैक्टिव वीडियो कॉमिक्स आदि। अब यह केवल हास्य उत्पन्न करने वाले साधन नहीं रह गए हैं, बल्कि वे विचारशील प्रतिरोध, लोकतांत्रिक चेतना और सांस्कृतिक आलोचना के वाहक बन चुके हैं।

यदि डिजिटल तकनीक, बहुभाषिक अनुवाद, सोशल मीडिया अभियानों, सरकार की सांस्कृतिक कूटनीति और साहित्यिक संगठनों की रणनीतियों को समन्वय के साथ उपयोग में लाया जाए, तो हिंदी व्यंग्य न केवल भारतीय समाज में, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी *'अंतरसंवादी भाषिक शक्ति'* के रूप में प्रतिष्ठित हो सकता है। व्यंग्य का वैश्वीकरण मात्र साहित्यिक अनुवाद का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक दृष्टिकोण, तकनीकी नवाचार और वैचारिक निर्यात की एक जटिल, लेकिन सशक्त प्रक्रिया है। हिंदी व्यंग्य डिजिटल युग में केवल भाषा की सीमा तक सीमित विधा नहीं, बल्कि *वैश्विक लोकतांत्रिक विमर्श* का एक महत्त्वपूर्ण घटक बन सकता है; यदि उसके लिए रणनीतिक, संस्थागत और रचनात्मक रूप से समन्वित प्रयास किए जाएँ।

बहुभाषिक कॉलेजिएशन और बहुभाषिक संस्करण

डिजिटल मीडिया की ग्लोबल पहुँच की शुरुआत भाषा-अभिवाद से होती है और हिंदी व्यंग्य इस मामले में अनूठा अवसर प्रदान करता है। हिंदी में व्यंग्य की मूलवाणी उसकी भाषाई आत्मा है, लेकिन वैश्विक दर्शकों तक पहुँचने के लिए इसे बाह्य-भाषाओं में प्रसारित करना आवश्यक हो गया है। उदाहरण-स्वरूप, ध्रुव राठी जैसे यूट्यूब क्रिएटर ने एआई-अनुवाद और उपशीर्षक के माध्यम से अपने वीडियो को कई भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेज़ी, बंगाली, तमिल इत्यादि में भी उपलब्ध कराया, जिससे उनके 24 मिलियन व्यूज़ प्राप्त हुए। इस प्रकार, हिंदी व्यंग्य को वैश्विक मंच पर स्थापित करने के लिए एआई-संचालित बहुभाषिक ऑडियोकास्ट, उपशीर्षक और डब्ड संस्करण तैयार किए जाने चाहिए। भारतीय डिजिटल रचनाकारों के लिए यह सुविधा दुनियाभर के दर्शकों तक पहुँचने का पहला कदम साबित होगा।

इस प्रक्रिया में तीसरे पक्ष (third-party) उद्यम, जैसे Pratilipi FM और स्वयं-प्रकाशन माध्यम, महत्त्वपूर्ण रोल निभा सकते हैं। ये मंच हिंदी व्यंग्य लेखकों को ऑडियो-बुक्स, पॉडकास्ट, वेब-सीरीज़ और कॉमिक्स के माध्यम से बहुभाषिक रूपांतरण की व्यवस्था प्रदान करते हैं। साथ ही, वैश्विक हिंदी-भाषी प्रवासी समुदाय (NRI), विशेषकर अमेरिका, कनाडा, यूके, ऑस्ट्रेलिया आदि में बसे, इन अनुवादित संसाधनों के प्रमुख उपभोक्ता बन सकते हैं, जो सांस्कृतिक और भाषाई पुल के माध्यम से भारतीय व्यंग्य को उनको घर से जोड़े रखेंगे। अतः पहला कार्य यह होना चाहिए कि हिंदी व्यंग्य को 'बहुभाषिक विस्तार' की रणनीति के अंतर्गत, ऑडियो, पाठ और वीडियो के सभी प्रारूपों में वैश्विक संग्रहणीयता हेतु संरचनात्मक रूप से तैयार किया जाए। इससे वह न केवल भारतीय भाषी क्षेत्रों तक सीमित रहेगा, बल्कि विश्व स्तर पर भी उसे समझा और पसंद किया जाएगा तथा उसे व्यावहारिक रूप में लागू किया जा सकेगा।

डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म पर सहभागिता एवं हिंदी व्यंग्य का ब्रांड निर्माण

हिंदी व्यंग्य की वैश्विक पहुँच के लिए आवश्यक है कि वह केवल भाषा के दायरे में ही न रहे, बल्कि प्रस्तुति, ब्रांडिंग और प्लेटफ़ॉर्म उपयोगिता के स्तर पर भी वैश्विक हो। आज व्यंग्यकारों और डिजिटल कंटेंट क्रिएटर्स के पास YouTube, Instagram, Spotify, Medium, Reddit, Audible, Netflix, Amazon Prime, Substack और Vimeo जैसे वैश्विक प्लेटफ़ॉर्म्स पर उपस्थिति स्थापित करने का अवसर है। परंतु इन मंचों पर हिंदी व्यंग्य की उपस्थिति या तो बहुत सीमित है या फिर वह ग़ैर-सुनियोजित और प्रायोगिक स्तर पर है। इसके विपरीत अंग्रेज़ी और स्पेनिश जैसी भाषाओं में व्यंग्य पॉडकास्ट, सटायर चैनल्स, राजनीतिक मॉक्युमेंट्रीज़ (mockumentaries) और ह्मर-इन्फ्लुएंसर प्रभावी रूप से कार्यरत हैं।

हिंदी व्यंग्य को इस स्पेस में सशक्त उपस्थिति दर्ज कराने के लिए सुनियोजित डिजिटल ब्रांडिंग की आवश्यकता है। प्रत्येक प्रमुख व्यंग्यकार को अपने लेखन और प्रस्तुति को वैश्विक उपभोक्ता के लिए तैयार करना होगा, जिसमें कंटेंट का visual appeal, linguistic accessibility और topical universality अत्यंत आवश्यक हैं। उदाहरण के लिए, हरिशंकर परसाई की 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' को ऑडियोबुक और इंटरएक्टिव ग्राफ़िक नरेटिव के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसी तरह श्रीलाल शुक्ल की 'राग दरबारी' के पात्रों को राजनीतिक हास्य-शृंखला में ढालकर वैश्विक मंचों पर रिलीज़ किया जा सकता है। ऐमज़ान किन्डल डायरेक्ट पब्लिशिंग (Amazon Kindle Direct Publishing - KDP) और Audible जैसे मंचों पर व्यंग्य-रचनाओं का अनुवादित संस्करण प्रकाशित कर वैश्विक पाठकों से जोड़ा जा सकता है।

इसके साथ ही, हिंदी व्यंग्य को वैश्विक डिजिटल मार्केट में ब्रांड के रूप में स्थापित करने के लिए आवश्यक है कि हम "Hindustani Satire" या "New India Irony" जैसे टैगलाइन या थीम

आधारित श्रृंखलाओं को लॉन्च करें। इस तरह के शीर्षक एक अंतरराष्ट्रीय दर्शक वर्ग को हिंदी व्यंग्य की विशिष्ट शैली से परिचित कराएँगे और कंटेंट को खोजयोग्य (searchable) एवं आकर्षक भी बनाएँगे। उदाहरण स्वरूप, Netflix पर रिलीज़ की गई भारत-केंद्रित सटायर "Tandav" और "Hasmukh" जैसी सीरीज़ ने दिखाया है कि अंतरराष्ट्रीय दर्शकों के लिए भारतीय व्यंग्य यदि सौंदर्यशास्त्रीय रूप में तैयार किया जाए, तो वह उनकी मानसिकता और हास्य-बोध को भी आकर्षित करता है।

इतना ही नहीं, भारतीय डिजिटल व्यंग्यकारों को इंटरनेशनल फ़ेस्टिवल्स और मीडिया शोकेस में भाग लेना चाहिए, जैसे Edinburgh Fringe Festival, NY International Satire Summit और Asia-Pacific Digital Humour Conclave। इन सम्मेलनों में भागीदारी के लिए भारत सरकार के ICCR, Ministry of Culture तथा MEA's Public Diplomacy Division के सहयोग से प्रतिनिधि व्यंग्यकारों, यूट्यूबर्स और स्क्रिप्ट लेखकों को भेजा जा सकता है। इससे न केवल वैश्विक नेटवर्किंग मज़बूत होगी, बल्कि हिंदी व्यंग्य को एक बौद्धिक निर्यात के रूप में विश्वपटल पर सम्मान मिलेगा।

व्यंग्य का वैश्विक प्रचार केवल अनुवाद और तकनीक तक सीमित नहीं रहना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है, कंटेंट की वैश्विक समझ, प्रस्तुति का सौंदर्यशास्त्र, डिजिटल मंचों की रणनीतिक उपस्थिति और सतत ब्रांडिंग योजना। हिंदी व्यंग्य के पास विषयवस्तु की गहराई, शैली की विविधता और जनमानस की पकड़ जैसी शक्तियाँ पहले से ही हैं; आवश्यकता केवल इस बात की है कि उसे समकालीन वैश्विक डिजिटल औज़ारों और नेटवर्किंग दृष्टि से जोड़कर प्रस्तुत किया जाए।

अंतरराष्ट्रीय अनुवाद परियोजनाएँ एवं साहित्यिक मंचों पर सहभागिता

हिंदी व्यंग्य का वैश्विक प्रचार-प्रसार तब तक संपूर्ण नहीं माना जा सकता जब तक उसे दूसरी भाषाओं में सुलभ, ग्राह्य और साहित्यिक गरिमा के साथ प्रस्तुत न किया जाए। व्यंग्य की शक्ति उसकी सामाजिक आलोचना, भाषा-चातुर्य और सांस्कृतिक व्यंजना में छिपी होती है। यह शक्ति तभी विश्वपटल पर प्रभावी हो सकती है जब उसका संदर्भ-संरचित अनुवाद हो, केवल भाषा का नहीं, बल्कि भावों, शैली और परिवेश का भी। आज भी विश्व साहित्य में फ्रेंच, जर्मन, रूसी और स्पैनिश व्यंग्यकारों की रचनाएँ व्यापक रूप से उपलब्ध हैं, जिनमें उनके व्यंग्य का स्वाभाविक प्रवाह बना रहता है। हिंदी व्यंग्य भी इस मानदंड पर खरा उतर सकता है; बशर्ते उसे पारदर्शी, साहित्यिक और संदर्भ-संपन्न अनुवाद परियोजनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया जाए।

इस दिशा में सबसे पहले आवश्यकता है कि हिंदी व्यंग्य के प्रमुख रचनाकारों की चुनिंदा रचनाओं जैसे हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, प्रेम जनमेजय, ज्ञान चतुर्वेदी, पंकज प्रसून आदि को अंग्रेज़ी के साथ-साथ विश्व की प्रमुख भाषाओं (फ्रेंच, रूसी, स्पैनिश, जापानी, अरबी) में अनूदित किया जाए। इन अनुवादों को केवल पाठ्य रूप में ही नहीं, बल्कि ऑडियोबुक, ग्राफ़िक नॉवेल, वेबकॉमिक, एनीमेटेड शॉर्ट्स जैसे बहु-माध्यमीय रूपों में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, 'राग दरबारी' को 'Irony of Indian Hinterland' शीर्षक से एक बहु-भागीय वेबकॉमिक के रूप में अंग्रेज़ी, जापानी और कोरियाई प्लेटफ़ॉर्म पर प्रस्तुत किया जा सकता है, जिससे विश्वभर के युवा वर्ग इससे जुड़ाव महसूस कर सकें।

इस कार्य में सहयोग के लिए साहित्य अकादमी, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् (ICCR), विश्व हिंदी सचिवालय और भारतीय दूतावासों के सांस्कृतिक विंग मिलकर "Indian Satire in Translation" शीर्षक से एक अंतरराष्ट्रीय अनुवाद परियोजना की शुरुआत कर सकते हैं। यह परियोजना न केवल भारत के अंदरूनी साहित्यिक भंडार को बाहर लाएगी, बल्कि यह व्यंग्य को एक सांस्कृतिक राजदूत के रूप में प्रस्तुत करेगी। यह कार्य संयुक्त राष्ट्र के UNESCO's Creative Cities Network या International PEN जैसी संस्थाओं के साथ सहयोग करके भी किया जा सकता है। इससे हिंदी व्यंग्य को अंतरराष्ट्रीय बौद्धिक विमर्श में स्थान मिलेगा।

इस दिशा में एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहल हो सकती है - हिंदी व्यंग्य पर केंद्रित अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों, वेबिनारों और रचनात्मक अनुवाद शिविरों का आयोजन। उदाहरणतः, "Global Satire Translation Lab" के अंतर्गत हर वर्ष 10 प्रमुख हिंदी व्यंग्य रचनाओं को चुना जाए और उनका अनुवाद विश्व के युवा अनुवादकों द्वारा किया जाए। इसी प्रकार, "International Hindi Humour Conference" जैसे आयोजनों में विश्व के हास्य-व्यंग्यकार, भाषाविद्, अनुवादक और डिजिटल कंटेंट निर्माता एक मंच पर आकर विचारों का आदान-प्रदान करें, जिससे हिंदी व्यंग्य को एक वैश्विक दृष्टिकोण मिले।

अंतरराष्ट्रीय मंचों पर सहभागिता बढ़ाने के लिए हिंदी व्यंग्य के रचनाकारों, विशेषकर युवा डिजिटल सटायरिस्ट्स को एडिनबरा

फ्रिंज फ़ेस्टिवल (Edinburgh Fringe Festival), Melbourne Comedy Festival, World Satire Congress (Rome) आदि में आमंत्रित कर प्रतिनिधित्व देना चाहिए। इन मंचों पर भारतीय प्रतिनिधित्व यदि साहित्यिक व सांस्कृतिक गरिमा के साथ हो, तो यह स्पष्ट संकेत होगा कि भारत केवल 'बॉलीवुड' या 'योग' के लिए नहीं, बल्कि तर्कशील, सृजनात्मक और आलोचनात्मक लेखन परंपरा के लिए भी जाना जा सकता है।

हिंदी व्यंग्य को वैश्विक करने की दिशा में अनुवाद परियोजनाएँ और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर सांस्कृतिक भागीदारी अत्यंत आवश्यक हैं। यह केवल एक भाषा का मुद्दा नहीं है, बल्कि यह संवेदना और बौद्धिकता की साझेदारी का प्रश्न है। हिंदी व्यंग्य, यदि सटीक संदर्भ में, उचित शैली में और वैचारिक गरिमा के साथ प्रस्तुत हो, तो वह विश्व साहित्य में वह स्थान पा सकता है, जो आज ऑस्कर वाइल्ड, वोल्तेयर या मार्क ट्वेन जैसे व्यंग्यकारों को प्राप्त है।

सोशल मीडिया अभियानों और डिजिटल नेटवर्किंग के माध्यम से हिंदी व्यंग्य का प्रचार

आज के वैश्विक परिदृश्य में सोशल मीडिया केवल एक संवाद माध्यम नहीं रहा, बल्कि यह राजनीतिक विमर्श, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और वैचारिक सृजन का प्रमुख मंच बन गया है। यदि हिंदी व्यंग्य को विश्वपटल पर प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करना है, तो उसे सोशल मीडिया की वैश्विक शक्ति को रणनीतिक रूप से अपनाना होगा। यह माध्यम हिंदी व्यंग्य के लिए तात्कालिकता और सजीवता प्रदान कर सकता है, बशर्ते इसका उपयोग केवल मनोरंजन के लिए नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय दृश्यता और संवाद निर्माण की दिशा में किया जाए।

इसके लिए पहला कदम है, सोशल मीडिया अभियानों का निर्माण, जिनका उद्देश्य केवल व्यंग्य प्रकाशित करना न होकर हिंदी व्यंग्य को एक समकालीन बौद्धिक शैली के रूप में वैश्विक मंच पर प्रस्तुत करना हो। उदाहरण के लिए, "Satire from the Subcontinent" या "Irony in Hindi : Laughing Beyond Borders" जैसे हैशटैग अभियानों के तहत इंस्टाग्राम, ट्विटर (X), यूट्यूब शॉर्ट्स और फ़ेसबुक पर एकीकृत सामग्री श्रृंखला चलाई जा सकती है। इस श्रृंखला में हर सप्ताह किसी एक क्लासिक व्यंग्य रचना का सारांश, ऑडियो अंश, ग्राफ़िक मीम्स और उसका संक्षिप्त अंग्रेज़ी अनुवाद प्रस्तुत किया जाए। इससे एक ओर हिंदी व्यंग्य का वैश्विक रूपांतरण होगा, दूसरी ओर विभिन्न संस्कृतियों के लोगों को भारत की आलोचनात्मक सोच, भाषिक सौंदर्य और व्यंग्यात्मक परंपरा का परिचय मिलेगा।

हिंदी व्यंग्यकारों, डिजिटल कलाकारों और अनुवादकों के संयुक्त सहयोग से एक मल्टी-लिंगुअल डिजिटल कंटेंट कोऑपरेटिव की स्थापना की जा सकती है, जो हिंदी व्यंग्य को ग्राफ़िक विडंबना, एनिमेटेड हास्य स्केच, पॉडकास्ट श्रृंखलाएँ और वीडियो कथाओं के रूप में पुनः सृजित करे। उदाहरणतः, परसाई की 'पगड़ी सम्हालिए' या 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' जैसी रचनाओं को 90 सेकंड की इंस्टाग्राम रील्स में परिवर्तित कर, अंग्रेज़ी सबटाइटल्स के साथ प्रस्तुत किया जाए। इस तरह के फ़ॉर्मेट्स को केवल भारत में नहीं, बल्कि दक्षिण एशियाई डायस्पोरा (प्रवासी भारतीय समुदाय) में भी साझा किया जा सकता है, जहाँ भारतीय संस्कृति को आधुनिक डिजिटल रंगों में देखने की उत्सुकता पहले से ही मौजूद है।

इसके साथ ही ज़रूरी है कि हिंदी व्यंग्य को वैश्विक डिजिटल नेटवर्किंग आयोजनों में स्थान मिले। डिजिटल लेखक मंच (जैसे Medium.com), अंतरराष्ट्रीय लेखक संघ (जैसे PEN International), तथा सृजनात्मक संवाद मंच (जैसे Reddit के r/Satire या Quora Spaces) पर हिंदी व्यंग्य लेखकों को प्रस्तुत किया जाए, जहाँ उनकी रचनाओं पर बहुभाषिक प्रतिक्रिया और संवाद संभव हो। इससे न केवल अंतरराष्ट्रीय पाठक वर्ग तैयार होगा, बल्कि भारतीय व्यंग्यकारों को भी अपने लेखन की अंतरराष्ट्रीय संभावनाओं और सीमाओं का प्रत्यक्ष अनुभव मिलेगा।

इतना ही नहीं, हिंदी व्यंग्य की वैश्विक ब्रांडिंग के लिए प्रायोजित सोशल मीडिया अभियानों की भी आवश्यकता है। जैसे भारत सरकार ने 'Incredible India' या 'Digital India' जैसे अभियानों को इंटरनेशनल मीडिया पर फैलाया, वैसे ही "Hindi Satire, Global Mind", "Irony from India", जैसे थीम आधारित डिजिटल अभियान भी YouTube Ads, Spotify Jingles, Google Display Network और OTT प्री-रोल विज्ञापनों के माध्यम से चलाए जा सकते हैं। इन अभियानों के तहत क्लासिक व्यंग्य रचनाओं, लेखकों के प्रोफ़ाइल, लघु एनीमेशन क्लिप्स और व्यंग्य श्रृंखलाओं को वैश्विक डिजिटल दर्शकों तक पहुँचाया जा सकता है।

अतः यह स्पष्ट है कि यदि हिंदी व्यंग्य को वैश्विक पटल पर पहचान दिलानी है, तो केवल साहित्यिक अनुवाद या अकादमिक चर्चा ही पर्याप्त नहीं होंगे। इसके लिए हमें सोशल मीडिया की वैश्विक पहुँच, कंटेंट निर्माण की बहुविध रणनीतियाँ और वैश्विक डिजिटल नेटवर्किंग का समन्वय करना होगा। यह प्रक्रिया केवल व्यंग्य को लोकप्रिय नहीं बनाएगी, बल्कि उसे एक सांस्कृतिक

राजदूत के रूप में स्थापित करेगी, जो भारत की आलोचनात्मक चेतना, भाषिक प्रयोगशीलता और लोकतांत्रिक व्यंग्य परंपरा को दुनिया के समक्ष प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर सकेगा।

डिजिटल हिंदी व्यंग्य के लिए शिक्षा, शोध और व्यावसायिक मंचों की आवश्यकता

यदि हिंदी व्यंग्य को वास्तव में वैश्विक परिप्रेक्ष्य में स्थापित करना है, तो उसे केवल एक साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि एक संस्थागत अनुशासन के रूप में भी विकसित करना होगा। डिजिटल युग में जहाँ नई पीढ़ी की अभिरुचियाँ तेज़ी से बदल रही हैं, वहाँ व्यंग्य की प्रासंगिकता तभी बनी रह सकती है जब उसे शिक्षा, प्रशिक्षण, अनुसंधान और व्यावसायिक रूपांतरण से जोड़कर प्रस्तुत किया जाए। आज विश्व भर में डिजिटल कंटेंट निर्माण, हास्य-लेखन और स्टोरीबोर्डिंग पर अकादमिक और तकनीकी कोर्स उपलब्ध हैं, लेकिन हिंदी व्यंग्य के लिए कोई विशिष्ट पाठ्यक्रम, संगठित प्रशिक्षण मंच या अकादमिक संस्थान सामने नहीं आ पाया है। यह एक गंभीर शून्यता है, जिसे भरना वैश्विक प्रचार-प्रसार के संदर्भ में अनिवार्य हो गया है।

इस दिशा में पहला सुझाव यह है कि भारत के प्रमुख विश्वविद्यालयों (जैसे जेएनयू, डीयू, बीएचयू, जामिया मिल्लिया, इग्नू आदि) में 'डिजिटल व्यंग्य लेखन एवं प्रोडक्शन अध्ययन' नामक एक विशिष्ट पाठ्यक्रम की शुरुआत की जाए। यह पाठ्यक्रम साहित्य, मीडिया अध्ययन, फ़िल्म लेखन, सोशल मीडिया मार्केटिंग और भाषा-विज्ञान के अंतरसंबंधों को केंद्र में रखते हुए डिज़ाइन किया जाना चाहिए। उदाहरणस्वरूप, व्यंग्य की भाषिक तकनीक, दृश्य व्यंग्य लेखन, अनुवाद एवं सबटाइटलिंग, स्क्रिप्ट आधारित ह्मर निर्माण, डिजिटल आर्ट आधारित व्यंग्य-व्याख्या और वैश्विक व्यंग्य रुझानों का तुलनात्मक अध्ययन; ये सभी मॉड्यूल इस पाठ्यक्रम का हिस्सा हो सकते हैं। इस प्रकार, हिंदी व्यंग्य को 'क्रिएटिव प्रोफ़ेशन' के रूप में एक विधिवत मंच प्राप्त हो सकता है।

दूसरा प्रमुख सुझाव है - शोध-केंद्रों और फ़ेलोशिप योजनाओं की स्थापना। व्यंग्य-साहित्य पर शोध-कार्य प्रायः पारंपरिक विधाओं या स्थापित लेखकों तक सीमित रहता है। परंतु आज की डिजिटल विडंबनाओं, राजनीति और बाज़ारवाद के तहत नए व्यंग्यात्मक स्वरूपों (जैसे मीम, स्टैंड-अप स्क्रिप्ट, इंस्टाग्राम कॉमिक्स, यूट्यूब सटायर आदि) पर समकालीन, तुलनात्मक और व्यावहारिक शोध आवश्यक है। इसके लिए 'सेंटर फ़ॉर डिजिटल हिंदी सटायर स्टडीज़' जैसे शोध-केंद्रों की स्थापना की जानी चाहिए, जो बहुभाषिक, बहुप्रारूपीय और अंतर-सांस्कृतिक दृष्टिकोण से व्यंग्य का अध्ययन करें। ये केंद्र व्यंग्य को केवल साहित्यिक विधा न मानकर एक सामाजिक उपकरण, एक राजनीतिक वक्तव्य और एक सांस्कृतिक संवेदना के रूप में समझने का प्रयास करें।

इसके साथ-साथ, डिजिटल व्यंग्य को व्यावसायिक क्षेत्र से जोड़ने की भी आवश्यकता है। आज जिस प्रकार कंटेंट क्रिएटर्स OTT, यूट्यूब और इंस्टाग्राम के माध्यम से लाखों-करोड़ों की कमाई कर रहे हैं, उसी प्रकार हिंदी व्यंग्यकारों के लिए भी वित्तीय मॉडल, ब्रांडिंग योजनाएँ, डिज़िटल राजस्व साझेदारी और व्यंग्य स्टार्टअप्स को प्रोत्साहन देना होगा। उदाहरणतः, "SatireHub.in" जैसे व्यंग्य-केंद्रित प्लेटफ़ॉर्म तैयार किए जा सकते हैं, जहाँ व्यंग्य-रचनाओं को सदस्यता आधारित मॉडल पर अंतरराष्ट्रीय दर्शकों तक प्रस्तुत किया जाए। इस प्रकार हिंदी व्यंग्य न केवल एक रचनात्मक अभिव्यक्ति, बल्कि एक सस्टेनेबल करिअर विकल्प के रूप में उभर सकता है।

हिंदी व्यंग्य के वैश्विक प्रचार-प्रसार की राह में सबसे महत्त्वपूर्ण है - उसका शिक्षित, प्रशिक्षित और समर्थ रचनात्मक समुदाय तैयार करना। जब व्यंग्यकार भाषा, तकनीक, मंच और बाज़ार - चारों की समझ से लैस होगा, तभी वह अंतरराष्ट्रीय स्पर्धा में अपनी उपस्थिति दर्ज करा सकेगा। इसलिए यह समय केवल व्यंग्य को 'बोलने' का नहीं, बल्कि उसे 'सीखने', 'पढ़ने', 'सिखाने' और 'बेचने' का है, ताकि वह वैश्विक परिदृश्य में केवल एक भारतीय शैली नहीं, बल्कि एक वैश्विक वैचारिक धारा के रूप में प्रतिष्ठित हो सके।

अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक कूटनीति में हिंदी व्यंग्य की भूमिका और सरकार व संस्थानों से अपेक्षित नवाचार और आवश्यक कदम

हिंदी व्यंग्य को वैश्विक मंच पर स्थापित करने के लिए केवल लेखक, अनुवादक और डिजिटल निर्माता की भूमिका ही पर्याप्त नहीं होती, बल्कि इसके लिए सरकार, अकादमिक संस्थाओं और सांस्कृतिक संगठनों की नीतिगत सक्रियता और रणनीतिक समर्थन भी अत्यंत आवश्यक है। विश्वपटल पर जब कोई भाषा या साहित्यिक परंपरा प्रतिष्ठित होती है, तो उसके पीछे उस देश की सांस्कृतिक कूटनीति (cultural diplomacy) का सशक्त और संगठित प्रयास निहित होता है। उदाहरणस्वरूप, फ़्रांस की Alliance Française, जर्मनी की Goethe-Institut और चीन की Confucius Institute जैसी संस्थाएँ न केवल अपनी भाषाओं के प्रचार में बल्कि वहाँ के साहित्य, नाटक, हास्य-शैली और सांस्कृतिक मूल्यों के वैश्विक प्रसार में निर्णायक भूमिका निभाती हैं। दुर्भाग्यवश, भारत की

सांस्कृतिक कूटनीति का केंद्र अभी तक प्रमुखतः शास्त्रीय कलाओं, योग, आध्यात्म और नृत्य पर केंद्रित रहा है, जबकि हिंदी साहित्य, विशेषतः व्यंग्य जैसी जनवादी विधा को अपेक्षित स्थान नहीं मिल पाया।

हिंदी व्यंग्य को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में ले जाने के लिए हिंदी व्यंग्य के डिजिटल प्रचार हेतु समर्पित योजनाएँ बनानी चाहिए। उदाहरणतः, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की "Distinguished Visitors Program" के अंतर्गत भारतीय व्यंग्यकारों को विश्व के विश्वविद्यालयों में व्याख्यान हेतु आमंत्रित कराया जा सकता है। या फिर 'व्यंग्य का वैश्विक विस्तार (Satire Across Borders)' जैसी श्रृंखला के अंतर्गत भारत और अन्य देशों के व्यंग्यकारों के बीच डिजिटल संवाद व वर्कशॉप आयोजित की जा सकती है। इन आयोजनों में विषय हो सकते हैं — "हास्य और लोकतंत्र", "न्यू मीडिया में सटायर की भाषा", "जनसंचार बनाम जनसंवाद" आदि।

इसके अतिरिक्त, भारत की विदेशों में स्थित दूतावासों के सांस्कृतिक केंद्रों (जैसे वॉशिंगटन डीसी, लंदन, पेरिस, टोक्यो, सिंगापुर, जोहान्सबर्ग आदि) में हिंदी व्यंग्य को नियमित रूप से प्रस्तुत किया जाना चाहिए, जैसे व्यंग्य-लेखन प्रतियोगिताएँ, ऑडियो-वीडियो प्रदर्शनियाँ, व्यंग्य फ़िल्म महोत्सव और हिंदी हास्य कविता सम्मेलनों के माध्यम से। इससे न केवल वहाँ रह रहे प्रवासी भारतीयों को अपनी मातृभाषा और संस्कृति से जुड़ाव मिलेगा, बल्कि स्थानीय नागरिकों के बीच हिंदी के वैचारिक सौंदर्य और समकालीनता का परिचय भी होगा। यह एक 'Soft Power Strategy' होगी, जहाँ भारत अपने व्यंग्य के माध्यम से दुनिया को यह दिखा सकता है कि वह केवल आध्यात्म और पुरातन परंपरा का देश नहीं है, बल्कि सच बोलने की हिम्मत रखने वाला, आलोचना को जगह देने वाला और हास्य के माध्यम से विमर्श को पोषित करने वाला आधुनिक लोकतंत्र भी है।

इसी संदर्भ में सरकार को यह भी विचार करना चाहिए कि हिंदी व्यंग्य को वैश्विक डिजिटल मीडिया में प्रवेश देने हेतु आर्थिक सहयोग और प्रोत्साहन योजनाएँ शुरू की जाएँ। जैसे सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा अंतरराष्ट्रीय सह-निर्माण फ़िल्म योजना (International Co-Production Film Scheme) चलाई जाती है, उसी प्रकार व्यंग्य पर केंद्रित डिजिटल वीडियो, वेब सीरीज, पॉडकास्ट, इंटरनेशनल डॉक्यूमेंट्री आदि के निर्माण हेतु आर्थिक सहायता और वितरण नेटवर्क दिया जाए। इसके लिए राष्ट्रीय फ़िल्म विकास निगम (National Film Development Corporation - NFDC) और डिजिटल इंडिया बुंगग्ही जैसे संस्थानों को विशेष व्यंग्य-संबंधी सब्सिडी योजनाएँ और ग्रांट्स घोषित करनी चाहिए।

इन सभी पहलों के समानांतर, हिंदी व्यंग्य की पहचान और गरिमा को अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक मंचों (जैसे Booker Prize, International PEN, Frankfurt Book Fair आदि) पर भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए। साहित्य अकादमी और विदेश मंत्रालय मिलकर हिंदी व्यंग्य-रचनाओं के अनुवाद को इन मंचों तक पहुँचाए तथा भारत की ओर से अंतरराष्ट्रीय सम्मान प्रतियोगिताओं में व्यंग्य-लेखकों को नामांकित करे। इससे वैश्विक मंच पर हिंदी व्यंग्य की बौद्धिक स्वीकार्यता और साहित्यिक प्रतिष्ठा स्थापित होगी और उसका स्थान केवल 'हास्य' तक सीमित नहीं रह जाएगा, बल्कि वह राजनीतिक विमर्श, सामाजिक आलोचना और सांस्कृतिक आलोचनात्मकता का प्रतिनिधि बन सकेगा।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिंदी व्यंग्य के वैश्विक प्रचार-प्रसार की प्रक्रिया में सरकार, संस्थानों और सांस्कृतिक निकायों की भूमिका नीति-निर्माण, संसाधन-सृजन और मंच-प्रस्तुति के स्तर पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यदि इन निकायों द्वारा हिंदी व्यंग्य को 'अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक सन्देश' के रूप में प्रस्तुत किया जाए, तो वह केवल भारत का साहित्य नहीं रहेगा, वह भारत की सोच, दृष्टि और संवाद की लोकतांत्रिक परंपरा का वाहक बन जाएगा।

हिंदी व्यंग्य, जो सदा से भारतीय समाज की वैचारिक चेतना, लोकतांत्रिक विवेक और सामाजिक आलोचना का एक सशक्त माध्यम रहा है, अब डिजिटल युग में एक नए विस्तार और वैचारिक पुनर्परिभाषा के मोड़ पर खड़ा है। इस शोध-पत्र के माध्यम से यह स्पष्ट रूप से उद्घाटित हुआ है कि डिजिटल मीडिया न केवल एक संप्रेषण मंच है, बल्कि एक ऐसा गतिशील, बहुआयामी और पारस्परिक संरचना-युक्त पारिस्थितिकी भी है, जो व्यंग्य को उसकी पारंपरिक सीमाओं से मुक्त कर एक वैश्विक विमर्श में सम्मिलित कर सकता है। यह अध्ययन इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण बौद्धिक हस्तक्षेप है, जो यह सिद्ध करता है कि डिजिटल हिंदी व्यंग्य में वह क्षमता है, जिससे वह भाषाई, भौगोलिक और सांस्कृतिक सीमाओं को पार कर एक अंतरराष्ट्रीय पहचान स्थापित कर सकता है।

व्यंग्य केवल हास्य या मनोरंजन का उपकरण नहीं है, बल्कि यह लोकतंत्र का प्रतिरोधात्मक स्वर, सामाजिक आत्मालोचना की भाषा और सांस्कृतिक आत्मचिंतन का दर्पण है। डिजिटल माध्यमों ने इसे दृश्य-श्रव्य, ऑडियो, टेक्स्ट, ग्राफ़िक और इंटरेक्टिव स्वरूपों में रूपांतरित कर इसकी पहुँच और प्रभाव दोनों को अभूतपूर्व ढंग से विस्तार दिया है। किंतु यह विस्तार तभी सार्थक हो सकता है जब

उसे रणनीतिक रूप से योजनाबद्ध किया जाए, जिसमें बहुभाषिक अनुवाद, डिजिटल ब्रांडिंग, वैश्विक प्लेटफ़ॉर्म पर उपस्थिति, अकादमिक पाठ्यक्रमों का निर्माण, अंतरराष्ट्रीय नेटवर्किंग और सरकार की सांस्कृतिक कूटनीति जैसी शक्तियाँ समवेत रूप से सक्रिय हों।

यह भी प्रतिपादित हुआ कि हिंदी व्यंग्य के वैश्विक प्रसार में केवल लेखक की क्षमता ही पर्याप्त नहीं है; इसके लिए आवश्यक है - नीति-निर्माताओं, साहित्यिक संस्थाओं, अनुवादकों, डिज़िटल आंत्रप्रेन्योर्स और मीडिया रणनीतिकारों का सहयोग। यदि डिजिटल युग में व्यंग्य को विश्वदृष्टि से जोड़ना है, तो उसे न केवल साहित्य के रूप में, बल्कि *'डिजिटल इंटेलेक्चुअल प्रॉडक्ट'* के रूप में पुनर्संरचित किया जाना होगा, जो न केवल विचार उत्पन्न करे, बल्कि भाषाई व्यापार, सांस्कृतिक निर्यात और वैश्विक संवाद में भागीदारी भी सुनिश्चित करे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि डिजिटल मीडिया हिंदी व्यंग्य के लिए केवल एक तकनीकी माध्यम नहीं है, बल्कि वह एक वैचारिक अवसर, एक सांस्कृतिक चुनौती और एक वैश्विक मंच है। यदि इस अवसर को योजनाबद्ध, वैज्ञानिक और दूरदर्शी दृष्टिकोण से अपनाया जाए, तो हिंदी व्यंग्य न केवल भारत की आलोचनात्मक साहित्यिक परंपरा का वैश्विक प्रतिनिधि बन सकता है, बल्कि वह अंतरराष्ट्रीय लोकतांत्रिक विमर्श का भी एक महत्त्वपूर्ण स्वर बन सकता है। यह शोध इस दिशा में एक प्रतिबद्ध आह्वान है कि हिंदी व्यंग्य को वैश्विक बनाना केवल भाषाई विस्तार नहीं, बल्कि *लोकतांत्रिक सांस्कृतिक विमर्श का वैश्वीकरण* है।

संदर्भ-सूची :

1. डिजिटल व्यंग्य के माध्यम से राजनीतिक आलोचना का अध्ययन (शोध लेख), *Role of Political Satire on Digital Platforms: A Study of Contemporary Indian Content Creators,* https://jnao-nu.com/Vol.%2014%2C%20Issue.%2001%2C%20January-June%20%3A%202023/10.1.pdf
2. मीम के ज़रिए व्यंग्य, भावना और विडंबना की पहचान हेतु डेटासेट अध्ययन, *Memotion 2: Annotated Dataset for Sentiment and Sarcasm in Memes,* https://arxiv.org/abs/2303.09892
3. भारत में डिजिटल प्रतिरोध और राजनीतिक भागीदारी के रूप में मीम का विश्लेषण, *What Is This Behaviour? Memes as Political Participation and Toolkit of Digital Resistance in India,* https://no-niin.com/issue-13/pooja-what-is-this-behaviour-memes-as-political-participation-and-toolkit-of-digital-resistance-in-india/index.html
4. भारतीय परिप्रेक्ष्य में मीम और उनकी राजनीतिक व्याख्याओं का अध्ययन, *Political Memes and Perceptions: A Study of Memes as a Political Communication Tool in the Indian Context,* https://www.researchgate.net/publication/335638144_POLITICAL_MEMES_AND_PERCEPTIONS_A_STUDY_OF_MEMES_AS_A_POLITICAL_COMMUNICATION_TOOL_IN_THE_INDIAN_CONTEXT
5. सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म पर व्यंग्यात्मक कंटेंट का प्रयोग: एक विश्लेषणात्मक दृष्टि, *Analysis of Political Satire through Social Media Platforms in Hindi Digital Space* https://rjpn.org/ijcspub/papers/IJCSP23B1077.pdf
6. ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म पर गलत सूचना और घृणास्पद भाषण से निपटने की रणनीतियाँ, *Countering Disinformation and Hate Speech Online,* https://www.orfonline.org/research/countering-disinformation-and-hate-speech-online
7. ऑनलाइन नफरत के विरुद्ध सामूहिक संवाद और विरोध की डिजिटल रणनीति, *Countering Hate Speech on Social Media: #iamhere, a Counter Speech Movement,* https://arxiv.org/abs/1703.04009
8. भारत के राजनीतिक व्यंग्यकार सोशल मीडिया पर नरेंद्र मोदी को चुनौती देते हैं, India's Political Satirists Challenge Narendra Modi on Social Media, https://thediplomat.com/2024/04/indias-political-satirists-challenge-narendra-modi-on-social-media/
9. Pratilipi मनोरंजक हिंदी कहानियों का प्लेटफ़ॉर्म है, Pratilipi is an entertainment platform for Hindi stories, https://en.wikipedia.org/wiki/Pratilipi
10. कन्फ़्यूशियस इंस्टिट्यूट (Confucius Institute) – चीनी भाषा और संस्कृति का प्रचारक संस्थान, Confucius Institute – Promoter of Chinese language and culture, https://en.wikipedia.org/wiki/Confucius_Institute
11. ग्योटो-इंस्टिट्यूट (Goethe-Institut): जर्मन भाषा व संस्कृति केंद्र, Goethe-Institut: German language and culture center, https://en.wikipedia.org/wiki/Goethe-Institut
12. अलायंस फ़्रांसिज़: फ्रेंच भाषा एवं संस्कृति के लिए,

Alliance Française: for French language and culture, https://en.wikipedia.org/wiki/Alliance_Francaise
13. Trusted News Initiative: समाचार पर भरोसा बढ़ाने की मुहिम, Trusted News Initiative: campaign to bolster trust in news, https://en.wikipedia.org/wiki/Trusted_News_Initiative
14. कैसे क्षेत्रीय सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म फेक न्यूज़ फैला रहे हैं, How regional social media platforms spew fake news, https://www.hindustantimes.com/opinion/how-regional-social-media-platforms-spew-fake-news-and-get-away-with-it/story-s8Kc2s4TKfne0ZRlXNuLuM.html
15. PEN International – विश्वव्यापी लेखक संगठन, PEN International – global writers' organization, https://pen-international.org/who-we-are/our-organisation
16. यूनेस्को : रचनात्मक शहरों का नेटवर्क, UNESCO: Creative Cities Network, https://www.unesco.org/en/creative-cities
17. Frankfurt Book Fair – अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला, Frankfurt Book Fair – international book fair, https://frankfurt-book-fair.com/en
18. Edinburgh Fringe Festival – विश्व का सबसे बड़ा कला उत्सव, Edinburgh Fringe Festival – the world's largest arts festival, https://www.edfringe.com/
19. Amazon Kindle Direct Publishing – लेखक स्व-प्रकाशन मंच, Amazon Kindle Direct Publishing – self-publishing platform for authors, https://www.amazon.com/Kindle-Direct-Publishing/b?ie=UTF8&node=13685794011
20. Audible India – ऑडियोबुक सुनने का मंच, Audible India – audio-book listening platform, https://www.audible.in/
21. राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम (एनएफडीसी) भारत, National Film Development Corporation India, https://www.nfdcindia.com/

PoetShaielsh@gmail.com

डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार

- श्री विश्वनाथ चौबे
उत्तर प्रदेश, भारत

वर्तमान वैश्विक संदर्भ में डिजिटल संचार माध्यमों की क्रांतिकारी भूमिका ने भाषाई प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन किए हैं। हिंदी भाषा, जो विश्व की प्रमुख भाषाओं में एक है, आज डिजिटल प्लेटफ़ॉर्मों के माध्यम से नए आयामों को स्पर्श कर रही है। विशेष रूप से डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं ने भाषा को केवल जीवित ही नहीं रखा है, अपितु उसे एक सृजनात्मक, संवादधर्मी एवं वैश्विक भाषा के रूप में पुनः स्थापित किया है।

यह शोधपत्र डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, तकनीकी संरचना, सामग्री-प्रवृत्तियाँ, पाठकीय सहभागिता और वैश्विक प्रभाव की गहन विवेचना करता है। इसके माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार 'हिंदी समय', 'अनुभूति', 'कविता कोश', 'प्रतिलिपि', 'हिंदी नेस्ट', 'रचनाकार', 'गूँज', 'साक्षात्कार', 'बिंदी', जैसी डिजिटल पत्रिकाएँ हिंदी साहित्य और भाषा को आधुनिक पाठकों के मध्य लोकप्रिय बना रही हैं।

डिजिटल माध्यमों ने न केवल भौगोलिक सीमाओं को समाप्त किया है, बल्कि प्रवासी भारतीयों और हिंदी प्रेमियों को एक साझा मंच भी प्रदान किया है। डिजिटल हिंदी पत्रिकाएँ आज उस सेतु का कार्य कर रही हैं, जो भाषिक विरासत को नवाचार से जोड़ती हैं।

हिंदी भाषा का साहित्यिक, सांस्कृतिक और संवादात्मक वैभव हज़ारों वर्षों की परंपरा से संचित हुआ है। किंतु 21वीं शताब्दी में जब संचार और सूचना का माध्यम डिजिटल होता जा रहा है, तब भाषाओं की गतिशीलता और टिकाऊपन का प्रश्न भी पुनः विचार योग्य बन गया है। इस संदर्भ में यह अवश्य उल्लेखनीय है कि डिजिटल माध्यमों ने भाषाओं, विशेषतः हिंदी के प्रचार-प्रसार को एक नया आयाम प्रदान किया है। जिस भाषा की शक्ति उसकी जनभाषा होने में थी, वह आज वैश्विक नेटवर्कों के माध्यम से नई पीढ़ी के बीच डिजिटल उपस्थिति के साथ पुनः जागृत हो रही है। डिजिटल हिंदी पत्रिकाएँ इस परिवर्तन की अग्रदूत बनकर उभरी हैं।

20वीं सदी के अंत तक हिंदी पत्रिकाओं का स्वरूप मुद्रित था। 'हंस', 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान', 'कादंबिनी', 'नवनीत' जैसी पत्रिकाओं ने हिंदी साहित्य और सामाजिक विमर्श की दशा-दिशा को गहराई से प्रभावित किया। किंतु, जैसे ही इंटरनेट का प्रसार हुआ, धीरे-धीरे हिंदी की पत्रिकाएँ भी ऑनलाइन माध्यमों की ओर उन्मुख हुईं। प्रारंभिक स्तर पर यह संक्रमण चुनौतीपूर्ण था, तकनीकी संसाधनों की कमी, डिजिटल साक्षरता की बाधा और पाठक वर्ग का सीमित दायरा। किंतु आज स्थिति पूर्णतः बदल चुकी है।

आज हिंदी की दर्जनों सशक्त डिजिटल पत्रिकाएँ अस्तित्व में हैं, जो केवल भारत में ही नहीं, अपितु विश्व के विभिन्न देशों में फैले हिंदी प्रेमियों, प्रवासी भारतीयों, शोधार्थियों और साहित्यकारों के लिए एक अभिनव मंच प्रदान कर रही हैं। 'हिंदी समय', 'अनुभूति', 'रचनाकार', 'प्रतिलिपि', 'कविता कोश', 'साहित्य कुंज', 'गूँज', 'हिंदी नेस्ट', 'साहित्य विमर्श', 'बिंदी', 'संवेदन', 'अनुनाद', जैसी पत्रिकाएँ मात्र साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम नहीं हैं, बल्कि ये हिंदी के डिजिटल पुनरुत्थान का प्रतिनिधित्व करती हैं।

डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये समय, स्थान और मुद्रण जैसी बाधाओं से मुक्त हैं। लेखक कहीं से भी अपनी रचना प्रेषित कर सकता है, संपादक तुरंत उसे प्रकाशित कर सकता है और पाठक किसी भी कोने से उसे पढ़ सकता है। यह स्वचालित, त्वरित और संवादात्मक प्रक्रिया हिंदी को न केवल जीवंत बनाए रखती है, बल्कि भाषा के सामुदायिक निर्माण की प्रक्रिया को भी गति देती है।

डिजिटल पत्रिकाएँ केवल सूचना का साधन नहीं, बल्कि विचार-विमर्श और वैचारिक संघर्ष का भी माध्यम हैं। इन पत्रिकाओं ने साहित्य को सामाजिक आंदोलनों, लैंगिक विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, पर्यावरणीय चेतना, समकालीन जीवन के संघर्षों और मनुष्य की अस्मिता जैसे प्रश्नों से जोड़ते हुए उसे जीवंत और प्रासंगिक बनाए रखा है। विशेष रूप से यह उल्लेखनीय है कि जहाँ मुख्यधारा की मुद्रित पत्रिकाएँ संपादन और प्रकाशन की जटिलताओं में उलझी थीं, वहीं डिजिटल पत्रिकाओं ने युवा रचनाकारों, महिला लेखिकाओं, हाशिए के समुदायों और ग्रामीण प्रतिभाओं को मुख्यधारा में स्थान देने का कार्य किया है। अतः डिजिटल हिंदी पत्रिकाएँ न केवल साहित्य के संरक्षण और संवर्धन का कार्य कर रही हैं, बल्कि वे हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार का वैश्विक माध्यम बन चुकी हैं। यह शोधपत्र इन्हीं पहलुओं का

बहुआयामी अध्ययन करने का प्रयास है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से लेकर समकालीन योगदान तक, तकनीकी आधार से लेकर सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव तक।

डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं का उद्भव और विकास : एक ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं का विकास किसी एक क्षणिक नवाचार का परिणाम नहीं, बल्कि यह एक दीर्घकालिक सामाजिक, तकनीकी और भाषिक प्रक्रिया का स्वाभाविक विस्तार है। इस प्रक्रिया की जड़ें हिंदी पत्रकारिता और मुद्रित साहित्यिक पत्रिकाओं के गौरवशाली इतिहास में गहराई तक समाई हुई हैं। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक हिंदी पत्रकारिता और साहित्यिक पत्रिकाएँ जनचेतना, राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक पुनर्जागरण, सामाजिक सुधार और साहित्यिक विमर्श की वाहक रही हैं। 'सरस्वती' (1900), 'प्रभा', 'विशाल भारत', 'नवभारत टाइम्स', 'हंस' (1930) और 'धर्मयुग' जैसी पत्रिकाओं ने साहित्य और समाज को जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

मुद्रण माध्यम की सीमाओं के बावजूद, इन पत्रिकाओं ने विचारशील लेखन, आलोचना, कविताओं, कहानियों और विमर्शों को समाज के एक बड़े हिस्से तक पहुँचाया। परंतु समय के साथ जैसे-जैसे मुद्रण लागत बढ़ी, वितरण व्यवस्था जटिल होती गई और पाठकीय संख्या में गिरावट आई, वैसे-वैसे इन पत्रिकाओं का प्रभाव संकुचित होने लगा। इसके साथ ही उदारीकरण और वैश्वीकरण के दौर में डिजिटल क्रांति ने सूचना की प्रकृति को ही परिवर्तित कर दिया।

1990 के दशक के अंत और 2000 के आरंभिक वर्षों में भारत में इंटरनेट का प्रवेश एक सीमित वर्ग के लिए हुआ, परंतु यह तकनीकी परिवर्तन भविष्य में व्यापक सामाजिक प्रभाव का सूचक बन गया। हिंदी का डिजिटल संसार धीरे-धीरे आकार लेने लगा। प्रारंभिक चरण में हिंदी वेबसाइटें और ब्लॉग ही इस डिजिटल आंदोलन का हिस्सा बने। यह वह समय था जब 'अभिव्यक्ति', 'अनुभूति', 'रचनाकार', 'अनुनाद', 'साहित्य कुंज', जैसी पत्रिकाएँ एक वेबपोर्टल के रूप में सामने आईं, जिनमें स्वयंसेवी संपादक, लेखक और तकनीकी सहायक कार्यरत थे। इन पत्रिकाओं ने यह सिद्ध किया कि साहित्य अब केवल मुद्रित माध्यम का मोहताज नहीं है और भाषा की ऊर्जा डिजिटल स्पेस में भी प्रवाहित हो सकती है।

इन डिजिटल पत्रिकाओं की एक विशिष्ट विशेषता यह रही कि उन्होंने लोकतांत्रिक सहभागिता को बढ़ावा दिया। जहाँ पहले साहित्यिक प्रकाशन संस्थान-आधारित, बंद सामूहिकताओं के नियंत्रण में थे, वहीं डिजिटल पत्रिकाएँ अधिक समावेशी, त्वरित और पारदर्शी मंचों के रूप में विकसित हुईं। अब लेखक सीधे संपादक से संवाद कर सकता था और पाठक टिप्पणी कर अपनी सहभागिता दर्ज करा सकता था। यह एक नया संवादात्मक मॉडल था, जिसमें लेखक, संपादक और पाठक के बीच की दूरी समाप्त हो गई।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो डिजिटल पत्रिकाओं का विकास केवल तकनीकी प्रतिक्रिया नहीं थी, बल्कि यह भाषिक अस्मिता, नवसृजनात्मकता और सांस्कृतिक आवश्यकता की भी उपज थी। हिंदी भाषा, जो बार-बार अंग्रेज़ी के प्रभुत्व से दबाई जाती रही, उसने डिजिटल माध्यमों को अपनी नवीन पहचान स्थापित करने का अवसर माना। प्रवासी भारतीयों, जिनके लिए भारतीय भाषाओं से जुड़ना एक भावनात्मक आवश्यकता थी, उन्होंने इन डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं को सहर्ष अपनाया और इन्हें वैश्विक पहचान दिलाई।

2005 के बाद, जैसे-जैसे स्मार्टफ़ोन, इंटरनेट की दरों में कमी और सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स का विस्तार हुआ, हिंदी पत्रिकाओं के स्वरूप में भी तीव्र परिवर्तन आया। अब केवल वेबसाइट नहीं, बल्कि मोबाइल फ़्रेंडली प्लेटफ़ॉर्म, ऐप्स, सोशल मीडिया आधारित पत्रिकाएँ और मल्टीमीडिया सामग्री का समावेश भी होने लगा। 'प्रतिलिपि', 'YourQuote', 'Nojoto', जैसी नई पीढ़ी की डिजिटल पत्रिकाओं ने लेखन को न केवल शब्दों तक सीमित रखा, बल्कि उसे दृश्य, श्रव्य और संवादधर्मी बनाया। यह वह क्षण था जब एक नए प्रकार की साहित्यिक संस्कृति का जन्म हुआ, जो पारंपरिक और नवाचार का समन्वय थी।

इस पूरे विकासक्रम को ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो स्पष्ट होता है कि डिजिटल हिंदी पत्रिकाएँ महज तकनीकी उत्पाद नहीं हैं, बल्कि यह हिंदी भाषी समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक आकांक्षाओं, भाषिक अस्मिता की चेतना और साहित्यिक नवाचार की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हैं। उन्होंने यह भी प्रमाणित किया कि भाषा अपने आप में कोई स्थिर इकाई नहीं, बल्कि यह एक जीवंत, लचीली और अनवरत विकसित होने वाली सामाजिक क्रिया है, जो समयानुसार माध्यमों को बदलकर स्वयं को पुनः परिभाषित करती है।

डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं की प्रमुख प्रवृत्तियाँ और साहित्यिक योगदान

डिजिटल हिंदी पत्रिकाएँ केवल एक तकनीकी मंच नहीं, बल्कि साहित्यिक संस्कृति का नया रूप हैं, जिनमें परंपरा, नवाचार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक ज़िम्मेदारी का सम्यक संतुलन दिखाई देता है। यदि हम इन पत्रिकाओं की समकालीन प्रवृत्तियों और साहित्यिक योगदान का विश्लेषण करें, तो यह स्पष्ट होता है कि इन्होंने न केवल भाषा को जीवित रखा है, बल्कि उसे सामाजिक यथार्थ, बहुसांस्कृतिकता और विचार-स्वातंत्र्य के नए विमर्शों से भी जोड़ा है। हिंदी साहित्य में जो विविधता, गहराई और वैचारिक उथल-पुथल पहले केवल चुनिंदा मुद्रित पत्रिकाओं तक सीमित थी, वह अब डिजिटल स्पेस में पूरी ऊर्जा के साथ प्रकट हो रही है।

डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं की एक प्रमुख प्रवृत्ति सामाजिक-सांस्कृतिक समकालीनता की ओर बढ़ी है। इन पत्रिकाओं की विषयवस्तु अब केवल शुद्ध साहित्यिक लेखन तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें दलित विमर्श, स्त्री-विमर्श, आदिवासी चेतना, समलैंगिक अधिकार, पर्यावरणीय मुद्दे, शहरी-ग्रामीण द्वंद्व, सामाजिक असमानता, राजनीतिक असंतोष और वैश्विक पूँजीवाद जैसे मुद्दे प्रमुखता से स्थान पा रहे हैं। उदाहरणतः, 'हिंदी समय' जैसी गंभीर साहित्यिक पत्रिका समकालीन और शास्त्रीय दोनों प्रकार के साहित्य को एक साथ प्रस्तुत करती है, जबकि 'अनुनाद' और 'पाखी' जैसी पत्रिकाएँ साहित्य के भीतर उपजे असहमति के स्वर और हाशिये की आवाज़ों को प्राथमिकता देती हैं।

एक और महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है, नवलेखन और युवा रचनाकारों का सशक्त प्रवेश। डिजिटल माध्यम ने रचनात्मक लेखन को लोकतांत्रिक बनाते हुए भाषा और समाज के नए वंचित, उपेक्षित, और ग्रामीण समूहों को भी साहित्यिक विमर्श में शामिल किया है। 'प्रतिलिपि', 'रचनाकार', और 'Nojoto' जैसे मंचों ने लेखकों को बिना किसी भारी-भरकम संपादकीय औपचारिकता के सीधे प्रकाशित होने का अवसर प्रदान किया है। इससे लेखन का आत्मविश्वास बढ़ा है और भाषा की बहुरूपता सामने आई है। ये मंच पाठकों की प्रतिक्रिया के माध्यम से लेखक को तुरंत फ़ीडबैक भी देते हैं, जिससे लेखन की गुणवत्ता में निरंतर सुधार होता है।

डिजिटल पत्रिकाओं की एक उल्लेखनीय विशेषता है - काव्यात्मक नवप्रयोग और दृश्यात्मकता का समावेश। जहाँ पारंपरिक साहित्यिक मंचों पर छंद, भाषा और शिल्प की पारंपरिकता को अधिक महत्त्व दिया जाता था, वहीं डिजिटल मंचों ने मुक्त छंद, हाइपरटेक्स्ट, फ़ोटोपोएट्री, वीडियो-पाठ और ऑडियो कविता जैसी विधाओं को स्थान दिया है। 'YourQuote' और 'Spillwords' जैसे मंचों ने लिखित शब्दों को दृश्य-श्रव्य सौंदर्य के साथ प्रस्तुत कर एक नई काव्यात्मक दृष्टि को जन्म दिया है। यह साहित्य और तकनीक के संयोग का सुंदर उदाहरण है।

समावेशिता और विविधता की संस्कृति भी डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं की एक विशिष्ट पहचान है। इन मंचों पर महिलाओं, दलित लेखकों, आदिवासी चिंतकों, क्षेत्रीय बोलीभाषा के साहित्यकारों और समलैंगिक समुदाय के प्रतिनिधियों को जिस सम्मान और स्थान के साथ प्रस्तुत किया गया है, वह अद्वितीय है। विशेष रूप से स्त्री-विमर्श को डिजिटल मंचों पर व्यापक विस्तार मिला है। 'स्त्रीकाल', 'समकालीन जनमत', 'कविता कोश' आदि पर स्त्री अनुभव, लैंगिक राजनीति और अस्मिता-विमर्श का वैचारिक गहराई से प्रस्तुतीकरण हुआ है, जिसने साहित्य को 'विकल्प की चेतना' से समृद्ध किया है।

एक अन्य प्रमुख पहलू है - संपादन की पारदर्शिता और संवाद की खुली परंपरा। डिजिटल पत्रिकाओं के संपादक अब महज आलोचक या नियंत्रक नहीं, बल्कि वे संवादकर्मी की भूमिका निभाते हैं। वे रचनाकारों से संवाद करते हैं, प्रतिपुष्टि देते हैं और रचनात्मक विकास में भागीदार बनते हैं। यह प्रक्रिया मुद्रण युग की संपादकीय प्रभुत्ववादी संरचना की तुलना में अधिक समावेशी और मानवोन्मुख है। इसने संपादन को एक संवादमूलक कर्म बना दिया है, जो साहित्यिक संस्कृति के लोकतंत्रीकरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम है।

पाठकीय सहभागिता डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं की एक और बड़ी विशेषता है। सोशल मीडिया से जुड़ाव, टिप्पणी प्रणाली, रेटिंग सुविधा, रचनाओं को साझा करने की सरलता और व्यक्तिगत प्रोफ़ाइल के माध्यम से पाठकों को एक सक्रिय भूमिका मिली है। पाठक अब केवल उपभोक्ता नहीं, बल्कि विचारक, आलोचक और प्रचारक की भूमिका में भी आ गया है। इससे साहित्यिक समुदाय का विस्तार हुआ है और 'पाठकीय लोकतंत्र' की अवधारणा मज़बूत हुई है।

विचारणीय है कि इस पूरे विकासक्रम में डिजिटल पत्रिकाओं ने पारंपरिक और समकालीन साहित्य के बीच एक सेतु का कार्य किया है। 'हिंदी समय' और 'कविता कोश' जैसी पत्रिकाएँ न केवल समकालीन लेखन को प्रस्तुत करती हैं, बल्कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त, निराला, महादेवी वर्मा, अज्ञेय, नागार्जुन, धूमिल जैसे रचनाकारों का समृद्ध साहित्यिक भंडार भी नए पाठकों

तक पहुँचाती हैं। इससे साहित्य की ऐतिहासिक निरंतरता बनी रहती है और पाठक दोनों धाराओं को समान रूप से आत्मसात् कर पाते हैं।

निस्संदेह, डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं ने साहित्य को बंद कक्षों से निकालकर सार्वजनिक चौपाल बना दिया है। अब साहित्यकारों का संकुचित समूह नहीं, बल्कि एक व्यापक भाषिक समुदाय उसका वाहक बन गया है। यह स्थिति हिंदी साहित्य की लोकप्रियता, प्रासंगिकता और भविष्य दोनों के लिए अत्यंत सकारात्मक है।

डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं की चुनौतियाँ और संभावनाएँ

डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं की प्रगति भले ही एक सशक्त साहित्यिक आंदोलन के रूप में देखी जा रही हो, परंतु इसके समक्ष कई प्रकार की चुनौतियाँ भी मौजूद हैं, जो न केवल इसकी विकास गति को बाधित करती हैं, बल्कि इसके दीर्घकालीन अस्तित्व पर भी प्रश्नचिह्न खड़ा करती हैं। इन चुनौतियों की प्रकृति तकनीकी, आर्थिक, भाषिक, वैचारिक और संरचनात्मक है। साथ ही, इन चुनौतियों के बीच कुछ महत्त्वपूर्ण संभावनाएँ भी हैं, जो यदि दूरदर्शिता और योजना के साथ संबोधित की जाएँ, तो डिजिटल हिंदी साहित्य को वैश्विक स्तर पर एक सम्मानजनक स्थान दिला सकती हैं।

सबसे पहली और महत्त्वपूर्ण चुनौती तकनीकी अवसंरचना और डिजिटल साक्षरता की है। भारत में अब भी एक बड़ा हिंदी भाषी वर्ग ऐसा है, जो इंटरनेट की पहुँच, स्मार्टफ़ोन, लैपटॉप या उच्चगुणवत्ता नेटवर्क से वंचित है। ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में रहने वाले संभावित लेखक और पाठक तकनीकी संसाधनों के अभाव में डिजिटल साहित्य से कटे हुए हैं। इसके साथ ही, डिजिटल साक्षरता की कमी, जैसे कि ईमेल, फ़ॉर्मेटिंग, वेबसाइट नेविगेशन, डिजिटल टूल्स आदि के प्रयोग का अभाव भी कई रचनात्मक प्रतिभाओं को सक्रिय रूप से इन मंचों से जुड़ने से रोकता है। इस चुनौती का समाधान केवल तकनीकी नहीं, बल्कि सामाजिक और शैक्षिक हस्तक्षेपों के माध्यम से ही संभव है।

दूसरी बड़ी चुनौती है - आर्थिक संसाधनों की कमी और व्यावसायिक मॉडल का अभाव। अधिकांश डिजिटल हिंदी पत्रिकाएँ आज भी स्वयंसेवी प्रयासों, व्यक्तिगत पूँजी और सीमित विज्ञापन संसाधनों पर आधारित हैं। न तो इन्हें किसी सरकारी संस्था का वित्तीय सहयोग प्राप्त होता है, न ही निजी क्षेत्र से नियमित समर्थन। विज्ञापनदाता हिंदी कंटेंट को अंग्रेज़ी की तुलना में कम प्रभावी मानते हैं, जिससे इन पत्रिकाओं का टिकाऊ आर्थिक ढाँचा बन पाना कठिन हो जाता है। कई पत्रिकाएँ नियमित अपडेट नहीं कर पातीं, संपादकीय टीम को उचित पारिश्रमिक नहीं मिल पाता और तकनीकी अपग्रेड भी धीमा रहता है। यदि डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं को दीर्घकालिक रूप से जीवंत बनाए रखना है, तो एक ठोस व्यावसायिक मॉडल विकसित करना आवश्यक होगा, जैसे सदस्यता आधारित प्रणाली, क्राउडफ़ंडिंग, सरकारी अनुदान या डिजिटल पुस्तकालयों से गठजोड़।

तीसरी प्रमुख चुनौती साहित्यिक गुणवत्ता और संपादकीय अनुशासन की है। चूँकि डिजिटल पत्रिकाएँ अधिक लोकतांत्रिक हैं और प्रकाशन की प्रक्रिया अधिक खुली है, इसलिए कभी-कभी रचनात्मक स्तर पर समझौता देखने को मिलता है। अप्रशिक्षित लेखक, कमज़ोर भाषा-शैली और सतही विषयवस्तु वाले लेख, आलोचना और कविता की भरमार से साहित्यिक स्तर का क्षरण हो सकता है। इसका एक दुष्परिणाम यह होता है कि गंभीर पाठक डिजिटल मंचों की विश्वसनीयता पर संदेह करने लगते हैं। अतः यह आवश्यक है कि डिजिटल पत्रिकाएँ गुणवत्ता पर विशेष ध्यान दें, संपादकीय मापदंड स्पष्ट हों और एक प्रशिक्षण एवं चयन प्रक्रिया का निर्माण किया जाए।

एक अन्य गंभीर समस्या है - प्लैजियरिज़्म और कॉपीराइट उल्लंघन। डिजिटल सामग्री की सरल प्रतिलिपि और साझा करने की प्रवृत्ति ने मौलिकता के संकट को जन्म दिया है। बिना लेखक की अनुमति के रचनाएँ कॉपी-पेस्ट कर दी जाती हैं और प्रायः बिना श्रेय दिए उनका पुनर्प्रकाशन भी होता है। यह न केवल नैतिक अपराध है, बल्कि साहित्यिक मूल्यों के प्रति एक प्रकार की उदासीनता भी है। इस स्थिति से निपटने के लिए डिजिटल पत्रिकाओं को कॉपीराइट कानूनों का कठोर पालन करना चाहिए और लेखकों को भी अपनी रचनाओं के लिए डिजिटल प्रमाण-पत्र, जलमार्क या रचनात्मक लाइसेंसिंग जैसे उपायों की जानकारी दी जानी चाहिए।

इसके अतिरिक्त भाषिक शुद्धता और व्याकरणिक अनुशासन भी एक उभरती चुनौती है। हिंदी की डिजिटल पत्रिकाओं में वर्तनी की अशुद्धियाँ, खिचड़ी भाषा (हिंग्लिश) और व्याकरण संबंधी त्रुटियाँ बढ़ती जा रही हैं। यह समस्या तब और गम्भीर हो जाती है जब इन पत्रिकाओं का उपयोग हिंदी भाषा सीखने वालों द्वारा भी किया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि डिजिटल संपादन में भाषा-संशोधन और व्याकरणिक परिशुद्धता पर विशेष बल दिया जाए। यह कार्य केवल संपादकों का नहीं, अपितु तकनीकी टूल्स, जैसे स्वतः सुधारक, ऑनलाइन हिंदी थिसॉरस, ऑटो-प्रूफिंग सॉफ़्टवेयर आदि के सहयोग से भी किया जा सकता है।

अब यदि संभावनाओं की बात करें, तो डिजिटल हिंदी पत्रिकाओं के पास भविष्य में अपार संभावनाएँ हैं। सबसे पहले, वैश्विक हिंदी समुदाय, विशेषकर प्रवासी भारतीयों, विदेशी हिंदी-प्रेमियों और भाषा-अध्येताओं के लिए ये पत्रिकाएँ हिंदी साहित्य से जुड़े रहने का एक सहज, सुलभ और जीवंत माध्यम बन सकती हैं। यदि इन पत्रिकाओं में बहुभाषिक अनुवाद, इंटरैक्टिव इंटरफ़ेस और ऑडियो-विजुअल सपोर्ट जोड़ा जाए, तो इनकी वैश्विक पहुँच अत्यधिक प्रभावशाली हो सकती है।

दूसरी संभावना है कि डिजिटल पत्रिकाएँ शिक्षा और भाषा-शिक्षण के औज़ार के रूप में प्रयोग की जा सकती हैं। विश्वविद्यालयों, विद्यालयों और भाषा-संस्थानों में इन पत्रिकाओं को अध्ययन-सामग्री, अभ्यास-स्रोत और पाठ्य-विस्तार के रूप में उपयोग कर सकते हैं। यदि डिजिटल साहित्य को अकादमिक रूप से मान्यता दी जाए, तो यह न केवल हिंदी की प्रतिष्ठा को बढ़ाएगा, बल्कि नई पीढ़ी में साहित्यिक संस्कार भी विकसित करेगा।

तीसरी संभावना है - आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस और डेटा एनालिटिक्स का उपयोग। यदि डिजिटल हिंदी पत्रिकाएँ पाठक-व्यवहार, पसंद-नापसंद, शैलीगत प्रवृत्तियों और रचनात्मक प्रवाह का विश्लेषण करें, तो वे अधिक लक्षित, प्रभावी और गुणवत्तापूर्ण कंटेंट तैयार कर सकती हैं। इससे पाठकों और रचनाकारों के बीच परिष्कृत संवाद स्थापित होगा और साहित्यिक नवाचार को दिशा मिलेगी।

इस प्रकार, डिजिटल हिंदी पत्रिकाएँ एक ओर जहाँ बहुआयामी चुनौतियों से जूझ रही हैं, वहीं दूसरी ओर उनके पास हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार की ऐतिहासिक भूमिका निभाने की क्षमताएँ भी हैं। आवश्यकता है दूरदर्शी नेतृत्व, तकनीकी सहयोग, संपादकीय प्रतिबद्धता और भाषिक प्रेम की, ताकि ये पत्रिकाएँ आने वाले समय में वैश्विक हिंदी जागरण की रीढ़ बन सकें।

वर्तमान शोध से यह समग्र निष्कर्ष समास शैली में इस रूप में निरूपित किया जा सकता है कि डिजिटल हिंदी पत्रिकाएँ आधुनिक युग की भाषा-संवेदना, तकनीकी नवाचार और साहित्यिक लोकतंत्रीकरण के त्रिसंघात पर अवस्थित एक नवीन साहित्यिक संस्कृति का संधान कर रही हैं। हिंदी भाषा-प्रचार, वैश्विक हिंदी-विस्तार, साहित्यिक नवाचार, ई-पत्रिकाओं की सुलभता, ऑनलाइन मंचीय संवादिता, तकनीकी माध्यमों की सर्वग्राह्यता, संपादन-संस्कृति की लचीलापनशीलता तथा पाठकीय सहभागिता की संवेदनात्मक सक्रियता; इन समस्त पक्षों को समेटते हुए डिजिटल हिंदी पत्रिकाएँ अब एक विमुख प्रकाशन माध्यम न रहकर समावेशी साहित्य-आंदोलन की संवाहिका बन गई हैं। प्रवासी-साहित्य, स्त्री-अनुभव, दलित-अधिकार, आदिवासी-निरूपण, ग्रामीण-यथार्थ तथा यौनिक-बहुलता जैसे सीमांत स्वरों को स्वर-स्वीकृति प्रदान करते हुए, इन्होंने साहित्य की अभिजात्य-केन्द्रितता को सशक्त चुनौती दी है।

लेखकीय स्वतंत्रता का डिजिटल पुनर्जागरण, संपादकीय अनुशासन की पारदर्शिता, फ़ीडबैक-प्रतिक्रिया के सहगामी सुधार और रचनात्मकता का सामाजिक तकनीकी पुनर्पाठ, ये समस्त तत्व एक नई हिंदी संस्कृति का सूत्रपात कर रहे हैं। तथापि, तकनीकी साक्षरता की न्यूनता, वित्तीय अस्थिरता, भाषिक अशुद्धता, संपादकीय अकुशलता तथा मौलिकता के प्रति उपेक्षा जैसी बाधाएँ इस नवप्रवृत्ति के सम्मुख चुनौतीस्वरूप उपस्थित हैं। यदि इन समस्याओं का ठोस और दूरदर्शितापूर्ण समाधान नहीं हुआ, तो हिंदी का डिजिटल आंदोलन सीमित प्रभावशीलता में संकुचित रह सकता है।

समन्वित प्रयास, नीति-प्रोत्साहन, तकनीकी नवाचार तथा अकादमिक सहयोग के समुचित संयोजन से डिजिटल हिंदी पत्रिकाएँ हिंदी को न केवल वैश्विक संवाद की भाषा बना सकती हैं, अपितु उसे विचारपरक, संवेदनात्मक और सृजनात्मक विमर्शों का नेतृत्वकर्ता भी बना सकती हैं। निष्कर्षतः यह प्रतिपादित किया जा सकता है कि डिजिटल हिंदी पत्रिकाएँ आधुनिक युग में हिंदी भाषा-साहित्य के नवजागरण की नायिका बनकर उभरी हैं।

संदर्भ-सूची :

1. हिंदी साहित्य का डिजिटलीकरण और प्रचार भारतीय भाषा प्रौद्योगिकी संस्थान (TDIL), इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार, https://www.tdil-dc.gov.in
2. साहित्य कुंज', प्रवासी हिंदी साहित्य मंच, https://www.sahityakunj.net
3. 'हिंदी समय', भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा संचालित हिंदी पोर्टल, https://www.hindisamay.com
4. 'रचनाकार', ऑनलाइन रचना मंच, http://www.rachanakar.org
5. Google Scholar, खोज, "Digital Hindi Magazines" https://scholar.google.com/scholar?q=digital+hindi+magazines
6. Hindi e-content repository, NPTEL, SWAYAM,

UGC, https://epgp.inflibnet.ac.in
7. 'दुनिया इन दिनों', जनसंचार और साहित्य का डिजिटल समावेशी मंच https://www.duniyadari.org
8. UNESCO: World Languages in Digital Media Report (Hindi section) https://www.unesco.org/en/languages/digital-media
9. Internet and Mobile Association of India (IAMAI) Report 2023: Hindi Digital User Growth, https://www.iamai.in/reports
10. सृजन ऑस्ट्रेलिया अंतरराष्ट्रीय ई-पत्रिका, www.SrijanAustralia.SrijanSansar.com
11. KPMG Report on Digital India and Vernacular Language Boom (2019) https://assets.kpmg.com/content/dam/kpmg/in/pdf/2019/04/vernacular-language-report.pdf
12. भारत सरकार की नई शिक्षा नीति, भाषाई विविधता और डिजिटल लर्निंग में हिंदी की भूमिका (2020)
13. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
14. अखिल भारतीय भाषा सर्वेक्षण रिपोर्ट (Census 2011), https://censusindia.gov.in
15. 'हिंदी जगत', वेब पत्रिका का डिजिटल रूपांतरण और वैश्विक वितरण, https://www.hindijagat.org
16. भारतीय राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय (NDLI), https://www.ndl.gov.in
17. आंच, हिंदी साहित्यिक मासिक ई-पत्रिका https://www.aanch.org/ onlinehindijournal.blogspot.com+4hindiinternet.com+4nayigoonj.com+ 4hastaksher.com+4aanch.org+4onlinehindijournal.blogspot.com+4
18. ऑनलाइन हिंदी विवेक, राष्ट्रीय/धार्मिक/सामाजिक लेख, https://hindivivek.org/
19. हस्ताक्षर, साहित्य एवं शोध आधारित वेब मैगज़ीन, http://www.hastaksher.com hastaksher.com+1en.wikipedia.org+1
20. नई गूँज, हिंदी साहित्यिक डिजिटल मासिक https://nayigoonj.com/hamara-parichay/
21. परिवर्तन पत्रिकास, बौद्ध/न्याय/शोध आधारित त्रैमासिक https://www.parivartanpatrika.in/ hindivivek.org+3parivartanpatrika.in+3reddit.com+3
22. हंस, प्रतिष्ठित साहित्यिक मासिक http://www.hansmonthly.in/
23. सखी, महिलाओं की हिंदी पत्रिका (PDF ऑनलाइन) http://www.readwhere.com/publication/7/Sakhi
24. मायापुरी, बॉलीवुड-सिनेमा साप्ताहिक हिंदी पत्रिका https://mayapuri.com/en en.wikipedia.org+1nayigoonj.com+1
25. पहेली, हिंदी बच्चों/कहानियों की पत्रिका (Readwhere सूची में), hindiinternet.com
26. करियर पथ, प्रतियोगी परीक्षा सहायक हिंदी पत्रिका, hindiinternet.com
27. हिंदी चेतन पत्रिका, कनाडा से त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका, reddit.com+2awazehindtimes.blogspot.com+2onlinehindijournal.blogspot.com+2
28. मंचन पत्रिका, डिजिटल साहित्यिक पत्रिका, https://machaanpatrika.wordpress.com/ reddit.com+6reddit.com+6reddit.com+6
29. तरंग, भारतीय रंग, संगीत, संस्कृति आधारित 'small original digital magazine', reddit.comreddit.com+4reddit.com+4reddit.com+4

vishwanath.adamya@gmail.com

हिंदी-शिक्षण

1. विदेशी भाषा के रूप में हिंदी भाषा-शिक्षण का सांस्कृतिक पहलू - डॉ. प्रियंका सोनकर

2. हिंदी भाषा-शिक्षण के तकनीकी साधन - माला मिश्रा

3. विश्व के शीर्ष विश्वविद्यालयों में हिंदी-शिक्षण की स्थिति - डॉ. शहाबुद्दीन एवं डॉ. पवन अग्रवाल

4. ब्रिटेन में हिंदी-शिक्षण एवं प्रशिक्षण - डॉ. वंदना मुकेश

5. पूर्वोत्तर भारत में हिंदी-शिक्षण - चंपा कुमारी चौहान

विदेशी भाषा के रूप में हिंदी भाषा-शिक्षण का सांस्कृतिक पहलू

- डॉ. प्रियंका सोनकर
वाराणसी, भारत

भाषा संस्कृति का सबसे महत्त्वपूर्ण घटक होती है। इतना ही नहीं, कोई भी जाति दुनिया को अपने अस्तित्व का बोध अपनी भाषा के माध्यम से ही कराती है। कहने के लिए तो हर जाति की अपनी भाषा होती है और हर जाति आपस में बोलचाल की भाषा के रूप में आमतौर पर अपनी ही भाषा का इस्तेमाल करती है, परन्तु जब कोई जाति, साहित्य, बाज़ार और अंतरराष्ट्रीय संबंध की भाषा के रूप में अपनी भाषा का व्यवहार छोड़ देती है, तब वह दुनिया में अपनी पहचान खो देती है। ऐसी दशा में धीरे-धीरे उसके सांस्कृतिक मूल्यों को वह पराई भाषा निगल जाती है, जो बाज़ार और शिक्षित जनता की साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम बन जाती है। हिंदी के महान् आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 1912 ई. में भाषा के महत्त्व का आकलन करते हुए 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के जनवरी अंक में लिखा था - "भाषा ही किसी जाति की सभ्यता को सबसे अलग झलकाती है, यही उसके हृदय के भीतरी पुरज़ों का पता देती है। किसी जाति को अशक्त करने का सबसे सहज उपाय उसकी भाषा को नष्ट करना है।" इस हिसाब से देखा जाए, तो हिंदी भाषा में जातीय एकता और सांस्कृतिक महत्ता के गुण विद्यमान थे, जिसके कारण वह विश्वपटल पर छाई हुई है।

भाषा ही वह आधार है, जिससे हमारी अस्मिता (पहचान) निर्धारित होती है। मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने में भाषा सहायक है। जुड़ने की इस प्रक्रिया में भावों, विचारों और संवेगों के सम्प्रेषण के साथ-साथ यह माध्यम हमें अपनी परम्परा, सभ्यता और संस्कृति को समझने में सहायता करती है। भाषा-शिक्षा साध्य और साधन दोनों है। भाषा हमारी धरोहर है। हम अपनी दिनचर्या में हर क्षण भाषा का प्रयोग करते हैं। चाहे उसका रूप मातृभाषा में हो या फिर प्रथम भाषा में, द्वितीय भाषा के रूप में हो या विदेशी भाषा के रूप में। इसमें दो राय नहीं है कि हमें जैविक-जंतु से सामाजिक-सांस्कृतिक प्राणी बनाने में भाषा अपनी अमिट भूमिका निभाती है।

भाषा के साथ-साथ हमें संस्कृति को भी समझना होगा। किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों या सामाजिक संबंधों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले आदर्शों के समन्वित रूप को संस्कृति कहा जा सकता है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति को व्याख्यायित करती है। जीवन के अनेक रूपों का समुदाय संस्कृति है। भाषा और संस्कृति के अनूठे संबंध के विषय में हज़ारी प्रसाद ने लिखा है - "भाषा में प्रयुक्त एक-एक शब्द, एक-एक स्वराघात कुछ सूचना देते हैं। व्यक्तियों के नाम, कुलों या खानदानों के नाम, पुराने गाँवों के नाम जीवन्त इतिहास के साक्षी हैं। हमारे रीति-रस्म, पहनावे, मेले, गान, नाच, पर्व, त्यौहार, उत्सव, हमारे पुराने इतिहास की कथा सुनी जाती हैं।" भाषा और संस्कृति का अन्योन्याश्रित संबंध है। विभिन्न संस्कृतियों के मिश्रण से एक नई भाषा का जन्म होता है। भाषा संस्कृति की पहचान है, जैसे हिंदी भाषा भारतीय संस्कृति की अनूठी पहचान है।

विषय की गहराई में जाने के लिए हमें भाषावैज्ञानिकों के भाषा में निहित सांस्कृतिक मूल्य संबंधी मतों को भी जानना आवश्यक है। डेल हाइम्स ने 'भाषा संस्कृति का सिद्धांत' प्रतिपादित किया। उनकी धारणा थी कि भाषा का संबंध समाज के मनोविज्ञान से भी होता है। अतः भाषा-व्यवहार तो सांस्कृतिक होता ही है, भाषा द्वारा संपन्न सांस्कृतिक व्यवहार का भी मनोविज्ञान होता है।' (उन्होंने भाषा में संस्कृति की संकल्पना को सुदृढ़ करने के लिए 'होम मेड मॉडल' (लोक संस्कृति) को महत्त्व दिया।"

भाषा का समाज और संस्कृति से गहरा जुड़ाव है। हिंदी भाषा-शिक्षण के समय हमें यह ध्यान रखना होगा कि भारत बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश है। भारत में विभिन्न संस्कृतियाँ आईं और यहाँ की सांस्कृतिक बहुलता के कारण यहीं रच-बस गईं। भारतीय संस्कृति को गंगा-जमुनी संस्कृति भी कहा जाता है, कारण यहाँ हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति से संबद्ध भाषा एक-दूसरे के संपर्क से जुड़ी हैं। इन दोनों संस्कृतियों के परिणामस्वरूप हिंदी भाषा को हिन्दुस्तानी शैली में हम देख सकते हैं। भाषा-शिक्षण के समय हमें भाषा के सांस्कृतिक शैली-भेदों पर ध्यान देना होगा। यह पद्धति सांस्कृतिक एकता के बोध में सहायक होगी।

भारत और भारतीय संस्कृति को समझने में हिंदी भाषा ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यहाँ की नदियाँ, पर्वत-श्रेणियाँ, ग्रामीण जीवन, फ़सलें-अनाज, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, धार्मिक ग्रंथ 'रामचरितमानस', गीत, लोकगीत (फ़ागुन गीत, सावन के गीत, कजरी) इत्यादि में भारतीय संस्कृति की झलक दिखाई देती है। हिंदी में धर्म के क्षेत्र में आने वाले शब्द; पूजा, आराधना, आरती,

भोग, प्रसाद, व्रत, त्यौहार, तीर्थाटन आदि शब्द और दर्शन के क्षेत्र में ब्रह्म, माया, अद्वैतवाद, आत्मा, मोक्ष इत्यादि शब्द भारतीय सांस्कृतिक परिवेश को आत्मसात् किए हुए हैं। विदेशी भाषा के विद्यार्थियों को हिंदी भाषा सिखाते हुए इन शब्दावलियों का परिचय जब हम कराएँगे, तब शिक्षक को भारत की धार्मिक और दार्शनिक संस्कृतियों में समाहित इन शब्दों में छुपे उस संस्कृति का भी मर्म बताना होगा।

विदेशों में हिंदी का सांस्कृतिक शिक्षण

ब्रिटेन में हिंदी शिक्षण का आरंभ अंग्रेज़ों द्वारा भारत की औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया के तहत हुई। किन्तु विधिवत् शुरुआत 1970 के दशक में हुई। उस समय अंग्रेज़ अपनी औपनिवेशिक ज़रूरतों को ध्यान में रखकर भारतीय संस्कृति और सामाजिक स्थिति को जानने के लिए हिंदी सीख रहे थे और आज प्रवासी भारतीय अपनी सांस्कृतिक अस्मिता और पहचान बनाए रखने के लिए अपने बच्चों को हिंदी की शिक्षा दे रहे हैं।

ब्रिटेन में आप्रवासियों के लिए हिंदी उनकी सांस्कृतिक अस्मिता का प्रतीक है। ब्रिटेन की प्रसिद्ध कहानीकार और कवयित्री उषा राजे सक्सेना कहती हैं - "यह सच है, आप्रवासी भारतीय जहाँ भी हैं अपनी अस्मिता, अपनी भाषा और संस्कृति की चिंता सदा साथ लिए रहे हैं। दरअसल, विदेशों में बसा भारतीय नए संदर्भों से जुड़ता अवश्य है, परंतु अपने मूल से ही नहीं कटता। वह हर रोज़ सपने में भारत की यात्रा पर होता है।" अपने लंदन प्रवास के दौरान डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने प्रवासियों की मनःस्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है - 'जो लोग अपनी धरती पर नहीं लौट पाते हैं, वे जहाँ रहते हैं, वहाँ अपनी धरती का टुकड़ा अपने लिए रच लेते हैं... अपनी मिट्टी के लिए उसकी तड़प उसे कभी देश वापस लाती है, तो कभी मित्रों के बीच संवाद कराती है, तो कभी लेखन और अन्य सांस्कृतिक कार्यों में उभरती है।' अपने देश की मिट्टी, अपनी संस्कृति से इस लगाव के कारण ही ब्रिटेन में प्रवासी भारतीय अपनी मूल सभ्यता और संस्कृति से जुड़े रहना चाहते हैं। ऐसे में वे चाहते हैं कि उनके बच्चे भी हिंदी सीखें।'

ब्रिटेन में उच्च स्तर पर हिंदी शिक्षण का कार्य चल रहा है। कैंब्रिज, ऑक्सफ़ोर्ड, लंदन और यॉर्क में हिंदी भाषा के साथ-साथ साहित्य और उसकी संस्कृति का भी अध्यापन हो रहा है। कैंब्रिज विश्वविद्यालय विदेशी विद्यार्थियों के लिए आईजीसीएसी में हिंदी की परीक्षाएँ आयोजित कर रहा है, जिसे 'कैंब्रिज असेसमेंट' के नाम से जाना जाता है। लंदन विश्वविद्यालय के 'प्राच्य एवं अफ़्रीकी अध्ययन स्कूल' में हिंदी की पढ़ाई सुचारू रूप से चल रही है। यहाँ हिंदी शिक्षण के लिए फ्रेंचेस्का ओरसिनी, लूसी रौसेंस्टाईन एवं राकेश नॉटियाल हिंदी अध्यापन में सक्रिय हैं। इंग्लैण्ड में हिंदी का सांस्कृतिक प्रभाव अधिक है। यही कारण है कि हिंदी की पढ़ाई सामुदायिक स्तर पर मंदिरों, स्वैच्छिक संस्थाओं आदि में कुछ हिंदी प्रेमियों और हिंदी सेवियों के द्वारा चल रही है।

वैश्विक स्तर पर हिंदी की महत्ता बढ़ी है। यह एक अखिल भारतीय भाषा है। इसके अखिलपन के कारण ही ब्रिटेन में हिंदी भाषा की कक्षाओं में पंजाबी, तमिल, तेलुगू, गुजराती, बांग्ला व अन्य भाषा-भाषी बच्चे भी हिंदी सीख रहे हैं। हिंदी भाषा का प्रारम्भिक ज्ञान उसके व्याकरण तक ही सीमित है, जबकि हमें ज्यादा-से-ज्यादा इसे भारतीयता और संस्कृति से जोड़ने की ज़रूरत है। हिंदी के पाठ्यक्रमों का निर्माण करते वक्त उसमें भाषा के साथ हमें सांस्कृतिक मूल्यों को भी स्थान देना होगा, जिससे उस भाषा की सजीवता बनी रहे।

जापान में हिंदी-शिक्षण के सांस्कृतिक विस्तार और समुचित विकास के विषय में कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं - 'जापान के अधिकांश विश्वविद्यालयों में हिंदी के पाठ्यक्रमों के निर्धारण में प्रोफ़ेसर दोई और प्रोफ़ेसर तनाका की भूमिका का विशेष महत्त्व रहा है। पाठ्यक्रम समिति के परामर्शदाता के रूप में इन विद्वानों ने यह मानकर पाठ्यक्रम का निर्धारण किया है कि भाषा का संबंध संस्कृति से बहुत गहरा है। संस्कृति, मिथक, दर्शन और साहित्य सभी को मिलाकर पाठ्यक्रम का निर्माण होना चाहिए। इसी दृष्टिकोण को अपनाने के कारण जापान में स्नातक स्तर पर हिंदी पढ़ने वाला विद्यार्थी हिंदी भाषा के व्याकरण के साथ रामायण-महाभारत, पंचतंत्र और रामचरितमानस के बाद मोहन राकेश तक को पढ़ता है। भारत के तीज-त्यौहार, पर्व, व्रत, तीर्थ, पूजा-उपासना के केन्द्र, नदियों, पर्वतों, देवी-देवताओं, शिव चरित सभी विषयों के बारे में जानकारी पाता है। कहना न होगा कि जापान में हिंदी शिक्षण का अर्थ है - भाषा के साथ-साथ भारतीय संस्कृति परंपरा का ज्ञान।'

चूँकि हिंदी की वैश्विक माँग बढ़ने से अमेरिका जैसा विकसित राष्ट्र भी पीछे नहीं रहा है। अमेरिका में हिंदी-शिक्षण के क्षेत्रे में एक नई लहर विकसित हुई है। अमेरिका में नेशनल सिक्योरिटी लैंग्वेज इनिशियेटिव नामक भाषा-नीति की घोषणा के तहत सरकारी विद्यालयों के विदेशी भाषा-शिक्षण कार्यक्रम में दस नई भाषाएँ क्रमशः जोड़ने के लिए सरकारी समर्थन देने के लिए सरकार ने अपनी प्रतिबद्धता स्पष्ट की। इस नीति की घोषणा 6 फ़रवरी, 2006

को अमेरिका के राष्ट्रपति जार्ज बुश ने की थी। इन भाषाओं में हिंदी भी एक है। यहाँ की सरकार ने अपनी भाषा-नीति को स्पष्ट करते हुए हिंदी को सरकारी स्कूलों के विदेशी भाषा-कार्यक्रम में एक विकल्प के रूप में रखने की घोषणा की है। गैर-सरकारी स्वयंसेवी संस्थाएँ भाषा के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों का ज्ञान बच्चों को देती हैं। सरकारी तंत्र के तहत चलने वाले हिंदी कार्यक्रमों में भाषा के साथ उसकी अभिन्न सहचरी संस्कृति के भौतिक और वैचारिक पक्षों को समझने-समझाने की अनिवार्यता पर भी बल है। भाषा-संबंधी शोध पर आधारित इस सरकारी सोच का दृढ़ मत है कि भाषा और संस्कृति में अटूट संबंध है और भाषा को समझने के लिए भी स्थानीय भाषा ही सशक्त माध्यम है। इस प्रकार भाषा और संस्कृति में अन्योन्याश्रित संबंध होने के कारण एक का अस्तित्व दूसरे के बिना अकल्पनीय है।

सामाजिक स्तर पर अनेक स्वयंसेवी संस्थाएँ अमेरिका के युवा-जगत के लिए हिंदी भाषा और उससे संबंधित संस्कृति की कक्षाएँ चला रही हैं। इन संस्थाओं में विशेष उल्लेखनीय संस्थाएँ हैं - हिंदी यू.एस.ए., बाल-विहार, यू.एस. हिंदी एसोसिएशन, चिन्मय मिशन, बाल गोकुलम, अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति, विश्व हिंदी न्यास, विद्यालय। इसके अतिरिक्त सन् 2009 में युवा हिंदी संस्थान का निर्माण हुआ, जिसके तत्त्वावधान में 2010 में एटलांटा (जॉर्जिया प्रदेश) और 2011 में न्यूयार्क (डेलेवेयर प्रदेश) में युवाओं को हिंदी भाषा और संस्कृति सिखाने के लिए विशाल शिविरों का आयोजन किया गया। स्वयंसेवी संस्थाओं के अतिरिक्त कुछ सरकारी विद्यालयों में भी हिंदी का औपचारिक शिक्षण शुरू हो चुका है। इस विषय में टेक्सस, न्यू जर्सी और न्यूयार्क प्रदेश के कुछ स्कूलों में हिंदी औपचारिक रूप से पाठ्यक्रम में सम्मिलित की जा चुकी है।

इस बात का विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए कि विदेशी भाषा के रूप में जब हिंदी भाषा को सिखाया जाए, तब उसका पाठ्यक्रम भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत हो। आप्रवासी भारतीयों के सांस्कृतिक संगठनों जैसे आर्य समाज, सनातन धर्म सभा, हिंदी प्रचारिणी सभा, आदि द्वारा हिंदी का प्रचार-प्रसार किए जाने के कारण न केवल भारतीय मूल के लोग, बल्कि अन्य विदेशी भी भारतीय संस्कृति, सिनेमा, संगीत में रुचि के कारण हिंदी भाषा सीख रहे हैं।

डेनमार्क के आरहुस विश्वविद्यालय में भी 'स्कूल ऑफ़ कल्चर एण्ड सोसाइटी-ग्लोबल स्टडीज़ डिपार्टमेन्ट' के अंतर्गत हिंदी भाषा को सिखाया जाता है। यहाँ विद्यार्थियों को पाठन, लेखन, वाचन और व्याकरण सीखने पर ज़ोर दिया जाता है। यहाँ प्रथम सत्र और द्वितीय सत्र में पाठ्यक्रम को अलग-अलग विभाजित किया गया है। प्रथम सत्र में पाठ्यक्रम को दो भागों में बाँटा गया है। पहले भाग में विद्यार्थी हिंदी की देवनागरी लिपि और व्याकरण को सीखते हैं। इसके लिए वहाँ उषा जैन की 'इंट्रोडक्शन टू हिंदी ग्रामर' और 'एडवांस्ड हिंदी ग्रामर' की पुस्तक भी लगाई गई है। दूसरे भाग में हिंदी बोलने की दक्षता पर ज़ोर दिया जाता है। इसमें विद्यार्थी को कुछ परियोजनात्मक और प्रयोगात्मक अभ्यास-कार्य भी दिए जाते हैं। हिंदी व्याकरण सीखने के बाद विद्यार्थी को हिंदी में विचार करना और बोलना सिखाया जाता है। इसके अतिरिक्त इस पाठयक्रम के माध्यम से भारत के समसामयिक सामाजिक मुद्दों, फ़िल्मों, राजनीतिक-आर्थिक मुद्दों के विषय में भी विद्यार्थियों को अवगत कराना और उनकी राय को जानना है। दूसरे सत्र में भी पाठ्यक्रम को दो भागों में बाँटा गया है। पहले भाग में हिंदी पाठ की समीक्षा और विश्लेषण है। इसमें हिंदी की कुछ कहानियाँ जैसे – *'दिल्ली में एक मौत', 'दाज्यू', 'कफ़न', 'क्रान्तिकारी की कथा', 'यस सर'* इत्यादि कहानियाँ पाठ्यक्रम में लगी हुई हैं। ये साहित्यिक पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को आलोचनात्मक नज़रिये के लिए प्रेरित करता है और उन्हें इन पाठों की पृष्ठभूमि के सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों की खोज के लिए प्रयासरत करता है। दूसरे भाग में अनुवाद को पाठ्यक्रम में रखा गया है। इस पाठ्यक्रम में भी कुछ रचनाओं के अनुवाद जैसे - सआदत हसन मंटो की कहानी 'खोल दो', राजेन्द्र यादव की 'हनीमून' इत्यादि रचनाएँ शामिल हैं। पाठ्यक्रम का विशेष ज़ोर विदेशी भाषा के विद्यार्थियों को हिंदी की साहित्यिक रचनाओं के ज़रिए उन्हें भारतीय संस्कृति का ज्ञान देना है। ये विद्यार्थी हिंदी भाषा और उसकी सांस्कृतिक महत्ता को सीखकर भारतीय संस्कृति को व्यापक रूप से जानने और समझने के लिए भारत भी आते हैं। विदेशों में हिंदी ले जाने का उद्देश्य न केवल भाषा के स्तर पर इसे बढ़ावा देना था, बल्कि भारतीय संस्कृति की विरासत को सम्पूर्ण विश्व में पहचान दिलाना प्रमुख उद्देश्य था।

विश्व के कुछ देशों में हिंदी भाषा-शिक्षण की शुरुआत उसके सांस्कृतिक पहलुओं को ध्यान में रखकर किया गया। कोरिया में भारत को गौतम बुद्ध, महात्मा गांधी और रवीन्द्रनाथ टैगोर के देश की छवि के रूप में देखा गया। एक समय तक तो बौद्ध-धर्म कोरिया का राजधर्म भी रहा। सन् 1929 में अर्थात् जापान के पराधीन कोरिया के समय में टैगोर द्वारा लिखित कुछ कवितानुमा पंक्तियाँ 'पूर्व का दीप' कोरिया के बच्चे-बच्चे की ज़ुबान पर हैं, जिन्होंने जापान में रह रहे अपने देश के लिए स्वतन्त्रता के इच्छुक युवा कोरियाई के अनुरोध पर अपने हस्ताक्षर लिखा था। भारत

अपनी भाषिक-साहित्यिक-सांस्कृतिक विरासत के कारण विश्व में अनूठी पहचान रखता है। यही कारण है कि विश्व के कई देशों के विद्यार्थी हर वर्ष भारतीय संस्कृति के विशाल साहित्य से प्रभावित होकर ही भारत अधिक मात्रा में आते हैं।

भारत और कोरिया में एक-दूसरे के प्रति भारतीय और कोरियाई लोगों की बढ़ती हुई दिलचस्पी के बहुत-से सांस्कृतिक कारण हैं, जिनमें प्रमुख रूप से पहली शताब्दी के 48वें साल में अयोध्या की राजकुमारी हो (हां) हवांग ओक और (किमहे) गाया राज्य के राजा किमसूरो के विवाह की कथा आती है। इस कथा को मिथक या किंवदन्ती माना जाता है। फिर भी कोरियाई लोगों की भारत के साथ अपने सांस्कृतिक संबंध जोड़ने की ललक की पुष्टि इस कथा से मिलती है। इसके अतिरिक्त कोरिया की नई पीढ़ी में भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा का महत्त्व बढ़ा है। यहाँ की युवा पीढ़ी भारत की संस्कृति, जीवन और दर्शन की गहरी जानकारी लेने में अपनी रुचि रख रही है। भारत के अनेक पक्षों को उजागर करने वाली सामग्री कोरियाई भाषा में आज उपलब्ध है।

विदेशों में हिंदी भाषा की पाठ्य-पुस्तकों पर हमें एक नज़र डाल लेनी होगी कि क्या ये पुस्तकें भाषिक अध्ययन के साथ-साथ सांस्कृतिक पहलुओं का भी विश्लेषण करती हैं। मैं यहाँ विभिन्न देशों में पढ़ाए जा रहे हिंदी पुस्तकों के नाम दे रही हूँ, जो निम्नलिखित हैं -

संयुक्त राज्य अमेरिका में हेनिंग्सवाल्ड की 'स्पोकेन हिन्दुस्तानी' - दो खंड (सन् 1945) फ़ेअरबैंक्स की 'हिंदी एक्सरसाइज़ेज़ एण्ड रींडिंग्ज' (सन् 1955), हार्टिन की 'हिंदी बेसिक रीडर्स', फ़ेअरबैंक्स तथा पंडित की 'हिंदी : ए स्पोकन एप्रोच', डॉ. यमुना काचरू की 'इंटरमीडिएट हिंदी कोर्स' (1966) इत्यादि पुस्तकें हिंदी भाषा-शिक्षण के लिए प्रयोग की जाती हैं।

जर्मनी में हम्बोल्ट विश्वविद्यालय में सन् 1967 में हिंदी व्याकरण गाइड का निर्माण हुआ। डॉ. लोठार लुत्से तथा डॉ. बहादुर सिंह द्वारा निर्मित 'द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी' का प्रकाशन सन् 1970 में हुआ। जापान में प्रो.क्यूयादोइ ने 'हिंदी व्याकरण और पाठमाला' (1963) तथा हिंदी पाठमाला (1966) का निर्माण किया। हंगरी में आर्पाद दैब्रैत्सैनी (1911-1984) ने हिंदी की दो पुस्तकें तैयार कीं, पहला नौसिखियों के लिए हिंदी की पाठ्यपुस्तक, बुदापेस्त (1959) दूसरा हंगरी भाषियों के लिए 'हिंदी भाषा पाठ्यक्रम', बुदापेस्त (1983), स्पेन में स्पेनिश छात्रों के लिए श्रीमती अन्ना थापर ने 'ग्रामेटिका व हिंदी' शीर्षक वाली हिंदी भाषा की पाठ्यपुस्तक लिखी। कोरिया में कोरियन छात्रों के लिए प्रो.उ-जो-किम ने 'हिंदी पाठ' एवं प्रो. हैगजंग सू ने 'हिंदी उच्चारण शिक्षण' तैयार किया है।

विदेशों में अंग्रेज़ी, जर्मनी, हंगेरियन, रोमानियन, रूसी, उज़्बेकी, जापानी इत्यादि विदेशी भाषाओं के साथ हिंदी शब्दकोश प्रकाशित हुए हैं। इनमें फ़ादर कामिल बुल्के का अंग्रेज़ी-हिंदी कोश, डॉ. हेल्मट नेस्पिताल का हिंदी-जर्मनी शब्दकोश, निकोल बलबीर का हिंदी-फ़्रांसीसी कोश, पैतेर कोश का हंगेरियन-हिंदी शब्दकोश, डॉ. अलैक्ज़ण्डर पेत्रोविच बारान्निकोव का हिंदी-रूसी कोश, हिंदी-पुर्तगाली शब्दकोश इत्यादि शब्दकोश प्रमुख हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि व्याकरण की जानकारी देने वाली ये पुस्तकें और शब्दकोश क्या हिंदी भाषा की संस्कृति का भी बोध कराती हैं, क्योंकि हिंदी-शिक्षण के सांस्कृतिक पहलू के लिए हमारे समक्ष यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न के रूप में सामने आता है।

विदेशों में हिंदी शिक्षण के लिए बहुत-सी हिंदी रचनाकारों की कृतियों का विदेशी भाषा में अनुवाद भी हुआ है। इनमें प्रेमचन्द का प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' और उनकी विविध कहानियाँ प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त जैनेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, मोहन राकेश, फणीश्वरनाथ रेणु, भीष्म साहनी आदि कहानीकारों की कहानियों का भी अनुवाद हुआ है। रूसी भाषा में मध्ययुगीन रचनाकारों कबीर, सूर, तुलसी और मीराबाई के पदों का भी अनुवाद हुआ है। इटली के वेनिस विश्वविद्यालय की डॉ. मारियोल्ला ऑफ़रेदी ने प्रेमचन्द के 'गोदान' तथा कुंवर नारायण की काव्यकृति 'आत्मजयी' का तथा चेचीलिया कोरिसियो ने फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' का इतालवी भाषा में अनुवाद किया है। इन साहित्यिक रचनाओं को पढ़कर ही विदेशी विद्यार्थियों में हिंदी भाषा के प्रति अनुराग बढ़ता है और वे हिंदी की अनेक रचनाओं तथा भारत की साहित्यिक-सांस्कृतिक विरासत के लिए हिंदी भाषा में शोध करते हैं।

2018 में हंगरी के पीटर सैगी ने भारत के महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय से ममता कालिया के सम्पूर्ण साहित्य में पीएच.डी की है। वे अपनी डिग्री लेने के पश्चात् अपने देश बुडापेस्ट में वहाँ के विद्यार्थियों को हिंदी साहित्य और संस्कृति की शिक्षा दे रहे हैं। ऐसे बहुत-से विदेशी विद्यार्थी भारत में हिंदी भाषा का केवल ज्ञान लेने आते हैं, किन्तु हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति में बढ़ती रुचि के कारण वे यहाँ से एम.ए., पीएच.डी करके वापस अपने देश जाकर वहाँ उस भाषा-संस्कृति का ज्ञान भी देते हैं।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् प्रत्येक वर्ष भारतीय शिक्षकों को हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार करने के लिए विदेशी शिक्षण संस्थानों में भेजती है। ये शिक्षक दो वर्ष के लिए

वहाँ के विश्वविद्यालयों में अतिथि शिक्षक के रूप में कार्य करते हैं। इस प्रकार भारतीय सरकार भी हिंदी और भारतीय संस्कृति को बढ़ाने में अपना बहुमूल्य योगदान देती है।

विदेशों में सबकी ज़रूरतें और उद्देश्य अलग-अलग होने के कारण हिंदी के महत्त्व, प्रचार-प्रसार तथा शिक्षण में बड़ा अन्तर दिखाई देता है। लेकिन इनके लक्ष्य में एक समानता यह है कि इन सभी के लिए हिंदी भारत की सभ्यता और संस्कृति को समझने की माध्यम भाषा है। कई देशों के बहुत-से हिंदी विद्वानों ने अपने आपको हिंदी और भारतीय संस्कृति के प्रति समर्पित कर दिया है। आदिकाल से ही विदेशी विद्वानों और विचारकों की हिंदी के प्रति एक गहरी रुचि रही है। हम कह सकते हैं कि हिंदी भाषा और भारतीय अध्ययन का महत्त्व विश्व ने बहुत पहले से स्वीकार कर लिया था। सर्वप्रथम हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने वाले विदेशी विचारक ही थे। इनमें गार्सा द तासी, जार्ज अब्राह्म ग्रियर्सन, फ्रेंक ई., एडविन ग्रीव्स आदि विद्वानों का नाम प्रसिद्ध है। विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा और साहित्य पर विभिन्न शोध (पीएच.डी.) कार्य भी हो रहे हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण शोध-प्रबन्धों (अधिकतर प्रकाशित) के नाम का उल्लेख करना उचित ही होगा - थियॉलाजी ऑफ़ तुलसीदास' (जे.एन.कारपेंटर, लन्दन विश्वविद्यालय-1930), 'कबीर एण्ड हिज़ फ़ॉलोअर्स' (फ्रेंक ई. लन्दन विश्वविद्यालय-1931), 'ब्रजभाषा' (धीरेन्द्र वर्मा, पेरिस विश्वविद्यालय-1930), 'रामचरितमानस के स्रोत और रचना-क्रम' (सी बादवील, पेरिस विश्वविद्यालय-1950), 'ए स्टडी ऑफ़ अर्ली ब्रजभाषा प्रोज़' (आर.एस. मैग्रेसर, लन्दन विश्वविद्यालय-1956) आदि।' इस प्रकार विदेशों में हिंदी भाषा और साहित्य में विविध शोध होने से वहाँ हिंदी-शिक्षण की माँग में बढ़ोत्तरी हुई है। बहुत-से हिंदी शिक्षक भाषा, संगीत, कला आदि को भी बढ़ावा दे रहे हैं।

विदेशों में अपनी संस्कृति को प्रसारित करने के लिए शिक्षक विभिन्न कलाओं का सहारा लेते हैं। गीत-संगीत, नृत्य, नाटक आदि के माध्यम से वे विद्यार्थियों को भाषा और संस्कृति दोनों का ज्ञान देते हैं। ब्रिटेन में दर्शिनी कथक की नृत्यांगना है, जो बच्चों को नृत्य सिखाती हैं। 1 जुलाई 2018 को हिन्दू मंदिर स्लाव में आयोजित हिंदी महोत्सव के शैक्षणिक सत्र में अपने विचार को रखते हुए उन्होंने कहा कि जब वे बच्चों को भारतीय नृत्य सिखाती हैं, तब पहले उन्हें हिंदी गीतों के बोल समझाने पड़ते हैं। इसलिए पहले वह बच्चों को हिंदी गीतों के अर्थ समझाती हैं और उसके बाद उन्हें नृत्य के स्टेप्स सिखाती हैं। इस प्रकार वह नृत्य के माध्यम से हिंदी सिखा रही हैं। इस संबंध में तरुण जी का मानना है कि ''इस परिदृश्य में नृत्य महज एक सांस्कृतिक तत्व नहीं है, जिसे छात्रों को लक्ष्य भाषा की संस्कृति से अवगत कराने के लिए उपयोग किया गया है, बल्कि यह सांस्कृतिक तत्व उस भाषा के वाक्य विन्यास, शब्दावली और व्याकरण की शिक्षा की रूपरेखा भी तैयार करता है।"

निष्कर्ष रूप में हिंदी भाषा भारतीयों की आत्मा में बसती है। हिंदी की समरसता उसकी संस्कृति में विराजमान है। यह अकारण नहीं था जब संयुक्त राष्ट्र संघ में पहली बार हिंदी में भाषण दिया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ में माननीय प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा हिंदी को जो पहचान मिली, फिर उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा। यही कारण है कि आज वैश्वीकरण के इस दौर में हिंदी ने अद्‌भुत और आश्चर्यजनक विकास किया है। फिर भी विदेशी भाषा के रूप में हिंदी भाषा-शिक्षण आज एक सक्रिय कार्यान्वयन की माँग रखता है। भले ही विश्व में हिंदी भाषा सीखने-सिखाने के लिए विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं और अखिल भारतीय स्वैच्छिक संस्थाओं की स्थापना हो गई हो, किन्तु विदेशों में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी भाषा के सुचारू रूप से शिक्षण के लिए अंतरराष्ट्रीय मानक पाठ्यक्रम और उपयुक्त सामग्री की ज़रूरत अभी भी बनी हुई है। इसमें दो राय नहीं है कि जब तक हिंदी-शिक्षण के पाठ्यक्रम में साहित्यिक-सांस्कृतिक सामग्री शामिल नहीं की जाएगी, तब तक हिंदी के सांस्कृतिक पहलुओं की अनदेखी भी होती रहेगी।

हम देख सकते हैं कि भूमण्डलीकरण के 21वीं सदी में हिंदी-शिक्षण के सांस्कृतिक पहलू ने विश्वग्राम की संकल्पना को सच में बदलने में अपनी बड़ी भूमिका निभाई है। यह द्वितीय भाषा-शिक्षण की, विशेषकर विदेशी भाषाओं के शिक्षण विचार-संप्रेषण की आवश्यकता को ही पूरा नहीं करता, बल्कि इसने विभिन्न भाषा समुदायों एवं राष्ट्रों के बीच पारस्परिक सांस्कृतिक समझ के विकास का कार्य भी संपन्न किया है और कर रहा है।'

अन्त में, फ्रेक ग्रिटनर के विचार से अपनी लेखनी को विराम दूँगी। उन्होंने बीस वर्ष पहले लिखा था कि यदि उचित तरीके से रूपायित किया जाए, तो अन्य भाषा-शिक्षण नई पीढ़ी को दूसरों की संस्कृतियों तथा भाषाओं के प्रति नवीन अभिरुचि एवं अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, जिनकी सहायता से वे स्वार्थी राजनैतिक प्रचारकों की भाषा पर आधारित जोड़-तोड़ से लोहा ले सकते हैं और भाषा के माध्यम से मानवमन को दूषित करने वाले असामाजिक तत्वों का प्रतिरोध कर सकते हैं। मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि लोहा लेने की यह शक्ति मात्र हिंदी में है।

संदर्भ-सूची :

1. साभार, डॉ. अमरनाथ, हिंदी भाषा का समाजशास्त्र, संपादकीय से (संस्करण 2006), आनंद प्रकाशन, कोलकाता,
2. साभार, विश्व हिंदी पत्रिका 2018
3. गुर्रमकोंडा नीरजा, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की व्यावहारिक परख, वाणी प्रकाशन
4. गगनांचल, सितंबर-अक्टूबर, 2018
5. श्री दिविक रमेश, लेख – 'हिंदी-अध्यापन का विदेशी संदर्भ और दक्षिण कोरिया', विश्व हिंदी पत्रिका, 2018
6. लेख – 'हिंदी भाषा का अंतरराष्ट्रीय संदर्भ', हिंदी भाषा चिंतन https://books.google,co.in
7. संपादन, शिवेन्द्र कुमार वर्मा, दिलीप सिंह, आलेख प्रकाशन, दिल्ली संस्करण प्रथम, 2005, भाषा अध्ययन

priyankas.hindi@bhu.ac.in

हिंदी भाषा-शिक्षण के तकनीकी साधन

- माला मिश्रा
वाराणसी, भारत

वर्तमान डिजिटल युग में शिक्षा के हर क्षेत्र में तकनीकी साधनों की भूमिका अत्यंत निर्णायक बन गई है और हिंदी भाषा-शिक्षण इससे अछूता नहीं रहा है। यह शोध-पत्र हिंदी भाषा-शिक्षण में प्रयुक्त तकनीकी साधनों के विविध पहलुओं का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। परंपरागत कक्षा-शिक्षण की सीमाओं को पार करते हुए, आज का हिंदी भाषा-शिक्षण तकनीकी नवाचारों के साथ अधिक संवादात्मक, सुलभ, लचीला और समृद्ध हुआ है। शोध-पत्र में ऑनलाइन पाठ्यक्रमों, मोबाइल एप्स, ई-लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म, वीडियो लेक्चर, फ़्लैशकार्ड्स, पॉडकास्ट, डिजिटल पुस्तकालय, आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस, वर्चुअल एवं ऑगमेंटेड रियलिटी और ब्लॉकचेन जैसी अत्याधुनिक तकनीकों के हिंदी-शिक्षण में प्रभावशाली उपयोग की विवेचना की गई है।

इस अध्ययन में यह विशेष रूप से उभर कर सामने आता है कि किस प्रकार Coursera, Duolingo, Vedantu, IGNOU, NDLI, Byju's, Quizizz, Google Classroom तथा Zoom जैसे टूल्स और प्लेटफ़ॉर्म हिंदी भाषा-शिक्षण को वैश्विक स्तर पर नया आयाम दे रहे हैं। AI आधारित चैटबॉट्स, वॉयस रिकग्निशन सिस्टम्स और पर्सनलाइज़्ड लर्निंग एल्गोरिद्म के माध्यम से विद्यार्थियों को उनकी रुचि, गति और क्षमता के अनुसार सामग्री उपलब्ध कराई जा रही है, जिससे शिक्षण-प्रक्रिया अधिक प्रभावी और सीखने का अनुभव अधिक गहन बनता है। साथ ही, डिजिटल प्रमाण-पत्रों की प्रामाणिकता सुनिश्चित करने हेतु ब्लॉकचेन का उपयोग भविष्य के लिए एक सुरक्षित समाधान के रूप में प्रस्तावित है। शोध-पत्र भविष्य की उन संभावनाओं की ओर भी इंगित करता है, जहाँ हिंदी भाषा-शिक्षण केवल भारत तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि विश्वभर के हिंदी प्रेमियों, प्रवासी भारतीयों और विदेशी शिक्षार्थियों के लिए एक सशक्त वैश्विक शिक्षण मॉडल के रूप में उभरेगा। यह अध्ययन न केवल वर्तमान में प्रचलित तकनीकी उपायों का विश्लेषण करता है, बल्कि आगामी तकनीकी एकीकरण की दिशा में भी मार्गदर्शन प्रदान करता है, जिससे हिंदी भाषा का शिक्षण अधिक संगठित, समावेशी और वैश्विक रूप से प्रभावशाली बन सके।

तकनीकी विकास ने शिक्षा के हर क्षेत्र में नए आयाम जोड़े हैं और हिंदी भाषा-शिक्षण भी इससे अछूता नहीं है। आज के डिजिटल युग में, भाषा सीखने और सिखाने के तरीकों में क्रांतिकारी बदलाव आए हैं। पहले जहाँ भाषा-शिक्षण केवल कक्षाओं में किताबों और शिक्षक-छात्र संवाद तक सीमित था, वहीं अब ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म, ई-लर्निंग (E-learning) और मोबाइल एप्स के माध्यम से शिक्षा को अधिक सुलभ और प्रभावी बनाया जा रहा है। इस अध्याय में, हम विस्तार से हिंदी भाषा के तकनीकी शिक्षण के साधनों पर चर्चा करेंगे, जिनमें ऑनलाइन हिंदी भाषा पाठ्यक्रम, डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म और शिक्षण-टूल्स शामिल हैं।

हिंदी भाषा-शिक्षण में तकनीकी विकास

हिंदी भाषा-शिक्षण में तकनीकी विकास ने शिक्षा के पारंपरिक तरीकों को एक नई दिशा दी है। ऑनलाइन शिक्षा के प्रसार के साथ, अब हिंदी भाषा सीखने के लिए कई सुलभ और प्रभावी विकल्प उपलब्ध हैं। इन तकनीकी प्लेटफ़ॉर्मों ने छात्रों के लिए हिंदी भाषा को सीखना आसान और सुलभ बना दिया है। विशेष रूप से, ऑनलाइन पाठ्यक्रमों और मोबाइल एप्स ने भाषा सीखने को एक व्यक्तिगत और इंटरैक्टिव अनुभव में बदल दिया है। इसके माध्यम से न केवल देश के विभिन्न हिस्सों, बल्कि विदेशों में भी हिंदी के छात्रों को अपनी भाषा-कौशल बढ़ाने का अवसर मिल रहा है। इन प्लेटफ़ॉर्मों का उपयोग समय और स्थान की सीमा को पार कर, शिक्षा को लोकतांत्रिक और सुलभ बना रहा है, जिससे हिंदी भाषा का प्रसार और लोकप्रियता बढ़ रही है।

1.1 हिंदी भाषा के ऑनलाइन पाठ्यक्रम

ऑनलाइन शिक्षा के प्रसार के साथ, हिंदी भाषा सीखने के लिए कई ऑनलाइन पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं। ये पाठ्यक्रम न केवल देश के विभिन्न हिस्सों में उपलब्ध हैं, बल्कि विदेशों में भी हिंदी सीखने की इच्छा रखने वालों के लिए एक सुलभ माध्यम बन गए हैं।

प्रमुख ऑनलाइन पाठ्यक्रम और प्लेटफ़ॉर्म :

I. इग्नू (IGNOU) के हिंदी पाठ्यक्रम : इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (IGNOU) हिंदी भाषा में स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर के पाठ्यक्रम प्रदान करता है। यह प्लेटफ़ॉर्म ऑनलाइन अध्ययन सामग्री, वीडियो लेक्चर और अभ्यास प्रश्न प्रदान करता है।

II. डूओलिंगों हिंदी (Duolingo Hindi) : डूओलिंगो हिंदी

एक प्रमुख ऑनलाइन भाषा-शिक्षण एप्लिकेशन है, जहाँ पर उपयोगकर्ता हिंदी भाषा सीख सकते हैं। इसका इंटरफ़ेस सरल है और यह इंटरैक्टिव पाठों के माध्यम से भाषा सीखने की प्रक्रिया को रोचक बनाता है।

III. यूडेमी (Udemy) हिंदी भाषा-पाठ्यक्रम : यूडेमी एक वैश्विक ई-लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म है, जहाँ कई शिक्षक हिंदी भाषा-शिक्षण के लिए पाठ्यक्रम उपलब्ध कराते हैं। यह प्लेटफ़ॉर्म वीडियो लेक्चर्स, क्विज़ और प्रमाण-पत्र प्रदान करता है।

IV. कोर्सेरा (Coursera) : कोर्सेरा भी एक प्रसिद्ध ऑनलाइन शिक्षा प्लेटफ़ॉर्म है, जहाँ हिंदी भाषा के शिक्षण पाठ्यक्रम विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थानों द्वारा उपलब्ध कराए जाते हैं।

1.2 मोबाइल एप्स के माध्यम से हिंदी भाषा-शिक्षण

मोबाइल एप्स ने हिंदी भाषा सीखना आसान बना दिया है। हिंदी भाषा सीखने के लिए कई मोबाइल एप्लिकेशन्स उपलब्ध हैं, जो उपयोगकर्ता को कहीं भी, कभी भी भाषा सीखने का अवसर प्रदान करती हैं।

प्रमुख मोबाइल एप्स :

I. हिंदी वर्णमाला एप : यह एप विशेष रूप से बच्चों के लिए डिज़ाइन किया गया है, जो उन्हें हिंदी वर्णमाला, शब्द और संख्याओं को मज़ेदार तरीके से सिखाता है। इसमें चित्रों और ध्वनियों के माध्यम से बच्चों को भाषा सिखाई जाती है।

II. मोबिलैंग (MobiLang) हिंदी : मोबिलांग एक और प्रमुख एप है, जो हिंदी भाषा को सीखने के लिए व्यापक अभ्यास और पाठ्यक्रम प्रदान करता है। यह एप विशेष रूप से व्याकरण और शब्दावली पर ध्यान केंद्रित करता है।

III. हिंदीगुरु (HindiGuru) : यह एप हिंदी भाषा सीखने के लिए उपयोगी है, जिसमें ध्वनि-अभ्यास, व्याकरणिक नियम और उच्चारण सुधार के लिए टूल्स दिए गए हैं। यह एप शुरुआती और मध्यवर्ती स्तर के छात्रों के लिए उपयुक्त है।

1.3 ई-लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म और हिंदी भाषा-शिक्षण

ई-लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म ने शिक्षा के क्षेत्र में एक नई क्रांति ला दी है। हिंदी भाषा-शिक्षण के लिए कई ई-लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म उपलब्ध हैं, जो छात्रों और शिक्षकों के बीच संवाद को सरल और प्रभावी बनाते हैं।

प्रमुख ई-लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म :

I. बायजू (Byju's) : बायजू एक प्रमुख ई-लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म है, जो हिंदी भाषा के पाठ्यक्रमों को सरल और संवादात्मक तरीके से प्रस्तुत करता है। यह प्लेटफ़ॉर्म विभिन्न कक्षाओं के छात्रों के लिए हिंदी भाषा के पाठ्यक्रमों को अनुकूलित करता है।

II. एम्बाइब (Embibe) : एम्बाइब एक एआई-आधारित ई-लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म है, जो छात्रों को व्यक्तिगत रूप से हिंदी भाषा के अभ्यास और टेस्ट प्रदान करता है। यह प्लेटफ़ॉर्म छात्रों के प्रदर्शन के आधार पर उनके अध्ययन को निर्देशित करता है।

III. वेदांतु (Vedantu) : वेदांतु एक लाइव-लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म है, जहाँ शिक्षक और छात्र हिंदी भाषा का अध्ययन ऑनलाइन कर सकते हैं। यह प्लेटफ़ॉर्म लाइव क्लासेस, क्विज़ और अभ्यास-प्रश्न प्रदान करता है।

IV. अनअकेदमी (Unacademy) : अनअकेदमी भारत का एक प्रसिद्ध ऑनलाइन शिक्षण प्लेटफ़ॉर्म है, जहाँ विभिन्न परीक्षाओं और कक्षाओं के लिए हिंदी भाषा के पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं। यह प्लेटफ़ॉर्म लाइव क्लासेस, नोट्स और मॉक टेस्ट्स प्रदान करता है।

2. हिंदी भाषा-शिक्षण के लिए ई-लर्निंग टूल्स

हिंदी भाषा-शिक्षण में ई-लर्निंग टूल्स ने शिक्षा के पारंपरिक तरीकों में क्रांतिकारी बदलाव किया है। विशेष रूप से वीडियो लेक्चर और इंटरैक्टिव क्लासरूम ने भाषा के जटिल पहलुओं को समझने में छात्रों की मदद की है। वीडियो लेक्चर्स द्वारा विद्यार्थी व्याकरण, शब्दावली और साहित्य के विषयों पर गहन अध्ययन कर सकते हैं। ये प्लेटफ़ॉर्म छात्रों को लाइव क्लासेस, समझाने के विभिन्न तरीकों और अतिरिक्त संसाधनों के साथ एक समृद्ध अध्ययन अनुभव प्रदान करते हैं। इसके माध्यम से, न केवल भाषा के व्यावहारिक उपयोग, बल्कि उसकी सांस्कृतिक और साहित्यिक गहराई को भी समझा जा सकता है। वीडियो लेक्चर और इंटरैक्टिव क्लासरूम के ये टूल्स शिक्षकों और छात्रों के बीच संवाद को अधिक प्रभावी बनाते हैं, जिससे हिंदी भाषा का शिक्षण अधिक सजीव और आकर्षक हो जाता है।

2.1 वीडियो लेक्चर और इंटरैक्टिव क्लासरूम

हिंदी भाषा-शिक्षण में वीडियो लेक्चर्स और इंटरैक्टिव

क्लासरूम का उपयोग तेज़ी से बढ़ रहा है। ये टूल्स भाषा के जटिल पहलुओं को समझने में छात्रों की मदद करते हैं और उनकी भाषा-कौशल को विकसित करते हैं।

प्रमुख वीडियो लेक्चर प्लेटफ़ॉर्म :

I. यूट्यूब (YouTube) : यूट्यूब हिंदी भाषा के शिक्षण के लिए एक प्रमुख प्लेटफ़ॉर्म है, जहाँ विभिन्न शिक्षक-गण और संस्थान हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य सीखने के विभिन्न पाठ्यक्रम उपलब्ध कराते हैं। यहाँ पर व्याकरण, शब्दावली और साहित्य से संबंधित वीडियो लेक्चर उपलब्ध हैं।

II. कोर्सेरा (Coursera) : कोर्सेरा पर हिंदी भाषा के लिए विभिन्न वीडियो लेक्चर्स उपलब्ध हैं, जो छात्रों को भाषा के विभिन्न पहलुओं को समझने में मदद करते हैं। यह प्लेटफ़ॉर्म विशेष रूप से व्याकरण, संवाद और लेखन पर ध्यान केंद्रित करता है।

III. एडएक्स (edX) : एडएक्स पर हिंदी भाषा के लिए कई कोर्स उपलब्ध हैं, जो वीडियो लेक्चर्स के माध्यम से छात्रों को सिखाते हैं। यहाँ पर भाषा के व्यावहारिक उपयोग, साहित्य और संस्कृति से संबंधित पाठ्यक्रम मिलते हैं।

2.2 क्विज़ और टेस्टिंग टूल्स

क्विज़ और टेस्टिंग टूल्स छात्रों की भाषा की समझ को परखने और उन्हें सुधारने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। हिंदी भाषा के शिक्षण में ये टूल्स छात्रों के ज्ञान को मज़बूत करते हैं और उन्हें आत्ममूल्यांकन करने का अवसर देते हैं।

प्रमुख क्विज़ और टेस्टिंग टूल्स :

I. क्विज़लेट (Quizlet) : क्विज़लेट एक लोकप्रिय टूल है, जो छात्रों को शब्दावली, व्याकरण और भाषा-कौशल का अभ्यास करने के लिए क्विज़ प्रदान करता है। यह एप्लिकेशन हिंदी भाषा सीखने वालों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है।

II. गूगल फ़ॉर्म्स (Google Forms) : गूगल फ़ॉर्म्स का उपयोग हिंदी भाषा के क्विज़ और टेस्ट्स तैयार करने के लिए किया जाता है। शिक्षक इसका उपयोग छात्रों के ज्ञान को परखने और फ़ीडबैक देने के लिए करते हैं।

III. काहूट (Kahoot!) : काहूट एक इंटरैक्टिव क्विज़ प्लेटफ़ॉर्म है, जो शिक्षकों को लाइव क्विज़ आयोजित करने की सुविधा देता है। यह प्लेटफ़ॉर्म हिंदी भाषा के शिक्षण में छात्रों के बीच प्रतिस्पर्धा और उत्साह बढ़ाने के लिए उपयोग किया जाता है।

2.3 फ़्लैशकार्ड्स और इन्फ़ोग्राफ़िक्स

फ़्लैशकार्ड्स और इन्फ़ोग्राफ़िक्स छात्रों को शब्दावली, व्याकरणिक नियमों और जटिल भाषा संरचनाओं को समझने में मदद करते हैं। ये टूल्स छात्रों के लिए भाषा सीखने की प्रक्रिया को सरल और प्रभावी बनाते हैं।

प्रमुख फ़्लैशकार्ड और इन्फ़ोग्राफ़िक्स टूल्स :

I. एनीमोटो (Animoto) : यह एक फ़्लैशकार्ड और इन्फ़ोग्राफ़िक्स बनाने का टूल है, जो छात्रों को हिंदी भाषा के विभिन्न पहलुओं को समझने में मदद करता है। शिक्षक इसका उपयोग व्याकरणिक नियमों और शब्दावली को प्रस्तुत करने के लिए करते हैं।

II. कैनवा (Canva) : कैनवा एक डिज़ाइन टूल है, जिसका उपयोग इन्फ़ोग्राफ़िक्स और फ़्लैशकार्ड्स बनाने के लिए किया जाता है। शिक्षक इसका उपयोग हिंदी भाषा के शिक्षण में विभिन्न जटिल विषयों को आसानी से समझाने के लिए करते हैं।

III. गूगल स्लाइड्स (Google Slides) : गूगल स्लाइड्स का उपयोग फ़्लैशकार्ड और इन्फ़ोग्राफ़िक्स प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है। इसका उपयोग भाषा के जटिल नियमों को सरलता से समझाने के लिए किया जाता है।

3. हिंदी भाषा-शिक्षण के लिए संसाधन और टूल्स

हिंदी भाषा-शिक्षण के लिए संसाधन और टूल्स की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि ये छात्रों को भाषा सीखने के विभिन्न पहलुओं को समझने और अभ्यास करने के अवसर प्रदान करते हैं। शैक्षिक किताबें और साहित्यिक रचनाएँ, जो व्याकरण, शब्दावली और साहित्यिक शैली को समझाने में मदद करती हैं, इस प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इसके अलावा, डिजिटल लाइब्रेरी और ऑडियो-विज़ुअल साधन जैसे पॉडकास्ट और वीडियो, भाषा सीखने के अनुभव को समृद्ध और प्रभावी बनाते हैं। संसाधनों की यह विविधता छात्रों को पाठ्यक्रम के अलावा एक व्यापक साहित्यिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य भी प्रदान करती है। इन सभी उपकरणों का संयोजन हिंदी भाषा-शिक्षण को अधिक समृद्ध, गतिशील और आकर्षक बनाता है, जो छात्रों के लिए एक आकर्षक

और प्रभावी अध्ययन अनुभव उत्पन्न करता है।

3.1 हिंदी भाषा सिखाने के लिए किताबें और साहित्य

हिंदी भाषा-शिक्षण के लिए शैक्षिक किताबें और साहित्यिक रचनाएँ महत्त्वपूर्ण संसाधन होते हैं। इनका उपयोग छात्रों को भाषा की व्याकरणिक और साहित्यिक संरचना को समझाने के लिए किया जाता है।

प्रमुख हिंदी भाषा की किताबें :

I. हिंदी व्याकरण और रचना : यह पुस्तक हिंदी व्याकरण के विभिन्न पहलुओं को सरल तरीके से समझाती है और छात्रों को रचना-कौशल विकसित करने में मदद करती है।

II. हिंदी शब्दकोश (Hindi Dictionary) : हिंदी भाषा का शब्दकोश छात्रों को शब्दों के सही अर्थ और उपयोग को समझने में मदद करता है।

III. हिंदी साहित्य की प्रमुख रचनाएँ : मुंशी प्रेमचंद, महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद जैसे साहित्यकारों की रचनाएँ छात्रों को साहित्यिक भाषा के प्रयोग और शैली को समझने में मदद करती हैं।

3.2 हिंदी भाषा-शिक्षण के लिए डिजिटल लाइब्रेरी

डिजिटल युग में, शिक्षकों और छात्रों के पास पुस्तकों और अन्य अध्ययन सामग्री तक पहुँच को सरल और सुलभ बनाने के लिए कई डिजिटल लाइब्रेरियाँ उपलब्ध हैं। ये प्लेटफ़ॉर्म हिंदी भाषा के शिक्षण में अत्यधिक उपयोगी हैं, क्योंकि वे पाठ्यक्रम, लेख और साहित्यिक रचनाओं तक तत्काल पहुँच प्रदान करते हैं।

प्रमुख डिजिटल लाइब्रेरियाँ :

I. नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ़ इंडिया (National Digital Library of India - NDLI) : यह भारत सरकार द्वारा संचालित एक प्रमुख डिजिटल लाइब्रेरी है, जहाँ पर विभिन्न शैक्षिक संसाधन, जिनमें हिंदी भाषा की पुस्तकें, लेख और शैक्षिक सामग्री शामिल हैं, उपलब्ध हैं।

II. हिंदी समय.कॉम : महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय द्वारा संचालित यह वेबसाइट हिंदी साहित्य की प्रमुख कृतियों का डिजिटल रूप में संग्रहण करती है। विश्व के किसी भी स्थान से हिंदी लेखक एवं साहित्यकार अपनी स्तरीय रचनाओं को इस वेबसाइट पर प्रकाशन हेतु प्रेषित कर सकते हैं और इसके साथ ही विश्व के किसी भी देश के छात्र और शिक्षक इस वेबसाइट पर उपलब्ध प्रमुख साहित्यकारों की रचनाएँ, कविताएँ और निबंध पढ़ सकते हैं।

III. गुटेनबर्ग प्रोजेक्ट (Project Gutenberg) : गुटेनबर्ग प्रोजेक्ट एक स्वतंत्र डिजिटल लाइब्रेरी है, जहाँ पर सार्वजनिक डोमेन में उपलब्ध पुस्तकों का विशाल संग्रह है। हिंदी भाषा के कई साहित्यिक रचनाएँ यहाँ मुफ़्त में उपलब्ध हैं।

3.3 हिंदी भाषा के शिक्षण में ऑडियो-विज़ुअल साधनों का उपयोग

ऑडियो-विज़ुअल टूल्स हिंदी भाषा के शिक्षण में एक प्रभावी माध्यम हैं, क्योंकि ये छात्रों के लिए भाषा को समझने और सीखने के अनुभव को समृद्ध बनाते हैं।

प्रमुख ऑडियो-विज़ुअल साधन :

I. पॉडकास्ट (Podcasts) : पॉडकास्ट छात्रों को हिंदी भाषा में बातचीत और व्याकरणिक संरचना को बेहतर तरीके से समझने में मदद करते हैं। विभिन्न शैक्षिक पॉडकास्ट हिंदी भाषा के शिक्षण और समझ को मज़बूत करने में सहायक होते हैं।

II. वीडियो और डॉक्यूमेंट्री : हिंदी भाषा के शिक्षण में वीडियो और डॉक्यूमेंट्री का उपयोग भाषा के इतिहास, संस्कृति और साहित्य को समझाने में किया जाता है। उदाहरण के लिए, यूट्यूब पर उपलब्ध हिंदी साहित्य और व्याकरण पर आधारित शैक्षिक वीडियो विद्यार्थियों के लिए अत्यधिक उपयोगी होते हैं।

III. ऑडियोबुक्स : ऑडियोबुक्स छात्रों के लिए सुनने और समझने के कौशल को बढ़ाने के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपकरण हैं। ये छात्रों को हिंदी में साहित्यिक और शैक्षिक सामग्री को सुनने और भाषा को अधिक गहराई से समझने में मदद करती हैं।

3.4 शिक्षक और छात्रों के बीच ऑनलाइन संवाद के लिए टूल्स

हिंदी भाषा के शिक्षण में शिक्षक और छात्र के बीच संवाद अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है। ऑनलाइन शिक्षण के बढ़ते महत्त्व के साथ, विभिन्न प्लेटफ़ॉर्म और टूल्स उपलब्ध हैं, जो शिक्षक और छात्रों के बीच संवाद को और भी प्रभावी बनाते हैं।

प्रमुख संवाद टूल्स :

I. ज़ूम (Zoom) : ज़ूम एक लोकप्रिय वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग टूल है, जिसका उपयोग ऑनलाइन कक्षाओं और वेबिनार के लिए किया जाता है। हिंदी भाषा के शिक्षण में इसका उपयोग शिक्षकों और छात्रों के बीच लाइव क्लासेस और इंटरैक्टिव सेशंस के लिए किया जाता है।

II. गूगल मीट (Google Meet) : गूगल मीट एक और महत्त्वपूर्ण संवाद टूल है, जो शिक्षकों और छात्रों को ऑनलाइन संवाद करने की सुविधा देता है। यह टूल हिंदी भाषा के शिक्षण के लिए लाइव क्लासेस और ग्रुप डिस्कशन के लिए उपयोगी है।

III. माइक्रोसॉफ़्ट टीम्स (Microsoft Teams) : माइक्रोसॉफ़्ट टीम्स एक व्यापक ऑनलाइन शिक्षण और संवाद टूल है, जो शिक्षकों और छात्रों के बीच संवाद को सरल और प्रभावी बनाता है। हिंदी भाषा के शिक्षण में इसका उपयोग समूह परियोजनाओं और कक्षाओं के लिए किया जा सकता है।

3.5 हिंदी भाषा-शिक्षण के लिए आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस

आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस (AI) ने शिक्षा के क्षेत्र में नई संभावनाएँ खोली हैं। हिंदी भाषा के शिक्षण में भी AI आधारित टूल्स और एप्लिकेशन्स का उपयोग बढ़ रहा है। ये टूल्स शिक्षण को अधिक व्यक्तिगत और अनुकूलित (Personalized and Customized) बनाने में मदद करते हैं।

AI आधारित हिंदी-शिक्षण टूल्स :

I. अनुकूलित शिक्षण प्रणाली (Personalized Learning Systems) : AI आधारित अनुकूलित शिक्षण प्लेटफ़ॉर्म छात्रों के सीखने की गति और उनकी ज़रूरतों के आधार पर पाठ्यक्रम को अनुकूलित करते हैं। उदाहरण के लिए, हिंदी व्याकरण के कठिन नियमों को सीखने के लिए AI टूल्स छात्रों के कमज़ोर बिंदुओं की पहचान कर उन्हें विशेष अभ्यास प्रदान करते हैं।

II. चैटबॉट्स (Chatbots) : हिंदी भाषा-शिक्षण में AI आधारित चैटबॉट्स छात्रों को संवादात्मक तरीके से भाषा सिखाने में मदद कर रहे हैं। ये चैटबॉट्स छात्रों के सवालों का उत्तर देने, व्याकरण सुधारने और सही शब्दों के चयन में सहायता प्रदान करते हैं।

IIII. वॉयस रिकग्निशन टूल्स (Voice Recognition Tools) : वॉयस रिकग्निशन टूल्स छात्रों के उच्चारण और बोली सुधारने में मदद करते हैं। ये टूल्स छात्रों के द्वारा बोले गए शब्दों का विश्लेषण करते हैं और उन्हें सही उच्चारण सिखाते हैं।

3.6 हिंदी भाषा-शिक्षण के लिए गेमिफ़िकेशन

गेमिफ़िकेशन (Gamification) शिक्षा के क्षेत्र में एक नया और प्रभावी तरीका है, जो छात्रों के सीखने की प्रक्रिया को और अधिक मज़ेदार और आकर्षक बनाता है। हिंदी भाषा के शिक्षण में भी गेमिफ़िकेशन का उपयोग तेज़ी से बढ़ रहा है, जहाँ छात्रों को खेलों के माध्यम से भाषा सिखाई जाती है।

हिंदी-शिक्षण में गेमिफ़िकेशन के उदाहरण :

I. वर्ड पज़ल्स (Word Puzzles) : हिंदी शब्दों के पज़ल्स, जैसे शब्द खोज (Word Search), वर्ड स्क्रैम्बल (Word Scramble) और क्रॉसवर्ड्स (Crosswords) के माध्यम से छात्रों को शब्दावली और व्याकरण सिखाया जाता है।

II. इंटरैक्टिव क्विज़ (Interactive Quizzes) : इंटरैक्टिव क्विज़ छात्रों को भाषा के विभिन्न पहलुओं को समझने और उनकी प्रगति का आकलन करने के लिए उपयोग किए जाते हैं। ये क्विज़ छात्रों के लिए एक मज़ेदार और प्रभावी तरीके से सीखने का माध्यम होते हैं।

III. बोर्ड गेम्स (Board Games) : हिंदी भाषा के शिक्षण के लिए डिज़ाइन किए गए बोर्ड गेम्स छात्रों को भाषा की बुनियादी संरचना और व्याकरणिक नियमों को समझने में मदद करते हैं। इन खेलों के माध्यम से भाषा के कठिन नियमों को सरलता से सिखाया जा सकता है।

4. भविष्य में हिंदी भाषा-शिक्षण के साधनों की संभावनाएँ

भविष्य में हिंदी भाषा-शिक्षण के साधनों में नई तकनीकों का प्रभाव और विस्तार देखने को मिलेगा। वर्चुअल रियलिटी (VR) और ऑगमेंटेड रियलिटी (AR) जैसी उन्नत तकनीकें छात्रों को हिंदी भाषा के वास्तविक जीवन के संदर्भों में संवाद और अभ्यास करने का अवसर प्रदान करेंगी। इन तकनीकों से विद्यार्थियों को न केवल भाषा, बल्कि भारतीय संस्कृति और परंपराओं से भी परिचित कराया जा सकेगा, जिससे भाषा का अध्ययन और भी गहन तथा व्यावहारिक हो जाएगा। इसके अतिरिक्त, आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस (AI) और मशीन लर्निंग (ML) के माध्यम से हिंदी भाषा-शिक्षण

को और अधिक व्यक्तिगत, सटीक और प्रभावशाली बनाने की संभावनाएँ हैं। ये तकनीकें छात्रों की प्रगति का विश्लेषण करके अनुकूलित पाठ्यक्रम प्रदान करेंगी, जिससे भाषा सीखने का अनुभव अधिक संवादात्मक और रोचक होगा। इसके साथ ही, ब्लॉकचेन तकनीक के माध्यम से हिंदी भाषा-शिक्षण में प्रामाणिकता और पारदर्शिता बढ़ाई जा सकती है, जिससे डिजिटल प्रमाण-पत्रों और पाठ्यक्रमों की विश्वसनीयता सुनिश्चित की जा सकेगी। इन सभी उभरती तकनीकों का समग्र उपयोग हिंदी-शिक्षण को भविष्य में अधिक प्रभावी, पारदर्शी और छात्रों के लिए अनुकूल बना सकता है।

4.1 वर्चुअल और ऑगमेंटेड रियलिटी का उपयोग

भविष्य में हिंदी भाषा के शिक्षण में वर्चुअल रियलिटी (VR) और ऑगमेंटेड रियलिटी (AR) का उपयोग बढ़ने की संभावना है। ये तकनीकें छात्रों को भाषा के वास्तविक जीवन के संदर्भों में संवाद करने और सीखने का अनुभव प्रदान करेंगी।

वर्चुअल रियलिटी के लाभ :

I. प्राकृतिक संवाद (Natural Conversations) : वर्चुअल रियलिटी में छात्रों को ऐसी स्थिति में रखा जाता है, जहाँ वे हिंदी में संवाद करने का अभ्यास कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक वर्चुअल बाज़ार में खरीदारी करते समय छात्रों को हिंदी में संवाद करना सिखाया जा सकता है।

II. सांस्कृतिक समझ (Cultural Understanding) : ऑगमेंटेड रियलिटी के माध्यम से छात्रों को हिंदी भाषा के साथ-साथ भारतीय संस्कृति और परंपराओं को भी समझने का अवसर मिलेगा। यह तकनीक भाषा-शिक्षण को और अधिक प्रभावी बना सकती है।

4.2 हिंदी भाषा-शिक्षण में आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस और मशीन लर्निंग का विस्तार

21वीं सदी की सबसे प्रभावशाली तकनीकी उपलब्धियों में आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस (AI) और मशीन लर्निंग (ML) का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में इन तकनीकों का प्रयोग तेज़ी से बढ़ रहा है और हिंदी भाषा-शिक्षण में भी इनका उपयोग आने वाले समय में अत्यंत व्यापक और प्रभावशाली हो सकता है। पारंपरिक शिक्षा मॉडल जहाँ एक समान पाठ्यवस्तु और तरीकों पर आधारित होते थे, वहीं AI आधारित शिक्षण-प्रणाली विद्यार्थियों की रुचि, गति, समझ और आवश्यकता के अनुसार सामग्री प्रदान कर सकती है। इससे हिंदी भाषा का शिक्षण अधिक *व्यक्तिकृत* (personalized), सटीक और प्रभावशाली बन सकता है।

AI-आधारित टूल्स जैसे *Natural Language Processing* (NLP), *Voice Recognition Systems* और *Speech-to-Text Converters* हिंदी भाषा को सीखने की प्रक्रिया को अधिक इंटरैक्टिव और सहूलियतपूर्ण बना रहे हैं। उदाहरण के लिए, बोलचाल की भाषा में सुधार हेतु वॉयस रिकग्निशन तकनीक का प्रयोग करके छात्र उच्चारण और प्रवाह का अभ्यास कर सकते हैं। वहीं, ML एल्गोरिद्म छात्रों की प्रगति का विश्लेषण करके उनकी कठिनाइयों की पहचान करता है और अनुकूल सुझाव प्रस्तुत करता है।

इसके अतिरिक्त, चैटबॉट्स, ऑटोमेटेड फ़ीडबैक सिस्टम और *gamification* तकनीकों के माध्यम से हिंदी-शिक्षण को अधिक संवादात्मक और रोचक बनाया जा सकता है। इससे शिक्षकों का कार्यभार भी घटता है और छात्रों को अधिक स्वतंत्र रूप से सीखने का अवसर प्राप्त होता है। AI आधारित भाषा-शिक्षण प्रणाली विशेष रूप से उन क्षेत्रों में लाभप्रद हो सकती है जहाँ प्रशिक्षित हिंदी शिक्षक उपलब्ध नहीं हैं। भविष्य में, हिंदी भाषा का शिक्षण न केवल कक्षा तक सीमित रहेगा, बल्कि AI-संचालित वैश्विक मंचों के माध्यम से देश-विदेश के लाखों विद्यार्थियों तक पहुँचने में समर्थ होगा।

4.3 ब्लॉकचेन और शिक्षा

ब्लॉकचेन (Blockchain) तकनीक को प्रायः वित्तीय और डिजिटल लेन-देन के क्षेत्र में क्रांतिकारी माना जाता है, किंतु इसके अनुप्रयोग शिक्षा क्षेत्र में भी समान रूप से उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। शिक्षा में इसकी सबसे प्रमुख भूमिका डेटा की सुरक्षा, प्रामाणिकता और पारदर्शिता के संदर्भ में देखी जा रही है। ब्लॉकचेन की सहायता से छात्र की शैक्षणिक प्रगति, उपस्थिति, प्राप्तांक, प्रमाण-पत्र और डिग्रियाँ एक सुरक्षित डिजिटल संरचना में दर्ज की जा सकती हैं, जिसे कोई भी बिना अनुमति के बदल नहीं सकता। यह विशेषता शिक्षा को धोखाधड़ी और जालसाज़ी से बचाने में अत्यंत प्रभावी है।

हिंदी भाषा-शिक्षण के संदर्भ में ब्लॉकचेन तकनीक का उपयोग विशेष रूप से ऑनलाइन पाठ्यक्रमों और डिजिटल प्रमाण-पत्रों के लिए किया जा सकता है। वर्तमान में अनेक छात्र ऑनलाइन माध्यमों से हिंदी सीख रहे हैं, परंतु उनके द्वारा प्राप्त प्रमाण-पत्रों की विश्वसनीयता और वैधता पर संदेह बना रहता है। यदि ये प्रमाण-पत्र ब्लॉकचेन आधारित हों, तो उनकी सत्यता, प्रामाणिकता और अविनाशी प्रकृति सुनिश्चित की जा सकती है। इससे छात्रों को

करियर के अवसरों में सहायता मिलेगी और संस्थानों की साख भी बढ़ेगी। इसके अलावा, शिक्षण संस्थाएँ विद्यार्थी की लाइफ़टाइम लर्निंग रिकॉर्ड को ब्लॉकचेन पर संग्रहित कर सकती हैं, जिससे भविष्य में किसी भी संस्था या नियोजक द्वारा उनके शिक्षा इतिहास की पारदर्शी जाँच संभव होगी। हिंदी भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में यह तकनीक विशेष रूप से उपयोगी होगी जहाँ प्रमाणन का एक मानकीकृत ढाँचा अभी अपेक्षित है। भविष्य में ब्लॉकचेन तकनीक हिंदी-शिक्षण को अधिक *संगठित, जवाबदेह* और *विश्वसनीय* बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

निष्कर्षतः हिंदी भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में तकनीकी साधनों का प्रयोग गत एक दशक में अभूतपूर्व रूप से बढ़ा है। पारंपरिक शिक्षण विधियों की सीमाओं को पीछे छोड़ते हुए, अब डिजिटल तकनीकें शिक्षण को अधिक सुलभ, लचीला और बौद्धिक रूप से संवादात्मक बना रही हैं। ऑनलाइन शिक्षण-मंचों, ई-लर्निंग पोर्टलों, मोबाइल एप्स, वर्चुअल कक्षाओं और भाषा-विशेष सॉफ़्टवेयरों के माध्यम से हिंदी भाषा अब केवल कक्षा तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह हर आयु-वर्ग, हर स्थान और हर तकनीकी उपकरण तक पहुँच चुकी है।

Google Classroom, Zoom, Moodle, Coursera और Duolingo जैसे प्लेटफ़ॉर्म्स पर हिंदी-शिक्षण हेतु विशेष पाठ्यक्रम, टेस्ट, इंटरैक्टिव गतिविधियाँ और ऑडियो-विज़ुअल सामग्री उपलब्ध हैं। ये माध्यम न केवल शिक्षकों के लिए पाठन को सरल बनाते हैं, बल्कि छात्रों को *स्वर-paced learning* का अवसर भी देते हैं, जहाँ वे अपनी सुविधा और गति से अध्ययन कर सकते हैं। भविष्य की ओर देखते हुए, वर्चुअल रियलिटी (VR), ऑगमेंटेड रियलिटी (AR), आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस (AI) और मशीन लर्निंग (ML) जैसी तकनीकों के एकीकरण से हिंदी भाषा-शिक्षण और भी व्यक्तिकृत तथा प्रभावशील हो जाएगा। AI आधारित चैटबॉट्स, उच्चारण-सुधार टूल्स और अनुकूलित अभ्यास मॉड्यूल्स छात्रों को गहन और वास्तविक शिक्षण अनुभव प्रदान कर सकते हैं। साथ ही, ब्लॉकचेन तकनीक प्रमाण-पत्रों की सुरक्षा और वैधता को सुनिश्चित करेगी। तकनीकी विकास के साथ, हिंदी भाषा का शिक्षण न केवल भारत में, बल्कि प्रवासी भारतीयों और वैश्विक हिंदी प्रेमियों के लिए भी अधिक सुलभ, सुसंगत और प्रभावी हो सकेगा। यह हिंदी को वैश्विक शिक्षा-संवाद में एक समृद्ध और सशक्त उपस्थिति प्रदान करेगा।

संदर्भ-सूची :

1. इग्नू (IGNOU) के हिंदी पाठ्यक्रम, https://www.ignou.ac.in/ignou/aboutignou/school/soh/programmes/detail/204/2
2. डूओलिंगो हिंदी भाषा-शिक्षण एप्लिकेशन, https://www.duolingo.com/course/hi/en/Learn-Hindi
3. कोर्सेरा (Coursera) पर हिंदी भाषा पाठ्यक्रम, https://www.coursera.org/courses?query=hindi
4. उडेमी (Udemy) पर हिंदी भाषा-शिक्षण सामग्री, https://www.udemy.com/topic/hindi-language/
5. अनअकेडमी (Unacademy) पर हिंदी अध्ययन, https://unacademy.com
6. बायजूस (Byju's) हिंदी भाषा-शिक्षण पोर्टल, https://byjus.com/hindi/
7. वेदांतु (Vedantu) पर हिंदी भाषा के लाइव पाठ्यक्रम, https://www.vedantu.com/courses/hindi
8. एम्बाइब (Embibe) – एआई आधारित हिंदी अभ्यास मंच, https://www.embibe.com
9. यूट्यूब (YouTube) पर हिंदी व्याकरण एवं साहित्य वीडियो, https://www.youtube.com/results?search_query=hindi+grammar+lectures https://www.youtube.com/results?search_query=hindi+literature+classes
10. एडएक्स (edX) पर हिंदी भाषा के पाठ्यक्रम, https://www.edx.org/learn/hindi
11. क्विज़लेट (Quizlet) पर हिंदी शब्दावली अभ्यास, https://quizlet.com/subject/hindi/
12. गूगल फॉर्म्स (Google Forms) द्वारा हिंदी क्विज़ निर्माण, https://www.google.com/forms/about/
13. काहूट (Kahoot!) हिंदी-शिक्षण के लिए इंटरएक्टिव क्विज़ टूल, https://kahoot.com/schools-u/hindi/
14. एनीमोटो (Animoto) द्वारा फ्लैशकार्ड और दृश्य प्रस्तुति निर्माण, https://animoto.com
15. कैनवा (Canva) – हिंदी-शिक्षण हेतु इन्फोग्राफिक्स उपकरण, https://www.canva.com/education/
16. गूगल स्लाइड्स (Google Slides) – दृश्य शिक्षण प्रस्तुति के लिए, https://www.google.com/slides/about/

17. राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय (National Digital Library of India – NDLI), https://ndl.iitkgp.ac.in
18. हिंदी समय डॉट कॉम (Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya), https://www.hindisamay.com
19. गुटेनबर्ग प्रोजेक्ट (Project Gutenberg) – हिंदी सार्वजनिक पुस्तकों का भंडार, https://www.gutenberg.org/ebooks/search/?query=hindi
0. गूगल मीट (Google Meet) – ऑनलाइन संवाद मंच, https://meet.google.com
21. ज़ूम (Zoom) – ऑनलाइन कक्षा और वेबिनार के लिए मंच, https://zoom.us
22. माइक्रोसॉफ़्ट टीम्स (Microsoft Teams) – शिक्षण संवाद प्लेटफ़ॉर्म, https://www.microsoft.com/en-in/microsoft-teams/education
23. एआई (AI) आधारित हिंदी भाषा चैटबॉट्स व संवाद टूल्स, https://www.lektor.ai, https://writesonic.com/chat
24. वॉयस रिकग्निशन सिस्टम्स – उच्चारण सुधार हेतु टूल्स, https://cloud.google.com/speech-to-text, https://www.microsoft.com/en-us/ai/speech-recognition
25. गेमिफिकेशन आधारित हिंदी भाषा-शिक्षण टूल्स, https://wordwall.net, https://www.educandy.com, https://www.educaplay.com
26. ऑडियो टूल्स – हिंदी पॉडकास्ट एवं ऑडियोबुक्स, https://www.audible.in/cat/Language-Instruction-Hindi-Audiobooks/2164129031, https://podcasts.apple.com/in/genre/podcasts-education-language-courses/id1304
27. ब्लॉकचेन तकनीक और शिक्षा में उसका प्रयोग, https://www.ibm.com/topics/blockchain-for-education, https://www.edubirdie.com/blog/blockchain-education

malamishra1503@gmail.com

विश्व के शीर्ष 50 विश्वविद्यालयों में हिंदी-शिक्षण की स्थिति

- डॉ. शहाबुद्दीन
- डॉ. पवन अग्रवाल
दादरा नगर हवेली, भारत

आज के वैश्विक परिदृश्य में हिंदी का महत्त्व निरंतर बढ़ रहा है। हिंदी विश्वभाषा के रूप में प्रगति कर रही है। हिंदी की वैज्ञानिकता के कारण वह सांस्कृतिक अस्मिता, बौद्धिक संपदा, कूटनीति और शिक्षा का केंद्रीय तत्व बन चुकी है। अनेक देशों में हिंदी न केवल प्रवासी समुदायों द्वारा बोली जाती है, बल्कि वह शैक्षणिक संस्थानों में अध्ययन-अध्यापन का विषय बन चुकी है। ऐसे परिदृश्य में यह देखना महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि विश्व के उच्चतम संस्थानों में हिंदी की वास्तविक स्थिति क्या है? क्या वहाँ हिंदी वैकल्पिक भाषा के रूप में अध्ययन-अध्यापन में शामिल है या वह मुख्य भाषा के रूप में उल्लेखित संस्थानों में पढ़ाई जाती है? यह भी समझना आवश्यक है कि वह किन पाठ्यक्रमों (डिग्री/डिप्लोमा/वैकल्पिक पाठ्यक्रम आदि) का हिस्सा है और उन पाठ्यक्रमों की अवधि क्या है? उसका स्वरूप क्या है और उसे किस विभाग में पढ़ाया जाता है? यह अध्ययन उपर्युक्त प्रश्नों का हल जानने की जिज्ञासा का परिणाम है ताकि हमें हिंदी की वास्तविक स्थिति का बोध हो।

प्रस्तुत शोधालेख का आधार "टाइम्स हायर एजुकेशन रैंकिंग, 2025 का सर्वेक्षण है। इस अध्ययन में टाइम्स की नवीनतम रिपोर्ट में शामिल विश्व के शीर्ष 50 विश्वविद्यालयों के बारे में दर्शाए गए आँकड़ों का विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन हेतु संबंधित विश्वविद्यालयों की वेबसाइट, शैक्षणिक विभागों के पाठ्यक्रम विवरण, डिजिटल शिक्षण संसाधनों और अन्य उपलब्ध साहित्य का गहन अवलोकन किया गया है। यह विश्लेषण न केवल हिंदी के वर्तमान वैश्विक परिदृश्य को दर्शाता है, बल्कि उसकी संभावनाओं और आवश्यक पहलुओं पर भी प्रकाश डालता है। प्रस्तुत अध्ययन का वैकल्पिक उद्देश्य हिंदी भाषा को वैश्विक शिक्षा के केंद्र में लाने के लिए सुझाव प्रस्तुत करना भी है।

1. शोधालेख से संबंधित उपलब्ध साहित्य की समीक्षा

विश्व के शीर्ष शैक्षणिक संस्थानों में हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन के संबंध में सीमित मात्रा में ही व्यवस्थित और तुलनात्मक अध्ययन हुए हैं। उपलब्ध साहित्य मुख्यतः समाचार रिपोर्टों, सांस्कृतिक दस्तावेज़ों और नीति-पत्रों तक सीमित है, जबकि विशुद्ध अकादमिक शोधों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। इस संदर्भ में डॉ. कृष्ण कुमार गोस्वामी ने अपने लेख 'विदेशों में हिंदी-शिक्षण' में मॉरीशस, अमेरिका, रूस, जर्मनी जैसे देशों में हिंदी-शिक्षण की स्थिति का विश्लेषण किया है। उन्होंने प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी, पाठ्यक्रम की असंगति और संसाधनों की बाधाओं को प्रमुख चुनौती माना है। उन्होंने तकनीकी माध्यमों व अंतरराष्ट्रीय सहयोग की संभावनाओं पर बल दिया है।

2012 में प्रकाशित विजया सती का लेख 'वैश्विक हिंदी : एक परिदृश्य' भी विदेशों में हिंदी-शिक्षण की वर्तमान स्थिति और संभावनाओं पर प्रकाश डालता है। यह लेख विश्व के विश्वविद्यालयों में हिंदी के बढ़ते प्रचलन, भारत सरकार की पहलों और विदेशी संस्थानों की भूमिका को रेखांकित करता है। इसमें शिक्षण सामग्री की एकरूपता और अकादमिक आदान-प्रदान की कमी जैसी चुनौतियाँ बताई गई हैं। उन्होंने लेख में वैश्विक स्तर पर हिंदी को सुदृढ़ करने हेतु सहयोग और प्रासंगिक शिक्षण-पद्धतियों के विकास का सुझाव दिया है। उन्होंने हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने की प्रबल इच्छा भी व्यक्त की है।

डॉ. हरिराज सिंह ने 2013 में 'हिंदी का बढ़ता अंतरराष्ट्रीय वर्चस्व और उससे संबंधित समस्याएँ' शीर्षक लेख लिखा। उनके अनुसार विश्व में एक अरब ग्यारह करोड़ हिंदी भाषी लोग हैं और 170 से अधिक विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों में हिंदी पढ़ाई जाती है और उसमें शोधकार्य हो रहा है। उनके अनुसार हिंदी में अनुवाद (मेडिकल, विज्ञान, तकनीकी विषयों में) करना एक जटिल विषय है।

इसी विषय से संबंधित डॉ. इमरै बंघा के लेख 'मध्य और पूर्वी यूरोप में हिंदी-शिक्षण और शोध' बताता है कि वहाँ हिंदी और प्राच्य अध्ययन की समृद्ध परंपरा है। वहाँ के कई छोटे देश, जो पहले सोवियत संघ या साम्यवादी गुट का हिस्सा थे, अब हिंदी-शिक्षण और शोध में रुचि दिखा रहे हैं। यहाँ के देशों की अधिकांश राजधानियों में 'हिंदी अध्ययन केंद्र' स्थापित किए जा चुके हैं।

डॉ. राम प्रकाश यादव के लेख 'विश्व पटल पर हिंदी : अध्ययन और अध्यापन' के अनुसार हिंदी की वैश्विक स्तर पर 8.2%

भागीदारी है। लेख अमेरिका, फ़िजी और संयुक्त अरब अमीरात जैसे देशों में हिंदी के बढ़ते प्रयोग और महत्त्व को दर्शाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् (ICCR) द्वारा 65 देशों में स्थापित हिंदी पीठों के माध्यम से हिंदी के शिक्षण और भारत के प्रति सांस्कृतिक जुड़ाव को बढ़ाया जा रहा है। यह लेख हिंदी-शिक्षण में एकरूपता लाने और मानक पाठ्यक्रम विकसित करने की आवश्यकता पर ज़ोर देता है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् (ICCR) द्वारा प्रकाशित रिपोर्टों में विश्व के विभिन्न देशों में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार संबंधी प्रयासों का उल्लेख किया गया है। वार्षिक प्रतिवेदन-2023-24 के अनुसार यह संस्था विश्व के अनेक देशों में स्थापित हिंदी पीठों हेतु हिंदी शिक्षकों को भेजती है। यह संस्था हिंदी संबंधी गतिविधियाँ और 'हिंदी विश्व' जैसे कार्यक्रम भी आयोजित करती है। साथ ही, अनेक देशों के शैक्षणिक संस्थानों में यह संस्था हिंदी-शिक्षण कार्यक्रम संचालित करती है। यह रिपोर्ट हिंदी को स्थापित करने की दिशा में सरकार के प्रयासों का भी रेखांकन है।

'आज तक' न्यूज़ चैनल की वेबसाइट द्वारा सितंबर, 2023 में प्रकाशित एक रिपोर्ट (देश में हिंगलिश हो गई हिंदी, लेकिन विदेश की इन यूनिवर्सिटीज़ ने दे दी ग्लोबल पहचान) में दुनिया के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों जैसे ऑक्सफ़ोर्ड, कैम्ब्रिज, हार्वर्ड, पेइचिंग, टोक्यो आदि में हिंदी भाषा-शिक्षण की उपस्थिति को दर्शाया गया है। इसी प्रकार न्यूज़24 चैनल की रिपोर्ट (2023) में यह बताया गया कि "दुनियाभर के 95 देशों के स्कूल-कॉलिज और यूनिवर्सिटी में पढ़ाई जा रही हिंदी, ऑक्स्फ़ोर्ड-कैम्ब्रिज में भी पॉपुलर" है।

हालाँकि इन रिपोर्टों में हिंदी भाषा की उपस्थिति को सूचीबद्ध किया गया है, परंतु किसी भी स्रोत में 'टाइम्स हायर एजुकेशन रैंकिंग' के आधार पर शीर्ष 50 विश्वविद्यालयों की तुलनात्मक व संरचनात्मक समीक्षा उपलब्ध नहीं है। उपर्युक्त शोध और समाचार रिपोर्टों की कुछ सीमाएँ हैं, जो बताती हैं कि अब गहन, तथ्यात्मक और संस्थागत डेटा विश्लेषण की आवश्यकता है, जिससे हिंदी की शैक्षणिक स्थिति और सशक्त भूमिका को प्रस्तुत किया जा सके।

2. अध्ययन की पद्धति और डेटा स्रोत

यह अध्ययन वर्ष 2025 की स्थिति को प्रतिबिंबित करता है। अध्ययन को वैज्ञानिक रूप से निष्पक्ष और प्रामाणिक बनाने के लिए डेटा-संग्रह, वर्गीकरण और विश्लेषण की प्रक्रिया को व्यवस्थित रूप से अपनाया गया।

2.1. विश्वविद्यालयों का चयन

'टाइम्स हायर एजुकेशन रैंकिंग, 2025' में सूचीबद्ध विश्वविद्यालयों में से उच्चतम 50 विश्वविद्यालयों को वैश्विक रैंकिंग के क्रमानुसार अध्ययन में सम्मिलित किया गया है। यह रैंकिंग उच्च शिक्षा में शोध, शिक्षण गुणवत्ता, अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण के प्रदर्शन आदि पर आधारित है।

2.2. डेटा-संग्रहण की प्रक्रिया

डेटा-संग्रहण हेतु प्रत्येक विश्वविद्यालय की आधिकारिक वेबसाइट पर अंकित भाषा विभाग, दक्षिण एशियाई अध्ययन विभाग और पाठ्यक्रम कैटलॉग आदि का विस्तृत अध्ययन किया गया है। शैक्षणिक सूचीपत्र, पाठ्यक्रम विवरण, विभागीय वेब पेज और सर्च इंजिन आदि के माध्यम से हिंदी भाषा से संबंधित पाठ्यक्रमों की जानकारी प्राप्त की गई।

2.3. विश्लेषण के मानदंड

उल्लेखित प्रत्येक विश्वविद्यालय के संदर्भ में प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित मापदंडों पर विश्लेषण किया गया है :

मापदंड विवरण

हिंदी की उपलब्धता	हिंदी भाषा को किस रूप में पढ़ाया जाता है?
पाठ्यक्रम का प्रकार	पूर्ण डिग्री, प्रमाण-पत्र, वैकल्पिक भाषा या अध्ययन विषय के रूप में?
विभागीय संरचना	हिंदी किस विभाग के अधीन आती है : दक्षिण एशियाई अध्ययन, आधुनिक भाषाएँ, भाषा विज्ञान आदि?
पाठ्यक्रम की अवधि	एक सेमेस्टर, एक वर्ष या पूर्णकालिक डिग्री?
ऑनलाइन संसाधन	विश्वविद्यालय हिंदी-शिक्षण हेतु डिजिटल या ऑनलाइन संसाधन प्रदान करता है?

2.4. डेटा का संकलन और प्रस्तुति

अध्ययन के विषय में एकत्रित सभी आँकड़ों को एक्सल शीट (Excel sheet) में संग्रहीत किया गया। इसमें विश्वविद्यालय का नाम, देश, हिंदी पाठ्यक्रम की उपलब्धता, विभाग का नाम, पाठ्यक्रम की अवधि, पेज लिंक और संदर्भ-सामग्री शामिल थीं।

2.5. सीमा एवं सावधानियाँ

कुछ विश्वविद्यालयों की वेबसाइट की भाषा एवं संरचना में विविधता के कारण प्रत्यक्ष जानकारी नहीं मिल पाई। कई विश्वविद्यालयों में हिंदी-पाठ्यक्रम सीमित समयावधि और आवश्यकता के आधार पर उपलब्ध होते हैं। इससे स्थायी मूल्यांकन का कार्य चुनौतीपूर्ण हो सकता है।

3. अध्ययन में शामिल विश्वविद्यालयों में हिंदी-शिक्षण की स्थिति

'टाइम्स हायर एजुकेशन रैंकिंग, 2025' में सूचीबद्ध विश्व के शीर्ष 50 विश्वविद्यालयों का गहन अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा-शिक्षण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिंदी-शिक्षण की उपलब्धता और स्वीकार्यता हिंदी भाषा की लोकप्रियता, बढ़ती अंतरराष्ट्रीय भूमिका और महत्त्व को दर्शाती है। प्रस्तुत शोधालेख में इसके विविध पहलुओं का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

3.1. हिंदी शिक्षा की उपस्थिति का स्तर

विश्व के शीर्ष 50 विश्वविद्यालयों में से 33 विश्वविद्यालयों (66%) में हिंदी भाषा-शिक्षण की सुविधा उपलब्ध है। इनमें हिंदी एक वैकल्पिक भाषा के रूप में पढ़ाई जा रही है। कुछ विश्वविद्यालयों में हिंदी-शिक्षण की सुविधा मुख्य या सहवर्ती विषय के रूप में भी उपलब्ध है। शेष 17 विश्वविद्यालयों (34%) में हिंदी-शिक्षण की सुविधा उपलब्ध नहीं पाई गई, जो संकेत करता है कि हिंदी-शिक्षण हेतु अभी ओर प्रयास एवं उद्यम करने की आवश्यकता है। 'टाइम्स हायर एजुकेशन रैंकिंग, 2025' में सूचीबद्ध विश्व के शीर्ष 50 विश्वविद्यालयों में से 33 ऐसे विश्वविद्यालयों की सूची (जहाँ हिंदी अध्ययन की सुविधा उपलब्ध है) निम्नलिखित है-

क्रमांक	विश्वविद्यालय का नाम	देश	संबंधित विभाग	अवधि
1	ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय	यूके	मॉडर्न साउथ एशियन स्टडीज़	1 वर्ष
2	हार्वर्ड विश्वविद्यालय	यूएसए	भाषा कार्यक्रम	3 वर्ष
3	प्रिन्सटन विश्वविद्यालय	यूएसए	भाषा कार्यक्रम	2 वर्ष
4	कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय	यूके	भाषा कार्यक्रम	2 वर्ष
5	स्टेनफ़ोर्ड विश्वविद्यालय	यूएसए	विशेष भाषा कार्यक्रम	3 वर्ष
6	केलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले	यूएसए	भाषा कार्यक्रम	2 वर्ष
7	इम्पीरियल कॉलेज, लंदन	यूके	भाषा कार्यक्रम	6 माह
8	येल विश्वविद्यालय	यूएसए	भाषा कार्यक्रम	2 वर्ष
9	पेकिंग विश्वविद्यालय	चीन	स्कूल ऑफ़ फ़ॉरेन लैंग्वेज	4 माह
10	शिकागो विश्वविद्यालय	यूएसए	भाषा कार्यक्रम	4 वर्ष
11	पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय	यूएसए	साउथ एशियन स्टडीज़	2 वर्ष
12	जॉन होपकिंस विश्वविद्यालय	यूएसए	सेंटर फ़ॉर लैंग्वेज़ एजुकेशन	2 वर्ष
13	नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ़ सिंगापोर	सिंगापूर	सेंटर फ़ॉर लैंग्वेज़ स्टडीज़	8 माह
14	कोलंबिया विश्वविद्यालय	यूएसए	भाषा कार्यक्रम	1 वर्ष
15	केलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय	यूएसए	एशियन लैंग्वेज एंड कल्चर	1 वर्ष
16	कोर्नेल विश्वविद्यालय	यूएसए	डिपार्टमेंट ऑफ़ एशियन स्टडीज़	1 वर्ष
17	टोरंटो विश्वविद्यालय	कनाडा	भाषा कार्यक्रम	2 वर्ष
18	मिशिगन विश्वविद्यालय, ऍन-आर्बर	यूएसए	एशियन लैंग्वेज एंड कल्चर	2 वर्ष

19	वाशिंगटन विश्वविद्यालय	यूएसए	एशियन लैंग्वेज एंड लिटरेचर	2 वर्ष
20	ड्यूक विश्वविद्यालय	यूएसए	लैंग्वेज़ स्टडीज़	1 वर्ष
21	टोक्यो विश्वविद्यालय	जापान	कॉलिज ऑफ़ आर्ट्स एंड साइंस	1 वर्ष
22	एडिनबर्ग विश्वविद्यालय	यूके	लैंग्वेज स्टडीज़	1 वर्ष
23	नान्यांग टेक्नोलॉजीकल यूनिवर्सिटी	सिंगापूर	सेंटर फ़ॉर मॉडर्न लैंग्वेजज़	1 वर्ष
24	नोर्थवेस्टर्न विश्वविद्यालय	यूएसए	साउथ एशियन लैंग्वेजेज एंड कल्चर	1 वर्ष
25	न्यू यॉर्क विश्वविद्यालय	यूएसए	भाषा कार्यक्रम	1 वर्ष
26	केलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय, सेन डिएगो	यूएसए	भाषा कार्यक्रम	1 वर्ष
27	हांगकांग विश्वविद्यालय	चीन	भाषा कार्यक्रम	1 वर्ष
28	किंग्स कॉलिज, लंदन	यूके	लैंग्वेज सेंटर	3 माह
29	एमयु म्युनिक	जर्मनी	लैंग्वेज सेंटर	1 वर्ष
30	जॉर्जिया इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी	यूएसए	अंडर-ग्रेजुएट	1 वर्ष
31	ब्रिटिश कोलम्बिया विश्वविद्यालय	कनाडा	डिपार्टमेंट ऑफ़ एशियन स्टडीज़	1 वर्ष
32	मैकगिल विश्वविद्यालय	कनाडा	इंस्टिट्यूट ऑफ़ इस्लामिक स्टडीज़	1 वर्ष
33	हेइडेलबर्ग विश्वविद्यालय	जर्मनी	मॉडर्न साउथ एशियन लैंग्वेजेज़ एंड लिटरेचर	1 वर्ष

3.2. हिंदी पाठ्यक्रम के स्वरूप

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि शीर्ष 50 विश्वविद्यालयों में हिंदी पाठ्यक्रम के स्वरूप में एकरूपता का अभाव है। कुछ विश्वविद्यालयों में हिंदी पाठ्यक्रम वैकल्पिक भाषा के रूप में है, तो अन्य विश्वविद्यालयों में सर्टिफ़िकेट पाठ्यक्रम के रूप में। कहीं माइनर डिग्री पाठ्यक्रम है, तो कहीं स्नातक/स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम। कुछ विश्वविद्यालयों में ग्रीष्मकालीन पाठ्यक्रम के रूप में भी अध्ययन की सुविधा उपलब्ध है। निम्न तालिका में उपर्युक्त स्थिति को दर्शाया गया है-

पाठ्यक्रम का स्वरूप	संस्थानों की संख्या	उदाहरण (विश्वविद्यालय)
वैकल्पिक भाषा	18+	हावर्ड, येल विश्वविद्यालय, शिकागो विश्वविद्यालय
प्रमाण-पत्र/माइनर	10+	SOAS लंदन, टेक्सस विश्वविद्यालय
दक्षिण एशियाई अध्ययन के अंतर्गत	12+	स्टेनफ़ोर्ड विश्वविद्यालय, मिशिगन विश्वविद्यालय
ग्रीष्मकालीन पाठ्यक्रम	6+	कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले, विस्कोंसिन-मेडिसन विश्वविद्यालय

तालिका दर्शाती है कि विश्वविद्यालय अपनी शैक्षणिक संरचना के अनुरूप हिंदी पाठ्यक्रम को कैसे विविध स्वरूपों में समाहित करते हैं। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कह सकते हैं कि संयुक्त राज्य अमेरिका में हिंदी को व्यापक रूप में पढ़ाया जाता है। जबकि ब्रिटेन हिंदी शिक्षा में अग्रणी है। कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, जापान जैसे देशों के चुनिंदा विश्वविद्यालयों में ही हिंदी पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं। इससे स्पष्ट है कि हिंदी की उपस्थिति केवल भारतवंशियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि वह वैश्विक अकादमिक समुदाय को भी आकर्षित कर रही है।

3.3. विभागीय संरचना और अकादमिक दृष्टिकोण

अधिकांश विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा को दक्षिण एशियाई अध्ययन, एशियाई भाषाएँ, आधुनिक भाषाएँ और भाषा-विज्ञान विभाग के अंतर्गत पढ़ाया जाता है। हिंदी भाषा-शिक्षण हेतु कुछ विश्वविद्यालयों में विशेष हिंदी शिक्षकों की नियुक्ति भी की गई है।

उल्लेखित विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में भाषा-शिक्षण के साथ-साथ हिंदी साहित्य, भारतीय संस्कृति, सामाजिक विमर्श, सिनेमा और राजनीति से संबंधित विषयों को भी शामिल किया गया है। इससे स्पष्ट है कि हिंदी केवल भाषा के रूप में ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अध्ययन के रूप में भी पढ़ाई जा रही है।

3.4. डिजिटल और ऑनलाइन संसाधन

अनेक विश्वविद्यालयों ने हिंदी-शिक्षण हेतु डिजिटल उपकरणों या माध्यमों को अपनाया है। ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म (जैसे Zoom, Canvas, Moodle, google classroom) के माध्यम से कक्षाएँ संचालित की जाती हैं। डिजिटल मूल्यांकन, भाषा ऐप्स और वर्चुअल वार्तालाप-सत्रों से छात्रों की भाषाई दक्षता को निखारा जाता है। कुछ संस्थानों के यूट्यूब चैनल व पोर्टल पर हिंदी साहित्य और व्याकरण पर आधारित पाठ्य-सामग्री भी उपलब्ध है। यह शिक्षण-पद्धति हिंदी को वैश्विक स्तर पर सहज और सुलभ बना रही है।

3.5. नवीन प्रवृत्तियाँ

हिंदी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अब विदेशी भाषा नहीं, बल्कि रणनीतिक महत्त्व के उपकरण के रूप में प्रचलित है। छात्रों में हिंदी साहित्य, बॉलीवुड सिनेमा और भारतीय मीडिया के प्रति गहरी रुचि देखी जा रही है। हिंदी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं (संस्कृत, उर्दू, तमिल आदि) के संयुक्त पाठ्यक्रम भी पहचान बना रहे हैं। विश्वविद्यालयों में हिंदी क्लब, भाषायी कार्यशालाएँ और साहित्यिक आयोजन जैसे प्रयास हिंदी के प्रचार-प्रसार को सशक्त बना रहे हैं।

4. हिंदी शिक्षा से संबंधित चुनौतियाँ और संभावनाएँ

विश्व के शीर्ष 50 विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा की उपस्थिति निःसंदेह सकारात्मक है। इससे सिद्ध होता है कि अब हिंदी क्षेत्रीय या राष्ट्रीय भाषा नहीं, बल्कि वैश्विक भाषा के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। हालाँकि इसके समक्ष अनेक चुनौतियाँ भी हैं, जिनका समाधान हिंदी भाषा-शिक्षण के भविष्य को स्थायित्व और गति प्रदान कर सकता है। इस संदर्भ में जो चुनौतियाँ और संभावनाएँ हैं, उनका गहन विश्लेषण प्रस्तुत है।

5.1. प्रमुख चुनौतियाँ

5.1.1. हिंदी शिक्षकों और विशेषज्ञों की सीमित उपलब्धता

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर योग्य हिंदी शिक्षकों की भारी कमी है। शीर्ष विश्वविद्यालयों में हिंदी को पढ़ाने के लिए आवश्यक प्रशिक्षित शिक्षक नहीं मिलते, जिसके कारण अधिकांश संस्थान अतिथि व्याख्याताओं या सीमित समय के अनुबंधित कर्मचारियों पर निर्भर है। यह स्थिति हिंदी-शिक्षण के स्थायित्व और गुणवत्ता दोनों के लिए चुनौतीपूर्ण है।

5.1.2. पाठ्यक्रम की विविधता और मानकीकरण की समस्या

हिंदी की बोलियाँ और प्रयोग की विविधता पाठ्यक्रम-निर्माण और भाषा-मानकीकरण में अड़चन उत्पन्न करती है। इसलिए कुछ विश्वविद्यालय केवल भाषा-शिक्षण (व्याकरण और संभाषण) तक ही सीमित रहते हैं, जबकि कई विश्वविद्यालय साहित्य, संस्कृति और सिनेमा को भी अपने पाठ्यक्रम में शामिल करते हैं। अंततः एकरूपता का यह अभाव अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी-शिक्षण को मज़बूत शैक्षणिक ढाँचे में पिरोने से रोकता है।

5.1.3. वित्तीय संसाधनों की कमी

अनेक विश्वविद्यालयों के भाषा विभागों, विशेष रूप से दक्षिण एशियाई भाषाओं के अध्ययन हेतु सीमित धनराशि होती है। छात्र नामांकन की संख्या कम होने की स्थिति में भी प्रशासनिक स्तर पर हिंदी पाठ्यक्रमों को प्राथमिकता नहीं मिलती और कभी-कभी इन्हें स्थगित या समाप्त तक कर दिया जाता है।

5.1.4. डिजिटल सामग्री और शैक्षणिक संसाधनों का अभाव

हिंदी में साहित्यिक सामग्री तो पर्याप्त मात्र में उपलब्ध है, परंतु शैक्षणिक दृष्टिकोण से प्रयुक्त होने वाली उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकों, व्याकरण-ग्रंथों, द्विभाषिक शब्दकोशों, ई-लर्निंग टूल्स और वर्चुअल प्रयोगशालाओं का अभाव एक गंभीर चुनौती है। स्वाध्याय हेतु पठनीय सामग्री का अभाव छात्रों के सीखने के अनुभव को भी प्रभावित करती है।

5.1.5. भाषाई वरीयता और प्रतिस्पर्धा

संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्य भाषाओं जैसे फ्रेंच, स्पेनिश, अरबी, चीनी और रूसी के समक्ष हिंदी को अकादमिक प्रणाली में एक समान दर्जा नहीं मिल रहा है। यह प्रवृत्ति न केवल संसाधनों के आवंटन को प्रभावित करती है, बल्कि छात्रों की रुचि और संस्थागत प्राथमिकता पर भी असर डालती है।

5.2. प्रमुख संभावनाएँ

5.2.1. भारत के वैश्विक प्रभाव के साथ हिंदी की उपयोगिता में वृद्धि

आज का भारत विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में से एक बन चुका है। उसकी वैश्विक भूमिका दिनोंदिन बढ़ रही है। अंतरराष्ट्रीय कंपनियाँ, राजनयिक संस्थान और शोध संगठनों के लिए हिंदी बोलने वाले पेशेवरों की माँग निरंतर बढ़ी है। इससे विश्वविद्यालयों

को हिंदी-शिक्षण के प्रसार का औचित्य प्राप्त होता है।

5.2.2. सांस्कृतिक प्रभाव : मीडिया और मनोरंजन

बॉलीवुड, हिंदी वेब सीरीज़, यूट्यूब चैनल्स और भारतीय संगीत विश्वव्यापी आकर्षण के केंद्र हैं। विदेशी युवाओं में हिंदी फ़िल्मों और गीतों के प्रति रुचि ने हिंदी को 'सांस्कृतिक भाषा' के रूप में लोकप्रिय बनाया है। परिणामस्वरूप यह आकर्षण शैक्षणिक रुचि में रूपांतरित हो रहा है।

5.2.3. प्रवासी भारतीयों की भूमिका

अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, मॉरीशस, सूरीनाम और खाड़ी के देशों में बसे प्रवासी भारतीय समुदाय के लोग अपने बच्चों को सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ना चाहते हैं। इसके लिए वे विश्वविद्यालयों से हिंदी पाठ्यक्रम की माँग करते हैं। कई बार इन्हीं समुदायों के आर्थिक और सामाजिक दबाव से विश्वविद्यालय हिंदी-शिक्षण की सुविधा प्रदान करते हैं। यह प्रवृत्ति हिंदी-विस्तार की महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रेरणा बन गई है।

5.2.4. प्रौद्योगिकी आधारित शिक्षण

ऑनलाइन पाठ्यक्रम, वीडियो कक्षाएँ, इंटरैक्टिव एप्स (जैसे Duolingo) और एआई-सक्षम भाषा-शिक्षण टूल्स हिंदी-शिक्षण को वैश्विक स्तर पर ओर अधिक सुलभ बना रहे हैं। इन तकनीकी माध्यम से हिंदी न केवल कक्षा में बल्कि विश्व के किसी भी कोने में पढ़ाई जा सकती है।

5.2.5. शोध और अनुवाद के क्षेत्र में हिंदी

भारत केंद्रित सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक अध्ययन अब वैश्विक शोध का विषय बन रहे हैं। हिंदी जानने वाले शोधकर्ता इन अध्ययनों में भाषा और संदर्भ के विशेषज्ञ के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। दूसरे अंतरराष्ट्रीय संस्थानों में भारतीय शोधों के अनुवाद हेतु हिंदी जानने वालों की माँग भी बढ़ी है।

6. अनुशंसाएँ और निष्कर्ष

6.1. अनुशंसाएँ

6.1.1. भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और भारत सरकार की संस्थागत भागीदारी

भारत सरकार के उपर्युक्त संस्थानों और विदेश मंत्रालय को चाहिए कि वे विदेशों में हिंदी भाषा-शिक्षण को सुदृढ़ करने हेतु रणनीतिक कदम उठाए। जैसे- विदेशी विश्वविद्यालयों में पूर्णकालिक हिंदी शिक्षक भेजना, विश्वविद्यालयों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना और विश्व के सभी देशों से शैक्षणिक सहयोग हेतु समझौते करना आदि।

6.1.2. डिजिटल शिक्षण सामग्री का विकास

हिंदी भाषा को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शिक्षण योग्य बनाने हेतु डिजिटल प्लेटफ़ॉर्मों पर गुणवत्तापूर्ण, बहुभाषिक और इंटरैक्टिव सामग्री उपलब्ध कराना आवश्यक है। इसके अंतर्गत ई-लर्निंग कोर्स, मोबाइल एप्लिकेशन, वीडियो व्याख्यान और ऑनलाइन मूल्यांकन तंत्र विकसित किए जा सकते हैं। ऐसे संसाधन स्वयंसेवी संस्थाओं, विश्वविद्यालयों और तकनीकी कंपनियों आदि के सहयोग से तैयार किए जा सकते हैं।

6.1.3. शोध और अनुवाद के क्षेत्र में अवसरों का विस्तार

वैश्विक विश्वविद्यालयों में भारत-केंद्रित सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक शोधों की संख्या में वृद्धि हो रही है। इन विषयों की गहन समझ हेतु हिंदी के विशेषज्ञों, शोधार्थियों और अनुवादकों की आवश्यकता होगी। अतः छात्रवृत्तियों, शोध-पदों और अनुवाद परियोजनाओं में हिंदी विशेषज्ञता को एक वरीयता के रूप में शामिल किया जाना चाहिए।

6.1.4. हिंदी को वैश्विक भाषा के रूप में स्थापित करने हेतु प्रयास

हिंदी को केवल भारतीय संस्कृति तक सीमित न रखते हुए, उसे वैश्विक व्यापार, कूटनीति और संचार की भाषा के रूप में सक्षम बनाने हेतु संस्थागत प्रयास करने चाहिए। अंतरराष्ट्रीय ब्रांडिंग हेतु नई रणनीति की आवश्यकता है। इसके अंतर्गत हिंदी सीखने से होने वाले शैक्षणिक-व्यावसायिक लाभों का प्रचार-तंत्र विकसित किया जाए। अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी, भाषाई मेले और मीडिया अभियान द्वारा हिंदी के अनुकूल परिवेश निर्मित किया जा सकता है।

6.1.5. प्रवासी समुदायों से सहभागिता

विश्व के विभिन्न देशों में बसे प्रवासी भारतीय समुदाय हिंदी के विस्तार हेतु अग्रणी भूमिका में हैं। उनसे अधिक प्रयासों की अपेक्षा है। वे विश्वविद्यालयों में हिंदी पाठ्यक्रमों की माँग-वृद्धि, वित्तीय मदद प्रदान करने तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करने में सशक्त भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं। ये सभी स्थानीय संस्थानों और दूतावासों के माध्यम से हिंदी-शिक्षण और उसके विकास में उचित भागीदार हो सकते हैं।

6.2. निष्कर्ष

'टाइम्स हायर एजुकेशन रैंकिंग : 2025' रिपोर्ट से स्पष्ट है कि हिंदी भाषा की उपस्थिति विश्व के शीर्ष विश्वविद्यालयों में निरंतर बढ़ रही है। शीर्ष 50 में से 33 विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा-शिक्षण

हेतु विभिन्न श्रेणी के पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं। यह तथ्य भी हिंदी की वैश्विक स्वीकृति का प्रमाण है। यह न केवल भारत की सांस्कृतिक शक्ति का द्योतक है, बल्कि भाषाई विविधता में हिंदी के अवदान को भी इंगित करता है।

प्रस्तुत अध्ययन-विश्लेषण स्पष्ट करता है कि जहाँ हिंदी को अंतरराष्ट्रीय अकादमिक संस्थानों में सम्मानजनक स्थान मिल रहा है, वहीं हिंदी अभी भी कुछ प्रशासनिक, शैक्षणिक और संसाधनगत चुनौतियों से जूझ रही है। डिजिटल शिक्षण संसाधनों की कमी, योग्य शिक्षकों का अभाव और भाषाई प्रतिस्पर्धा जैसे कारक भी इसके व्यापक प्रसार में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं।

वस्तुतः वास्तविकता यह है कि हिंदी भाषा और शिक्षण की लोकप्रियता में लगातार वृद्धि हो रही है। इसमें प्रवासी भारतीय समुदाय, हिंदी सिनेमा, मीडिया और तकनीकी मंचों के साथ विश्व हिंदी सचिवालय की भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता। इन्हीं साझा प्रयासों का परिणाम है कि अनेक विश्वविद्यालय हिंदी को वैकल्पिक भाषा, सांस्कृतिक अध्ययन, दक्षिण एशियाई अध्ययन तथा साहित्यिक विमर्श के माध्यम से अपने पाठ्यक्रम में शामिल कर रहे हैं।

संदर्भ-सूची :

1. 'टाइम्स हायर एजुकेशन रैंकिंग : 2025' https://www.timeshighereducation.com/world-university-rankings/latest/world-ranking
2. गोस्वामी, कृष्ण कुमार, 'विदेशों में हिंदी-शिक्षण', विश्व हिंदी पत्रिका, 2011 विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस
3. सती, विजया, "वैश्विक हिंदी : एक परिदृश्य", विश्व हिंदी पत्रिका, वर्ष-2012 उपर्युक्त
4. सिंह, हरिराज, 'हिंदी का बढ़ता अंतरराष्ट्रीय वर्चस्व और उससे संबंधित समस्याएँ', विश्व हिंदी पत्रिका, वर्ष-2013
5. बंघा, इमरै, 'मध्य और पूर्वी यूरोप में हिंदी-शिक्षण और शोध', विश्व हिंदी पत्रिका, वर्ष-2017
6. यादव, राम प्रकाश, डॉ. 'विश्व पटल पर हिंदी : अध्ययन और अध्यापन', विश्व हिंदी पत्रिका, वर्ष-2020
7. भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् (ICCR), विदेश मंत्रालय, भारत सरकार की वार्षिक प्रतिवेदन-2023-24, https://iccr.gov.in/sites/default/files/sites/default/files/2024-02/Annual%20Report%202023-24%20%28Hindi%29.pdf
8. 'देश में हिंग्लिश हो गई हिन्दी, लेकिन विदेश की इन यूनिवर्सिटीज़ ने दे दी ग्लोबल पहचान' आज तक, 14 सितम्बर, 2023, https://www.aajtak.in/education/knowledge/story/these-foreign-universities-gave-global-recognition-to-hindi-language-lclk-1779240-2023-09-14
9. 'दुनियाभर के 95 देशों में स्कूल-कॉलिज और यूनिवर्सिटी में पढ़ाई जाती हिन्दी, ऑक्सफ़ोर्ड-कैम्ब्रिज में भी पॉपुलर', न्यूज़24, 15 सितम्बर, 2023, https://hindi.news24online.com/education/indian-language-hindi-popularity-in-world-school-college-universities/342626/
10. https://www.youtube.com/watch?v=K5Yf_iW4stA

shah2971983@gmail.com

pawanagrawal4u4u@gmail.com

ब्रिटेन में हिंदी-शिक्षण एवं प्रशिक्षण

- डॉ. वंदना मुकेश
यू.के.

भाषा, भावों और विचारों की अभिव्यक्ति का साधन है। किसी भी भाषा को सीखना, सिखाना या पढ़ाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। देश में हो या विदेश में, यह चुनौती तब दोगुनी हो जाती है जब उस भाषा के सीखने पर उसे व्यवहार में लाने के अवसर न के बराबर हों। हम सभी जानते हैं कि भाषा मात्र संवाद या संप्रेषण का माध्यम नहीं, अपितु भाषा उस समाज की, उस संस्कृति की संवाहक होती है, जिसमें उसका व्यवहार होता है। अत: परिवेश से कटकर भाषा-शिक्षण निश्चित ही एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। विश्व में हिंदी का शिक्षण लगभग 160 देशों में हो रहा है। अन्य देशों की भाँति इंग्लैण्ड में भी हिंदी-शिक्षण का कार्य चुनौतियों से भरा है। ब्रिटेन में हिंदी-शिक्षण की वर्तमान स्थिति देखने के पूर्व यहाँ पर हिंदी-शिक्षण के संक्षिप्त इतिहास पर एक विहंगम दृष्टि डालना समुचित है।

ब्रिटेन में हिंदी-शिक्षण का इतिहास ईस्ट इंडिया कंपनी के भारत में जड़ें जमाने के साथ आरंभ हुआ। अधिकारियों, कर्मचारियों और सैनिकों की औपनिवेशिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम बनाया गया। इस बात से यह स्पष्ट होता है कि यह पाठ्यक्रम वयस्कों के लिए ही था। जॉन बॉर्थविक गिलक्रिस्ट, एक स्कॉटिश भाषाविद् ने इंग्लैंड में हिंदी और हिंदुस्तानी के प्रारंभिक अध्ययन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। 18वीं और 19वीं सदी के अंत में उनके द्वारा हिंदी व्याकरण और शब्दकोश का प्रकाशन किया गया, जिससे ब्रिटिश अधिकारियों के लिए हिंदी का अध्ययन औपचारिक रूप से स्थापित हुआ। सन् 1806 में हेलीबरी कॉलिज, हर्टफ़ोर्डशायर में हिंदी का शिक्षण इन अधिकारियों के लिए होता था। इसी का विस्तार सोआस (SOAS-स्कूल ऑफ़ ओरिएंटल एंड अफ़्रीकन स्टडीज़) लंदन विश्वविद्यालय में 1941 में शैक्षणिक भाषा के रूप में हुआ।

प्रथमतः ब्रिटेन में हिंदी-अध्येताओं और उनकी आवश्यकताओं पर एक दृष्टि डाल सकते हैं –

ब्रिटेन के हिंदी अध्येता

1. बच्चे,
2. वयस्क

बच्चों के हिंदी सीखने के कारणों में प्रमुख हैं -

1. रिश्तेदारों के साथ संवाद करने के लिए ।
2. अल्पकालीन प्रवास पर आए नौकरीपेशा भारतीयों के बच्चे, जिनको भारत में जाकर अपनी शिक्षा पूरी करनी है तथा,
3. माता-पिता में से एक या दादा-दादी अथवा नाना-नानी हिंदी भाषी होना। (यह अंग्रेज़ अथवा अन्य भारतीय भाषा-भाषी हो सकते हैं।)

इसके विपरीत वयस्कों में हिंदी सीखने के कारण भिन्न हैं -

1. वे लोग, जो समझते हैं, पर बोलने में झिझकते हैं
2. वे लोग, जो शौक, पर्यटन एवं मनोरंजन के कारण हिंदी सीखना चाहते हैं
3. वे लोग, जिन्हें नौकरी के कारण भारत जाना पड़ता है या पड़ सकता है।
4. वे लोग, जो भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के अध्ययन की इच्छा के कारण विश्वविद्यालयीन स्तर पर ऐच्छिक विषय के रूप में हिंदी का अध्ययन करते हैं।

हम देखते हैं कि सभी अध्येताओं के हिंदी सीखने की प्रेरणा और कारण भिन्न-भिन्न हैं। अतः पढ़ाने के तरीके और स्थान भी भिन्न-भिन्न हैं।

आगे हम यह रेखांकित करेंगे कि इंग्लैंड में हिंदी-शिक्षण कहाँ हो रहा है? हिंदी कौन सिखा रहा है? हिंदी-शिक्षण की विधि क्या है? अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें भी वर्गीकृत किया जा सकता है। इनके अतंर्गत भी कई उपवर्ग हैं, जिनका उल्लेख नीचे किया गया है –

1. विद्यालयीन स्तर पर - संपन्न किए गए शोध के आधार पर वर्तमान में विद्यालयीन स्तर पर हिंदी का शिक्षण यू.के. में कहीं भी नहीं होता।

आठवें दशक में हिंदी को विद्यालयीन पाठ्यक्रम में लाने के लिए यॉर्क विश्वविद्यालय के प्रो. महेंद्र वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। जब नौवें दशक में राष्ट्रीय पाठ्यक्रम बना, तब सन् 1988 में प्रो. महेंद्र वर्मा तथा कुछ अन्य लोगों के अथक प्रयासों से हिंदी तथा पाँच भारतीय भाषाओं में शालेय स्तर पर 'ओ लेवल' की परीक्षा शुरू हुई। इसके साथ ही लंदन के कुछ विद्यालयों में आधुनिक विदेशी

भाषा विभाग के अंतर्गत हिंदी का पठन-पाठन आरंभ हुआ। किंतु छात्रों की संख्या बहुत कम होने से 1994 में ये कक्षाएँ एवं परीक्षाएँ, दोनों बंद हो गईं। प्रो. महेंद्र वर्मा निरंतर हिंदी को मुख्य धारा में लाने का प्रयास करते रहे। फिर उन्होंने कैंब्रिज अंतरराष्ट्रीय परीक्षा विभाग के लिए 'द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी' का पाठ्यक्रम तैयार किया। उन्हीं के प्रयासों से हिंदी के छात्रों को ब्रिटेन में हिंदी परीक्षा देने की सुविधा उपलब्ध हुई। इसे (जी.सी.एस.ई.) अर्थात् जनरल सर्टीफ़िकेट स्कूल एक्ज़ाम कहते हैं, कुछ देशों में 'ओ लेवल' भी कहते हैं। इस पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु उन्होंने 2005 में एक कार्यशाला मुंबई, भारत में की। जिसमें 30-40 शिक्षिकाओं को प्रशिक्षित किया गया। वे कैंब्रिज अंतरराष्ट्रीय परीक्षा विभाग में हिंदी के प्रधान सलाहकार और प्रश्न-पत्र निर्माण समिति के प्रमुख सदस्य रहे। तत्पश्चात् सन् 2007 में कैंब्रिज अंतरराष्ट्रीय परीक्षा विभाग द्वारा संचालित (जीसीएसई) 'हिंदी एज़ ए सेकंड लेंग्वेज' की परीक्षा में विश्व भर से 300 विद्यार्थियों ने हिस्सा लिया। आज 3000 से अधिक परीक्षार्थी यह परीक्षा देते हैं, जिसमें से अधिकांश भारत के उच्चस्तरीय प्राइवेट स्कूलों में होते हैं। यह प्रश्न-पत्र भाषा की सर्वांगीण निपुणता पर केंद्रित है। इसमें सुनना, समझना, बोलना, पढ़ना तथा लिखना सम्मिलित है। इसका उद्देश्य सभी प्रकार की भाषाई कौशलों का संवर्धन करना है। इसकी कोई निर्धारित पुस्तक नहीं है। इसके प्रश्न-पत्र वे लोग बनाते हैं, जो हिंदी भाषी हैं और किसी-न-किसी रूप में ब्रिटेन में मुख्य धारा शिक्षण से जुड़े रहे हैं अथवा उनके पास हिंदी-शिक्षण का अनुभव है। लेखिका स्वयं भी कैंब्रिज विश्वविद्यालय के अंतरराष्ट्रीय परीक्षा विभाग में हिंदी परीक्षा विभाग में अनेक भूमिकाओं में सक्रिय हैं।

किंतु विद्यालयीन स्तर पर हिंदी-शिक्षण के संदर्भ में दो स्वायत्त स्वयंसेवी शैक्षणिक संस्थानों का उल्लेख आवश्यक है। सप्ताहांत में होनेवाली कक्षाओं के माध्यम से हिंदी-शिक्षण करवाने वाली दोनों संस्थाओं का अपना पाठ्यक्रम है और स्वेच्छा से पढ़ाने वाले शिक्षकों का दल है। यथा –

i. **नॉटिंघम का कला निकेतन हिंदी स्कूल** - नॉटिंघम का कला निकेतन हिंदी स्कूल एकमात्र ऐसा हिंदी प्रशिक्षण केंद्र है, जहाँ पिछले लगभग 40 वर्षों से बच्चों को हिंदी सिखाई जा रही है। इसकी संस्थापक दिवंगत श्रीमती सुदर्शन मोहिंद्रा थीं, जिन्होंने अपना जीवन हिंदी के शिक्षण में लगा दिया। वर्तमान में कला निकेतन हिंदी स्कूल में हिंदी का शिक्षण निरंतर हो रहा है।

ii. **यू.के.हिंदी समिति** - 1994 में डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी के आने से हिंदी संबंधी साहित्यिक गतिविधियों को काफ़ी बढ़ावा दिया गया। यू.के. हिंदी समिति का गठन हुआ। जिसने विभिन्न शहरों की साहित्यिक संस्थाओं को और वहाँ के बच्चों को हिंदी ज्ञान प्रतियोगिता, भाषण-प्रतियोगिता आदि आयोजित करके हिंदी-शिक्षण और उसके प्रचार-प्रसार को जारी रखा। श्री पदमेश गुप्त इसके संरक्षक हैं, लेकिन पिछले लगभग दस वर्षों से इस संस्था का पूरा कार्यभार सुरेखा चोफ़ला देखती हैं और यू.के. तथा यूरोप की लगभग 45 स्वायत्त संस्थाएँ अथवा शिक्षक इनके स्वनिर्मित पाठ्यक्रम का प्रयोग करते हैं। इसमें 'प्रवेश' से लेकर 'ए' लेवल अर्थात् यू.के. की दसवीं कक्षा के समकक्ष परीक्षाएँ आयोजित करवाई जाती हैं। संस्था से जुड़े हुए बच्चों के लिए हिंदी ज्ञान प्रतियोगिताएँ औयोजित की जाती हैं तथा पुरस्कृत बच्चों को भारत तथा यूरोप की यात्रा पर ले जाया जाता है।

2. विश्वविद्यालयीन स्तर पर – हिंदी-शिक्षण के लिए चार विश्वविद्यालय जाने जाते हैं।

(i) **सोआस (स्कूल ऑफ़ ओरिएंटल एवं अफ़्रीकन स्टडीज़)** लंदन के इस विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ़ लैंग्वेजेज़, कल्चर तथा लिंग्विस्टिक्स के अंतर्गत प्रारंभिक स्तर से बी.ए. तथा एम.ए. के छात्रों को हिंदी पढ़ाई जाती है, लेकिन मुख्य विषय के रूप में नहीं। दक्षिण-एशिया की संस्कृति और भाषा पर आधारित कक्षाओं में हिंदी एक वैकल्पिक भारतीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। कुछ छात्र जो चार साल की डिग्री ले रहे हैं और जो अपनी हिंदी को उच्च स्तर तक ले जाना चाहते हैं, वे अपना तीसरा वर्ष भारत में हिंदी अध्ययन में बिताते हैं। इसके अलावा, कोई भी छात्र, किसी भी डिग्री कोर्स पर, भाषा-अध्ययन एक वैकल्पिक विषय के रूप में अपनी डिग्री में शामिल कर सकता है। सोआस में अन्य उपलब्ध भारतीय भाषाएँ - उर्दू, बंगाली एवं संस्कृत हैं। हिंदी और उर्दू दोनों नरेश शर्मा द्वारा पढ़ाई जाती हैं, बंगाली सहाना वाजपेई द्वारा और संस्कृत मैडलेना इटालिया पढ़ाती हैं। समय-समय पर प्राकृत और पंजाबी की कक्षाएँ भी पढ़ाई जाती हैं ।

(ii) **कैंब्रिज विश्वविद्यालय** - सन् 1980 से लगभग 2005 तक डॉ. सत्येंद्र श्रीवास्तव कैंब्रिज विश्वविद्यालय में लैंग्वेज टीचिंग अफ़सर के रूप में हिंदी पढ़ाते थे। सन् 2003

से फ़ैकल्टी ऑफ़ एशियन एंड मिडिल ईस्टर्न स्टडीज़ के अंतर्गत स्नातक स्तर की कक्षाओं में दक्षिण एशियाई संस्कृति, इतिहास एवं राजनीति जैसे विषयों के साथ स्वतंत्र विषय के रूप में डॉ. ऐश्वर्ज कुमार 'All comers Hindi classes' में हिंदी पढ़ाते हैं। ये कक्षाएँ बहुत लोकप्रिय हैं। भारतीय संस्कृति और इतिहास का अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए ये कक्षाएँ चलाई जाती हैं।

(iii) **ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय** - ऑक्सफ़ोर्ड के फ़ैकल्टी ऑफ़ एशियन एंड मिडिल ईस्टर्न स्टडीज़ विभाग में इंडॉक्स अर्थात् इंडिया ऑक्सफ़ोर्ड इनीशियेटिव के अंतर्गत हिंदी का शिक्षण प्रारंभिक से उच्च स्तर, स्नातकोत्तर स्तर तक उपलब्ध है। यहाँ भी अन्य दशिण एशियाई अध्ययन के विषयों के साथ हिंदी का शिक्षण किया जाता है। हिंदी-शिक्षण के प्रमुख हंगरी मूल के हिंदी विद्वान इमरे बंगा हैं। उनकी सहयोगी भारतीय मूल की डॉ. अश्विनी मोकाशी हिंदी और मराठी भाषा की प्राध्यापिका हैं।

(iv) **यॉर्क विश्वविद्यालय-** यॉर्क विश्वविद्यालय में, सन् 2004 में प्रो. महेंद्र वर्मा की सेवा-निवृत्ति के पश्चात् हिंदी-शिक्षण समाप्त हो गया।

यॉर्क के अतिरिक्त अन्य सभी विश्वविद्यालयों में भारतीय संस्कृति विभाग के अंतर्गत एक ऐच्छिक विषय के रूप में हिंदी का अध्यापन हो रहा है। छात्रों की संख्या प्रत्येक विश्वविद्यालय में आठ से पंद्रह के मध्य है। विश्वविद्यालयों के अपने पाठ्यक्रम हैं। इन विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाने के लिए पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त वृत्तचित्रों तथा फ़िल्मों के अंशों तथा शिक्षण के आधुनिकतम उपकरणों का प्रयोग एक लंबे समय से हो रहा है। पुस्तकों में रुपर्ट स्नेल की हिंदी-शिक्षण की पुस्तकें - 'टीच योरसेल्फ़ हिंदी', 'कंप्लीट हिंदी बिगिनर टू इंटरमीडिएट कोर्स - इनहांस्ड ई-बुक' के अतिरिक्त वर्तमान प्राध्यापक नरेश शर्मा की पुस्तकें 'हिंदी स्क्रिप्ट हैकिंग' (सहलेखिका जूडिथ मेयर) तथा 'हिंदी ट्यूटर ग्रामर एंड वोकेब्युलरी वर्कबुक' उल्लेखनीय हैं।

यदा-कदा कोई कॉलिज लंदन अथवा किसी शहर में हिंदी संभाषण की कक्षाएँ आरंभ कर देता है, तो उनका जीवन छात्रों की कमी के कारण अल्पकालीन ही होता है। किंग्स कॉलिज के आधुनिक भाषा विभाग में हिंदी का अध्यापन छात्रों की संख्या पर निर्भर करता है और कई बार कक्षाएँ आरंभ होने की घोषणा मात्र तक ही रह जाती हैं।

अद्यतन जानकारी (19.12.2024) के अनुसार उपरोक्त तीन विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त यूके में विश्वविद्यालयीन स्तर पर हिंदी नहीं पढ़ाई जाती।

3. ब्रिटेन में अनौपचारिक रूप से हिंदी-शिक्षण

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् बहुत से भारतीय यहीं रह गए। फिर छठवें दशक में इंग्लैंड आर्थिक मंदी के दौर से गुज़रा। तब पुनः भारतीयों को यहाँ विभिन्न उद्योगों में मज़दूर तथा अन्य व्यवसायों को लिए आने के अवसर सुगम हुए। उस कालखंड में जो लोग आए, उनसे अपनी रोटी-पानी की ज़रूरतों को पूरा करने में बहुत कुछ पीछे छूटता रहा, जिसमें दुर्भाग्यवश उनकी अपनी मातृभाषाएँ भी थीं। उन लोगों ने इस बात पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया कि उनके बच्चे घर में अपनी भाषा सीखें। इस कारण से उनके बच्चे अपने दादा-दादी, नाना-नानी तथा अन्य रिश्तेदारों से अपनी भाषा में संवाद स्थापित न कर पाने के कारण कट-से गए। तब उन लोगों ने सातवें-आठवें दशक में घरों में, मंदिरों और कम्यूनिटी सेंटर इत्यादि में स्वैच्छिक रूप से अपनी भाषाएँ सिखानी शुरु कर दीं।

(i) मंदिर एवं सामुदायिक केंद्रों में हिंदी-शिक्षण - ब्रिटेन में मंदिर हिंदी भाषा के शिक्षण-प्रशिक्षण प्रचार-प्रसार का प्रमुख केंद्र हैं। लंदन, बर्मिंघम, कार्डिफ़, बेलफ़ास्ट आदि लगभग सभी शहरों में हिंदी भाषा की साप्ताहिक कक्षाएँ नियमित रूप से चल रही हैं। धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं के द्वारा हिंदी-शिक्षण की सुविधा उपलब्ध करवाई जा रही है। ब्रिटेन में हिंदी भाषा की शिक्षा अधिकांशतः मंदिरों में स्वैच्छिक रूप से दी जाती है। इनमें अक्सर किसी भाषा-शिक्षण प्रविधि का कोई प्रयोग नहीं होता। शिक्षक प्रशिक्षित भी नहीं होते। लेकिन हिंदी के प्रति प्रेम और सीखने-सिखाने की ललक से ये कक्षाएँ निरंतर चलती रहती हैं

(ii) घरों में हिंदी-शिक्षण - हिंदी या अन्य भाषा-भाषी परिवारों में भी काम की व्यस्तता तथा सुविधा और समय की कमी के कारण माता-पिता और बच्चों में आपसी संवाद अंग्रेज़ी में होता है। लेकिन परिवारिक दायित्व एवं बहुभाषीयता के महत्त्व को समझते हुए दसवें तथा ग्यारहवें दशक अर्थात् नब्बे तथा सन् 2000 के पश्चात् आने वाले बहुत-से प्रवासियों ने अपने बच्चों को घर पर अपनी भाषाएँ पढ़ाने का कार्य जारी रखा। अधिकांशतः माता-पिता या दादा-दादी अथवा नाना-नानी आदि हिंदी भाषा सिखाते हैं - कुछ लोगों ने इसे अब अपने व्यवसाय

के रूप में अपना लिया है। इनका कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं है। इनके छात्र बच्चे या वयस्क हो सकते हैं। शिक्षार्थी की आवश्यकतानुसार सुनने, समझने, बोलने, पढ़ने तथा लिखने के कौशलों को अपनी-अपनी समझ के अनुसार सिखाया जाता है।

(iii) **अन्य व्यवसायिक शिक्षण केंद्र -** भूमंडलीकरण के कारण नौकरी-पेशा लोगों को हिंदी सीखने की आवश्यकता पड़ती है। इसकी पूर्ति करने के लिए कुछ व्यावसायिक शिक्षण केंद्र हिंदी की कक्षाएँ चलाती हैं। इन कक्षाओं में व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर, भारत में नियुक्ति होने पर अथवा भारत घूमने या स्वयंसेवी संस्थाओं में काम के लिए जाने पर, बोलचाल की हिंदी सिखायी जाती है। पाठ्यक्रम अधिकांशतः भाषा की प्रयोजनमूलकता पर आधारित होता है। यहाँ भी सब अपने-अपने तरीके से पढ़ाते हैं। ब्रिटिश मेट्रोपोलिटन पुलिस एंड मेरी वार्ड सेंटर में पुलिस के कर्मचारियों के लिए बोलचाल की हिंदी की कक्षाएँ लगती हैं, जिन्हें गीता शर्मा पढ़ाती हैं।

(iv) **फ़िल्मों एवं कलाओं द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से हिंदी सीखने की प्रक्रिया –**

a. **फ़िल्में -** औपचारिक हिंदी-शिक्षण के अतिरिक्त हिंदी सीखने के अन्य माध्यम भी हैं, जिनमें हिंदी फ़िल्मों का योगदान विलक्षण है। विदेशों में बसा भारतीय समाज हिंदी फ़िल्मों का दीवाना है। सिनेमा हॉल के बाहर विभिन्न भाषा-भाषी सच्चे अर्थों में भारतीयता का संवहन करते हैं। यह बात और है कि बॉलीवुड की फ़िल्मों में अब हिंदी कम, अंग्रेज़ी ज़्यादा, या यों कहें कि हिंदी-अंग्रेज़ी का मिला-जुला स्वरूप हिंग्लिश प्रयुक्त होता है। किंतु आज विदेशों में दूसरी और तीसरी पीढ़ी के बीच हिंदी फ़िल्में बहुत लोकप्रिय हैं। विभिन्न भारतीय टी.वी चैनलों था नैटफ़्लिक्स इत्यादि ने भी हिंदी की लोकप्रियता में वृद्धि की है।

b. **कला-संस्कृति प्रसार संस्थाएँ -** अनेक संस्थाएँ जैसे सोनिया साबरी कंपनी, संपद, चित्रलेखा बोलार डांस कंपनी, वैस्ट मिड्लैंड्स, नेहरू केंद्र, लंदन, भारतीय विद्या भवन, लंदन आदि अनेक संस्थाएँ विभिन्न शहरों में भारतीय शास्त्रीय नृत्य एवं गायन के माध्यम से हिंदी भाषा को अनौपचारिक रूप से सिखाते हैं।

c. **साहित्यिक संस्थाओं द्वारा**

गीतांजलि बहुभाषीय समुदाय, बर्मिंघम एवं नॉटिंघम, कला निकेतन, नॉटिंघम, यू.के. हिंदी समिति, वातायन, संस्कृति यू.के., लंदन, कृति यू.के., बर्मिंघम, हिंदू कौंसिल, लंदन, चौपाल, लेस्टर, हिंदू कम्यूनिटी सेंटर, बेलफ़ास्ट आदि अनेक संस्थाएँ हिंदी भाषा और संस्कृति से संबद्ध गतिविधियों को निरंतर प्रोत्साहन दे रही हैं और युवाओं को सम्मिलित करने के विविध प्रयास कर रही हैं। किंतु फिर भी इस तरह की गतिविधियाँ प्रमुखत: लंदन, बर्मिंघम आदि तक ही सीमित हैं। व्यक्तिगत स्तर पर हिंदी प्रेमियों द्वारा किए जाने वाले प्रयासों को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। कोविड लॉकडाउन के दौरान हिंदी से संबद्ध इंग्लैण्ड की विभिन्न संस्थाओं में से अधिकांश ने ऑनलाइन माध्यमों से अपनी गोष्ठियाँ निरंतर आयोजित कीं। इसी प्रकार बातचीत करने, मिलने-जुलने के लिए भी इन माध्यमों का भरपूर प्रयोग किया गया।

हिंदी-शिक्षण विधि

सुनने, बोलने, पढ़ने और लिखने की प्रवीणता, किसी भी भाषा में आपको पारंगत बना सकती है। यहाँ हिंदी-शिक्षण के जितने औपचारिक, अनौपचारिक अथवा स्वयंसेवी संस्थान हैं। इनमें भाषा की प्रयोजनमूलकता को ध्यान में रखा जाता है। खेल-खेल में सिखाने के लिए कई तकनीकी उपकरणों और ऑनलाइन खेलों का प्रयोग, पावर पॉइंट, चित्रों, ऑडियो-वीडयो क्लिप्स, फ़िल्मों के अंश, स्मार्ट-बोर्ड का प्रयोग, वेबसाइटों का प्रयोग तथा कहूट पर प्रश्नोत्तरी और तरह-तरह के उपकरणों का प्रयोग सामान्य है। मौखिक अभ्यास, सामूहिक और व्यक्तिगत अभ्यास, पढ़ने और लिखने का अभ्यास, प्रश्नोत्तर द्वारा भाषा-कौशलों का विकास किया जाता है। छात्रों में शोध-वृत्ति का विकास करने के लिए उन्हें विभिन्न विषयों पर छोटे-छोटे शोध करने को कहा जाता है। अंतर्विषयक अध्ययन के महत्त्व को बताते हुए, उन्हें विषय से संबंधित नाटक, कहानी अथवा कविता रचने को कहा जाता है। इस प्रकार छात्रों को विभिन्न स्थितियों में भाषा के प्रयोग के अवसर दिए जाते हैं। कोविड लॉकडाउन के बाद से ऑनलाइन माध्यमों द्वारा हिंदी-शिक्षण का प्रचलन भी बढ़ गया है। शिक्षक नियमित रूप से ज़ूम, माइक्रोसॉफ़्ट टीम्स, गूगल हैंग आउट, व्हाट्सएप द्वारा कक्षाएँ लेते हैं। हिंदी के छात्र तकनीकी प्रयोग से समृद्ध हो रहे हैं।

सार रूप में, यह कहा जा सकता है कि ब्रिटेन में हिंदी-शिक्षण हो रहा है। नए-नए प्रयोग किए जा रहे हैं, जो प्रशंसनीय हैं। लेकिन चुनौतियाँ भी कुछ कम नहीं हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दे हैं, जिन पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है -

(i) उचित और मानक पाठ्यक्रम का अभाव

(ii) उचित संसाधनों का अभाव

(iii) प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव

(iv) हिंदी-शिक्षण हेतु प्रोत्साहन का अभाव

(v) भारतीय उच्चायोग द्वारा सहयोग का अभाव

समस्या में समाधान भी निहित होता है। अतः हिंदी शिक्षकों को यहाँ के वातावरण और आवश्यकता के अनुसार प्रशिक्षित करना, विद्यालयीन स्तर पर हिंदी का एक मानक पाठ्यक्रम तैयार करना, हिंदी-शिक्षण प्रदान करनेवालों का आपस में एक-दूसरे से जुड़ना, कंप्यूटर खेलों का हिंदी में अनुवाद कराना, भारत सरकार द्वारा ब्रिटेन हिंदी-शिक्षण-प्रशिक्षण को प्रोत्साहन देना और अवसर उपलब्ध करवाना, विश्वविद्यालयीन स्तर पर तुलनात्मक भाषा अध्ययन की व्यवस्था एवं प्रोत्साहन देना, हिंदी के अध्ययन हेतु राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, केंद्रीय हिंदी संस्थान, अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा जैसी संस्थाओं द्वारा मान्यता दिया जाना तथा सभी वर्ग के लोगों के लिए पत्र-पत्रिकाएँ, स्वस्थ एवं रुचिकर साहित्य उपलब्ध कराना आवश्यक है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि इंग्लैंड में अनेक समस्याओं के बीच भी हिंदी अपनी शक्ति से जीवित है। हिंदी भाषा के औपचारिक शिक्षण-प्रशिक्षण के अतिरिक्त व्यक्तिगत स्तर पर किए जाने वाले प्रयास अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। वर्तमान स्थिति को देखकर लगता है कि आनेवाले समय में उपरोक्त चुनौतियों का समाधान करने पर हिंदी बोलने, पढ़ने-लिखनेवालों की संख्या पुन: बढ़ेगी। भारत सरकार एवं लंदन स्थित भारतीय उच्चायोग की भूमिका इसमें निस्संदेह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार बूँद-बूँद से घड़ा भरता है, उसी प्रकार एक-एक व्यक्ति के प्रयास से ही संभव है कि इंग्लैंड में पुनः हिंदी राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का विषय बन जाए।

संदर्भ-सूची :

1. डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल, हिंदी विश्व की सबसे बड़ी भाषा तथ्य एवं आँकड़े (एथ्नॉलॉग हेतु संशोधित रिपोर्ट 2023)
2. डॉ. फ्रैंचेस्का ओर्सिनी, उच्च हिंदी प्रशिक्षण में वेब-प्रयोग (सोआस)
3. प्रो. महेंद्र वर्मा, ब्रिटेन में हिंदी अध्ययन-अध्यापन
4. चित्रा कुमार एवं ऐश्वर्ज कुमार, दूसरी भाषा के रूप में हिंदी
5. वंदना मुकेश, इंग्लैण्ड में हिंदी की दशा एवं दिशा
6. डॉ. कृष्ण कुमार, हिंदी-शिक्षण के अंतरराष्ट्रीय आयाम-समस्याएँ, चुनौतियाँ एवं समाधान, 2015, संपा., उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान
7. संपा. आत्माराम शर्मा, प्रवासी हिंदी, 2019, आईसेक्ट पब्लिकेशन
8. https://web.archive.org/web/20161222023519/https://www.haileybury.com/explore/haileybury/heritage-archives/story-haileybury/east-india-college
9. https://www.orinst.ox.ac.uk/hindi
10. https://www.ames.cam.ac.uk/whats-on/all-comers-hindi-classes
11. https://www.soas.ac.uk/study/find-course/ba-languages-and-cultures-middle-east-africa-south-and-southeast-asia

vandanamsharma@hotmail.co.uk

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी-शिक्षण

- चंपा कुमारी चौहान
असम, भारत

भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र विविध भाषाओं, संस्कृतियों और जनजातियों का संगम है। इस क्षेत्र में असम, मणिपुर, त्रिपुरा, मेघालय, नागालैंड, मिज़ोरम, अरुणाचल प्रदेश और सिक्किम जैसे राज्य शामिल हैं। इन राज्यों में हिंदी एक संपर्क भाषा के रूप में उभर रही है, किंतु इसकी शिक्षण-प्रक्रिया अनेक सामाजिक, भाषाई और राजनीतिक चुनौतियों से भी घिरी हुई है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य पूर्वोत्तर भारत में हिंदी भाषा की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करते हुए हिंदी-शिक्षण की समस्याओं और संभावनाओं की पहचान करना तथा भाषाई विविधता के संदर्भ में हिंदी-शिक्षण की रणनीतियों का विश्लेषण करना है। साथ ही, नई शिक्षा नीति (NEP-2020) के आधार पर हिंदी-शिक्षण की स्थिति का प्रतिपादन करना है।

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में भाषिक विविधता अत्यंत समृद्ध और जटिल है। यह क्षेत्र भारत के सांस्कृतिक, भाषाई और जातीय बहुलता का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करता है। हिंदी, जो कि भारत की राजभाषा है, इस क्षेत्र में संपर्क भाषा के रूप में उभर रही है, किंतु उसकी स्वीकार्यता की स्थिति राज्य-दर-राज्य भिन्न है और यह विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक कारकों से प्रभावित है।

पूर्वोत्तर भारत के आठ राज्यों में सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ हैं। भाषाविदों के अनुसार इस क्षेत्र में 220 से अधिक भाषाएँ पाई जाती हैं, जो तिब्बती-बर्मी भाषा-परिवार (नागा, मिज़ो, बोडो, मीती (मणिपुरी) आदि), ऑस्ट्रो-एशियाटिक भाषा-परिवार (खासी, संथाली आदि) और इंडो-आर्यन भाषा-परिवार (असमिया, बंगाली, नेपाली, हिंदी आदि) से संबंधित हैं। इन भाषाओं के सह-अस्तित्व के कारण भाषिक विविधता यहाँ की सांस्कृतिक पहचान का अभिन्न अंग बन चुकी है। पूर्वोत्तर में लगभग 220 से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं। हिंदी कई स्थानों पर दूसरी या तीसरी भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। कुछ राज्यों में हिंदी को 'उत्तर भारतीय भाषा' कहकर अस्वीकार करने की प्रवृत्ति भी देखी जाती है।

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी की स्थिति मिश्रित है। एक ओर यह भाषा संपर्क और संचार का सशक्त माध्यम बन रही है, दूसरी ओर इसकी स्वीकार्यता पर कई स्तरों पर संदेह और प्रतिरोध भी देखने को मिलता है। संपर्क भाषा के रूप में यह हिंदी केंद्रों के कर्मचारियों एवं प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा प्रयुक्त होती है। रेलवे, सेना और व्यापार के क्षेत्र में भी प्रमुखता से प्रयुक्त होती है। कई जनजातीय समुदायों के बीच मध्यवर्ती भाषा के रूप में हिंदी अपनायी जाती है। शिक्षा और रोज़गार की दृष्टि से देखें, तो सरकारी और प्रतियोगी परीक्षाओं में हिंदी का महत्त्व बढ़ने से युवा पीढ़ी में हिंदी के प्रति रुचि बढ़ रही है और हिंदी माध्यम स्कूलों की संख्या में वृद्धि देखी गई है, विशेषकर शहरी क्षेत्रों में। इसके अतिरिक्त, बॉलीवुड और मीडिया के माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार हो रहा है।

पूर्वोत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में हिंदी को सांस्कृतिक और भाषिक अस्मिता के संघर्ष के कारण अस्वीकृति प्राप्त हुई है। कुछ समुदाय हिंदी को उत्तर भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि मानते हैं और इसे सांस्कृतिक आक्रमण के रूप में देखते हैं। कई बार स्थानीय भाषाओं की उपेक्षा का भय भी हिंदी के विरोध का कारण बनता है। कुछ राज्यों में राजनीतिक प्रतिरोध भी देखा जाता है। नागालैंड, मिज़ोरम और मणिपुर जैसे राज्यों में त्रिभाषा-सूत्र का विरोध है। हिंदी थोपे जाने के आरोपों को लेकर आंदोलन भी हुए हैं।

पूर्वोत्तर भारत में भाषिक विविधता को बनाए रखते हुए हिंदी-शिक्षण को बढ़ावा देना एक संतुलनकारी कार्य है। इसके लिए हिंदी को "थोपने" के बजाय "सेतु भाषा" के रूप में प्रस्तुत करने, हिंदी-शिक्षण में स्थानीय भाषाओं और संदर्भों को समाहित करने तथा हिंदी के साथ स्थानीय भाषा और अंग्रेज़ी को भी स्थान देते हुए बहुभाषिक शिक्षण-प्रणाली अपनाने की आवश्यकता है।

भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में हिंदी-शिक्षण एक संवेदनशील तथा जटिल विषय है, जो शैक्षिक ढाँचे, नीति-निर्माण और स्थानीय संदर्भों से गहराई से जुड़ा हुआ है। हिंदी की शिक्षा को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए जिस शैक्षिक संरचना की आवश्यकता होती है, उसकी स्थिति अब भी अपूर्ण है। नीचे पूर्वोत्तर भारत के हिंदी-शिक्षण में शैक्षिक संरचना की स्थिति का एक व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है :

1. हिंदी माध्यम स्कूलों की संख्या और पहुँच

- अधिकांश पूर्वोत्तर राज्यों में हिंदी माध्यम स्कूलों की

संख्या सीमित है।

- असम और त्रिपुरा जैसे राज्यों में हिंदी माध्यम स्कूल उपलब्ध हैं, परंतु मिज़ोरम, नागालैंड, मणिपुर जैसे राज्यों में हिंदी माध्यम विद्यालयों की उपस्थिति नगण्य है।
- ग्रामीण व आदिवासी इलाकों में स्कूल तो हैं, किंतु उनमें हिंदी शिक्षा की व्यवस्था अपर्याप्त है।

2. हिंदी शिक्षकों की उपलब्धता एवं गुणवत्ता

- हिंदी विषय के प्रशिक्षित शिक्षकों की भारी कमी है।
- कई स्कूलों में हिंदी शिक्षक अस्थायी नियुक्ति पर कार्य कर रहे हैं, जिनके पास विषयगत प्रशिक्षण नहीं है।
- स्थानीय भाषाएँ बोलने वाले शिक्षकों की हिंदी में दक्षता कम होने से शिक्षण प्रभावी नहीं हो पाता। (उदाहरण - असम, अरुणाचल प्रदेश और नागालैंड जैसे राज्यों में हिंदी पढ़ाने वाले शिक्षकों को हिंदी बोलने में कठिनाई होती है, जिससे भाषा समझने में छात्रों की रुचि नहीं बन पाती है।)

3. शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की स्थिति

- B.Ed. और D.El.Ed. जैसे शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में हिंदी को लेकर पाठ्यक्रम की गंभीर कमी है।
- हिंदी भाषा शिक्षकों के लिए स्थानीय स्तर पर विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रमों की (orientation/refresher) नियमित व्यवस्था नहीं हैं।
- केंद्रीय हिंदी संस्थान (आगरा) का क्षेत्रीय केंद्र गुवाहाटी में मौजूद है, लेकिन उसका दायरा सीमित है।

4. पाठ्यपुस्तक और शिक्षण-सामग्री

- हिंदी पाठ्यपुस्तकें अक्सर केंद्रीय NCERT या CBSE से आती हैं, जो स्थानीय संदर्भों से कटी होती हैं।
- कई क्षेत्रों में हिंदी पुस्तकों की आपूर्ति समय पर नहीं हो पाती।
- स्थानीय भाषाओं में अनुवादित सहायक पुस्तकों की भी कमी है।

5. भाषा-प्रयोगशालाएँ और तकनीकी संसाधन

- ICT (सूचना एवं संचार तकनीक) आधारित हिंदी-शिक्षण की संभावनाएँ हैं, लेकिन पूर्वोत्तर में अधिकतर स्कूलों में इंटरनेट, स्मार्ट क्लास या डिजिटल बोर्ड जैसे संसाधन नहीं हैं।
- हिंदी ऑडियो-विज़ुअल सामग्री की उपलब्धता सीमित है और स्थानीय भाषिक पृष्ठभूमि के अनुरूप नहीं है।

6. प्रशासनिक सहयोग और नीति-क्रियान्वयन

- राज्य सरकारों की प्राथमिकता में हिंदी-शिक्षण सामान्यतः पीछे रहता है।
- केंद्र द्वारा संचालित योजनाओं (जैसे RMSA, Samagra Shiksha) के तहत हिंदी-शिक्षण के लिए विशेष बजट या कार्यक्रम कम हैं।
- त्रिभाषा-सूत्र लागू करने को लेकर भी कई राज्यों में भ्रम और असहमति की स्थिति बनी रहती है।

7. उच्च शिक्षा में हिंदी

- अधिकांश पूर्वोत्तर विश्वविद्यालयों में हिंदी विभाग हैं (जैसे गुवाहाटी विश्वविद्यालय, मणिपुर विश्वविद्यालय, त्रिपुरा विश्वविद्यालय आदि) परंतु छात्रों की संख्या सीमित है।
- हिंदी अनुसंधान और उच्च अध्ययन हेतु आवश्यक पुस्तकालय व शोध संसाधन अपर्याप्त हैं।

8. सामाजिक और भाषाई संदर्भ

- शैक्षिक संरचना की कमी केवल भौतिक संसाधनों तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक स्वीकृति की कमी भी इसके पीछे प्रमुख कारण है।
- हिंदी को 'बाहरी' या 'उत्तर भारतीय भाषा' के रूप में देखा जाना इसके प्रचार में अवरोध पैदा करता है, जिससे संरचना विकास में भी रुचि दिखाई नहीं जाती।

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में हिंदी-शिक्षण की प्रक्रिया मात्र शैक्षणिक पहल नहीं, बल्कि एक राजनीतिक और सामाजिक विषय भी है। स्थानीय भाषाओं के संरक्षण के प्रति संवेदनशीलता के कारण मिज़ोरम और नागालैंड में कई छात्र संघों और सामाजिक संगठनों ने हिंदी को अनिवार्य बनाने के विरोध में आंदोलन किए। तमिलनाडु की तरह, मणिपुर और नागालैंड में भी त्रिभाषा-सूत्र को लेकर विरोध हुआ। नागालैंड में नागा स्टूडेंट फ़ेडरेशन (NSF) ने 2021 में केंद्र सरकार द्वारा "एक राष्ट्र, एक भाषा" की नीति के संकेतों के विरुद्ध आवाज़ बुलंद की। कुछ राज्यों में अभिभावक हिंदी को उपयोगी मानते हैं (जैसे रोज़गार हेतु), परंतु उसे प्राथमिक

शिक्षा में शामिल करने के पक्ष में नहीं होते। उनको यह विश्वास रहता है कि हिंदी का शिक्षण स्थानीय भाषाओं को कमज़ोर कर देगा।

भले ही, बॉलीवुड और सोशल मीडिया ने हिंदी की उपस्थिति बढ़ाई है, परंतु इसके माध्यम से सांस्कृतिक एकरूपता के भय को भी जन्म मिला है। असम, त्रिपुरा जैसी मिश्रित भाषा-संरचना वाले राज्यों में स्थिति अपेक्षाकृत भिन्न है। इन राज्यों में बंगाली, असमिया व अन्य भाषाओं के साथ हिंदी को अधिक स्वीकृति प्राप्त है। परंतु जनजातीय क्षेत्रों में वहाँ भी प्रतिरोध देखा जा सकता है। यह प्रतिरोध केवल भाषा के विरुद्ध नहीं है, बल्कि एक व्यापक राजनीतिक-सांस्कृतिक प्रतिक्रिया है। हिंदी को सत्ता की भाषा, केंद्र की भाषा और 'गैर-स्थानीय पहचान' के प्रतीक के रूप में देखा जाना इस प्रतिरोध का मुख्य कारण है।

हिंदी-शिक्षण को लेकर पूर्वोत्तर भारत में पाए जाने वाले राजनीतिक और सामाजिक प्रतिरोध की समस्या का निदान करने के लिए आवश्यक है कि हिंदी को सेतु भाषा या व्यावहारिक भाषा के रूप में प्रस्तुत किया जाए, न कि सांस्कृतिक प्रतिस्थापन के रूप में। स्थानीय भाषाओं के संरक्षण के साथ-साथ हिंदी-शिक्षण को समानांतर रूप से बढ़ावा देना, हिंदी शिक्षकों को स्थानीय भाषा-संवेदनशील प्रशिक्षण देना और हिंदी पाठ्यक्रम में पूर्वोत्तर की सांस्कृतिक विरासत को प्रमुख स्थान देना भी ज़रूरी है।

पूर्वोत्तर भारत में 'संपर्क भाषा' के रूप में हिंदी की भूमिका से संबंधित निम्नांकित तथ्य उभरकर सामने आते हैं -

1. संपर्क भाषा की आवश्यकता

- इस क्षेत्र में बहुभाषिकता के कारण जनजातियाँ और समुदाय एक-दूसरे की भाषाओं को नहीं समझ पाते हैं। अतः एक साझा भाषा की आवश्यकता है।
- हिंदी कई बार एक 'मध्यस्थ' भाषा के रूप में काम करती है, विशेषकर जब दो भिन्न भाषी समुदायों के बीच संप्रेषण होता है। जैसे - अरुणाचल प्रदेश और नागालैंड में अलग-अलग जनजातियों के लोग अपनी मातृभाषा नहीं समझते, लेकिन वे हिंदी में संवाद कर लेते हैं।

2. प्रशासन, सेना और व्यापार में हिंदी की भूमिका

- केंद्र सरकार की नीतियाँ, सेना की उपस्थिति और गैर-स्थानीय कर्मचारियों के बीच संवाद की प्रमुख भाषा हिंदी बन चुकी है।
- रेलवे, BSF, ITBP और केंद्रीय सरकारी कार्यालयों में हिंदी अनौपचारिक रूप से संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है।
- स्थानीय बाज़ारों में दुकानदार और ग्राहक (विशेषकर गैर-स्थानीय) हिंदी के माध्यम से लेन-देन करते हैं।

3. शिक्षा एवं प्रतियोगी परीक्षाओं में हिंदी की उपयोगिता

- CBSE, NVS, और केंद्रीय विद्यालय जैसे संस्थानों में हिंदी अनिवार्य भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है।
- UPSC, SSC, बैंकिंग और सेना की भर्ती परीक्षाओं में हिंदी का ज्ञान लाभदायक होता है, जिससे युवा हिंदी सीखने के लिए प्रेरित होते हैं।

4. मीडिया, फ़िल्म और सोशल मीडिया का प्रभाव

- बॉलीवुड फ़िल्मों, हिंदी धारावाहिकों और सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्मों ने युवाओं के बीच हिंदी को लोकप्रिय बनाया है।
- मोबाइल एप्स, यूट्यूब चैनल और डिजिटल मंचों ने हिंदी के प्रति रुचि बढ़ाई है।

5. धार्मिक और सांस्कृतिक आयोजन

- रामायण, महाभारत, कीर्तन और भजन कार्यक्रमों में हिंदी का व्यापक उपयोग होता है।
- हिन्दू, सिख और ईसाई धार्मिक संस्थानों में हिंदी में प्रवचन और धर्म-शिक्षा दी जाती है।

6. हिंदी की स्वाभाविक सहजता

- हिंदी की ध्वन्यात्मक प्रकृति, सरल व्याकरण और लोक-प्रचलन ने इसे समझने योग्य और सरल बना दिया है।
- हिंदी में तकनीकी शब्दों की अपेक्षा स्थानीय बोलचाल की शब्दावली को आसानी से ग्रहण किया जा रहा है।

7. स्थानीय भाषाओं के साथ सह-अस्तित्व

- हिंदी कई स्थानों पर स्थानीय भाषाओं के साथ सहअस्तित्व में कार्य करती है।
- त्रिपुरा में बंगाली, असम में असमिया, मणिपुर में मीतै भाषा के साथ-साथ हिंदी का प्रयोग संवाद में बढ़ा है।

8. नीति-सूचक सुझाव

- हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में प्रस्तुत करने के लिए स्थानीय भाषाओं और संस्कृतियों का सम्मान आवश्यक है।
- स्थानीय संदर्भों को जोड़कर हिंदी-शिक्षण को सरल और स्वीकार्य बनाना चाहिए।
- संवादात्मक हिंदी को प्रोत्साहन देना है; शुद्ध साहित्यिक हिंदी की नहीं, बल्कि व्यावहारिक हिंदी की आवश्यकता है।

21वीं सदी के दूसरे दशक में डिजिटल शिक्षा ने भारतीय शिक्षा-व्यवस्था को एक नया आयाम दिया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के तहत देशभर में ऑनलाइन शिक्षा, ई-कंटेंट और तकनीकी शिक्षण साधनों का विस्तार हुआ है। पूर्वोत्तर भारत के संदर्भ में यह एक अवसर भी है और चुनौती भी। इस क्षेत्र में हिंदी, जो संपर्क भाषा के रूप में उभर रही है, डिजिटल शिक्षा के माध्यम से नई संभावनाएँ लेकर आई है। पूर्वोत्तर भारत में डिजिटल शिक्षा की संभावनाएँ इस प्रकार हैं –

1. डिजिटल शिक्षा की स्थिति में सुधार

- इंटरनेट की पहुँच में सुधार : BSNL, Jio, Airtel जैसी कंपनियों द्वारा 4G विस्तार के कारण इंटरनेट सुविधा में तेज़ी आई है, विशेषकर शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में।
- सरकारी प्रयास : दीक्षा (DIKSHA), ई-विद्या, स्वयम्, एनसीईआरटी पोर्टल आदि के माध्यम से सरकार ने शैक्षिक सामग्री को डिजिटल रूप में उपलब्ध कराया है।
- कोविड-19 महामारी के बाद से मोबाइल फ़ोन व डिजिटल उपकरणों का उपयोग छात्रों और शिक्षकों में बढ़ा है।
- कई जनजातीय समुदायों के बीच हिंदी एक मध्यवर्ती भाषा बन चुकी है, जिससे हिंदी में डिजिटल शिक्षा अधिक सुलभ होती जा रही है।
- सोशल मीडिया, फ़िल्में, मोबाइल एप्स और ऑनलाइन गेमिंग के ज़रिए हिंदी भाषिक संप्रेषण में वृद्धि हुई है।

2. हिंदी डिजिटल शिक्षा के अवसर

- उपलब्ध हिंदी सामग्री की भरमार : NCERT, NIOS, और DIKSHA प्लेटफ़ॉर्म पर हिंदी में बड़ी मात्रा में शैक्षिक सामग्री मौजूद हैं।
- यूट्यूब, BYJU'S, Unacademy, Khan Academy जैसे डिजिटल मंचों पर हिंदी में पाठ उपलब्ध हैं।
- प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के लिए हिंदी में ढेरों ऑनलाइन कोर्सेस और वीडियो उपलब्ध हैं, जिससे पूर्वोत्तर के हिंदी जानने वाले छात्रों को लाभ होता है।
- छात्रों के लिए हिंदी में उपलब्ध डिजिटल सामग्री UPSC, SSC, बैंकिंग आदि परीक्षाओं की तैयारी में उपयोगी सिद्ध हो रही है।

हिंदी की डिजिटल शिक्षा संबंधी चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं -

- स्थानीय भाषाओं में अनुवादित डिजिटल सामग्री की कमी। कई छात्रों की पहली भाषा हिंदी नहीं है, जिससे समझने में बाधा होती है।
- हिंदी की शुद्ध साहित्यिक शैली को समझना कठिन होता है।
- कई दूरस्थ इलाकों में इंटरनेट कनेक्टिविटी कमज़ोर है, विशेषकर अरुणाचल प्रदेश, मिज़ोरम, नागालैंड और मेघालय के सीमांत क्षेत्रों में।
- स्मार्टफ़ोन और डिजिटल उपकरणों की उपलब्धता सीमित है।
- आर्थिक कारणों से डिजिटल शिक्षा का लाभ सभी तक पहुँच नहीं पाता।
- ग्रामीण और जनजातीय क्षेत्रों में कई शिक्षकों और अभिभावकों को डिजिटल उपकरणों के उपयोग का प्रशिक्षण नहीं मिला है।

हिंदी में ई-लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म्स का उपयोग तभी संभव है जब बुनियादी डिजिटल कौशल हो। केंद्रीय हिंदी संस्थान (गुवाहाटी केंद्र) द्वारा ऑनलाइन हिंदी-शिक्षण की पहल हो रही है। DIKSHA पर त्रिभाषा सामग्री के प्रयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है, जिसमें स्थानीय भाषा + हिंदी + अंग्रेज़ी के मिश्रण से लर्निंग कंटेंट उपलब्ध कराया जा रहा है। नीति आयोग और डिजिटल इंडिया द्वारा पूर्वोत्तर के लिए विशेष योजनाएँ बनाई गई हैं, जैसे – 'उत्तर-पूर्व डिजिटल साक्षरता अभियान'। अतिरिक्त प्रयास अपेक्षित हैं। हिंदी में स्थानीय संदर्भों से जुड़ी डिजिटल सामग्री विकसित की जा सकती है, जैसे बोडो, मिज़ो, खासी, मणिपुरी समुदायों से जुड़े उदाहरणों के साथ हिंदी-शिक्षण की सामग्री। स्थानीय छात्रों को हिंदी में कंटेंट-निर्माण के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है (यू-ट्यूब चैनल्स, पॉडकास्ट्स आदि)। साथ ही, स्कूलों में ICT लैब्स की स्थापना कर हिंदी डिजिटल शिक्षा को मज़बूती दी जा सकती है।

नई शिक्षा नीति (National Education Policy - 2020) ने देश भर में भाषा की शिक्षा को लेकर महत्त्वपूर्ण बदलाव प्रस्तावित

किए हैं, जिनका प्रभाव पूर्वोत्तर भारत के हिंदी-शिक्षण पर विशेष रूप से देखा जा सकता है।

नई शिक्षा नीति 2020 को पूर्वोत्तर भारत में लागू करने की चुनौतियाँ इस प्रकार हैं -

(1) मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा की शर्त :

- यदि हिंदी को प्राथमिक शिक्षा से हटाया जाता है, तो हिंदी-शिक्षण और पढ़ाई की आयु बढ़ सकती है, जिससे छात्र हिंदी से दूर हो सकते हैं।
- हिंदी शिक्षकों की कमी के चलते नीति का क्रियान्वयन व्यवहार में जटिल हो सकता है।

(2) सामाजिक और राजनीतिक विरोध :

- हिंदी को ज़बर्दस्ती लागू करने की आशंका के चलते पूर्वोत्तर में छात्र संगठनों व राजनीतिक दलों का विरोध संभव है।
- भाषाई पहचान को लेकर सजग समुदाय हिंदी को सांस्कृतिक वर्चस्व के प्रतीक के रूप में देख सकते हैं।

(3) स्थानीय भाषाओं और हिंदी के बीच संतुलन की चुनौती :

- स्थानीय भाषाओं को प्राथमिकता देना हिंदी के प्रसार के लिए एक सीमा बन सकता है।

पूर्वोत्तर भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में नई शिक्षा नीति 2020 का हिंदी-शिक्षण पर भिन्न प्रभाव है। असम में हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में व्यापक रूप से पढ़ाया जाता है। मिज़ोरम और नागालैंड में नीति की अनिवार्यता न होने से हिंदी-शिक्षण में लचीलापन है। त्रिपुरा में बंगाली और हिंदी दोनों भाषाएँ प्रचलित हैं। मणिपुर और अरुणाचल प्रदेश में स्थानीय भाषा के साथ हिंदी के सह-अस्तित्व की संभावनाएँ हैं, परंतु शिक्षक प्रशिक्षण की कमी चिंता का विषय है।

पूर्वोत्तर भारत में नई शिक्षा नीति के आधार पर हिंदी-शिक्षण को बढ़ावा देने के लिए निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देना समीचीन होगा -

- त्रिभाषा-सूत्र को लचीले रूप में लागू करना। नीति में कहा गया है कि त्रिभाषा-सूत्र राज्यों के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में लागू किया जाएगा। इससे राज्यों को यह स्वतंत्रता मिलती है कि वे हिंदी को तृतीय भाषा के रूप में स्वीकार करें।
- मातृभाषा/स्थानीय भाषा में प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करना। (कक्षा 5 या संभवतः 8 तक)।
- हिंदी, अंग्रेज़ी और स्थानीय भाषा के संतुलित प्रयोग को बढ़ावा देना।
- भाषा-शिक्षण को संवादात्मक, व्यावहारिक और बहुभाषिक बनाने पर ज़ोर देना।
- व्याकरण-केंद्रित अध्ययन से हटकर संवाद-केंद्रित शिक्षण करना, जो छात्रों को रोज़गार और प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए तैयार करे।

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी-शिक्षण एक संवेदनशील और बहुआयामी मुद्दा है। इसे केवल भाषा के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से समझने की आवश्यकता है। हिंदी का शिक्षण जब स्थानीय भाषाओं के साथ सह-अस्तित्व और सम्मान के भाव के साथ किया जाएगा, तभी यह पूर्वोत्तर भारत के सभी क्षेत्रों में स्वीकार्य और प्रभावी बन पाएगा।

संदर्भ-सूची :

1. नाग, सुनील कुमार, "पूर्वोत्तर भारत में भाषायी अस्मिता और हिंदी-शिक्षण", 2022, भाषा-विज्ञान पत्रिका
2. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT), "हिंदी-शिक्षण की स्थिति रिपोर्ट – पूर्वोत्तर भारत", 2020
3. शर्मा, अशोक, "पूर्वोत्तर भारत में भाषिक विविधता और हिंदी", 2019, शिक्षा विमर्श
4. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, "नई शिक्षा नीति 2020 : संक्षिप्त व्याख्या"
5. यूनेस्को भाषायी सर्वेक्षण रिपोर्ट, भारत 2021

bindk.80@gmail.com

हिंदी-सेवी : व्यक्ति एवं संस्था

1. अद्भुत हिंदी सेवी - कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी - श्री सुरेश कुमार श्रीचंदानी

2. दक्षिण अफ़्रीका में प्रवासी भारतीयों और हिंदी भाषा के संरक्षक - भवानी दयाल संन्यासी - डॉ. दीप्ति अग्रवाल

3. वैश्विक हिंदी अभियान के अथक साधक : डॉ. शैलेश शुक्ला - डॉ. अमित मिश्र

4. हिंदी की साधिका : डॉ. वंदना मुकेश - शालिनी वर्मा

5. खड़ी बोली के विकास में फ़ोर्ट विलियम कॉलिज का योगदान - उमेश दत्त तिवारी

अद्‌भुत हिंदी सेवी - कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी

- श्री सुरेश कुमार श्रीचंदानी
राजस्थान, भारत

राजस्थान की हिंदी पत्रकारिता और हिंदी सेवा के इतिहास में हिंदी पत्रकारिता के माध्यम से हिंदी की सेवा करने वाले अजमेर में हिंदी पत्रकारिता के पुरोधा कप्तान श्री दुर्गाप्रसाद चौधरी का नाम गरिमामयी स्वरूप में दर्ज है। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, अनेकानेक गुणों की खान, राष्ट्रीयता और गांधीवादी विचारधारा के स्वतन्त्रता सेनानी कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी एक व्यक्ति, एक संस्था न होकर अपने आप में एक युग थे। उनके द्वारा जिस दैनिक समाचार-पत्र 'दैनिक नवज्योति' के पौधे का रोपण 18 दिसम्बर 1936 को किया गया, वह लगभग नौ दशक पूरा करते-करते ऐसे विशाल वटवृक्ष का रूप ले चुका है, जो आगामी कई पीढ़ियों के लिए प्रेरणापुंज बना रहेगा।

निर्भीक स्वतन्त्रता सेनानी, हिंदी पत्रकार और हिंदी सेवी कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी का जन्म राजस्थान की छावनी नीम के थाने (तत्कालीन जयपुर स्टेट) में 18 दिसम्बर 1906 को हुआ था। उनके पिता मुरलीधर चौधरी वकालत किया करते थे। कप्तान साहब के परिवार में पाँच भाई और तीन बहनें थीं। भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम में इस परिवार के दो भाइयों सहित परिवार की महिलाओं का भी महत्त्वपूर्ण योगदान था। कप्तान साहब की दिवंगत भाभी और उनकी धर्मपत्नी स्वर्गीय विमला देवी चौधरी ने भी स्वतन्त्रता-संग्राम में कई बार जेल यात्राएँ कीं। कप्तान साहब ने नीम का थाना में ही जयपुर के जैन वर्धमान विद्यालय में प्रारम्भिक अध्ययन किया था। 1915 में साम्भर, 1916 में सेठों के रामगढ़ शेखावटी तथा 1917 से 1919 तक कानपुर के नेशनल हाई स्कूल में अध्ययन किया। जयपुर तथा कानपुर के विद्यालयों में देश-भक्ति कूट-कूट कर भरी जाती थी। देशभक्ति सहित उन्होंने हिंदी, अंग्रेज़ी और उर्दू भाषाओं का ज्ञान अर्जित किया और माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण की। 13 अप्रैल, 1919 को बैशाखी के दिन हुए जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड को लेकर गांधी जी ने जब ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन के अन्तर्गत स्कूल छोड़ देने का आह्वान किया, तब कप्तान साहब ने भी स्कूल छोड़ दी और कानपुर से ज्येष्ठ भ्राता छगनलाल जी के पास खण्डवा आ गए एवं 1924 तक उन्होंने गांधी जी के आह्वान पर आयोजित भिन्न-भिन्न देशभक्ति कार्यक्रमों में भाग लिया। कुछ समय तक अकोला में एक कपड़ा मिल में सेवारत रहकर देशभक्ति के कार्यों को अंजाम दिया। 1928 में अपने पिताश्री के साथ नीम का थाना में रहकर वकालत-कार्य करने लगे थे। माता-पिता का साया सिर से उठ जाने के बाद वे घर-बार छोड़कर 1930 में अजमेर आ गए थे। उन्होंने अजमेर में 1930 से 1947 तक कांग्रेस सेवा दल में 'कप्तान' पद धारण कर स्वतन्त्रता-संग्राम का संचालन किया और देशभक्ति के अनेकानेक कार्यक्रमों में बढ़-चढ़कर भाग लिया। इसी कारण से वे 'कप्तान' कहलाए जाने लगे।

कप्तान साहब की समग्र जीवन-शैली गांधीवाद से ओत-प्रोत रही। गांधी-दर्शन में हिंदी के प्रति गहन प्रेम और गहन चिन्तन के दर्शन यत्र, तत्र और सर्वत्र हो जाते हैं। गांधी जी ने हिंदी को अपने 18 सूत्रीय रचनात्मक कार्यों में विशेष रूप से शामिल किया था। कप्तान साहब ने राजस्थान के डूंगरपुर ज़िले में आदिवासियों के बीच जो सेवा-कार्य किए, उनमें भी गांधीवाद की झलक मिलती है। कप्तान साहब ने गांधी जी के कई गुणों को आत्मसात किया था। वे शराबबन्दी के समर्थक थे। उन्होंने एक बार न्यायालय के कठघरे में खड़े-खड़े ही महात्मा गांधी की जय का नारा बुलन्द किया, ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कही बातों को अडिगतापूर्वक दोहराया और प्रसन्नतापूर्वक जेल की सज़ा भुगतने को तैयार रहे। यह भी कहा जाता है कि कप्तान साहब की लेखनी भी अद्‌भुत रही थी। महात्मा गांधी की लेखनी जैसी थी, कप्तान साहब की लेखनी भी उसी शैली में चलती थी।

राष्ट्रीयता को केन्द्र में रखकर कप्तान साहब की 'बिजौलिया आन्दोलन' में सक्रियता रही एवं उन्होंने सामंतों और अंग्रेज़ों के विरुद्ध सार्थक जनमत का जागरण किया। हरिजनों, आदिवासियों और पिछड़े वर्गों के कल्याण के कई कार्य किए। महिलाओं में राष्ट्रीयता की भावना जगाई। हिंदी भाषा में प्रकाशित होने वाले 'दैनिक नवज्योति' के माध्यम से राष्ट्रीय भावना जगाने और राष्ट्रीय क्रान्ति का आलोक फैलाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। जेल-यात्रा के दौरान तिरंगे झण्डे का अभिवादन, राष्ट्रगान तथा वन्दे मातरम के गायन में बाधा उत्पन्न करने का खुला विरोध कप्तान साहब ही डंके की चोट पर किया करते थे। दूसरे महायुद्ध के बाद राष्ट्रीय शक्तियाँ गांधी जी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता यज्ञ के लिए अधिक सक्रिय हुईं, तो

उनमें कप्तान साहब की आहुति भी थी। कप्तान साहब के नेतृत्व में 'दैनिक नवज्योति' समाचार-पत्र राष्ट्रीयता से ओतप्रोत गांधीवादी विचारधारा को व्यावहारिक रूप देने की भूमिका अब तक भी बखूबी निभाता आ रहा है।

राष्ट्रीयता का महत्त्वपूर्ण प्रतीक हिंदी भाषा और गांधी-दर्शन के प्रमुख कार्यक्रम हिंदी भाषा के संवर्धन को कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी ने अंगीकृत किया और अपने इस राष्ट्रीय कर्त्तव्य का बखूबी पालन किया। नवम्बर 2005 में राजस्थान सरकार के भाषा एवं पुस्तकालय विभाग के तत्कालीन प्रभारी शिक्षा मंत्री श्री घनश्याम तिवारी (अब राज्यसभा सदस्य) को जब यह सूचना मिली कि अजमेर के 'दैनिक नवज्योति' समाचार-पत्र का प्रकाशन समूह 18 दिसम्बर 2005 को स्वर्गीय कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी का जन्मशती वर्ष मनाने जा रहा है, तब उन्होंने अपने स्तर पर विचार किया कि इस जन्मशती वर्ष को मनाने की पहल क्यों नहीं राजस्थान सरकार के शिक्षा मंत्रालय के अन्तर्गत हो, क्योंकि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पत्रकारिता के अपने जीवन में स्वर्गीय कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी ने समाचार-पत्र निकालकर आजीवन हिंदी की महती सेवा की है और उन्होंने ठीक उसी समय यह निर्णय भी ले लिया कि स्वर्गीय कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी के जन्मशती वर्ष को शिक्षा विभाग के अधीन आने वाले भाषा (हिंदी) एवं पुस्तकालय विभाग के द्वारा मनाया जाएगा। इसी अनुक्रम में स्वयं शिक्षा मंत्री ने पहल करके 'दैनिक नवज्योति' के प्रधान सम्पादक श्री दीनबन्धु चौधरी को यह सूचना दी तथा दूरभाष पर संवाद किया। शिक्षा मंत्री ने कहा कि राजस्थान सरकार की मंशा है कि स्वर्गीय कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी के जन्मशती वर्ष को धूम-धाम से मनाया जाए। इसके लिए हमें 'दैनिक नवज्योति' परिवार का सहयोग मिलना चाहिए। तत्कालीन शिक्षा मंत्री श्री घनश्याम तिवारी के अनुसार उन्हें नहीं लगता कि स्वर्गीय कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी के जन्मशती वर्ष को मनाने का निर्णय लेकर हमने कोई बहुत बड़ा कार्य किया है। जिस व्यक्तित्व ने आजीवन हिंदी की सेवा करते-करते, पत्रकारिता के आदर्श सरोकारों के साथ समाज से अपनी संलग्नता बनाए रखी, जिसने स्वतन्त्रता-संग्राम में कठोर संघर्ष करके हमें स्वतन्त्रता की छाया में जीने का अवसर दिया, जिसने लोकतन्त्र के चौथे स्तम्भ के रूप में जनता-जनार्दन के हितों के लिए अपने समाचार-पत्र के माध्यम से सदैव आवाज़ बुलन्द की, उसकी स्मृति संजोकर कोई भी सरकार गर्व की ही अनुभूति करेगी।

राजस्थान सरकार के शिक्षा विभाग ने दिसम्बर 2005 में ही स्वर्गीय कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी के जन्मशती वर्ष को गरिमापूर्वक और समारोहपूर्वक मनाए जाने का निर्णय कर लिया। इस निर्णय को व्यावहारिक रूप देने के लिए जन्मशती वर्ष समिति का गठन भाषा और पुस्तकालय विभाग के स्तर पर किया गया। इस समिति में स्वर्गीय कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी के सुपुत्र श्री दीनबन्धु चौधरी, वरिष्ठ पत्रकार श्री मिलापचन्द डंडिया, श्री सीताराम झालानी, पिंकसिटी प्रेस क्लब के अध्यक्ष एवं पत्रकार श्री एल.एल. शर्मा को मनोनीत कर भावी रूपरेखा और आयोजनों पर भी विचार किया गया। वास्तव में, ऐसा करने का मूल उद्देश्य यह रहा था कि ऐसे आयोजन वर्ष पर्यन्त चलते रहें, जिससे कि नई पीढ़ी को स्वर्गीय कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में समग्र जानकारी मिलती रहे और ऐसा करने से स्वर्गीय कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी के आदर्शों और नैतिक मूल्यों का प्रसार किया जा सके।

जन्मशती वर्ष के अन्तर्गत शिक्षा विभाग की ओर से राजस्थान राज्य के सभी विद्यालयों में स्वर्गीय कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर राज्यस्तरीय भाषण-प्रतियोगिताओं का आयोजन विशेष रूप से किया गया। स्थान-स्थान पर स्वर्गीय कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी से जुड़ी यादों को संजोने के लिए अन्य आयोजनों का सिलसिला भी निरन्तर चलता रहा। तत्कालीन शिक्षा मंत्री श्री घनश्याम तिवारी के अनुसार इस बात की सुखद अनुभूति है कि राज्य सरकार की इस पहल को सभी स्तरों पर सराहा गया। 'दैनिक नवज्योति' की सफलतम 70 (अब 90) वर्षों की यात्रा के बारे में मैं सोचता हूँ कि इस समाचार-पत्र का प्रकाशन जीवटता-भरा कार्य है।

जयपुर के सुप्रसिद्ध भाषाविद् तथा हिंदी और संस्कृत के विद्वान श्री कलानाथ शास्त्री के अनुसार जब 21 मार्च 1987 को हमारे विभाग (भाषा विभाग) एवं 'भारतीय हिंदी संस्था' के संयुक्त तत्त्वावधान में 'हिंदी के भविष्य' पर एक संगोष्ठी हुई, जिसमें विधि मन्त्रालय के संयुक्त सचिव, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों तथा राज्य के प्रबुद्ध विद्वानों एवं विधिवेत्ताओं ने भाग लिया, तब कप्तान साहब के हिंदी समर्थक विचारों के कारण हम सबकी यह इच्छा थी कि उनसे ही इस संगोष्ठी का उद्घाटन कराया जाए, किन्तु वे अजमेर गए हुए थे और संगोष्ठी की दिनांक के भी दो दिन बाद ही उनके लौटने का कार्यक्रम था। अतः हम निराश हो गए। संगोष्ठी का आयोजन 21 मार्च 1987 को ही होने पर इसका उद्घाटन न्यायमूर्ति श्री गुमानमल लोढ़ा ने किया तथा संगोष्ठी में हिंदी पर गहरा विचार-विमर्श शुरू हुआ। इसी बीच कप्तान साहब अचानक आते हुए दिखाई दिए। हम सब बहुत हर्षित हो गए। सम्भवतः अजमेर में

उन्हें यह सूचना मिली हो कि एक संगोष्ठी हिंदी पर हो रही है और उनके बाहर होने के कारण आयोजक संगोष्ठी के साथ उनका नाम नहीं जोड़ पा रहे हैं। इसी कारण सम्भवतः उन्होंने अजमेर से अपना कार्यक्रम बदलते हुए इस अवसर पर आना उचित समझा और वे चैम्बर भवन पहुँच गए, जहाँ पर संगोष्ठी हो रही थी। कप्तान साहब ने न केवल अधिकांश समय संगोष्ठी में भाग लिया, अपितु अपने जोशीले विचार हिंदी के पक्ष में रखकर उन्होंने हिंदी की वकालत की और आजकल की इंग्लिस्तानी संस्कृति से प्रभावित होकर हिंगलिश के उपयोग की संकर संस्कृति के विरोध में ज़ोर-शोर से विचार व्यक्त किए। उनमें मिशनरी-कार्य के प्रति लगन और तीव्रता विपुल मात्रा में विद्यमान थी।

विद्वान लक्ष्मीनारायण खण्डेलवाल के अनुसार स्वतन्त्र भारत में हिंदी पत्रकारिता के इतिहास की जब भी चर्चा होगी, तब कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी का नाम सदैव स्मरण किया जाएगा। वर्ष 1936 से श्री रामनारायण चौधरी ने अलवर के राष्ट्रीय कार्यक्रमों को प्रकाशित कर जनमानस के मनोबल को ऊँचा उठाया था और 'दैनिक नवज्योति' समाचार-पत्र के माध्यम से जो सेवा कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी ने अब तक सात (अब नौ) दशकों तक की है, दीर्घ अवधि में स्वतन्त्रता-आन्दोलन में हिंदी भाषी जनमानस को सचेत करने, उनमें साहस एवं राष्ट्रीय भावना उत्पन्न करने, परस्पर बन्धुत्व का वातावरण बनाने के जिस उत्तरदायित्व का निर्वहन 'दैनिक नवज्योति' के माध्यम से किया है, यह उनके अदम्य साहस, उज्ज्वल चरित्र, दृढ़ विचारशीलता, आत्म-नियन्त्रण की भावना, सच्ची लगन, राष्ट्र के प्रति सेवा-भावना और मानवता के प्रति प्रेम का अद्वितीय उदाहरण है।

कप्तान दुर्गा प्रसाद चौधरी किस माटी से बने हुए थे, इसका कुछ अनुमान अजमेर में पदासीन रह चुके उस ब्रिटिशकालीन अंग्रेज़ कप्तान की गोपनीय टिप्पणी से लगाया जा सकता है -

"He is a different class. Can neither be purchased nor exploited. Is against British, but if we look from a different point of view objectively, he's a true patriot."

"वह भिन्न प्रकार की श्रेणी का है। न खरीदा जा सकता है और न उपयोग में लाया जा सकता है। ब्रिटिश विरोधी है, किन्तु यदि हम अन्य दृष्टिकोण के साथ निष्पक्ष रूप से देखें, तो वह एक सच्चा देशभक्त है।"

एक बार जब कप्तान साहब के समक्ष यह प्रश्न रखा गया कि राजस्थान में हिंदी पत्रकारिता का क्या भविष्य है, तो उनका उत्तर था कि राजस्थान में हिंदी पत्रकारिता आगे ही बढ़ेगी, लेकिन पूँजीपतियों के अखबार यहाँ आएँगे, तो यहाँ के स्वतन्त्र अखबारों को नुकसान पहुँचेगा। गरीब जनता को भी नुकसान पहुँचेगा - क्योंकि पूँजीपति का अखबार तो पूँजीपति की सिफ़ारिश करेगा और जो स्वतन्त्र अखबार हैं, वे गरीबों का पक्ष लेंगे। इस टकराव से गरीबों और मध्यमवर्गीय लोगों की हानि होगी। पूँजीपतियों के अखबारों का उद्देश्य है, धन कमाना और अपने उद्योगों का संरक्षण करना।

हिंदी के समाचार-पत्रों के समक्ष क्या समस्याएँ हैं ? यह प्रश्न उठाए जाने के उत्तर में उनका कहना था कि उनकी आर्थिक स्थिति उतनी अच्छी नहीं है, जितनी अंग्रेज़ी के समाचार-पत्रों की है। सरकार भी अंग्रेज़ी के समाचार-पत्रों को अधिक महत्त्व और विज्ञापन देती है, हालाँकि हिंदी के पत्रों के पाठक ज़्यादा हैं।

यह प्रश्न किया गया कि क्या कारण है कि कोई भी हिंदी दैनिक अंग्रेज़ी पत्रों की तरह अधिक पृष्ठों को नियमित रूप से नहीं निकालता है, जबकि अंग्रेज़ी अखबारों की पृष्ठ संख्या चौबीस तक है ? इसका उत्तर देते हुए उनका कहना था कि एक तो हिंदी के पत्रों के पास इतना पैसा नहीं है, दूसरे उनको विज्ञापन कम मिलते हैं। उद्योगपति ज्यादातर अंग्रेज़ी अखबारों को ही विज्ञापन देते हैं। हिंदी अखबारों को बहुत कम विज्ञापन मिलते हैं। दूसरा प्रश्न किया गया कि हिंदी पत्रों में साठ प्रतिशत विज्ञापन और चालीस प्रतिशत सामग्री होती है। कम पृष्ठ होते हैं। पाठक को अधिक समाचार नहीं मिल पाते हैं, इस सम्बन्ध में आप क्या कहना चाहते हैं ? उनका उत्तर था कि हिंदी पत्रों में विज्ञापन कम और सामग्री अधिक होती है। अंग्रेज़ी अखबारों में स्थिति इसके विपरीत होती है।

पत्रकारिता के बारे में कप्तान साहब की अपनी विचारधारा और आदर्श थे। उनका कहना था कि गलत काम अगर मुझसे हुआ हो, तो बिना किसी हिचक, बिना किसी भय के उसको पाठक के सामने लाया जाना चाहिए। एक बार एक घोर दुविधा की स्थिति उत्पन्न हुई। राजस्थान सरकार के मुख्यमंत्री स्वर्गीय बरकतुल्लाह खान के कार्यकाल में राजकीय कर्मचारियों की हड़ताल की समस्या उत्पन्न हुई। उस समय 'नवज्योति' की सम्पादकीय नीति सत्ताधारी दल को समर्थन देने की थी। इसी सन्दर्भ में 'नवज्योति' के एक कार्मिक ने कप्तान साहब से जानना चाहा कि अब क्या किया जाना चाहिए, तो कप्तान साहब ने एकदम ही कहा - "कर्मचारी अपने अधिकारों के लिए हड़ताल कर रहे है, हम उनके संघर्ष में पूरी तरह उनके साथ हैं ।" इसका परिणाम यह हुआ कि 'नवज्योति' ने कर्मचारी हड़ताल का डटकर समर्थन किया। भले ही इसी कारण से सरकार से मिलने वाले विज्ञापन बन्द हो गए और कप्तान साहब

को भारत सुरक्षा कानून में गिरफ़्तार करने की धमकियाँ तक दी गईं, लेकिन वे अपने निर्णय पर अडिग रहे। कुछ प्राप्त करने के लिए नीतियों का निर्धारण तो कोई भी कर सकता है, लेकिन जब उस पर दृढ़ रहने के दौरान कुछ कीमत चुकाने या त्याग करने की स्थिति बनती है, तब अपने ही बनाए हुए आदर्श पर कायम रहना ही असली परीक्षा की घड़ी होती है, उसमें सफलतापूर्वक गुज़रने का परिचय देना कप्तान साहब की ही अडिगता रही।

हिंदी की महती सेवा के रूप में अजमेर, जयपुर, कोटा, जोधपुर और उदयपुर से प्रकाशित होने वाला और अंकीय (डिजिटल) रूप में भी प्रकाशित होने वाला 'दैनिक नवज्योति' समाचार-पत्र अखण्ड ज्योति के समान प्रकाशमान है, वह कई झंझावातों और तूफ़ानों का सामना कर सतत गति को प्राप्त कर पाया है। "फूँकने निष्प्राणों में प्राण, कराने दुखितों को निज भान, जगाने को आई 'नवज्योति', जनों में त्याग और बलिदान।" - इस ध्येय वाक्य को संजोने वाला 'दैनिक नवज्योति' समाचार-पत्र, जिसने आरम्भ में नवजागरण और नवजीवन का शंखनाद किया था, उसे आरम्भ करने वालों ने यह कल्पना नहीं की होगी कि वह चिरस्थायी रूप से हिंदी और मानवता की सेवा करता रहेगा। वह लगभग नौ दशकों से हिंदी पत्रकारिता के स्वस्थ मूल्यों का निर्वहन करता आ रहा है।

राजनीतिक पराधीनता के युग में हिंदी पत्रकारिता ने अदम्य साहस और अनूठे संघर्ष से देश को विदेशी दासता से मुक्ति दिलाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। स्वतन्त्रता-आन्दोलन के दौरान देश में समाचार-पत्रों और पत्रकारों ने सक्रिय सहयोग प्रदान कर क्रान्तिकारी विचारधारा को विस्तार दिया। देश की वैचारिक चेतना को मज़बूत करते हुए, इतिहास का गौरव गान करते हुए भारतीयों को अपनी संस्कृति के प्रति आस्तिक बनाने एवं देश की एकता तथा अखण्डता एवं स्वतन्त्रता के प्रति समर्पित हो जाने के लिए अभिप्रेरित करने में पत्रकारिता की विशेष भूमिका रही है। ऐसी ही मिशनरी पत्रकारिता में 'नवज्योति' तथा इससे सम्बद्ध श्री रामनारायण चौधरी एवं कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी का नाम ससम्मान लिया जाता है। 'नवज्योति' का प्रकाशन यद्यपि श्री रामनारायण चौधरी के सम्पादन में साप्ताहिक के रूप में हुआ था, लेकिन कुछ ही वर्षों के बाद उन्होंने इसके समस्त दायित्व अपने भाई कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी को सौंप दिए। कप्तान साहब के नेतृत्व में वर्ष 1948 में नवज्योति साप्ताहिक के बजाय दैनिक के रूप में प्रकाशित होने लगा। 'नवज्योति' के माध्यम से कप्तान साहब ने अपने पत्रकार धर्म का पालन करते हुए तथा प्रदेश की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थितियों का गहन विश्लेषण करते हुए अपने पाठकों का मार्गदर्शन करने के साथ-साथ नीति निर्धारकों को भी दिशा बोध दिया।

'नवज्योति' की स्थापना एक उद्योग के रूप में नहीं हुई थी, एक आन्दोलन के रूप में हुई थी। 'नवज्योति' के रूप में शुरू हुआ एक अकेले व्यक्ति का यह आन्दोलन तत्कालीन विराट राष्ट्रीय आन्दोलन का ही भाग बना। स्वतन्त्रता के बाद भी 'नवज्योति' ने सर्वहारा का साथ नहीं छोड़ा। इसीलिए इसे जेल, नज़रबन्दी, ज़मानत, ज़ब्ती, कुर्की, कर्ज़भार और श्रमिक उपद्रव आदि विपरीत स्थितियों के प्रति संघर्षरत भी रहना पड़ा था।

कप्तान साहब के बारे में यह भी उल्लेखनीय है कि उन्होंने भारतीय संस्कृति और हिंदी पत्रकारिता जगत् विषयक कई शोधपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करने के लिए अपने निजी व्यय पर विदेशों की यात्राएँ कीं और उन यात्राओं के प्रेरक और प्रभावशाली संस्मरणों से 'नवज्योति' के पाठकों को अवगत कराया।

कप्तान साहब के द्वारा हिंदी भाषा में प्रस्तुत किए गए अनेकानेक ओजस्वी भाषण उल्लेखनीय हैं। उनमें शामिल हैं – 'हिंदी पाक्षिक' किसान धाम के विमोचन-समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में सम्बोधन, दिनांक 16 फ़रवरी, 1983 को स्वामी गोपालदास जन्म शताब्दी और स्वतन्त्रता सेनानी अभिनन्दन-समारोह चुरू में मुख्य अतिथि के रूप में सम्बोधन, हिंदी पाक्षिक 'विश्व वाणिज्य' के विमोचन के अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में सम्बोधन, राजस्थान शिक्षक संघ - रजत जयन्ती सम्मेलन जयपुर में अध्यक्षीय सम्बोधन, चांदकरण शारदा जन्म जयन्ती पर अध्यक्षीय भाषण, गुलाबपुरा शिशु सदन में सम्बोधन, सर्व धर्म अंतरराष्ट्रीय ज्योतिष सम्मेलन में सम्बोधन आदि।

गांधी जयन्ती 02 अक्तूबर 1936 को 'नवज्योति' साप्ताहिक आकार में प्रकाशित होना शुरू हुआ। 1948 में यह पत्र साप्ताहिक से दैनिक बना। दिसम्बर 1960 में जयपुर से 'नवज्योति' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। 19 जुलाई 1981 में इसका कोटा संस्करण प्रारम्भ हुआ। 14 जून 2004 में जोधपुर संस्करण प्रारम्भ हुआ। 27 दिसम्बर 2013 में उदयपुर संस्करण प्रारम्भ हुआ। डिजिटल युग में इसका अंकीय संस्करण भी निकल रहा है।

कप्तान साहब की असाधारण सेवाओं, त्याग और अनेक क्षेत्रों में दिए गए योगदान तथा समय-समय पर निभाई गई अनेक भूमिकाओं तथा 1941 से 1992 तक लगभग अर्द्धशतकीय वर्षों तक हिंदी पत्रकारिता के माध्यम से हिंदी की सेवा पर राष्ट्र और समाज के द्वारा प्रकट की गई कृतज्ञता में शामिल है : 1974 में स्वतन्त्रता सेनानी ताम्र पत्र (राजस्थान दिवस 30 मार्च) पर सम्मान, राजस्थान

सरकार के द्वारा उनका जन्मशती वर्ष (1987) राजकीय स्तर पर मनाना, भारत सरकार के डाक विभाग के द्वारा पाँच रुपये का डाक टिकट जारी करना (31 जुलाई 2012) तथा राजस्थान साहित्य अकादमी के द्वारा दिनांक 22/03/1987 को लोकाभिनन्दन करना और प्रशस्ति-पत्र देना। इसके अतिरिक्त उन्हें महाराणा मेवाड़ फ़ाउंडेशन, भरतपुर में लॉयन्स क्लब, नवलगढ़ लॉयन्स क्लब, राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री हरिदेव जोशी, राजस्थान के राज्यपाल जोगेन्द्रसिंह, अजमेर में सुधार सभा (एक परोपकारिणी संस्था), दिल्ली में रामलीला के अवसर पर चितौड़गढ़ में पत्रकारों के द्वारा तथा राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह के द्वारा सम्मानित किया गया।

कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी के द्वारा हिंदी की सेवा के क्षेत्र में दिए गए योगदान का आकलन राष्ट्र और समाज निरन्तर चलते रहने वाली प्रक्रिया के रूप में करता रहेगा, लेकिन 'दैनिक नवज्योति' समाचार-पत्र के 75 वर्ष पूरे होने पर नवज्योति परिवार के द्वारा भी कप्तान साहब के नाम से 'हिंदी सेवा सम्मान' हिंदी के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने वाली शख्सियत को दिया जाता है। कुछ वर्षों से 'अखिल भारतीय कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी हिंदी सम्मान' भी गणतन्त्र- दिवस पर दिया जाता रहा है और इसी दिन 'देश राग' नाम से एक भव्य कार्यक्रम और कवि-सम्मेलन का आयोजन किया जाता रहा है। वर्ष 2025 में 'अखिल भारतीय कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी हिंदी सम्मान - 2025' महाभारत टी. वी. धारावाहिक में श्रीकृष्ण की भूमिका निभाने वाले अभिनेता, अभिप्रेरण जगाने वाले वक्ता और पूर्व सांसद डॉ॰ नितीश भारद्वाज को प्रदान किया गया और दूसरा सम्मान 'नवज्योति काव्य कलश सम्मान - 2025' कोटा निवासी वरिष्ठ कवि कुंवर जावेद को प्रदान किया गया।

संदर्भ-सूची :

1. 'दैनिक नवज्योति' अजमेर में प्रकाशित अनेकानेक लेख और समाचार।
2. कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी अभिनन्दन ग्रन्थ, दैनिक नवज्योति कार्यालय, अजमेर
3. सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी (1973), प्रकाशक- ग्रंथागार (जोधपुर)
4. प्रोफ़ेसर मिश्रीलाल मांडोत (संपादक), कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी जीवनी (2002), ध्रुव प्रकाशन, रामगंज अजमेर
5. कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी का परिचय (अजमेर रेलवे स्टेशन मुख्य द्वार की दीवार पर अंकित

shrichandani3@gmail.com

दक्षिण अफ़्रीका में प्रवासी भारतीयों और हिंदी भाषा के संरक्षक - भवानी दयाल संन्यासी

- डॉ. दीप्ति अग्रवाल
नई दिल्ली, भारत

भवानी दयाल संन्यासी का नाम दक्षिण अफ़्रीका में बसे प्रवासी भारतीयों के लिए अनजाना नहीं है। वे उनके अधिकारों के लिए लड़ते हुए एक तरह से सभी देशों के गिरमिटियों की आवाज़ बन गए थे और उन्हीं के अथक प्रयासों से मदन मोहन मालवीय और गोपाल कृष्ण गोखले दक्षिण अफ़्रीका में रहने वाले भारतीयों की तकलीफ़ों के बाबत भारत में आवाज़ उठा पाए थे। दक्षिण अफ़्रीका में उस समय हिंदी और वैदिक शिक्षा के प्रचार और सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन में उन्होंने महती योगदान दिया। हम हिंदीभाषी, भारतवासी और प्रवासी भारतीय एवं उनके योगदान को भूलते हैं, तो यह हमारी कृतघ्नता और अज्ञानता है।

भवानी दयाल संन्यासी का जीवन केवल एक व्यक्ति का संघर्ष नहीं, बल्कि उस समूचे युग का प्रतिनिधित्व है, जब प्रवासी भारतीय अपनी पहचान और अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे थे। उनका जीवन तीन मुख्य आयामों पर केंद्रित था - सामाजिक सुधार, राजनीतिक चेतना और सांस्कृतिक संरक्षण। इन तीनों क्षेत्रों में उनका योगदान अतुलनीय है।

जन्म और प्रारंभिक जीवन

भवानी दयाल संन्यासी का जन्म 10 सितम्बर 1892 को जर्मिस्टन के गौतेंग में हुआ। उनके पिता का नाम जयराम था, जो भारत से गिरमिटिया मज़दूर के रूप में 1881 में दक्षिण अफ़्रीका गए थे और माता का नाम मोहिनी देवी था। मोहिनी देवी नाम के अनुरूप बहुत सुंदर थीं। वे विधवा थीं और किसी अराकाटी ने उन्हें बहला-फुसलाकर दक्षिण अफ़्रीका जाने के लिए डिपो में भेज दिया था। पानी के जहाज़ की यात्रा के दौरान ही उनकी भवानी के पिता से मुलाकात हुई थी और जब उन्हें पता चला कि वे दोनों एक ही क्षत्रिय जाति के हैं, तो वहाँ अपने शील की रक्षा और अनजान देश की भयावह कल्पना से डरकर उन्होंने भवानी के पिता के साथ जोड़ा बनाना बेहतर समझा।

भवानी का जन्म उनके माता-पिता के गिरमिट के पाँच वर्ष पूरे होने के भी कई वर्ष बाद हुआ। उनका बचपन बहुत आराम से बीता। उनकी प्रारंभिक शिक्षा जोहान्सबर्ग के संत सिप्रियाँ, वेस्लन और पंडित आत्मा राम नरसी राम व्यास के स्कूल में हुई, जहाँ अंग्रेज़ी, हिंदी और गुजराती पढ़ाई जाती थी। लेकिन जीवन का पहला पाठ उन्होंने अपनी माँ से सीखा। एक दिन वे स्कूल से भाग आए, तो माँ ने उन्हें कठोर दंड दिया और यह कहकर वापस स्कूल भेज दिया कि हम अशिक्षा और अज्ञानता के कारण ही तकलीफ़ पा रहे हैं और जीवन में भार उठा रहे हैं।

प्रारंभिक संघर्ष और चुनौतियाँ

1899 में जब भवानी छह साल के थे, तब एंग्लो-बोएर युद्ध छिड़ा। उसी वर्ष उनकी माँ की मृत्यु हो गई। छोटे भाई-बहन - देवीदयाल और राजरानी तो उस समय बिल्कुल ही अबोध थे। आर्थिक संकट के कारण उन्हें जोहान्सबर्ग छोड़कर डरबन जाना पड़ा। उस अस्थिरता के दौर में, तीन साल तक उन्होंने डरबन के विभिन्न क्षेत्रों जैसे - सिटी सेंटर, चिककोठी, बटरी प्लेस, कैटो मेनर आदि की खाक छानी।

1902 में बोएर रिपब्लिक की समाप्ति हुई और ट्रांसवाल और ऑरेंज फ़्री स्टेट ब्रिटिश राज के अधीन आ गए। बेशक बोएर युद्ध हार गए, लेकिन उनकी वीरता और जज़्बे से प्रभावित होकर भवानी ने देशभक्ति की भावना का संकल्प लिया। सोलह वर्ष की उम्र में उनका विवाह सखरा गाँव के रामनारायण राय की सुपुत्री जगरानी देवी से हो गया और दो वर्ष पश्चात् गौना हो गया।

उनके आदर्श और विचार बहुत दृढ़ थे। उन्होंने अपनी पत्नी के लिए भी बहुत स्पष्टवादिता से कहा था कि वे सुंदर थीं, लेकिन 'लिख लोढ़ा और पढ़ पत्थर' यानी अनपढ़ थीं। आर्य समाजी शुद्धि को लेकर भी उनका स्पष्ट मत था कि परंपरागत सनातनी हिन्दू को भी शुद्धि करवा कर ही आर्य समाज में प्रवेश मिलना चाहिए।

भारत गमन और कड़वे अनुभव

युद्ध जीतते ही ब्रिटिश सरकार ने अपना असली रंग दिखा दिया। उनके हाई कमिश्नर लॉर्ड मिलनेर ने 'पीस प्रिज़र्वेशन ऑर्डिनेन्स' जारी किया, जिसके अनुसार प्रत्येक भारतीय को अपने नाम की रजिस्ट्री करवाना और पीला परवाना पास में रखना

ज़रूरी हो गया। जिसके विरोध में गांधी जी को सत्याग्रह का शस्त्र उठाना पड़ा। भवानी के पिता गांधी के निकटतम थे। जोहान्सबर्ग म्यूनिसिपैलिटी ने राष्ट्रपति क्रूगर के कहने से प्रवासी भारतीयों को नोटिस भेजा कि वे शहर के बीच बसी अपनी बस्ती खाली करें।

भवानी बहुत उमंगें लेकर भारत आए थे। लेकिन यहाँ के हालात ने उन्हें बहुत ही खिन्न और क्षुब्ध किया। कलकत्ता के कालीघाट के मंदिर में बलि चढ़ते बकरों की बहती रक्तधारा ने उन्हें मंदिर की बजाय कसाईखाने का एहसास करवाया और अपने पैतृक गाँव की बदहाली देखकर तो उनका दिमाग बिल्कुल चकरा गया और उन्होंने उसी दम वहाँ से अफ़्रीका लौटने की ज़िद की।

भारत आने पर जात-बिरादरी का साँप अपनी स्वार्थसिद्धि हेतु डसने को तैयार बैठा था। उनके गाँव वालों को जब लगा कि वे टापू से बहुत पैसा कमाकर लाए हैं, तो पंचायत ने बिना हर्जाना भरे उनके पिता को बिरादरी में शामिल करने से इनकार कर दिया और साथ ही ये भी कहा कि भवानी और उनके बहन-भाई तो हर्जाना भरकर भी बिरादरी में शामिल नहीं हो सकते, क्योंकि उनका जन्म एक विवाहित विधवा की कोख से हुआ था।

भवानी दयाल के मन पर इस घटना से जात-बिरादरी को लेकर पक्षपात से गहरा आघात पहुँचा। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा -

"मैं सोचने लगा - क्या यह वही भारत भूमि है, जहाँ राम ने शबरी के झूठे बेर खाए थे और कृष्ण ने विदुर की भाजी का भोग लगाया था? वशिष्ठ गणिका से जहाँ पराशर चंडालिन से वेदव्यास मल्लाहिन के गर्भ से जन्म लेकर भी समाज में सर्वोपरि सम्मान के अधिकारी हुए थे...जहाँ सीरियन सिथियाँ हूण ग्रीक आदि भिन्न-भिन्न जातियाँ आकर आर्य जाति में ऐसी घुल-मिल गईं कि उनकी निशानी तक नहीं रही...क्या ये उन्हीं आर्यों के वंशज हैं, जो मुझे केवल इस अपराध पर जाति से बहिष्कृत करना चाहते हैं क्योंकि मैंने एक विवाहित विधवा के गर्भ से जन्म लिया है।"

आर्य समाज का प्रभाव और धार्मिक चेतना

हिन्दू धर्म में आस्था डगमगाने के बावजूद भवानी की आर्य समाज को अपनाने की कथा बहुत रोमांचक है। भारत आने पर उन्हें देहात में हिंदुओं की दुर्दशा, सड़ी-गली नाना प्रकार की रूढ़ियों, कुरीतियों और दुष्कर्मों ने हिंदू धर्म का विकृत रूप दिखाया। इसमें जात-पाँत का प्रबल प्रपंच, ऊँच-नीच की भयंकर भेड़चाल, चूल्हे-चौके की भीषण विभिन्नता, कच्ची-पक्की का प्रचंड पचड़ा शामिल था।

ऐसे में एक पादरी की नज़र उन पर पड़ी और वे उन्हें ईसाई धर्म अपनाने के लिए बरगलाने लगे। संयोग से उन्हीं दिनों कलकत्ता से प्रकाशित 'वीरभारत' पत्रिका में एक लेख में लिखा था कि 'सत्यार्थ प्रकाश' ने देश का सत्यानाश कर डाला। उनकी 'सत्यार्थ प्रकाश' पढ़ने की जिज्ञासा ने उनसे पुस्तक पढ़वाई और पुस्तक पढ़ने के बाद उनके अंतर्चक्षु खुले और वे 1909 में पूर्णतया आर्य समाज के अनुयायी बन गए।

उन्होंने अपने गाँव में राष्ट्रीय पाठशाला का नाम बदलकर वैदिक पाठशाला रख दिया और खर-दूषण नाम की पाठशाला खोली, जिसका उद्घाटन करने डॉ. राजेंद्र प्रसाद और सरोजिनी नायडू बैलगाड़ी से गाँव पहुँचे थे। एक बार भवानी दयाल ने नामी-गिरामी पंडितों के साथ शास्त्रार्थ किया, जिसमें लंदन से लौटे बैरिस्टर रामबहादुर जी मध्यस्थ बने।

दक्षिण अफ़्रीका में वापसी और सामाजिक सुधार

दक्षिण अफ़्रीका आने के बाद भी उन्होंने हिंदू धर्म में फैले अंधविश्वास, जाति-पाँति और अर्थहीन आडंबरों से मुक्ति के लिए आर्य समाज के उपदेशों का खूब प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने हिंदू त्योहार विशेषत: दिवाली मनाने पर ज़ोर दिया। 1925 में वे आर्य प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष बने। उनकी याद में उनकी जन्मशताब्दी पर आर्य प्रतिनिधि सभा ने अपने प्रमुख भवानी दयाल संन्यासी का सम्मान करने का निश्चय किया। साथ ही, उन्होंने सासाराम शहर में भी आर्य समाज की स्थापना की।

सन् 1911 में वे बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा के उपदेशक बने और आर्य समाज के मासिक पत्र 'आर्यवृत' के सह-संपादक बने। आर्य प्रतिनिधि सभा ने उन्हें आर्य समाज का प्रचारक बनाया। यह भवानी की आर्यसमाजी विचारधारा का ही प्रभाव था कि आगरा और मथुरा में मलकान राजपूतों की जो जनसंख्या मजबूरन इस्लाम धर्म अपना चुकी थी, वह जाग्रत हुई और वापस हिंदू धर्म में लौटी।

राजनीतिक चेतना और ब्रिटिश विरोध

उन्हीं दिनों लॉर्ड कर्जन ने बंगभंग कर डाला और देश में स्वदेशी आंदोलन की लहर उठने लगी। भवानी सोचते रहते - भारत का उद्धार कैसे होगा? कहाँ दक्षिण अफ़्रीका में थोड़े से बोअरों ने आज़ादी के लिए अपनी जान गँवा दी थी और यहाँ सारा भारत गुलामी के नर्क की आग में जल रहा है। भारत देश की दारुण दशा, गुलामी और दरिद्रता देखकर भवानी का रुझान क्रांतिकारियों की ओर बढ़ने लगा।

वे दादाभाई नौरोजी, लाला लाजपत राय, अजित सिंह, बाल गंगाधर तिलक, अरबिंदो घोष और गोपाल कृष्ण गोखले के विचारों से प्रभावित हुए और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार, अंग्रेज़ों से भारत को आज़ाद करवाना आदि उद्देश्यों को लेकर गाँवों में उन्होंने आंदोलन किया।

अफ़्रीका आने पर उन्होंने देखा कि यहाँ अत्यधिक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हो चुके हैं। यूनियन जैक लहरा रहा है और 'पीस प्रिज़र्वेशन ऑर्डिनेन्स' के तहत प्रत्येक भारतीय के लिए पीला परमिट कार्ड ज़रूरी था, जिसकी फ़ीस 3 पाउंड थी। इस कानून के विरोध में गांधी जी ने सत्याग्रह आंदोलन छेड़ा, जिसमें भवानी और उनकी पत्नी भी कूद पड़े।

गिरमिटियों के प्रति संवेदना

भवानी अत्याचारी शासकों और धर्म विरोधी आचरण करने वालों के प्रति अपने विचारों में दृढ़ और कठोर थे। एक तरफ़ वे कठोर थे, तो दूसरी तरफ़ गिरमिटियों के नरकतुल्य जीवन के प्रति बहुत संवेदनशील थे। उन्होंने गिरमिटियों के जीवन के संदर्भ में लिखा -

"वास्तव में उन भारतीयों की करुण कथा इतनी विस्तृत, हृदय विदारक और मर्मस्पर्शी है कि यदि पृथ्वी को पत्र और समुद्र को स्याही बनाकर लिखने बैठे, तो भी उसे यथावत् अंकित कर सकना असंभव है।"

उन्होंने 1925 में हर्टजोग की गोरी सरकार के अत्याचार और काले क्लास एरिया बिल का विरोध किया और तत्कालीन वायसराय लॉर्ड रीडिंग से मिलने और प्रवासी भारतीयों की कथा सुनने भारत आए और पुरजोर ढंग से अपनी बात रखी।

संन्यास ग्रहण और उसका उद्देश्य

अपनी प्राचीन सभ्यता और आदर्शों के प्रचार-प्रसार के लिए जर्मिस्टन में युवाओं ने इंडियन यंगर एसोसियेशन बनाई, जिसके अध्यक्ष भवानी दयाल को बनाया गया। जब भवानी केवल तीस वर्ष के थे, तब उनकी पत्नी जगरानी देवी का निधन हो गया था। पुनर्विवाह की चर्चा से छुट्टी पा जाने की तमन्ना में उन्होंने सन् 1927 में चैत की रामनवमी को संन्यास ग्रहण कर लिया।

उनका संन्यास निवृत्तिमूलक ना होकर प्रवृत्तिमूलक था, क्योंकि जब गांधी जी ने उनसे कहा कि इस समय भारत को संन्यासियों की नहीं, कर्मयोगियों की ज़रूरत है, तब स्वामीजी ने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया -

"बापू! मैं व्यक्तिगत मुक्ति नहीं चाहता। जब तक भारत माता बंधन में बंधी है - परवश और पराधीन है, करोड़ों देशबंधु गुलामी के नर्क में गर्क हैं, तब तक किसी भारतवासी को व्यक्तिगत मुक्ति के लिए इच्छा और उद्योग करना मेरे विचार में केवल स्वार्थपरता ही नहीं अक्षम्य अपराध भी है।"

हिंदी भाषा की सेवा और संरक्षण

भवानी दयाल का हिंदी के प्रति प्रेम और उनकी हिंदी के प्रति सेवा अत्यंत प्रशंसनीय है। जब बचपन में वे दक्षिण अफ़्रीका से भारत आए, तब उनका थोड़ा-बहुत हिंदी का ज्ञान भारत में उनके अध्ययन में सहायक बना। तुलसी कृत रामायण का किष्किंधा कांड और सुंदरकांड उन्हें कंठस्थ हो गए। सूरदास के पद भी उन्हें बहुत भाने लगे।

दक्षिण अफ़्रीका में भवानी दयाल ने अपनी पत्नी जगरानी देवी और भाई देवी दयाल के साथ हिंदी सिखाने के जो उत्कृष्ट प्रयास किए, उनसे भाषा की उन्नति के लिए एक ऐसे वातावरण का सृजन हुआ, जिसकी कल्पना कुछ समय पहले भारत में भी नहीं की जा सकती थी।

उनका कहना था - "ट्रांसवाल में हिंदी भाषियों की हालत देखकर मेरी हैरानी की हद नहीं रही। 'हिंदी' उनके लिए 'ग्रीक' और 'लैटिन' बन रही थी और 'अफ़्रीकान' उनकी घरेलू बोली।" उन्होंने दक्षिण अफ़्रीका के प्रवासी भारतीयों में हिंदी के प्रति प्रेम की अलख को पुनः जाग्रत किया।

पत्रकारिता और प्रकाशन-कार्य

दक्षिण अफ़्रीका में गांधी जी ने 'इंडियन ओपिनियन' नामक जो अंग्रेज़ी पत्र प्रकाशित किया, उसके हिंदी संस्करण का सम्पादन भवानी दयाल ने किया। उन्होंने ट्रांसवाल हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना की, जिसका प्रत्येक रविवार को साप्ताहिक अधिवेशन होता था और जिसमें प्रवासी भारतीयों में हिंदी का कैसे प्रचार किया जाए, इस बात पर विशेष चर्चा होती थी।

हिंदी पठन-पाठन के लिए रात्रि पाठशाला और फ़ुटबॉल क्लब की स्थापना की और नेटाल और ट्रांसवाल के अलावा जर्मिस्टन, न्यू कैसल, डनहाऊज़र, हार्टिंगस्प्रुट, ग्लंको, बर्नसाइट, लेडीस्मिथ, विनेन और जकोब्स में हिंदी प्रचारिणी सभाएँ और पाठशालाएँ स्थापित कीं।

मंदिरों में हिंदी की पढ़ाई होने लगी। गीत, संगीत, नृत्य, नाटक जैसी कलाएँ सिखाई जाने लगीं। उस समय भवानी दयाल ने भी

'प्रवासी प्रपंच' नामक नाटक लिखा, जिसकी प्रतिलिपि प्रवासी भवन अजमेर में आज भी रखी है।

हिंदी आश्रम और साहित्य सम्मेलन

ओपिनियन के स्वर्ण अंक में हिंदी भाषा नहीं थी। भवानी दयाल ने कसम खाई कि वे हिंदी आश्रम की स्थापना करके ही दम लेंगे। इसी हिंदी विकास की अगली कड़ी में दक्षिण अफ़्रीका हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हुई, जिसका पहला वार्षिक अधिवेशन 1916 ई. में लेडीस्मिथ में और दूसरा वार्षिक सम्मेलन 1917 में पीटर मैरित्ज़बर्ग में हुआ।

उन्होंने डरबन में हिंदी आश्रम भी स्थापित किया, जिसमें हिंदी पुस्तकालय, हिंदी विद्यालय और हिंदी मुद्रणालय भी था। उन्होंने 'धर्मवीर' नामक साप्ताहिक पत्र के ज़रिये भी हिंदी का प्रचार किया। उन्होंने उस पत्रिका में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया और उसे धर्मोपदेशक पत्रिका से प्रवासी भारतीयों के हित की पत्रिका बना दिया। वह हिंदी पाठकों का मानसिक आहार बन गई। उसमें 'त्रिलोकी का पोथा' नाम से हास्य-विनोद से भरपूर लेखमाला भी छपने लगी।

भवानी कहते हैं - "धर्मवीर के द्वारा दलित और पीड़ित प्रवासी भारतीयों को अपने मानवीय अधिकारों के प्रति जागरूक करना, वैदिक धर्म और आर्य संस्कृति का संदेश सुनाना, समाज में प्रचलित सड़ी-गली रूढ़ियों के विरुद्ध बगावत फैलाना, जात-पात और ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाना, स्त्रियों को समाज में समानाधिकार दिलाना और मातृभाषा हिंदी की पताका उड़ाना मैंने अपना मुख्य उद्देश्य बना लिया था।"

'हिंदी' साप्ताहिक पत्रिका और व्यापक प्रभाव

1922 में उन्होंने 'हिंदी' साप्ताहिक पत्रिका का आरंभ किया। उसी वर्ष उनकी पत्नी जगरानी देवी का निधन हो गया। उन्होंने अपनी पत्नी की स्मृति में छापेखाने का नाम जगरानी प्रेस रखा। भवानी के आर्थिक हालात इतने कमज़ोर हो चुके थे कि 'हिंदी' पत्र को चलाने के लिए भवानी ही मालिक, संचालक, व्यवस्थापक, संपादक, संवाददाता, क्लर्क सब काम खुद कर रहे थे।

इस पत्रिका के विवरण में उन्होंने लिखा - "हिंदी के नेक, सुंदर और सचित्र विशेषांक निकले, जिनका विदेशों के अंग्रेज़ी अखबारों तथा भारत के हिंदी संसार में बड़ा सम्मान और बखान हुआ। सन् 1932 के मोटे दीवाली अंक में तो 178 चित्र छपे थे। इसमें पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी, हेनरी पोलक, सी एफ ऐंड्रूज़, राजा महेंद्र प्रताप आदि प्रवासी समस्या के विशेषज्ञों के लेख निकलते रहते थे।"

इस पत्रिका की लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि ट्रांसवाल, केप, रोडेशिया, मोज़ाम्बिक, तंज़ानिया, यूगांडा, कीनिया, मॉरीशस, फ़िजी, डमरारा, त्रिनिदाद, जमैका, ग्रेनेडा, सूरीनाम, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूज़ीलैंड आदि उपनिवेशों में पढ़ी जाने लगी।

जेल में भी हिंदी सेवा

1930 में जब वे हज़ारी बाग जेल में थे, तब उन्होंने 'कारागार' नामक हस्तलिखित पत्रिका निकाली, जिसके जन्माष्टमी अंक, दीवाली अंक और सत्याग्रह अंक में बारह सौ पृष्ठों की सामग्री शामिल की गई थी। 1931 में उन्हें कलकत्ता में आयोजित अखिल भारतीय हिंदी संपादक सम्मेलन का सभापति चुना गया, जिसमें डॉ. राजेंद्र प्रसाद, पंडित अंबिका प्रसाद वाजपेयी, पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी, शिव पूजन सहाय आदि महान् व्यक्तित्वों ने भाग लिया था।

1942 में वे स्थायी रूप से भारत में बस गए थे और अजमेर में उन्होंने प्रवासी भवन बनवाया। वहाँ उन्होंने प्रवासी पुस्तकमाला का प्रकाशन आरंभ किया और इस माला में 'वैदिक प्रार्थना,' 'स्वामी शंकरानंद,' 'सुदर्शन अब्दुल्ला इस्माइल काजी', 'पोर्टगीज़पूर्व अफ़्रीका में हिन्दुस्तानी' और 'वर्ण व्यवस्था या मरण व्यवस्था' पुस्तकें गूँथीं।

साहित्यिक कृतियाँ और योगदान

उन्होंने प्रवासी हिंदी साहित्य को अपने लेखन से समृद्ध बनाया है। उनकी प्रवासी भारतीयों के जीवन से संबंधित पुस्तकें हैं - 'प्रवासी की कहानी', 'प्रवासी की आत्मकथा', 'प्रवासी प्रपंच', 'ट्रांसवाल में भारतवासी,' 'नेटाली हिन्दू' और सत्याग्रह से संबंधित पुस्तकें हैं - 'दक्षिण अफ़्रीका में सत्याग्रह का इतिहास', 'दक्षिण अफ़्रीका में मेरे अनुभव', 'सत्याग्रही महात्मा गांधी', 'शिक्षित और किसान', 'हमारी कारावास की कहानी' और 'आर्यसमाज' से संबंधित पुस्तकें हैं- 'वैदिक धर्म' और 'आर्य सभ्यता,' 'भजन प्रकाश,' 'वैदिक प्रार्थना,' 'दक्षिण अफ़्रीका में आर्यसमाज' आदि।

स्वामी जी की रचनाएँ संसार भर के गिरमिटिया मज़दूरों के संघर्ष और पीड़ा का प्रामाणिक दस्तावेज़ हैं। उनके लेखन-कार्य का उद्देश्य धन कमाना नहीं था, अपितु प्रवासी भारतीयों की सेवा करना था।

भाषा और संस्कृति के प्रति दृढ़ता

उनकी लिखाई बहुत सुंदर थी। भाषा के प्रश्न पर उनका दृढ़ विश्वास था कि विदेशी धरती पर भारतीयों को अपनी राष्ट्रीयता का संरक्षण करना चाहिए। दक्षिण अफ़्रीकन इंडियन कांग्रेस के किमबरले सेशन में उनका माननीय श्रीनिवास शास्त्री से राष्ट्रीय भाषा और संस्कृति को लेकर मतभेद हो गया। बाद में मॉडर्न व्यू ने उन्हें शास्त्री के दृष्टिकोण पर जीत प्राप्त करने की खुशी में बधाई दी और यह स्वामी जी का ही प्रयास था कि साउथ अफ़्रीकन इंडियन कांग्रेस ने अपने संविधान में हिंदी को अंग्रेज़ी और अफ़्रीकान के साथ प्रशासनिक भाषा का दर्जा दिया।

उन्होंने एक बार सरोजिनी नायडू से भी हिंदी में भाषण देने का आग्रह किया और वह इतना सफल रहा कि बाद के सभी अध्यक्षीय भाषण हिंदी में ही हुए।

प्रमुख साहित्यिक कृतियों का विश्लेषण

हिंदी साहित्य को उन्होंने अपने लेखन से बहुत समृद्ध बनाया। 'दक्षिण अफ़्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' पुस्तक उन्होंने बापू के दक्षिण अफ़्रीका से भारत चले जाने के बाद लिखी थी और यह 1916 में इंदौर से छपी थी। तब तक भारत में सत्याग्रह आरंभ भी नहीं हुआ था। उस समय भारत और हिंदी जगत् के लिए सत्याग्रह का सिद्धांत और उसका क्रियात्मक प्रयोग बिल्कुल नया था। अतः यह पुस्तक पूरे भारत में बहुत प्रसिद्ध हो गई।

इस पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा - "भारतवर्ष की अत्याचार-पीड़ित प्रजा के भावी उत्थान के लिए सत्याग्रह एक अमोघ और अचूक अस्त्र होगा, अनेक विचारशील व्यक्तियों का यह अभिमत है। दक्षिण अफ़्रीका में तो सत्याग्रह का केवल बीजारोपण हुआ है, उसमें कलियाँ खिलने, फूल खिलने एवं फल लगने की उर्वरा भूमि तो वीर प्रसविनी रत्नगर्भा भारतवर्ष ही है।"

'हमारी कारावास की कहानी' पुस्तक में भवानी की जेल यात्रा का बड़ा मर्मस्पर्शी और हृदयग्राही वर्णन है। इसी तरह 'शिक्षित और किसान' पुस्तक में किसान की गरीबी और संघर्ष का चित्रण है। उनकी लिखी पुस्तक 'सत्याग्रही गांधी' की भूमिका श्री हेनरी पोलक ने लिखी थी और भवानी ने इस पुस्तक में गांधी का जीवन-चरित्र अपने अनुभवों के आधार पर लिखा है।

'प्रवासी की आत्मकथा' - एक मर्मस्पर्शी दस्तावेज़

उनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रवासी की आत्मकथा' वस्तुतः प्रवासी भारतीयों की दुर्गति की गाथा है। उनके जीवन के बारे में स्वामीजी लिखते हैं - "प्रवासियों की कथा इतनी करुणापूर्ण है कि कहने में वाणी थर्राती है - लिखने में वाणी काँपती है, समुद्र की लहरें चीरकर उनकी आहें जब यहाँ पहुँचती हैं और मेरे कानों में पड़ती हैं तो हृदय व्यथा से भर आता है, सिर धुनकर रह जाता है।"

प्रवासी साहित्य में स्थान और आधुनिक प्रासंगिकता

भवानी दयाल संन्यासी को प्रवासी हिंदी साहित्य का जनक कहा जा सकता है। उनकी रचनाओं में प्रवासी जीवन की समस्याओं, संघर्षों और आकांक्षाओं का जीवंत चित्रण मिलता है। आज के वैश्वीकरण के युग में भवानी दयाल संन्यासी के विचार और कार्य अत्यंत प्रासंगिक हैं। आज विश्व के अनेक देशों में भारतीय मूल के लोग बसे हैं। उनके लिए अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखना एक चुनौती है। भवानी दयाल संन्यासी का अनुभव और उनके समाधान आज भी उपयोगी हैं।

अंतिम वर्ष और स्मृति

1946-47 में प्रवासी भारतीयों की समस्याओं को भारत और विश्व स्तर पर उठाने के लिए उन्होंने हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में 'प्रवासी पत्रिका' का प्रकाशन आरंभ किया। वे उस समय अजमेर के प्रवासी भवन में रहने लगे थे और अस्वस्थ चल रहे थे। ऐसी अवस्था में भी उन्होंने अफ़्रीकी सरकार के घेटो एक्ट का विरोध किया।

उन्हें उनकी हिंदी सेवाओं के लिए हिंदी की सबसे बड़ी पदवी 'साहित्य वाचस्पति' से नवाज़ा गया। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक राम नारायण मिश्र ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा कि हिंदी में इतना बड़ा पब्लिसिटी मास्टर कोई नहीं हुआ। 9 मई 1950 को अस्वस्थता के चलते उनका निधन हो गया।

दक्षिण अफ़्रीका में दिसम्बर 1992 को उनका जन्म शताब्दी वर्ष मनाया गया और उनकी याद में दक्षिण अफ़्रीका में एक मुख्य मार्ग का नामकरण दयाल रोड रखा हुआ है। उनकी स्मृति में फ़िजी नसीनु में भवानी दयाल आर्य कॉलिज पहले से ही है।

भवानी दयाल संन्यासी का जीवन और कार्य प्रवासी भारतीयों के संघर्ष और सफलता की गाथा है। उन्होंने व्यक्तिगत कष्टों और सामाजिक बाधाओं के बावजूद अपने आदर्शों पर डटे रहकर एक मिसाल कायम की। उनका योगदान हिंदी भाषा और साहित्य के विकास, सामाजिक सुधार, राजनीतिक चेतना, सांस्कृतिक संरक्षण और शिक्षा के प्रसार में अमूल्य है।

दक्षिण अफ़्रीका और भारत के लिए उनके महान् कार्यों को

देखते हुए इसमें कोई शक नहीं कि दक्षिण अफ़्रीका के साथ-साथ भारत के वासी भी उन्हें हिंदी के अद्‌भुत सेवक के रूप में सदैव याद रखेंगे। उनका जीवन हमें सिखाता है कि परिस्थितियों की प्रतिकूलता व्यक्ति को हतोत्साहित नहीं कर सकती यदि उसके पास दृढ़ संकल्प, आदर्शवादी सोच और निरंतर कर्म की भावना हो। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व प्रवासी भारतीय समुदाय के लिए प्रेरणा का स्रोत है और उनके आदर्श आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने उनके समय में थे।

संदर्भ-सूची :

1. संन्यासी, भवानी दयाल. प्रवासी की आत्मकथा, (संपा) मंगलमूर्ति, 2017, अनामिका पब्लिशर्ज एंड डिस्ट्रीब्यूटर्ज़, दिल्ली
2. शर्मा, भक्तराम, विश्व हिंदी के भगीरथ, 1993, जगतराम एंड संस, दिल्ली
3. सीताराम रामभजन, नैटाली हिंदी, बहुवचन, अंक 46, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा, गुजरात
4. Singh H. Recasting Caste: From the Sacred to the Profane, 2014
5. सीताराम रामभजन, नैटाली हिंदी, हिंदी खबर, 2018 दिसम्बर, हिंदी शिक्षा संघ, दक्षिण अफ़्रीका
6. Rambilas B, Ved Jyoti, 1992 sep-oct
7. अग्रवाल प्रेम, भवानी दयाल संन्यासी - अ पब्लिक सर्वेंट ऑफ़ साउथ अफ़्रीका, 1939, इंडियन कोलोनियल एसोसिएशन, इटावा
8. वर्मा, विमलेश कान्ति, हिंदी स्वदेश और विदेश में, 2018, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
9. कुमार नारायण, प्रवासी हिंदी लेखन के युगप्रवर्तक स्वामी भवानी दयाल संन्यासी, गगनांचल, जुलाई-अक्तूबर 2012
10. शर्मा भक्तराम, विश्व हिंदी के भगीरथ, 1993 जगतराम एंड संस, दिल्ली
11. Bista DV, In A Brief Biography of Swami B D Sanyasee, South Africa, South Africa College of Vedic Studies
12. दुबे राकेश कुमार, प्रवासी भवानी दयाल संन्यासी और उनकी हिंदी सेवा, 2012, विश्व हिंदी पत्रिका विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

deeptiaggrawal@gmail.com

वैश्विक हिंदी अभियान के अथक साधक : डॉ. शैलेश शुक्ला

- डॉ. अमित मिश्र
उत्तर प्रदेश, भारत

हिंदी भाषा को वैश्विक संवाद, प्रशासनिक संप्रेषण, साहित्यिक विमर्श और तकनीकी माध्यमों की सशक्त संवाहिका के रूप में प्रतिष्ठित करने वाले जिन व्यक्तित्वों का नाम समकालीन परिप्रेक्ष्य में विशेष आदर और महत्त्व के साथ लिया जाता है, उनमें डॉ. शैलेश शुक्ला की उपस्थिति अत्यंत विशिष्ट, बहुआयामी और निर्णायक रूप से प्रभावकारी है। वे न केवल हिंदी के एक समर्पित साधक हैं, अपितु उस विचारधारा के प्रतिनिधि भी हैं, जो भाषा को केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति का उपकरण नहीं, बल्कि राष्ट्रचिंतन, सामाजिक संरचना, तकनीकी नवाचार और सांस्कृतिक पुनरुत्थान का माध्यम मानती है।

पत्रकारिता से आरंभ हुई उनकी रचनात्मक यात्रा साहित्य, आलोचना, शिक्षण, अनुवाद, संपादन, शोध, राजभाषा प्रशासन और अंतरराष्ट्रीय संयोजन तक फैली हुई है। 'साक्षी भारत' में रिपोर्टर से एसोसिएट एडिटर तक की भूमिका हो या 'सृजन ऑस्ट्रेलिया', 'सृजन अमेरिका', 'सृजन मॉरीशस' जैसी अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं का संपादन – हर पग पर उन्होंने हिंदी को केवल प्रयोजन की भाषा नहीं, प्रभाव की भाषा बनाया है। उनका शोधकार्य – *'न्यू मीडिया में हिंदी साहित्य की उभरती प्रवृत्तियाँ'* – इस तथ्य का प्रमाण है कि वे परंपरा और प्रौद्योगिकी के द्वंद्व को समन्वय में रूपांतरित करने की दृष्टि रखते हैं।

सिक्किम केन्द्रीय विश्वविद्यालय से लेकर एनएमडीसी लिमिटेड जैसे संस्थानों में राजभाषा अधिकारी के रूप में उन्होंने हिंदी को व्यवहार और प्रशासन की भाषा में रूपांतरित करने हेतु अभिनव प्रयोग किए हैं। उनकी रचनाएँ भारत के साथ-साथ विश्व के अनेक देशों में प्रकाशित हो चुकी हैं और उन्होंने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को सांस्कृतिक कूटनीति के एक सशक्त उपकरण में परिवर्तित करने का कार्य किया है।

यह शोध आलेख उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का बहुपरतीय विश्लेषण करता है, जो केवल आत्ममुग्ध प्रशंसा नहीं, अपितु एक यथार्थवादी मूल्यांकन है, जो हिंदी के वर्तमान स्वरूप और भावी संभावनाओं दोनों को स्पष्ट करता है। डॉ. शैलेश शुक्ला की उपस्थिति आज के हिंदी विमर्श में केवल प्रेरणा नहीं, दिशा भी है।

हिंदी का अभियान और एक युगपुरुष का संकल्प

हिंदी भाषा भारतीय जनजीवन की आत्मा रही है। वह न केवल विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है, बल्कि अस्मिता, संस्कृति, परंपरा और बौद्धिक चेतना की संवाहिका भी है। प्राचीन भारत के लोकगीतों से लेकर भक्तिकाल के संतों, राष्ट्रवादी आंदोलनों से लेकर स्वतंत्र भारत की भाषा-नीति तक, हिंदी ने संवाद को ही नहीं, सामाजिक विमर्श, राजनीतिक चेतना और सांस्कृतिक पुनरुत्थान को भी दिशा दी है। तथापि, हिंदी की ऐतिहासिक और भावात्मक भूमिका के विपरीत, व्यावहारिक स्तर पर उसका प्रासंगिक और प्रभावी प्रतिष्ठान एक सतत चुनौती रहा है। संविधान में राजभाषा का दर्जा मिलने के सात दशक बाद भी हिंदी शिक्षा, प्रशासन, न्याय, तकनीकी विज्ञान और वैश्विक विमर्श में अपने सम्यक स्वरूप में प्रतिष्ठित नहीं हो सकी।

इक्कीसवीं सदी के आरंभिक दशक में वैश्वीकरण, नवउदारवाद, बहुभाषिक मीडिया वर्चस्व और डिजिटल क्रांति जैसे परिवर्तनों ने जहाँ अंग्रेज़ी को शक्ति और प्रतिष्ठा के उपकरण के रूप में स्थापित किया, वहीं हिंदी भाषी समाज एक प्रकार की भाषिक आत्महीनता से ग्रस्त होने लगा। इस सांस्कृतिक और भाषिक संकट की घड़ी में जो व्यक्तित्व हिंदी को 'भावना' से 'कर्म', 'कक्षा' से 'कार्यालय' और 'कागज़' से 'क्लाउड' तक लाने हेतु प्रतिबद्धता और नवोन्मेष के साथ सामने आया, वह है - डॉ. शैलेश शुक्ला।

डॉ. शुक्ला ने हिंदी को परंपरा और नवाचार, लोक-व्यवहार और वैश्विक भाव, शास्त्र और तकनीक – इन सभी द्वंद्वों के मध्य से निकालकर समन्वय की दिशा में स्थापित किया है। वे केवल एक साहित्यिक रचनाकार नहीं, बल्कि एक भाषिक रणनीतिकार, सांस्कृतिक आयोजक और अंतरराष्ट्रीय समन्वयक हैं, जिन्होंने हिंदी को साहित्यिक गद्य से लेकर डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म, सरकारी कार्यालय से लेकर विदेशी विश्वविद्यालयों और त्रैभाषिक पत्रिकाओं तक पहुँचाया है। उनका कार्य यह प्रमाणित करता है कि यदि भाषा के प्रति श्रद्धा और दृष्टि के साथ रणनीति और संगठन-शक्ति का संयोग हो, तो हिंदी जैसी भाषा न केवल राष्ट्रीय चेतना का केंद्र बन सकती है, बल्कि वैश्विक संवाद की प्रमुख भाषा भी।

यह शोध आलेख उसी युगद्रष्टा के कृतित्व का समग्र मूल्यांकन

है, जिसकी साधना हिंदी को अतीत की स्मृति से वर्तमान की संवेदना और भविष्य की संभावना तक जोड़ने वाली एक सशक्त सेतु है।

2. जीवन और शिक्षा : जड़ों से जुड़कर आकाश की ओर

डॉ. शैलेश शुक्ला का जन्म 12 दिसंबर 1980 को उत्तर प्रदेश के फ़तेहपुर जनपद में एक शिक्षित, संस्कारित और साहित्य-संवेदनशील परिवार में हुआ। बाल्यकाल से ही उन्हें साहित्य, भाषा और समाज के प्रति सजग दृष्टि प्राप्त हुई। उन्होंने महाशय चुन्नी लाल सरस्वती बाल विद्यालय, सेंट माइकल पब्लिक स्कूल और जनकपूरी सी ब्लॉक के सरकारी स्कूल से दसवीं तक की शिक्षा प्राप्त की। आर्थिक तंगियों के कारण कमाई के साथ पढ़ाई के उद्देश्य से बारहवीं नेशनल ओपन स्कूल से और दिल्ली विश्वविद्यालय के मोती लाल नेहरू महाविद्यालय (सांध्य) से स्नातक शिक्षा प्राप्त की, जिसमें हिंदी, अंग्रेज़ी, अर्थशास्त्र और इतिहास प्रमुख विषय थे। तत्पश्चात् इग्नू से हिंदी में एम.ए. और पत्रकारिता व जनसंचार में पी.जी. डिप्लोमा किया। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से मास कम्युनिकेशन में एम.ए. करने के बाद उन्होंने महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक से 'न्यू मीडिया में हिंदी साहित्य की उभरती प्रवृत्तियाँ : एक आलोचनात्मक अध्ययन' विषय पर पीएच.डी. कर शोध-क्षमता और समसामयिक दृष्टि का प्रमाण प्रस्तुत किया। यह शिक्षायात्रा केवल उपाधियों की शृंखला नहीं, अपितु एक ऐसे भाषिक समर्पण की प्रक्रिया थी, जिसमें हिंदी को भविष्य की भाषा बनाने का बीज बोया गया।

3. पत्रकारिता से साहित्यिक संवाद तक : लेखनी का विस्तार

शैलेश शुक्ला की रचनात्मक यात्रा का आरंभ जिस क्षेत्र से हुआ, वह पत्रकारिता थी - एक ऐसा क्षेत्र जहाँ शब्दों को केवल सूचना के वाहक नहीं, अपितु समाज के भावबोध, समस्याओं और संभावनाओं का संवेदनशील दस्तावेज़ होना पड़ता है। वर्ष 2003 में जब उन्होंने दिल्ली से प्रकाशित प्रतिष्ठित हिंदी पत्रिका 'साक्षी भारत' में बतौर रिपोर्टर अपने पत्रकारिक जीवन की शुरुआत की, तब वह महज़ एक पेशेवर प्रवेश नहीं था, बल्कि एक विचारशील युग-चेतक के रूप में उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि की शुरुआत थी। तत्पश्चात् उन्होंने उप-संपादक, फ़ीचर लेखक, सहायक संपादक और अंततः एसोसिएट एडिटर जैसे विविध संपादकीय दायित्वों का निर्वहन किया। यह यात्रा केवल पदवृद्धि नहीं थी, अपितु पत्रकारिता को गहराई, धार और दिशा देने की लेखनी यात्रा थी।

उनका लेखन परंपरागत 'फ़ाइव डब्ल्यूज़' आधारित समाचार प्रस्तुतियों से आगे बढ़कर चिंतन और विमर्श की भूमि पर अवतरित होता है। उनके द्वारा लिखित स्तंभ '*खरी-खोटी*' और '*लो जी कर लो बात*' समकालीन पत्रकारिता में कटाक्ष, व्यंग्य, विश्लेषण और सामाजिक सच्चाई के सफल समन्वय के उदाहरण हैं। इन स्तंभों में उन्होंने न केवल तथ्यों को उजागर किया, बल्कि व्यवस्था, प्रशासन, राजनीति, मीडिया और जनता के बीच के विघटनशील संबंधों को भी उजागर किया। उनके लेखों में भाषा की चपलता, संवेदना की तीव्रता और विचार की स्पष्टता समरस भाव से प्रवाहित होती है।

उनके कुछ प्रतिनिधि लेख -'*भ्रष्टाचार की मार - जनता की हाहाकार*' , '*प्रदर्शनों की आँधी - अन्ना बने गांधी*' , '*हमला ताज पर और धंधा खबरों का*', '*गांधी बनाम गोडसे*', वास्तव में, केवल घटनाओं का वृत्त नहीं, बल्कि उस दौर की जनता की मनोदशा, राज्य और मीडिया की भूमिका और वैकल्पिक विमर्श की आवश्यकता का प्रतिबिंब हैं। वे रिपोर्ट नहीं लिखते, वे समाज का दर्पण गढ़ते हैं, जिसमें व्यवस्था की विकृति भी झलकती है और जन आकांक्षाओं की आहट भी सुनाई देती है।

विशेष उल्लेखनीय यह है कि उन्होंने पत्रकारिता को कभी भी मात्र तात्कालिकता, सनसनी और टीआरपी की पूर्ति का माध्यम नहीं बनाया। उनकी दृष्टि में पत्रकारिता लोकतंत्र का चौथा खंभा ही नहीं, भाषिक नैतिकता और सामाजिक विवेक का मंच भी है। यही कारण है कि उन्होंने अपनी लेखनी को सामाजिक सरोकारों, जनसरोकारों और विचारशीलता से जोड़ा। उनका यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि उनके लिए पत्रकारिता न तो सत्ता से साठगाँठ का मंच थी, न ही विरोध का स्वांग, बल्कि सत्य के साहसिक संप्रेषण की प्रक्रिया थी।

डॉ. शुक्ला की पत्रकारिक दृष्टि में पत्रकारिता और साहित्य के बीच कोई कृत्रिम विभाजन नहीं है। उन्होंने अपनी रिपोर्टों में काव्यात्मक संवेदना, सामाजिक व्यंग्य में तथ्यात्मक प्रमाण और विचार-लेखन में भाषिक सौंदर्य का समावेश किया। यही कारण है कि उनकी लेखनी पत्रकारिता को 'सूचना' से 'सृजन' की दिशा में ले जाती है।

इस प्रकार डॉ. शैलेश शुक्ला की पत्रकारिक यात्रा, समसामयिक भारत की सामाजिक, राजनीतिक और भाषिक धारा की एक सशक्त आलोचना बन जाती है, जो न केवल अतीत का दस्तावेज़ है, बल्कि भविष्य की भाषिक पत्रकारिता के लिए भी दिशासूचक है।

4. साहित्यिक सृजन और आलोचना : संवेदना और शास्त्र का समन्वय

डॉ. शैलेश शुक्ला की साहित्यिक यात्रा भारतीय आधुनिक साहित्यिक परंपरा की उस नवीन पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है, जिसने लेखन को केवल सृजनात्मकता की परिधि में न रखकर, उसे समाज, तकनीक, संस्कृति और चेतना के परस्पर संवाद के रूप में विकसित किया। उनका रचनात्मक संसार विविधवर्णी है - कविता, निबंध, आलोचना, व्यंग्य, संस्मरण, संपादकीय लेखन, अनुवाद, शोध-लेख, साक्षात्कार एवं डिजिटल लेखन, इन सभी विधाओं में उनकी लेखनी केवल सक्रिय ही नहीं, गहन, परिपक्व और दार्शनिक गहराई से युक्त है।

उनकी कविताओं में केवल भावाभिव्यक्ति या बौद्धिक विमर्श नहीं है, अपितु वहाँ सौंदर्य, संवेदना, समयबोध और यथार्थ आदि तत्व समरस रूप में विद्यमान हैं। उनकी प्रसिद्ध कविता-पंक्ति *'पीपल याद आता है एसी की हवा में भी'* आधुनिक नगरीय जीवन के अंतर्विरोधों को इस तरह उद्घाटित करती है, जहाँ भौतिक सुविधा के बावजूद आत्मिक असंतोष उपस्थित रहता है। यह पंक्ति महज़ एक रूपक नहीं, बल्कि वैश्विक होते भारत के भीतर जड़ों से कटते व्यक्ति की गहरी पीड़ा का कलात्मक संप्रेषण है।

डॉ. शुक्ला की कविता में आत्म और समाज के अंतर्द्वंद्व, स्मृति और विस्थापन, मूल्यों और विघटन, प्रकृति और कृत्रिमता के बीच का संघर्ष स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उनकी रचनाएँ केवल काव्य-सौंदर्य तक सीमित नहीं, बल्कि उनमें सामाजिक दायित्वबोध, नैतिक साहस और मूल्यगत आग्रह स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। अनेक अंतरराष्ट्रीय मंचों पर उनकी हिंदी एवं अंग्रेज़ी कविताएँ, लेख एवं आलेख प्रकाशित हुए हैं, जो उनकी बहुभाषिक रचनाशीलता और वैश्विक साहित्यिक अभिव्यक्ति की क्षमता का स्पष्ट प्रमाण हैं।

आलोचना के क्षेत्र में डॉ. शुक्ला की उपस्थिति तात्कालिक रुझानों या वादी आग्रहों से मुक्त, तटस्थ, तार्किक और पाठक-केंद्रित रही है। वे आलोचना को केवल शास्त्रीय छानबीन का औज़ार नहीं मानते, बल्कि उसे रचनात्मक संवाद का सशक्त मंच मानते हैं। उन्होंने प्रवासी हिंदी साहित्य, डिजिटल साहित्य, स्त्री और दलित विमर्श तथा मीडिया में भाषा और संरचना जैसे विषयों पर जो गहन विश्लेषण प्रस्तुत किए हैं, वे हिंदी आलोचना के परंपरागत प्रतिमानों से भिन्न एवं नवाचारपूर्ण विमर्श को प्रतिष्ठित करते हैं।

उनकी आलोचना की एक विशेषता यह है कि वे किसी वाद, वर्चस्व या पूर्वग्रह के अधीन नहीं होते। उनका समीक्षात्मक विवेक वस्तुपरकता, साक्ष्य, भाषिक सौंदर्य और विचार की स्पष्टता के आधार पर कार्य करता है। उन्होंने स्थापित लेखकों के साथ-साथ नवोदित रचनाकारों के सृजन को भी निष्पक्ष भाव से प्रस्तुत किया है। यह समावेशी आलोचनात्मक दृष्टिकोण उन्हें एक लोकतांत्रिक और सृजनोन्मुख आलोचक के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

उनके व्यंग्य-लेखन में भाषा की मारक चपलता और समकालीन यथार्थ की सूक्ष्म पहचान देखने को मिलती है। *'लो जी कर लो बात'* जैसे स्तंभों में वे व्यवस्था, राजनीति और सामाजिक पाखंडों पर करारा कटाक्ष करते हैं, किन्तु कटुता के बिना। उनका व्यंग्य चुटीला अवश्य है, किंतु वह उद्देश्यविहीन हास्य नहीं, बल्कि सामाजिक विमर्श का एक सशक्त औज़ार है।

संपादकीय लेखन में उनकी दृष्टि समकालीनता और भविष्य के बीच संतुलन साधती है। वे यथार्थ को केवल उद्घाटित नहीं करते, बल्कि दिशा भी प्रदान करते हैं। भाषा, समाज, संस्कृति और तकनीक - इन चारों स्तंभों को साथ लेकर उनका संपादकीय विवेक पाठक के भीतर विमर्श और मूल्यबोध का संचार करता है।

निस्संदेह, डॉ. शैलेश शुक्ला का साहित्यिक योगदान उस विमर्शशील रचनाकार का साक्ष्य है, जो केवल रचना नहीं करता, बल्कि समाज, पाठक, विचार और संवेदना के मध्य सेतु का कार्य करता है। उनकी लेखनी वह पुल है, जो परंपरा और आधुनिकता, सौंदर्य और यथार्थ, संवेदना और शास्त्र – सभी को एक सूत्र में बाँध देती है। यही कारण है कि वे हिंदी साहित्य में एक बहुआयामी, संवेदनशील और सुसंगत सर्जक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

5. राजभाषा कार्यान्वयन : भावना से प्रशासन तक की भाषा

हिंदी को राजभाषा के रूप में संवैधानिक प्रतिष्ठा अवश्य प्राप्त है, किंतु प्रशासनिक तंत्र में उसे व्यावहारिक रूप से प्रतिष्ठित करना सदैव चुनौतीपूर्ण रहा है। डॉ. शैलेश शुक्ला ने इस चुनौती को न केवल स्वीकार किया, बल्कि उसे नवाचार और संगठनात्मक दक्षता के माध्यम से सशक्त अवसर में रूपांतरित किया।

सिक्किम विश्वविद्यालय में वे पहले हिंदी अधिकारी के रूप में 2012 से 2018 तक कार्यरत रहे। यह कार्यक्षेत्र भाषिक दृष्टि से चुनौतीपूर्ण था, किंतु डॉ. शुक्ला ने वहाँ हिंदी शिक्षण योजना, त्रैभाषिक गृह पत्रिकाओं का संपादन, हिंदी पखवाड़ा, तकनीकी कार्यशालाएँ, यूनिकोड प्रशिक्षण और प्रशासनिक हिंदी लेखन प्रशिक्षण जैसे कार्यक्रमों का सफल संचालन कर यह सिद्ध किया कि हिंदी उत्तरपूर्व के बहुभाषिक समाज में भी संवाद और संचालन की समर्थ भाषा बन सकती है।

वर्तमान में वे भारत सरकार के नवरत्न उपक्रम **एनएमडीसी**

लिमिटेड में राजभाषा अधिकारी के रूप में कार्यरत हैं। 'हीरा समाचार' तथा पूर्व में 'दोणि समाचार' जैसी त्रैभाषिक गृह पत्रिकाओं के माध्यम से उन्होंने हिंदी को कार्यालयीन पत्राचार से आगे, संवेदनशील अभिव्यक्ति और सृजनात्मक संवाद की भाषा में विकसित किया है। उनकी दृष्टि में राजभाषा केवल कार्य की भाषा नहीं, बल्कि कर्म की गरिमा है। उनका यह कथन उल्लेखनीय है – *'जब तक हिंदी न्याय, विज्ञान, तकनीक और वाणिज्य की भाषा नहीं बनेगी, तब तक वह राष्ट्रभाषा की पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सकती।'*

6. शिक्षण और प्रशिक्षण : ज्ञान, प्रेरणा और संवेदना का संयोजन

डॉ. शुक्ला न केवल सृजनकर्ता हैं, बल्कि वे प्रेरक शिक्षक भी हैं, जिन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय, इग्नू, सिक्किम विश्वविद्यालय सहित कई शिक्षण संस्थानों में अध्यापन, प्रशिक्षण और मूल्यांकन का कार्य किया है। उनके शिक्षण में केवल पाठ्यांश नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन, राष्ट्रचिंतन और भाषिक आत्मबोध का समावेश होता है।

वे 'गुरु' को केवल ज्ञाता नहीं, अपितु 'प्रेरक' मानते हैं। उनकी कविता '*गुरुमंत्र के सिम बिना, पड़ा रहे बेकार*' इस भूमिका को रेखांकित करती है। भाषा, पत्रकारिता, मीडिया, अनुवाद और तकनीकी हिंदी जैसे जटिल विषयों को सहजता से विद्यार्थियों को समझाना उनकी विशेषता है। उन्होंने हिंदी को 'पाठ्य विषय' से 'जीवन भाषा' बनाने की दिशा में कार्य किया है। राजभाषा कार्यशालाओं, तकनीकी लेखन प्रशिक्षण, अनुवाद कार्यशालाओं तथा विश्वविद्यालयीय संगोष्ठियों में उनका मार्गदर्शन श्रोताओं को वैचारिकता के साथ भाषिक-कौशल भी प्रदान करता है।

7. संपादन और अंतरराष्ट्रीय संयोजन : स्थानीय से वैश्विक तक की रचनात्मक यात्रा

डॉ. शुक्ला का संपादकीय कार्य केवल पंक्तियों का परिष्करण नहीं, विचारों का पुनर्संयोजन है। उन्होंने 20 से अधिक पुस्तकों का संपादन किया है, जिनमें '*श्रेष्ठ इक्यावन कविताएँ*', '*हिंदी और तकनीक*', '*विश्व हिंदी सृजन*' जैसे शीर्षक विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वे '*सृजन ऑस्ट्रेलिया*', '*सृजन मलेशिया*', '*सृजन मॉरीशस*', '*सृजन अमेरिका*', '*सृजन यूरोप*', '*सृजन कतर*', '*सृजन नेपाल*' जैसी अंतरराष्ट्रीय ई-पत्रिकाओं के वैश्विक प्रधान संपादक हैं। इन पत्रिकाओं के माध्यम से वे प्रवासी लेखकों, हिंदी अध्यापकों और सांस्कृतिक संगठनों को भारत से जोड़ने का सतत कार्य कर रहे हैं। इन प्रयासों ने हिंदी को केवल साहित्य की नहीं, बल्कि संस्कृति, समाज और संवाद की वैश्विक भाषा में रूपांतरित किया है। उनके लिए संपादन साहित्यिक यज्ञ है – जहाँ वे न केवल अपनी लेखनी से, बल्कि दूसरों के शब्दों को दिशा देकर भी हिंदी सेवा करते हैं।

8. डिजिटल और तकनीकी हिंदी : न्यू मीडिया में भाषा का नव्य अध्याय

डॉ. शैलेश शुक्ला का शोध *'न्यू मीडिया में हिंदी साहित्य की उभरती प्रवृत्तियाँ'* हिंदी को डिजिटल संदर्भों में स्थापित करने वाला एक प्रामाणिक प्रयास है। यह शोध डिजिटल साहित्य के उद्भव, लेखक-पाठक अंतःक्रिया, सामाजिक मीडिया पर हिंदी लेखन, ब्लॉग संस्कृति, ई-पत्रिकाओं, पॉडकास्ट, व्हाट्सऐप-फ़ेसबुक आधारित रचना-प्रवाह जैसे नव्य विषयों को समाविष्ट करता है।

उनका विश्लेषण दर्शाता है कि कैसे तकनीक, जो हिंदी के लिए चुनौती मानी जाती थी, वही अब हिंदी के प्रचार का सबसे सशक्त माध्यम बन रही है। वे लिखते हैं – *''हिंदी अब केवल छपाई की नहीं, चटपटाई की भी भाषा बन रही है। सोशल मीडिया पर जितनी तेज़ी से हिंदी फैल रही है, उतनी किसी और भाषा की गति नहीं।''* उन्होंने डिजिटल युग में हिंदी के उपयोग, तकनीकी शब्दावली के मानकीकरण, यूनिकोड पर आधारित टाइपिंग प्रशिक्षण और तकनीकी विषयों पर लेखन के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि हिंदी आज के स्मार्टफ़ोन, टैबलेट और ब्राउज़र की भी सहज भाषा है।

9. वैश्विक मंच पर हिंदी चेतना : प्रवासी संवाद और सांस्कृतिक कूटनीति

डॉ. शुक्ला ने हिंदी को भारत की सीमाओं से बाहर सार्थक संवाद की भाषा में रूपांतरित किया है। वे मॉरीशस, ऑस्ट्रेलिया, नेपाल, श्रीलंका, कनाडा, अमेरिका, यूके, कतर, सिंगापुर, मलेशिया, बेल्जियम आदि 30 से अधिक देशों में हिंदी विषयक संगोष्ठियों, कवि सम्मेलनों, वेबिनारों, शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यक्रमों और सांस्कृतिक आयोजनों से जुड़े रहे हैं।

वे केवल अतिथि नहीं, बल्कि संयोजक रहे हैं, जो हिंदी को भावनात्मक आग्रह से आगे व्यावहारिक संवाद तक ले जाने की रणनीति पर कार्य करते हैं। उनका स्पष्ट मानना है कि हिंदी का वैश्विक अभियान केवल भावुक अपीलों से नहीं, बल्कि नीतिगत कार्यक्रमों, डिजिटल कंटेंट-निर्माण, अंतरराष्ट्रीय पाठ्यक्रम और तकनीकी सहयोग से ही सफल हो सकता है।

उनका आलेख *'विदेशों में हिंदी सिखाने की समस्याएँ और समाधान'* एक प्रकार का भाषिक नीति-पत्र है, जिसमें Global Hindi Certification, व्यावसायिक पाठ्यक्रम, ऑनलाइन लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म और डिजिटल संप्रेषण पर ठोस सुझाव दिए गए हैं।

10. सम्मान, पुरस्कार एवं संस्थागत मान्यता : साधना की स्वीकृति

साहित्य, पत्रकारिता, प्रशासन और अंतरराष्ट्रीय संपादन के क्षेत्र में डॉ. शुक्ला के योगदान को अनेक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर सराहा गया है। उन्हें भारत सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा वर्ष 2019–20 का प्रतिष्ठित 'राजभाषा गौरव पुरस्कार' प्रदान किया गया। यह पुरस्कार केवल भाषा सेवा के लिए नहीं, बल्कि नवाचारपूर्ण राजभाषा क्रियान्वयन की स्वीकृति का प्रतीक है।

इसी प्रकार दिल्ली सरकार की हिंदी अकादमी द्वारा उन्हें वर्ष 2003–04 में 'नवोदित लेखक पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त अनेक अकादमिक संस्थानों, विश्वविद्यालयों, प्रवासी हिंदी मंचों तथा तकनीकी संस्थानों ने उन्हें प्रशस्ति-पत्र, प्रशंसा-सम्मान एवं वक्ता आमंत्रण से नवाज़ा है।

उपर्युक्त सम्मान केवल उनकी व्यक्तिगत उपलब्धियों की पुष्टि नहीं, बल्कि एक भाषिक आंदोलन को संस्थागत मान्यता देने का द्योतक है, जो यह दर्शाते हैं कि एक प्रतिबद्ध साधक की तपस्या को जब नीति, समाज और संस्कृति स्वीकार करते हैं, तो वह साधक युगपुरुष बन जाता है।

11. रचनात्मक विविधता और वैश्विक उपस्थिति : शब्दों की सीमा-लांघती यात्रा

डॉ. शुक्ला की रचनाएँ 40 से अधिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें भारत के प्रमुख राष्ट्रीय दैनिकों से लेकर अंतरराष्ट्रीय वेब पोर्टल्स, ई-जर्नल्स और विश्व हिंदी सचिवालय के प्रकाशन तक सम्मिलित हैं। अस्मिता, राजभाषा भारती, गगनांचल, संवाद पथ, खनिज भारती, शिक्षायण, संवाद पथ, विज्ञान गरिमा सिंधु, ज्ञान गरिमा सिंधु, नाट्य-मंजूषा, साक्षी भारत, दिल्ली न्यूज़ ट्रैक, दैनिक जागरण, राजस्थान पत्रिका, दक्षिण भारत राष्ट्रमत, अमर उजाला, पुरवाई, विश्वा, तीस्ता-हिमालय, भारतवाणी, सामाज्ञा, अनुगामिनी, हिमालिनी, सलाम दुनिया, भारत दर्पण, भारतवाणी, साक्षरता संवाद, समाज-धर्म, भारत दर्शन (https ://bharatdarshan.co.nz), इंदौर समाचार, सृजनिका, दैनिक राजस्थान समाचार जनकृति, अनुवाद, दृष्टिकोण, मधुराक्षर, नूतन कहानियाँ, साहित्य कुंज (https ://sahityakunj.net), जय विजय (www.JaiVijay.co), विश्वहिंदीजन, पूर्वोत्तर भरती दर्पण, आवाम केसरी, समवेत, शोध दिशा, AMIERJ, IJHER, दैनिक भास्कर (https ://Bhaskar.com और https ://BhaskarHindi.com), विश्व हिंदी सचिवालय (https ://Vishwahindi.com) एमबीएम न्यूज़ नेटवर्क (https ://mbmnewsnetwork.com), Express Media Services (EmsIndia.com), कलमकार पोर्टल (https ://kalamkar.hindibolindia.com), एमपी मीडिया पाइंट, डेली न्यूज़ हंट, वंदे भारत न्यूज़ (https ://vandebharatlivetvnews.com), कविशाला (www.Kavishala.com), AIRA News Network (https ://airanewsnetwork.com), बात अपने देश की (www.BaatApneDeshKi.in), शिक्षा वाहिनी (https ://www.shikshavahini.page/), स्वैच्छिक दुनिया (https ://Swaikshikdunia.page), अनुराग लक्ष्य (https ://anuraglakshya.in/) गऊ भारत भारती (https ://gaubharatbharati.com) समाचार वार्ता (https ://samacharvaarta.com), भोजपुरी राज्य संदेश, शाश्वत सृजन, साक्षात्कार, कर्माबक्श, गर्दभराग, आवाम आदि अनेक मुद्रित एवं ऑनलाइन मंचों पर उनकी रचनात्मक उपस्थिति सतत और सशक्त रही है।

उन्होंने 5 से अधिक पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें शोध, आलोचना, निबंध और काव्य-संग्रह सम्मिलित हैं। साथ ही, 20 से अधिक पुस्तकों का संपादन कर उन्होंने नए रचनाकारों को मंच प्रदान किया। इग्नू और दिल्ली विश्वविद्यालय की पाठ्यपुस्तकों में उनके 35 से अधिक अध्याय प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी कुछ कविताएँ बहुभाषिक मंचों पर अनूदित होकर प्रकाशित हुई हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि उनकी रचनात्मक ऊर्जा केवल हिंदी तक सीमित नहीं, बल्कि वैश्विक मानवता के साझा सरोकारों तक विस्तृत है।

12. निष्कर्ष : एक युगद्रष्टा, जो केवल लेखक नहीं, आंदोलन है

डॉ. शैलेश शुक्ला एक बहुपठित लेखक और एक व्यापक भाषिक आंदोलन के शिल्पी हैं। वे विचारों के वाहक हैं, जिनका लेखन पठन की वस्तु एवं क्रियाशीलता की प्रेरणा है। वे ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने हिंदी को भाषा के साथ संस्कृति, संप्रेषण, तकनीक, प्रशासन और वैश्विक कूटनीति का सेतु बनाया है।

उनका जीवन साक्ष्य है कि संघर्षशील साधना, अकादमिक अनुशासन, भाषिक समर्पण और वैचारिक स्पष्टता यदि एक साथ किसी में उपस्थित हो, तो वह व्यक्ति अकेला भी एक समग्र युग का निर्माण कर सकता है।

उनकी भाषा समृद्ध, शैली प्रभावी, दृष्टि वैज्ञानिक, भाव-संप्रेषण सार्वजनीन और रचनात्मक ऊर्जा समर्पित है। वे मीडिया के पतनशील नैरेटिव में वैकल्पिक विवेक की खोज करते हैं; तकनीकी हिंदी में प्रयोगशीलता का साहस रखते हैं; प्रवासी साहित्य को भारत की आत्मा से जोड़ने का संकल्प करते हैं और राजभाषा को केवल कार्यालय की दीवारों से निकालकर समाज की बोलियों तक लाने की ज़िद रखते हैं। वे हिंदी के वैश्विक भविष्य के निर्माता हैं, एक ऐसे युग के अग्रदूत, जहाँ हिंदी में न केवल स्वाभिमान, बल्कि नवाचार और संभावना की परंपरा स्थापित हो रही है।

संदर्भ-सूची :

1. डॉ. शैलेश शुक्ला, 'न्यू मीडिया में हिंदी साहित्य की उभरती प्रवृत्तियाँ', महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक, https ://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/326394
2. डॉ. शैलेश शुक्ला का अधिकारीक फ़ेसबुक प्रोफ़ाइल https ://www.facebook.com/poetshaileshshukla
3. डॉ. शैलेश शुक्ला, हम सनातन, साहित्य कुंज (कनाडा), अंक 249 (मार्च द्वितीय, 2024), ISSN 2292-9754 https ://sahityakunj.net/entries/view/ham-sanatan
4. सत्येंद्र नाथ सिंह, लो जी कर लो बात – दैनिक कॉलम, (2013–14), अनुगामिनी (दैनिक हिंदी अखबार)
5. डॉ. शैलेश शुक्ला, बँटवारा, (2013), संपादक : डॉ. फ़िलिप बी.पी. पूर्वोत्तर, भारती दर्पण
6. डॉ. शैलेश शुक्ला, साक्षी भारत (2008, मार्च), गलियाँ हो गईं सूनी और घरों में पड़ गए ताले
7. अंतरराष्ट्रीय हिंदी पत्रकारिता वर्ष 2025-26 का उद्घाटन समारोह, 30 मई 2025 https ://www.youtube.com/watch?v=BlLzoq6Gffo
8. प्रिन्ट मीडिया और अनुवाद, अनुवाद और जनसंचार (IGNOU, दिल्ली, 2014), ISBN 978-81-266-6683-6
9. डॉ. शैलेश शुक्ला, काश! मुझे भी भारत रत्न मिलता, आपका तीस्ता हिमालय (2014, अगस्त)
10. डॉ. शैलेश शुक्ला, हम मालिक अपनी मर्जी के, साहित्य कुंज (कनाडा), अंक 249 (मार्च द्वितीय, 2024), ISSN 2292-9754 https ://sahityakunj.net/entries/view/ham-malik-apani-marzi-ke
11. सृजन ऑस्ट्रेलिया अंतरराष्ट्रीय ई-पत्रिका https ://www.facebook.com/SrijanAustraliaInternationalEJournal
12. डॉ. शैलेश शुक्ला, हिंदी पत्रकारिता के 200 वर्ष : अभिव्यक्ति, संघर्ष और उत्कर्ष की अविरल यात्रा, आपका तीस्ता हिमालय, वर्ष 17, अंक 173 (मई 2025), ISSN 2231-1602
13. डॉ. शैलेश शुक्ला, खाद्य पदार्थों का खेत से थाली तक हो सुरक्षित सफर, हिमालिनी (नेपाल), https ://www.himalini.com/201733/06/07/06/
14. डॉ. शैलेश शुक्ला, हम सनातन, साहित्य कुंज (कनाडा), अंक 249 (मार्च द्वितीय, 2024), ISSN 2292-9754 https ://sahityakunj.net/entries/view/ham-sanatan
15. डॉ. शैलेश शुक्ला, हिंदी प्रयोग, सहयोग, विरोध और गतिरोध, https ://jayvijay.co/2025/06/29/हिंदी-प्रयोग-सहयोग-विरोध
16. सृजन ऑस्ट्रेलिया के प्रधान संपादक डॉ. शैलेश शुक्ला को राष्ट्रपति करेंगे पुरस्कृत, 2 सितंबर 2020 https ://www.swaikshikduniya.page/2020/09/srjan-ostreliya-ke-pradhaan-sa-8-iqVY.html
17. डॉ. शैलेश शुक्ला, महाठगबंधन, साहित्य कुंज (कनाडा), अंक 249 (मार्च द्वितीय, 2024), ISSN 2292-9754 https ://sahityakunj.net/entries/view/mahaagathbandhan
18. डॉ. शैलेश शुक्ला, राजमाता जीजाबाई : मातृत्व, साहस और नेतृत्व की अद्वितीय गाथा, (16 जून 2025), EMSIndia.com https ://www.emsindia.com/news/show/2965045/article
19. Hindi Language And Technology विषय पर Lovely Professional University द्वारा आयोजित वेबिनार https ://www.instagram.com/p/DKKHx3rznIB/
20. डॉ. शैलेश शुक्ला, हिंदी भाषा और तकनीक, https ://www.amazon.co.uk/हिंदी-भाषा-और-तकनीक-Hindi-ebook/dp/B0F9WGPC54
21. डॉ. शैलेश शुक्ला, संख्याओं का स्वराज, https ://jayvijay.co/2025/06/29/संख्याओं-का-स्वराज/
22. डॉ. शैलेश शुक्ला, 'गिरीश कर्नाड : एक विचारशील विद्रोही की रंगमंचीय यात्रा', हिमालिनी (नेपाल) https ://www.himalini.com/201898/08/10/06/
23. डॉ. शैलेश शुक्ला, राम आए हैं, साहित्य कुंज (कनाडा), अंक 249 (मार्च द्वितीय, 2024), ISSN 2292-9754, https ://sahityakunj.net/entries/view/ram-aaye-hain

24. डॉ. शैलेश शुक्ला, (व्यंग्य) काश मैं सिविल विभाग का प्रमुख होता, (27 जून 2025) EMSIndia.com https ://www.emsindia.com/news/show/2974121/article
25. अंतरराष्ट्रीय हिंदी पत्रकारिता वर्ष 2025-26 के अंतर्गत 'हिंदी के प्रचार-प्रसार में बॉलीवुड की भूमिका' https ://www.youtube.com/watch?v=_nzKmlgMqVs
26. डॉ. शैलेश शुक्ला का LinkedIn प्रोफ़ाइल https ://www.linkedin.com/in/poetshaileshshukla/?originalSubdomain=in
27. डॉ. शैलेश शुक्ला, भला क्या कर लोगे, साहित्य कुंज (कनाडा), अंक 177 (मार्च द्वितीय, 2021), ISSN 2292-9754 https ://sahityakunj.net/entries/view/bhalaa-kyaa-kar-loge
28. आकाशवाणी गंगटोक द्वारा सिक्किम विश्वविद्यालय के प्रथम हिंदी अधिकारी एवं राजभाषा गौरव पुरस्कार 2019-20 के प्राप्तकर्ता डॉ. शैलेश शुक्ला से साक्षात्कार, 15 सितंबर 2020 https ://www.youtube.com/watch?v=icE9np6FN2c
29. डॉ. शैलेश शुक्ला, हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता और न्यू मीडिया, मधुराक्षर (अंक 39, ISSN 2582-6603) https ://www.madhurakshar.com/2023/04/blog-post.html
30. अंतरराष्ट्रीय हिंदी पत्रकारिता माह (01 जून 2025) https ://www.youtube.com/watch?v=syPtkryDdbQ
31. डॉ. शैलेश शुक्ला, काश मैं सामग्री विभाग का प्रमुख होता, https ://www.baatapnedeshki.in/if-only-i-were-head-of-materials-department-dr-shailesht/
32. डॉ. शैलेश शुक्ला, आकाशवाणी की गूंज, भारत दर्शन (न्यूज़ीलैंड) https ://bharatdarshan.co.nz/hindi-sahitya/2086/akashvani-ki-goonj
33. लोकभाषा और लोक संस्कृति : अवधि के विशेष संदर्भ में, Madhurakshar, Year 13, Issue 32, ISSN 2319-2178 (P), 2582-6603 (O)
34. न्यू मीडिया की नज़र से हिंदी समाचार पत्रों पर कोविड-19 का प्रभाव, Vishwa Hindi Patrika, 2020, ISSN 1694-2477
35. न्यू मीडिया : हिंदी भाषा और साहित्य के वैश्विक प्रचार-प्रसार का सशक्त मंच, Samvad Path, Vol. 3(3), 2020, ISSN 2581-7353
36. हिंदी साहित्य को मुसलमान साहित्यकारों का योगदान, Bohal Shodh Manjusha, Vol. 12(7II), Oct 2020, ISSN 2395-7115 https ://bohalshodhmanjusha.com/wp-content/uploads/2021/03/हिंदी-साहित्य-को-मुस्लिम-साहित्यकारों-का-योगदान-October-2020-Vol.-12-Iss.-7II-3.pdf
37. डॉ. शैलेश शुक्ला के 'न्यू मीडिया में हिंदी साहित्य' ब्लॉग पर विभिन्न शोध आलेख https ://newmediamehindisahitya.blogspot.com/
38. न्यू मीडिया में हिंदी की वर्तमान स्थिति, Rajbhasha Bharati, 41(157), Jul 2018–Sep 2019, ISSN 0970-9398 https ://rajbhasha.gov.in/sites/default/files/lekh3rd_hin2019-20.pdf
39. न्यू मीडिया में हिंदी पत्रकारिता के विविध आयाम, Jankriti International Journal, Vol. 4(48), Mar–Apr 2019, ISSN 2454-2725
40. समकालीन हिंदी साहित्य की उभरती प्रवृत्तियाँ : न्यू मीडिया मंचों के संदर्भ में, AMIERJ, Vol. VIII(1), 2019, ISSN 2278-5655
41. न्यू मीडिया में हिंदी कविता : अभिव्यक्ति के विभिन्न प्रारूप, पहुँच और उभरती प्रवृत्तियाँ, Vishwa, 35(1), Jan 2019, ISSN 2572-1550 (P), 2572-1559 (O)
42. Emerging Trends in Hindi Poetry on New Media, IJHER, Vol. 9(1), 2019, ISSN 2277-260X, http ://www.ijher.com/90.html
43. न्यू मीडिया में हिंदी साहित्य की उभरती प्रवृत्तियाँ, Jankriti International Journal, Vol. 2(16), Jun–Jul 2016, ISSN 2454-2725 https ://vishwahindijan.blogspot.com/2017/02/blog-post_1.html
44. प्रिन्ट मीडिया और अनुवाद, अनुवाद और जनसंचार (IGNOU, 2014)
45. दृश्य बोध का सम्प्रेषण और उसके माध्यम : डबिंग, सबटाइटलिंग और अनुवाद, अनुवाद और जनसंचार (IGNOU, 2014)
46. डॉ. हरीश अरोड़ा, नए मीडिया के दौर में नए तेवर की पत्रकारिता, 'पत्रकारिता का बदलता स्वरूप', (2013), ISBN 978-93-82597-19-3
47. डॉ. रमा, न्यू मीडिया की नज़र से 'वैश्विक पटल पर हिंदी', 2017, ISBN 978-93-88011-10-5
48. कंचन शर्मा, 'समकालीन साहित्य और मीडिया', 2019,

49. कल्पना लालजी, नारी संघर्ष का जीवंत दस्तावेज़ ('अपराजिता'), 2021, हिंदी बुक सेंटर, New Delhi ISBN 9789383894987
50. कल्पना लालजी, नारी संघर्ष का जीवंत दस्तावेज : अपराजिता, Mauritius ki Bahumukhi Sahityakar, 2022, हिंदी बुक सेंटर ISBN 9788192890241
51. डॉ. शैलेश शुक्ला, ट्यूशन आखिर क्यों?, (2005, अप्रैल), साक्षी, भारत
52. डॉ. शैलेश शुक्ला, नेता - दलबदलू, साक्षी, (2005, मई), भारत
53. डॉ. शैलेश शुक्ला, अंग्रेजी बोलना सीखिए आखिर क्यों?, (2005, जून), साक्षी, भारत
54. डॉ. शैलेश शुक्लारैगिंग आखिर क्यों?, , (2005, अगस्त), साक्षी, भारत

dramitmishraindia@gmail.com

हिंदी की साधिका : डॉ. वंदना मुकेश

- शालिनी वर्मा
दोहा, कतर

भारत की मिट्टी में पली-बढ़ी, साहित्य-संस्कारों से समृद्ध और अब ब्रिटेन में हिंदी की अलख जगातीं डॉ. वंदना मुकेश प्रवासी हिंदी साहित्य की एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनका लेखन केवल शब्दों की बुनावट नहीं, बल्कि संवेदनाओं, अनुभवों और आत्मीय संबंधों का एक जीवंत दस्तावेज़ है। वे एक ऐसी लेखिका हैं, जिनकी लेखनी में गाँव की मिट्टी की सोंधी गंध, शहरी जीवन की जटिलता, पारिवारिक संबंधों की गहराई और एक स्त्री के आत्म-संघर्ष का सच्चा चित्रण है। वे अपने लेखन के माध्यम से अपने भीतर के 'गाँव' को बचाए रखने की कोशिश करती हैं और उनकी पहचान भी बन जाती है। अपनी मातृभूमि से दूर किसी अन्य देश में प्रवास कर रहे लेखक के लिए अपनी भाषा और संस्कृति की जड़ों को बचाए रखना एक संघर्ष, साधना और सामाजिक उत्तरदायित्व बन जाता है। डॉ. वंदना मुकेश का जीवन और लेखन इसका सजीव उदाहरण है।

जीवन परिचय

डॉ. वंदना मुकेश का जन्म 12 अक्टूबर 1968, कार्तिक षष्ठी, को मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। माता-पिता मूलतः ग्वालियर के थे। उनके पिताजी आयकर-अधिकारी थे। चार भाई-बहन में सबसे छोटी वंदना अपने पिता की अत्यधिक लाडली रही। उनके पिता उन्हें रात को लोरी गाकर सुलाते थे और सोने से पहले कुछ पढ़कर सुनाते थे और एक कहानी भी अवश्य सुनाते थे। यहीं से वंदना जी के मन की अनगढ़ धरती में साहित्य का बीजारोपण हो गया था। रामायण, महाभारत, ऐतिहासिक कथाओं और लोककथाओं के व्यापक साम्राज्य के प्रति 7-8 वर्ष की उम्र तक गहरा परिचय और अद्‌भुत आकर्षण उत्पन्न हो गया था। इन कथाओं से संबंधित अनंत जिज्ञासाओं का समाधान उनके पिताजी ही करते थे। माँ घर का काम निपटाते हुए अक्सर लोकगीत गुनगुनाया करती थीं। वे धुनें अब भी वंदना जी के कानों में गूँजा करती हैं। हर तीज-त्यौहार का विशेष आकर्षण अच्छे कपड़ों और भोजन के अतिरिक्त, उनसे जुड़ी कथाएँ और गीत होते थे। गीतों में भी कथाएँ होती थीं, जिन्हें वे बड़े ध्यान से सुनती थीं। सत्य और कल्पना के अनोखे संसार में विचरण करना उन्हें सबसे प्रिय लगता था। उनके सपनों में एक आदर्श संसार था। उनके इस यूटोपिया के पात्र सत्यवादी और आदर्श थे। इस स्वनिर्मित काल्पनिक संसार में सिर्फ़ राम, लक्ष्मण और सीता जैसे सुपात्र थे। उसमें रावण, दुर्योधन, शकुनि और हिरण्यकश्यप जैसे पात्रों के लिए जगह नहीं थी। पढ़ने-लिखने का संस्कार वहीं से आरंभ हुआ। माँ और पिता ने उनके भीतर के लेखक को सदैव उचित खाद-पानी द्वारा सिंचित-पोषित किया। अमर चित्र कथाएँ, तत्कालीन पत्रिकाएँ, जैसे - चंदामामा, नंदन, चंपक, पराग आदि से लेकर सरिता, मुक्ता, नवनीत, सारिका, कादंबिनी, धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान इत्यादि ने उनके लेखन के बीज को पल्लिवत करना आरंभ किया।

ग्यारहवीं तक पहुँचते-पहुँचते उन्होंने हिंदी साहित्य की उत्कृष्ट कृतियों के अतिरिक्त बांग्ला के रवींद्र और शरत्-साहित्य के हिंदी अनुवाद को कई बार पढ़ लिया था। तब उन्हें समझने का उतना गहरा ज्ञान न था, लेकिन यह लेखन उनके मन को छूता था। कॉलिज पहुँचते-पहुँचते शिवानी उनकी प्रिय लेखिका बन गईं। उनकी भाषा-शैली की सजीवता उन्हें पहाड़ी अंचलों और पात्रों के एकदम नज़दीक पहुँचा देती थी।

उनकी प्रथम प्रकाशित रचना 'खामोश ज़िंदगी' अठारह वर्ष की आयु में 1987 में 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में 'नये स्वर' स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित हुई थी, जिसने उन्हें भारत के साथ-साथ नेपाल तक ख्याति दिलवाई और लेखन में उनका आत्मविश्वास जगाया। उसी वर्ष उन्हें अंतर्महाविद्यालयीन निबंध स्पर्धा में 'कौमी एकता' विषय पर प्रथम पुरस्कार मिला। दैनिक भास्कर अखबार में भी उनके लेख छपे। उन्नीस वर्ष की आयु में बी.ए. अंतिम वर्ष के दौरान ही 1988 में उनका विवाह हो गया और वे पूना आ गईं। शेष शिक्षण विवाहोपरांत, फ़र्ग्युसन महाविद्यालय एवं पुणे विद्यापीठ से संपूर्ण हुआ। उन दिनों पूना के एकमात्र हिंदी अखबार 'आज का आनंद' में प्रतिक्रियाएँ, लेख और काव्य-रचनाएँ प्रकाशित होती रहीं। बी.ए. और एम.ए. में अंग्रेज़ी साहित्य के अध्ययन ने उनकी सोच को व्यापकता प्रदान की। हिंदी में एम.ए. और पी.एच. डी. की शोध-यात्रा ने उन्हें जीवन और जगत् को समझने का अवसर और आलोचनात्मक दृष्टि दी।

विदेश में हिंदी लेखन की शुरुआत : संघर्ष से साधना तक

सन् 1999 में हिंदी निबंध पर पी.एच.डी करने के बाद अप्रैल 2001 में उनका शोध-प्रबंध प्रकाशित हुआ और अगस्त सन् 2002 में वंदना मुकेश अपने परिवार सहित इंग्लैंड के बर्मिंघम शहर में आ बसीं। यह समय उनके जीवन में एक नए अध्याय की शुरुआत थीं। एक नए देश, नए परिवेश और नए सामाजिक ढाँचे में हिंदी लेखन को जीवित रखना आसान कार्य नहीं था।

सन् 2002 से सन् 2004 तक वे इंग्लैंड के सुदूर दक्षिण-पूर्व में स्थित 'ग्रेट यारमथ' शहर के पास एक अंग्रेज़ी कस्बे 'गोर्लस्टन-ऑन-सी' में रहीं, जहाँ उनके पति की नियुक्ति जेम्स पेजेट अस्पताल में चिकित्सक के पद पर हुई थी। 'यारमथ' शहर 'यार' नामक नदी के तट पर बसा है, जबकि गोर्लस्टन समुद्र के किनारे स्थित है। उस समय हर ओर अंग्रेज़ थे और चारों ओर अंग्रेज़ी ही सुनाई देती थी। हिंदी में बोलचाल की तृप्ति के लिए केवल अस्पताल परिसर में रहने वाले कुछ मराठी परिवार थे। शेष न तो हिंदी की पुस्तकें थीं, नाहीं कोई हिंदी परिवेश।

उन्होंने यॉर्क, ऑक्सफ़ोर्ड, कैम्ब्रिज और लंदन विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों से पत्र-व्यवहार किया, किंतु उनके हिंदी-ज्ञान और डिग्री का कोई उपयोग नहीं हो सका। लंदन में उस समय के हिंदी अधिकारी अनिल शर्मा को भी उन्होंने ईमेल लिखा, तो उन्होंने 'पुरवाई' पत्रिका के बारे में बताया, जिसके संपादक पद्मेश गुप्त थे। फिर उन्होंने 'पुरवाई' मँगवाना शुरू किया। लेकिन लिखकर कुछ न भेजने का कारण उनकी यह सोच रही थी कि "मैं कोई बड़ी लेखिका नहीं हूँ, मुझे तो अपने लेखन को अभी बहुत सँवारना है।" इसके बाद उन्होंने वहाँ टीचर्स ट्रेनिंग शुरू की। बच्चे छोटे थे, सो व्यस्तता और बढ़ गई। कभी-कभी डायरी लिख लेती थीं और उनके पिता के पत्र ही एकमात्र संजीवनी थे।

नई जगह, नई ज़िम्मेदारियाँ, विशेषकर दो छोटे बच्चों के पालन-पोषण, घरेलू ज़िम्मेदारियों और सामाजिक समायोजन के बीच हिंदी को न केवल जीवित रखना, बल्कि रचनात्मक रूप से पुष्पित-पल्लवित करना ही उनकी सच्ची सेवा थी।

पुणे विद्यापीठ, जहाँ से शोध-कार्य किया था, वहाँ हिंदी साहित्य के उद्भट विद्वान एवं रस समीक्षक श्रद्धेय डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित जी ने चलते हुए उन्हें डॉ. श्याममनोहर पाण्डेय जी का नंबर दिया था , जिनके यहाँ वे आठवें या नौवें दशक में कभी ठहरे थे। उनका नंबर निकालकर खोजा, तो उनकी सहधर्मिणी श्रीमती कृष्णा पाण्डेय से बात करने पर पता चला कि डॉ. पाण्डेय तो मिलान, इटली में हिंदी पढ़ाते हैं और वहीं रहते हैं, उनका घर लंदन में है। इस प्रकार साहित्यिक या अकादमिक हिंदी से जुड़ने के सारे मार्ग बंद-से नज़र आने लगे, सिवाय अपनी डायरी के। वे कविताएँ ज्यादा लिखने लगीं। 2004 में जब पति महोदय की नियुक्ति बर्मिंघम में हुई, तब दृश्य बदला।

गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक संस्था : एक मंच, एक आंदोलन

ब्रिटेन प्रवास के शुरुआती वर्षों में जब हिंदी से जुड़ाव बनाए रखना कठिन हो रहा था, तब आदरणीय डॉ. कृष्ण कुमार जी के मार्गदर्शन में 'गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक संस्था' वंदना जी के लिए एक नया साहित्यिक घर बनी।

बर्मिंघम में हिंदी के प्रचार-प्रसार की एक प्रमुख संस्था गीतांजलि बहुभाषीय समुदाय के संस्थापक डॉ. कृष्ण कुमार और उनकी पत्नी श्रीमती चित्रा कुमार से परिचय हुआ। उनकी संस्था की सदस्या बनने के बाद यूके के हिंदी लेखक समाज से धीरे-धीरे परिचय बढ़ता गया। पद्मेश जी, उषा वर्मा, उषा राजे जी, दिव्या माथुर, तेजेंद्र शर्मा आदि से परिचय हुआ। उन दिनों वार्षिक कवि सम्मेलन हुआ करते थे, जिनमें भारत से कवि और साहित्यकार आमंत्रित किए जाते थे। ऐसे कार्यक्रमों के संचालन और संयोजन के कई अवसर उन्हें मिलने लगे। लेखन का कार्य भी बराबर चलता रहा। लेकिन उन्होंने प्रकाशन पर विशेष ध्यान नहीं दिया। गीतांजलि ने 2005 में अंतरराष्ट्रीय बहुभाषीय सम्मेलन किया, जिसमें 25 देशों की प्रतिभागिता रही। फिर अंतरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन 2006 में हुआ, तो हिंदी में अभिव्यक्ति के अनेक अवसर मिलने लगे। पारिवारिक व्यस्तताएँ रहीं। उनकी रचनाएँ 'पुरवाई' तथा अन्य भारतीय पत्रिकाओं में प्रकाशित होना शुरू हो गईं। 'गीतांजलि' संस्था ने उन्हें लिखते रहने की प्रेरणा दी और ब्रिटेन में हिंदी को एक सामूहिक अभिव्यक्ति का स्वर भी प्रदान किया। संस्था के विविध आयोजनों, कवि-गोष्ठियों, कथा-मंचों और कहानी-संकलनों में वंदना मुकेश ने अपनी उपस्थिति से हिंदी की गरिमा को सशक्त किया। उनकी कहानियाँ 'घर' और 'छाँह' इस संस्था द्वारा प्रकाशित 'अपनी उम्मीदों के साथ' (2012) में संकलित हुईं। ये रचनाएँ केवल प्रवासी जीवन की कहानियाँ नहीं, बल्कि प्रवास और मूल की सांस्कृतिक सेतु बन गईं।

रचनात्मक लेखन : आत्म से समाज तक

डॉ. वंदना मुकेश ने अपने दोनों बच्चों को हिंदी बोलने, पढ़ने और समझने के लिए तैयार किया। घर पर हिंदी में बातचीत

होती रही। त्यौहारों की कथाएँ उन्हें विरासत में प्राप्त हुई थीं और परंपरा के रूप में उनके साथ रह गईं। उनकी कहानियाँ, कविताएँ, समीक्षाएँ और लेख पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तक-संकलनों में निरंतर प्रकाशित हो रहे थे। उनका पहला काव्य-संग्रह 'मन मुखर' सन् 2015 में प्रकाशित हुआ। उसके पूर्व सन् 2002 में हिंदी निबंध पर शोध प्रकाशित हुआ, जो आज ललित निबंध के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण और मानक शोध-ग्रंथ है और कई विश्वविद्यालयों में संदर्भ-ग्रंथ के रूप में प्रयुक्त होता है। पहला कहानी-संग्रह, सन् 2021 में, नेशनल बुक ट्रस्ट से प्रकाशित 'संकलित कहानियाँ - वंदना मुकेश' है। इसे बहुत अच्छा प्रतिसाद मिला। इसमें भारत और इंग्लैंड के परिवेश की कहानियों से ज्यादा मानव मन की कहानियाँ हैं। उनका पहला निबंध-संकलन हाल ही में किताबगंज से प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त वे अब तक पाँच पुस्तकों का संपादन कर चुकी हैं। डॉ. प्रमोद पाठक द्वारा रचित इस्लामी धर्मग्रंथांची ओळख (10 अध्याय), इस्लामी धर्मग्रंथों का उन्होंने अनुवाद किया है। ब्रिटेन में रहते हुए डॉ. वंदना मुकेश ने अपने लेखन को सिर्फ़ व्यक्तिगत आत्मकथ्य तक सीमित नहीं रखा। उनकी रचनाओं में प्रवासी स्त्रियों की मनोस्थिति, भाषाई संघर्ष, पारिवारिक संतुलन, सांस्कृतिक पहचान की चिंता और 'अपने गाँव' को भीतर जीवित रखने की जद्दोजहद मुखर रूप से अभिव्यक्त होती है।

उनकी आत्मकथात्मक रचना 'मैं क्यों लिखती हूँ' ब्रिटेन के हिंदी साहित्यिक जगत् में एक विशेष दस्तावेज़ मानी जाती है। इसमें वे स्पष्ट कहती हैं -

"मैं इसलिए लिखती हूँ कि मेरी आँख का पानी बचा रहे।" यह भाव उनके लेखन की मूल संवेदना है, जो ब्रिटेन में रहते हुए भी भारतीयता के जल से सिंचित होती रही।

हिंदी की विरासत का संरक्षण

वंदना मुकेश का विश्वास है कि हिंदी केवल एक भाषा नहीं, एक सांस्कृतिक विरासत है, जिसे संजोने की ज़िम्मेदारी हर भारतीय की है। चाहे वह देश में हो या विदेश में। उन्होंने न केवल घर में, बल्कि समाज में भी हिंदी के प्रचार-प्रसार को एक मिशन के रूप में लिया। बर्मिंघम और यूके के विभिन्न शहरों में उन्होंने साहित्यिक आयोजनों में भाग लेकर, वक्तव्य देकर और युवा पीढ़ी को जोड़कर हिंदी की नई चेतना जगाई। उन्होंने बालाजी कैंप में प्रतिवर्ष गर्मियों में 10 साल तक हिंदी का निःशुल्क शिक्षण किया।

प्रवासी लेखिका की दृष्टि :

ब्रिटेन की ज़मीन पर, जहाँ अंग्रेज़ी ही शासक भाषा है, वहाँ हिंदी में लिखते रहना एक वैचारिक प्रतिरोध भी है; अपनी अस्मिता, अपनी जड़ों और अपने स्वाभिमान की रक्षा करने का उपक्रम है।

वंदना मुकेश कहती हैं - "मैं इसलिए लिखती हूँ कि मैं आपसे संवाद स्थापित करना चाहती हूँ... यह संवाद मात्र पाठकों से नहीं, अपने अतीत, अपनी मातृभूमि और अपनी भाषा से भी है।

विदेशों में हिंदी और हिंदी-शिक्षण पर वंदना मुकेश का विचार है - "वर्तमान में इंटरनेट और ए. आई के कारण विदेशों में हिंदी का परिदृश्य अभूतपूर्व रूप से सकारात्मक दिशा में बदला है। यूट्यूब चैनल्स, सोशल मीडिया, वेबिनार आदि के कारण हिंदी का वास्तविक वैश्विक विस्तार हुआ। कोविड-19 की वैश्विक महामारी ने जहाँ संपूर्ण विश्व को प्रभावित किया, ठहरा दिया और सहमा दिया, वहीं ऑनलाइन कार्यक्रमों के आयोजनों से हिंदी प्रेमियों से मिलने के अवसरों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई और सारे संसार के हिंदी प्रेमी वैश्विक ऑनलाइन मंचों पर सक्रिय और एक-दूसरे से परिचित हुए हैं।"

शोध और आलोचना में योगदान

वंदना मुकेश एक रचनात्मक लेखिका होने के साथ ही एक शोधकर्ता और आलोचक भी हैं। उनके द्वारा लिखा गया शोध-प्रबंध 'नवें दशक का हिंदी निबंध साहित्य - एक विवेचन' भावना प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। यह केवल एक अकादमिक कार्य नहीं, बल्कि एक गंभीर साहित्यिक पड़ताल है। ब्रिटेन में रहते हुए उन्होंने साहित्य की आलोचना, मूल्यांकन और पारंपरिक बनाम आधुनिक विचारों के बीच सेतु भी निर्मित किया।

डॉ. केशव प्रथमवीर : गुरु और प्रेरणा

डॉ. वंदना मुकेश की लेखन-यात्रा में यदि कोई सशक्त हस्तक्षेप रहा, तो वह उनके गुरु डॉ. केशव प्रथमवीर का रहा, जिन्हें वे 'आधुनिक कबीर' कहती हैं। उनके मार्गदर्शन, संवाद और उत्साहवर्द्धक पत्रों ने वंदना मुकेश को लेखन से जोड़े रखा। वे स्वीकार करती हैं कि गुरुवर के शब्द - *"बेटी, ये भाव ही तो हैं, जो मनुष्य की आँख का पानी बचाए हुए हैं"*, उन्हें बार-बार आत्मसंशय से उबारते रहे।

पुरस्कार और सम्मान

वंदना मुकेश को अनेक सम्मान प्राप्त हुए हैं, जिनमें 2007

में निरंकारी मिशन ब्रेडफ़र्ड एवं लेस्टर द्वारा सम्मान, 2024 में डॉ. हरिवंश राय बच्चन लेखन सम्मान, भारतीय उच्चायोग, लंदन, हिंदी अकादमी, 2023 में मुंबई एवं गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय, बरमिंघम द्वारा 'अंतरराष्ट्रीय साहित्य भूषण' सम्मान, 2019-2022 में भारतीय कौंसुलावास बरमिंघम द्वारा हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु सम्मान, पब्लिक रिलेशंस सोसायटी, 2019 तथा 2023 में भोपाल द्वारा प्रवासी साहित्य सम्मान, विश्व हिंदी साहित्य परिषद्, 2016 में दिल्ली द्वारा 'सृजन भारती' सम्मान और 2011 में यू.के. क्षेत्रीय हिंदी सम्मेलन में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए भारतीय उच्चायोग लंदन द्वारा विशिष्ट सम्मान दिया गया।

विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा आयोजित अंतरराष्ट्रीय कहानी-लेखन प्रतियोगिता (2019) एवं अंतरराष्ट्रीय रिपोर्ताज-लेखन प्रतियोगिता (2023) तथा भोपाल लघुकथा शोध केंद्र द्वारा आयोजित श्रीमती कृष्णा देवी स्मृति सारस्वत लघुकथा-लेखन प्रतियोगिता में वे पुरस्कृत हुईं। भारतीय उच्चायोग लंदन द्वारा डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी अनुदान-पुरस्कार, 2014, इंटीग्रेटेड काउंसिल फ़ॉर सोश्यो-इकनॉमिक प्रोग्रेस दिल्ली द्वारा 'महिला राष्ट्रीय ज्योति पुरस्कार' 2002 में प्रदान किए गए।

भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्रेरणा

डॉ. वंदना मुकेश का मानना है कि प्रवासी जीवन का सबसे बड़ा खतरा जड़ों से कट जाना है। इस कटाव को रोकने का एकमात्र उपाय है - *संस्कृति और भाषा को हृदय के भावों से जोड़ना।* वे चाहती हैं कि उनके बच्चे भी अपनी भाषा से उतना ही प्रेम करें, जितना प्रेम करना उन्होंने अपने माता-पिता से सीखा। इस प्रकार सांस्कृतिक निरंतरता बनी रहेगी।

डॉ. वंदना मुकेश ब्रिटेन में रहते हुए हिंदी साहित्य की संवेदनशील, सजग और सशक्त प्रतिनिधि हैं। उन्होंने केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से नहीं, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से जुड़कर, पीढ़ियों के बीच पुल बनाकर और लेखन को संवाद का माध्यम बनाकर एक प्रवासी हिंदी चेतना का निर्माण किया है। उनकी लेखनी में उनका गाँव, उनका देश भारत और उनकी भाषा 'हिंदी' साँस लेती है। उनकी प्रत्येक रचना ब्रिटेन की ज़मीन पर हिंदी के वटवृक्ष की तरह खड़ी दिखाई देती है, जो आने वाली पीढ़ियों को छाँव भी दे रही है और जड़ें भी।

संदर्भ-सूची :

1. https://www.vandanamukesh.com/
2. https://vaishvikhindi.com/posts/1953
3. https://www.bhartiyasahityas.com/product/vandana-mukesh-sankalit-kahaniyan/
4. https://m.sahityakunj.net//lekhak/vandana-mukesh
5. https://bharatdarshan.co.nz/author-profile/224/vandana-mukesh-uk
6. वंदना मुकेश, संकलित कहानियाँ'- 2021, नेशनल बुक ट्रस्ट
7. वंदना मुकेश, मौन मुखर जब' 2015, अनामिका प्रकाशन इलाहाबाद
8. वंदना मुकेश, नौंवे दशक का हिंदी निबंध साहित्य एक विवेचन' शोध-प्रबंध- 2002
9. रामनारायण सिरोठिया, मनके मन के', 2016, अनामिका प्रकाशन इलाहाबाद
10. डॉ. केशव प्रथमवीर, 'परि भारत में किसान न बनइयो', 2018, अनुभव प्रकाशन, दिल्ली
11. ब्रिटेन की चयनित रचनाएँ, 'गंगा के पार से टेम्स के द्वार से' 2023

Shln.verma2@gmail.com

खड़ी बोली के विकास में फ़ोर्ट विलियम कॉलिज का योगदान

- उमेश दत्त तिवारी
भदोही, भारत

एक समय था जब हिंदी अर्थात् खड़ी बोली दिल्ली हरियाणा की क्षेत्रीय बोली तक सीमित थी, जिसे कौरवी कहा जाता था। आठवीं सदी से ही 'कौरवी' के लोकगीत एवं लोक व्यवहार प्रचलित होने लगे थे। लेखन में 'कौरवी' के आरंभिक प्रयोग 8वीं-9वीं सदी से ही मिलने लगते हैं। यह 'कौरवी' या प्रारंभिक खड़ी बोली अपभ्रंश की रचनाओं के बीच से भी झाँकती हुई दिखाई देने लगती है। "सन् 770 ई. में रचित उद्योतनसूरि की कृति 'कुवलयमाला कथा' में एक ऐसे हाट का प्रसंग आता है, जिसमें विभिन्न स्थानों के लोग अपने-अपने प्रदेश की बोली बोलते हैं। वहाँ कुरु प्रदेश के एक व्यापारी के मुख से 'तेरे-मेरे' जैसे शब्दों का उल्लेख मिलता है, जिससे 8वीं सदी में इस बोली के व्यावहारिक अस्तित्व का संकेत मिलता है। इसी के बाद सिद्धों एवं नाथों की अपभ्रंश रचनाओं में खड़ी बोली हिंदी के प्रारंभिक अंश दिखाई देने लगते हैं।" राहुल सांकृत्यायन ने सिद्धों के अपभ्रंश साहित्य पर बहुत अधिक कार्य किया तथा आधुनिक भाषाओं से उसका संबंध भी स्थापित किया। "राहुल जी के मतानुसार अपभ्रंश का साहित्य आरंभिक हिंदी का ही साहित्य है। उन्होंने 84 सिद्धों में से 81 सिद्धों के विपुल साहित्य के उदाहरण देकर सिद्ध किया है कि सिद्ध-साहित्य हिंदी के आरंभिक काल का साहित्य है। वे सरहपा को खड़ी बोली का प्रथम कवि मानते हैं।"

अमीर खुसरो ने अपनी पुस्तक 'खालिकबारी' में इस कौरवी को ही हिंदवी' कहा तथा अपनी दूसरी पुस्तक 'नूह सिपहर' में इसे 'देहलवी' नाम दिया है। खुसरो के अतिरिक्त दक्षिणी के कवि शरफ़ ने भी इसे 'हिंदवी' कहा है, जबकि अबुल फ़जल ने 'आईने अकबरी' में इसे 'देहलवी' नाम दिया है। हिंदवी के साथ इसका 'हिन्दुई' नाम भी मिलता है, जिसका स्पष्ट उल्लेख 13वीं सदी के एक फ़ारसी कवि मुहम्मद औफ़ी की रचनाओं में तथा 15वीं सदी के अज्ञात सूफ़ी कवि की कृति 'कुतुब-शतक' में मिलता है।" मुगल बादशाह बाबर ने अपनी आत्मकथा 'बाबरनामा' में इसी 'कौरवी' को हिंदुस्तानी कहा है। स्पष्ट है कि दिल्ली-हरियाणा के आसपास की स्थानीय बोली को ही विभिन्न समय में 'हिन्दवी', 'हिन्दुई', 'देहलवी' तथा 'हिंदुस्तानी' के नामों से संबोधित किया गया। अंग्रेज़ों ने 18वीं सदी में इसी स्थानीय बोली को 'स्टैंडिंग डायलेक्ट' कहा, जिसका शब्दानुवाद खड़ी बोली है। 'खड़ी बोली' शब्द बाद में सर्वमान्य हो गया।

आज यही खड़ी बोली हिंदी भारत की राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित है। हिंदी के संवर्धन एवं विकास में कुछ संस्थाओं ने निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उन संस्थाओं में प्रथम नाम फ़ोर्ट विलियम कॉलिज का आता है, जिसे जानना ज़रूरी है और रुचिकर भी है।

इस तरह की पहली ऐतिहासिक संस्था है, फ़ोर्ट विलियम कॉलिज, कोलकाता। इस कॉलिज की स्थापना 1800 ई. में भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली द्वारा की गई थी, जो स्वयं ग्रीक, लैटिन और अंग्रेज़ी के विद्वान थे। इस कॉलिज की तात्कालिक आवश्यकता थी - अंग्रेज़ अधिकारियों को भारतीय भाषाओं का ज्ञान कराना एवं भाषाई अवरोधजन्य प्रशासनिक कठिनाइयों को दूर करना। इस कॉलिज की स्थापना एक 'ट्रेनिंग इंस्टिट्यूट' के रूप में की गई थी। जॉन गिलक्रिस्ट को इसका सर्वप्रथम प्राचार्य बनाया गया। उन्होंने सर्वप्रथम हिंदी एवं उर्दू को अलग भाषा मानते हुए दोनों के लिए अलग-अलग विभाग स्थापित कर दिया तथा दोनों भाषाओं में विभाजन का सूत्रपात किया। उन्होंने देवनागरी में 'हिंदी' तथा फ़ारसी लिपि में 'उर्दू' या 'हिंदुस्तानी' का अध्ययन शुरू करवाया। गिलक्रिस्ट ने हिंदी की पाठ्य पुस्तकों के अभाव को दूर करने के लिए कई लेखकों से पुस्तकें लिखवाई। इन लेखकों में इंशाल्लाह खान, मुंशी सदासुखलाल 'नियाज़', लल्लू लाल तथा सदल मिश्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है। लल्लू लाल तथा सदल मिश्र को हिंदी पढ़ाने के लिए फ़ोर्ट विलियम कॉलिज में अध्यापक नियुक्त किया गया। इस कॉलिज के अन्य उल्लेखनीय अध्यापकों में ईश्वरचंद्र विद्यासागर, तरणतारण मित्र, रामराय बसु, मृत्युंजय विद्यालंकार अलग-अलग भाषाओं में अध्यापन, अनुवाद एवं लेखन कार्य कर रहे थे। इसी प्रकार मीर अम्मन, अफ़सोस हुसैनी, सैयद मोहम्मद मुनीर आदि उर्दू में लेखन-अध्यापन कार्य कर रहे थे। इस कॉलिज का सर्वाधिक महत्त्व इस बात में है कि उस दौर में इसने पाठ्य-पुस्तकों के अभाव को दूर किया।

ईस्ट इंडिया कंपनी के तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड वेलेजली ने इंग्लैंड में निदेशक मंडल को पत्र लिखा और ज़ोर देकर कहा कि इसकी स्थापना चार मई, 1800 मानी जाए। वे इस कॉलिज

की स्थापना को अंग्रेज़ों के हाथों 'मैसूर के शेर' कहे जाने वाले टीपू सुल्तान की पराजय और मृत्यु की पहली वर्षगाँठ के रूप में मनाना चाहते थे। लॉर्ड वेलेस्ली इसे 'ऑक्सफ़ोर्ड ऑफ़ द ईस्ट', यानी पूर्व के ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय के रूप में विकसित करना चाहते थे।

कॉलिज के बारे में कुछ विद्वानों की राय है कि उसने उपमहाद्वीप के भाग्य को दिशा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यद्यपि यह कॉलिज कुछ ही वर्षों तक चला। हालाँकि भाषा-नीति के संदर्भ में इसका प्रभाव दो शताब्दियों बाद भी महसूस किया जाता है। कॉलिज भारतीय भाषा, साहित्य, विज्ञान और कला के साथ युवा अंग्रेज़ों को प्रबुद्ध करने के लिए स्थापित किया गया था, लेकिन इसने भारतीय भाषा और साहित्य के रुख़ को बिल्कुल बदल दिया। ईस्ट इंडिया कंपनी का 'बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर्स' इसकी स्थापना के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि उनका मानना था कि इस काम के लिए इंग्लैंड में एक शिक्षा-प्रणाली पहले से ही मौजूद थी, फिर किसी नई नीति की आवश्यकता ही क्या है।

ब्रिटिश भारत में काम करने वाले आई.सी.एस. अधिकारियों की भर्ती तब इंग्लैंड में होती थी, जिसमें अंग्रेज़ ही भाग ले सकते थे। भारतीयों के लिए तब इसमें प्रवेश वर्जित था। इंग्लैंड से शिक्षा और प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले छात्रों को प्रशासन हेतु हिंदुस्तान भेजा जाता था, ताकि वे हिंदुस्तान के विभिन्न हिस्सों में जाकर ब्रिटिश शासन को मज़बूत करने का काम करें।

फ़ोर्ट विलियम कॉलिज अपनी स्थापना के समय से ही विवाद के घेरे में आ गया था। यह अंग्रेज़ों के बीच भी विवाद का एक कारण था और बाद में भारतीयों के बीच भी बड़े विवाद की वजह बन गया। कहा जाता है कि, 'फूट डालो और राज करो' की ब्रिटिश नीति की तरह, उर्दू और हिंदी के बीच का अंतर सबसे पहले यहीं से पनपना शुरू किया और एक दरार के रूप में उभरा जो क्रमशः इस हद तक बढ़ता गया कि अंततः हिंदुस्तान दो देशों, भारत और पाकिस्तान में विभाजित हो गया और फिर पाकिस्तान से भाषागत, भौगोलिक और राजनीतिक मतभेदों के कारण, एक अलग देश बांग्लादेश भी अस्तित्व में आया। कुछ विद्वान आलोचक इस कथन से सहमत नहीं हैं और उनका मानना है कि यह अंतर और मतभेद तो भारत में पहले से मौजूद था, क्योंकि यहाँ हर दो कोस पर पानी और बानी बदल जाते हैं। हालाँकि कई पश्चिमी विद्वानों विशेष रूप से ग्रियर्सन ने भारत को 'भाषाओं का अजायबघर' भी कहा है।

इनमें से कुछ आलोचकों का मानना है कि पूर्वी भारत में अंग्रेज़ों की बढ़ती ताकत को देखते हुए बहुत से भारतीय भी अपना उल्लू सीधा करने के लिए अंग्रेज़ों के कान भर रहे थे या अपनी खिचड़ी अलग पकाने के लिए भाषा के आधार पर विभाजन करवाना चाह रहे थे।

1757 में सिराजुद्दौला और अंग्रेज़ों के बीच प्लासी की लड़ाई में कम्पनी की जीत ने अंग्रेज़ों को हिंदुस्तान में पैर जमाने का अवसर प्रदान किया। लेकिन लॉर्ड क्लाइव के ही नेतृत्व में बंगाल के नवाब मीर क़ासिम के खिलाफ़ 1764 के बक्सर के युद्ध की सफलता ने कंपनी की शक्ति को पूरी तरह स्थापित कर दिया और बंगाल को कंपनी के सीधे नियंत्रण में ला दिया। तब ईस्ट इंडिया कंपनी को यह महसूस हुआ कि उन्हें यहाँ ऐसे भारतीयों की ज़रूरत है, जो प्रबंधन एवं प्रशासन में उनकी मदद कर सकें। इसे देखते हुए गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने अक्टूबर 1780 में कलकत्ता मदरसा की स्थापना की, जिसे बाद में मदरसा आलिया के नाम से जाना जाने लगा। उन्होंने अपनी जेब से एक साल के लिए मदरसा का सारा खर्च उठाया। बाद में ब्रिटिश सरकार ने मदरसे को मंज़ूरी दे दी और वॉरेन हेस्टिंग्स को सारा खर्च लौटा दिया गया। चार साल बाद कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश सर विलियम जोन्स की सिफ़ारिश पर एशिया और खास तौर पर दक्षिण एशिया के अध्ययन के लिए एशियाटिक सोसाइटी की 1784 में स्थापना की गई। मिर्ज़ा ए बी बेग की बी.बी.सी. उर्दू नई दिल्ली के लिए तैयार एक रिपोर्ट के अनुसार जॉन गिलक्रिस्ट ने फ़ोर्ट विलियम की स्थापना से पूर्व एक मदरसा स्थापित किया था, जो गिलक्रिस्ट का मदरसा नाम से जाना जाता था। बाद में, उस मदरसे का फ़ोर्ट विलियम कॉलिज में विलय कर दिया गया। गिलक्रिस्ट फ़ोर्ट विलियम कॉलिज के पहले प्रिंसिपल और हिंदुस्तानी विभाग के प्रथम अध्यक्ष नियुक्त हुए।

दरअसल, जॉन गिलक्रिस्ट (1759-1841) को एक सिविल सर्जन या चिकित्सक के रूप में भारत भेजा गया था और कलकत्ता के बजाय बॉम्बे में तैनात किया गया था, लेकिन फिर उनका तबादला होता रहा और वे उत्तर भारत के विभिन्न हिस्सों में कुछ समय बिताने के बाद अंत में कलकत्ता पहुँचे।

वे ही यह महसूस करने और दावा करने वाले पहले व्यक्ति थे कि इस देश में एक भाषा है, जो पूरे उत्तर भारत में बोली और समझी जाती है और उन्होंने ही इसे 'हिंदुस्तानी' भाषा का नाम दिया था, हालाँकि उस समय उर्दू या हिंदी की स्पष्ट रूप से अलग-अलग पहचान नहीं थी। दोनों आम बोलचाल वाली भाषा की दो शैलियाँ थीं, जो देवनागरी और फ़ारसी लिपि में लिखी जाती थीं।

फ़ोर्ट विलियम कॉलिज के शोधकर्ता और जेएनयू के पूर्व प्रोफ़ेसर सिद्दीक़-र-रहमान क़िदवई ने गिलक्रिस्ट के बारे में अपनी पुस्तक 'गिलक्रिस्ट एंड द लैंग्वेज ऑफ़ हिंदुस्तान' में कहा है कि

"गिलक्रिस्ट को भाषा सीखने में इतनी कठिनाई हुई कि उन्होंने भारतीय भाषा सीखने के लिए एक व्याकरण की पुस्तक लिख डाली थी, जो कि इस प्रकार की पहली पुस्तक थी, इसी के आधार पर इंग्लैंड से आने वाले लोगों को शिक्षा दी जाने लगी।" गिलक्रिस्ट के बारे में यह भी कहा जाता है कि उन्होंने प्रसिद्ध कवि मिर्ज़ा मुहम्मद रफ़ी सौदा की कविताओं और क़सीदों से उर्दू भाषा सीखी, जबकि आज उर्दू के शिक्षक भी सौदा की कविताओं को बहुत आसानी से नहीं समझ सकते।

फ़ोर्ट विलियम कॉलिज 10 जुलाई 1800 को अस्तित्व में आया जबकि 18 अगस्त को इसे कानूनी तौर पर मंज़ूरी दे दी गई। लेकिन चार मई को टीपू सुल्तान की हार की स्मृति के रूप में इसकी स्थापना का दिन घोषित किया गया, जबकि कॉलिज का पहला सत्र 6 फ़रवरी, 1801 को शुरू हुआ। इस कॉलिज की स्थापना का उद्देश्य इस प्रकार बताया गया है - "फ़ोर्ट विलियम कॉलिज काफ़ी हद तक ईसाई धर्म पर आधारित था और इसका उद्देश्य न केवल ओरिएंटल साहित्य को बढ़ावा देना था, बल्कि ये भी सुनिश्चित करना था कि छात्रों को हिंदुस्तान में मौजूद ब्रितानी साम्रज्य में ईस्ट इंडिया कंपनी के तहत जहाँ नियुक्त किया जाता है, वहाँ वे ब्रितानी कानून को लागू करेंगे और दुनिया के उस हिस्से में ईसाई धर्म की महिमा के लिए काम करेंगे। किसी को भी उच्च पद पर नियुक्त नहीं किया जाएगा या प्रोफ़ेसर नहीं बनाया जाएगा जब तक कि वे ब्रिटेन के महामहिम राजा के प्रति निष्ठा की प्रतिज्ञा नहीं उठाते हैं और निम्नलिखित प्रतिज्ञा नहीं करते - "मैं कसम खाता हूँ और ईमानदारी से वादा करता हूँ कि मैं सार्वजनिक तौर पर किसी भी ऐसे सिद्धांत को नहीं अपनाऊँगा और ना ही ऐसी शिक्षा दूँगा जो ईसाई धर्म या इंग्लैंड के चर्च के नियमों के विपरीत हो। मैं कसम खाता हूँ और ईमानदारी से वादा करता हूँ कि मैं सार्वजनिक या निजी तौर पर चर्च या ग्रेट ब्रिटेन की सरकार के नियमों के खिलाफ़ कुछ भी नहीं करूँगा या सिखाऊँगा और मैं महामहिम राजा की सरकार के प्रति वफ़ादार रहूँगा।"

फ़ोर्ट विलियम कॉलिज को मूल रूप से कलकत्ता स्थित राइटर्स बिल्डिंग (अब पश्चिम बंगाल राज्य सरकार का सचिवालय) में स्थापित किया जाना था। इस भवन का 1780 से इंग्लैंड के लेखकों या क्लर्कों के लिए इस्तेमाल किया जा रहा था।

उस समय कक्षाओं के अलावा, एक विज्ञान-प्रयोगशाला और प्रोफ़ेसरों और प्रशासनिक कर्मचारियों के लिए कमरे थे। पहली मंज़िल पर व्याख्यान-कक्ष और दूसरी मंज़िल पर चार कमरे थे। वे कमरे 30 फ़ीट बाई 20 फ़ीट थे, ऊपर एक हॉल 68 फ़ीट लंबा और 30 फ़ीट चौड़ा था, जिसका उद्देश्य परीक्षा हॉल का था। लेकिन लॉर्ड वेलेजली की योजना इससे कहीं अधिक थी, इसलिए उन्होंने हुगली नदी पर स्थित फ़ोर्ट विलियम में कॉलिज की स्थापना की। किले का नाम राजा विलियम-तृतीय के नाम पर रखा गया था और इसे मुगल शासक की अनुमति से 1700 में बनाया गया था।

न्याय और कानून के विभिन्न तरीकों को पढ़ाने के अलावा, वेलेजली ने इतिहास, भूगोल, राजनीति, अर्थव्यवस्था, रसायन-विज्ञान, वनस्पति विज्ञान और प्रयोगात्मक दर्शन के विभागों की स्थापना की थी। ग्रीक और लैटिन के अलावा अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, फ्रेंच, अंग्रेज़ी और देशी भाषाएँ भी पाठ्यक्रम का हिस्सा थीं। शिशिर कुमार दास, अपनी पुस्तक 'साहिब और मुंशीज़' में लिखते हैं कि वेलेजली इसे कभी भी ओरिएंटल अध्ययन के एक अन्य केंद्र के रूप में विकसित करना नहीं चाहते थे। जो छात्र वहाँ आते थे उनकी उम्र 20 साल या उससे कम होती थी, यह भी कहा जाता है कि वे बहुत सभ्य या संस्कारी नहीं होते थे।

यद्यपि फ़ोर्ट विलियम की स्थापना युवा ब्रिटिश अधिकारियों को शिक्षित करने के लिए की गई थी, लेकिन इसका भारतीय भाषा और साहित्य पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। यहाँ भारतीय भाषा उर्दू, हिंदी ही नहीं, बल्कि बंगाली और तमिल के भी विभाग थे, इनके अलावा उड़िया भाषा, पंजाबी भाषा और मराठी भाषा के शुरुआती गद्य भी यहाँ पाए जाते हैं और उनका व्याकरण भी यहाँ तैयार हुआ।

अतः उर्दू में गद्य की शुरुआत और उसकी रूपरेखा के तैयार होने का श्रेय बड़े पैमाने पर इस कॉलिज को जाता है। फ़ारसी (उर्दू) और देवनागरी लिपि का मुद्दा भी यहाँ उठता रहा और कहा जाता है कि यहाँ एक भाषा को दो लिपियों में लिखने का आधार रखा गया था। इस बिंदु पर भाषाविदों में बहुत मतभेद है और वे कहते हैं कि दोनों लिपियाँ मौजूद थीं और उनका प्रयोग पहले से हो रहा था, लेकिन कई विद्वानों का कहना है कि इससे पहले ज्यादातर चीज़ें फ़ारसी यानी आज की उर्दू लिपि में होती थीं। कहा जाता है कि फ़ोर्ट विलियम कॉलिज की स्थापना से पहले देवनागरी लिपि में पाँच या छः से अधिक किताबें उपलब्ध नहीं थीं।

फ़ोर्ट विलियम कॉलिज ने विभिन्न विषयों में एक सौ से अधिक पुस्तकें प्रकाशित कीं, जिनमें से अधिकांश अब बहुत काम की नहीं हैं। लेकिन कुछ प्रारंभिक पुस्तकें उर्दू और हिंदी या अन्य भाषाओं में प्रकाशित हुईं, जो उल्लेखनीय हैं, यहीं भारतीय भाषाओं के आधुनिक गद्य का आरंभ हुआ। कविता और काव्यात्मक गद्य तो भारत में मौजूद थे, लेकिन सरल और रवानी वाली भाषा में गद्य की शुरुआत यहीं से होती है।

फ़ोर्ट विलियम द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में 'क़िस्सा चाहर दरवेश' बहुत महत्त्वपूर्ण है, जिसे मीर अमन ने सरल टकसाली यानी देहलवी उर्दू में लिखा और यह 'बाग़-ओ-बिहार' के नाम से प्रकाशित हुई और स्कूलों और कॉलिजों के पाठ्यक्रम में आज भी शामिल है। मीर शेर अली अफ़सोस की 'आराईशे-महफ़िल' एक भारतीय शाही परिवार की कहानी है, न कि हातिमताई की। इसी तरह उन्होंने फ़ारसी के सुप्रसिद्ध शायर शेख़ सादी की कृति गुलिस्ताँ का अनुवाद 'बाग़े-उर्दू' के नाम से किया। नैतिकता पर मीर अमान की किताब 'अख़लाक़े- मोहसेनी' और गुलाम अशरफ़ की 'अख़लाक़-न-नबी' महत्त्वपूर्ण है। शाकिर अली ने दास्तान-ए-अलिफ़ लैला का अनुवाद किया, जबकि मौलवी अमानतुल्ला की पुस्तक 'हिदायत-उल-इस्लाम' उल्लेखनीय है। ख़लील अली खान की 'दास्ताने अमीर हमज़ा' और हैदर बख्श हैदरी की 'आराइश महफ़िल' अभी भी कई संस्थानों में पूर्ण या आंशिक तौर पर पाठ्यक्रम में देखी जाती हैं। इसी तरह देवनागरी में लल्लू लाल की किताब 'प्रेम सागर' और मज़हर अली खान की 'बेताल पच्चीसी' भी सामने आई।

आलोचकों की राय इस मुद्दे पर विभाजित हैं, लेकिन सभी इस बात पर सहमत हैं कि कॉलिज केवल कुछ ही समय तक चला, यानी पहले पाँच या छ: साल इसके सुनहरे दिन थे, जब तक वेलेस्ली भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के गवर्नर जनरल थे या जब तक गिलक्रिस्ट वहाँ रहे। ग़ौरतलब है कि इन दोनों ने साल 1805 में कॉलिज छोड़ दिया था। कई लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि गिलक्रिस्ट कभी कॉलिज के प्रिंसिपल नहीं रहे, बल्कि भारतीय भाषा विभाग के निरीक्षक थे।

विद्वानों का ऐसा मानना है कि उस समय कलकत्ता दुनिया का सबसे चमकता-दमकता शहर था, इसलिए इंग्लैंड से आने वाले युवा छात्र यहाँ की चमक में खो गए और उन्होंने भारतीय सभ्यता को काफ़ी हद तक स्वीकार करना शुरू कर दिया और साथ ही सबसे ज्यादा सांस्कृतिक मिश्रण और मेल-मिलाप इसी ज़माने में सामने आया। इसके अलावा, फ़ोर्ट विलियम से जो निकला वह आज भी हमारी संपत्ति है।

दरअसल, कई आलोचक वहाँ पाए जाने वाले भेदभाव की ओर भी इशारा करते हैं। उनके अनुसार वहाँ किसी भी भारतीय को प्रोफ़ेसर नहीं बनाया गया, वे सभी अंग्रेज़ या यूरोपीय थे। भारतीयों के लिए मुंशी का पद था, जो कई श्रेणियों में विभाजित था। अंग्रेज़ों को सबसे ज्यादा मासिक भत्ता 1,600 रुपये और सबसे कम 1,000 रुपये मिलता था, जबकि सबसे छोटे स्तर के मुंशी को 40 रुपये, सबसे बड़े को 200 रुपये मिलते थे।

इंग्लैंड में कॉलिज का विरोध बढ़ रहा था, इसलिए भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की आवश्यकता को देखते हुए, 1806 में इंग्लैंड में ही प्रशासनिक प्रशिक्षण के लिए हेलीबेरी कॉलिज की स्थापना की गई, जो आज भी मौजूद है, लेकिन फ़ोर्ट विलियम का सूरज जल्द ही अस्त हो गया। गिलक्रिस्ट और लॉर्ड वेलेजली के बाद इसका बजट काफ़ी कम कर दिया गया था। इसके विपरीत, सीतांशु कुमार का कहना है कि कॉलिज की स्थापना के दो साल बाद 1802 में ही इसे बंद करने का आदेश दिया गया था, लेकिन वेलेजली ने इसे लागू नहीं किया और यह चलता रहा। उनके मुताबिक गिलक्रिस्ट के जाने के बाद उस कॉलिज का वैभव कम हो गया था।

1813 में ईस्ट इंडिया कंपनी का एक चार्टर आया, जिसमें भारत में शिक्षा पर खर्च करने के लिए एक लाख का अनुदान स्वीकृत किया गया। यह राशि अंग्रेज़ों के कब्ज़े वाले क्षेत्र के लिए बहुत बड़ी नहीं थी और एक तरह से देखा जाए तो यह फ़ोर्ट विलियम कॉलिज में शिक्षकों और अनुवादकों की संख्या के लिए भी पर्याप्त नहीं था। उसके बाद कॉलिज बजट की कमी से जूझने लगा और उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक के अंत में बंद हो गया और 19वीं शताब्दी के मध्य में पूरी तरह से समाप्त हो गया।

यहाँ यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि 1837 में, लॉर्ड मैकॉले की नई शिक्षा नीति सामने आई, जिसने अंग्रेज़ों को हिंदुस्तानी सिखाने के बजाय भारतीयों को अंग्रेज़ी भाषा और संस्कृति सिखाने का बीड़ा उठाया और इस तरह कॉलिज की वैधता हमेशा के लिए समाप्त हो गई।

संदर्भ-सूची :

1. प्रो. एहतेशाम हुसैन, उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक साहित्य, 1984, प्रकाशक अंजुमन तरक्की उर्दू (हिंदी), अलीगढ़
2. George Abraham Griesan, Seven Grammars of the Diatects and Subdiatets of the Bihari Language, 2003, Kalpaz Pubilcation, New Delhi
3. Prof. Sadiqur Rahman Kidwai: Gilcrist and the Language of Hindustant, 1972, Rachna Prakashan, New Delhi
4. राम बाबू सक्सेना; उर्दू साहित्य का इतिहास, 1951, प्रकाशन हिन्दस्तानी एकेडमी, प्रयागराज

profumeshtiwari@gmail.com

हिंदी : शोध, आलोचना एवं अनुवाद

1. हिंदी : शोध और आलोचना - डॉ. रमा नवले

2. हिंदी शोध एवं आलोचना में तकनीक की भूमिका - डॉ. दीनदयाल

3. बॉलीवुड फ़िल्मों के शीर्षकों के थाई अनुवाद की रणनीतियाँ - डॉ. पद्मा सवांगश्री एवं डॉ. सेकसन सवांगश्री

4. जॉ पॉल विनय और जॉ दर्बलनेट की अनुवाद-प्रविधि के आधार पर 'दास्ताँ और भी हैं' का विश्लेषण - अंजय रंजन दास

हिंदी : शोध और आलोचना

- डॉ. रमा नवले
महाराष्ट्र राज्य, भारत

रचनाकार द्वारा अभिव्यक्ति के दबाव में तथा नवनवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा के कारण साहित्य की सर्जन प्रक्रिया संपन्न होती है। सहृदय के द्वारा उस सर्जन के आस्वाद की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। आलोचक रचना की सौंदर्यानुभूति पर रीझकर तथा अपनी निरीक्षण-परीक्षण प्रतिभा द्वारा अपनी प्रतिक्रियाएँ देकर रचना और पाठक के बीच सेतु बन पाठकों को सौंदर्यानुभूति का साक्षात्कार कराते हुए साहित्य के संप्रेषण की प्रक्रिया अधिक समृद्ध करता है। एक दृष्टि से वह साहित्य का पल्लवन ही करते रहता है। साहित्य का अनुसंधानकर्ता साहित्य में निहित तथ्यों का अन्वेषण कर अपनी दृष्टि से निष्कर्ष-निर्णय प्रस्तुत करता है। इनमें से अनुसंधान और आलोचना की प्रक्रिया और उनमें पारस्परिक सबंधों को विषद करना यहाँ अभिप्रेत है।

डॉ. नगेंद्र ने बहुत पहले 'अनुसंधान और आलोचना' विषय पर किताब लिखी, जिसमें उन्होंने 'अनुसंधान' एवं 'आलोचना' शब्दों की व्याख्या करते हुए उसमें साम्य-अंतर और उनके बीच निहित पारस्परिक संबंध को सहज और सटीक रूप में स्पष्ट किया है। परवर्ती काल में, इस विषय का विवेचन करते समय, अधिकतर विद्वानों ने इसी किताब को आधार मानकर अपने विषय को अधिक विस्तृत और नया बनाने का प्रयास किया है। इस क्षेत्र में यह पुस्तक मील का पत्थर है। इस लेख के विवेचन का आधार भी यही कृति है, यह कृतज्ञतापूर्वक स्वीकारा जा रहा है।

अनुसंधान और आलोचना साहित्य के दो महत्त्वपूर्ण आयाम हैं। इन दोनों में बहुत अधिक साम्य है। दोनों के बीच घनिष्ठ और गहरा संबंध है। बावजूद ये दोनों एक नहीं हैं, बल्कि दोनों में अंतर है। "संस्कृत व्याकरण का नियम है कि कोई भी दो धातु एक अर्थ का द्योतन नहीं करते। उनमें कुछ-न-कुछ भेद होता है। अनुसंधान की मूल धातु 'धा' उसमें 'सम्' उपसर्ग लगाकर संधान शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है - लक्ष्य बाँधना, निशाना लगाना और आलोचना की मूल धातु है - 'लोचृ' अर्थात् देखना। इसी मूल धातु के आधार पर दोनों के रूढ़ अर्थ में आगे चलकर भेद हो जाता है - एक का अर्थ हो जाता है - लक्ष्य बाँधकर उसके पीछे बढ़ना और दूसरे का हो जाता है - पूरी तरह से देखना-परखना यही दोनों के मौलिक भेद का आधार है।"

अनुसंधान या शोध किसी विषय पर नए ज्ञान की खोज और विश्लेषण के द्वारा किसी समस्या या प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए की गई व्यवस्थित और क्रमबद्ध प्रक्रिया है। जिस प्रक्रिया में सबसे पहले अनुसंधित्सु विषय का चयन करता है। उसके मन में कुछ प्रश्न उठते हैं, अर्थात् समस्या उत्पन्न होती है। अपनी तर्क-बुद्धि के आधार पर वह कुछ पूर्वानुमान (हाइपोथिसिस) करने लगता है। उसी विषय पर अपनी दृष्टि केंद्रित करते हुए उस विषय से संबधित सामग्री या तथ्यों का संकलन वह करता है। आवश्यकतानुसार सर्वेक्षण किए जाते हैं। उसके बाद शोधक तर्क और प्रमाण के आधार पर तथा अपनी सूक्ष्मग्राही विवेचक बुद्धि के द्वारा तटस्थ होकर विवेचन-विश्लेषण कर निष्कर्ष तक पहुँचता है। इस प्रक्रिया के द्वारा वह जिन तथ्यों एवं सिद्धांतों को प्राप्त करता है, उसे वह अभिव्यक्त करता है। अभिव्यक्ति के लिए उसके पास सुष्ठ भाषा-शैली की आवश्यकता होती है। डॉ. नगेन्द्र ने अनुसंधान के चार तत्वों की ओर संकेत करते हुए कहा है – 1. अनुपलब्ध तथ्यों का अन्वेषण' 2. उपलब्ध तथ्यों अथवा सिद्धांतों का पुनराख्यान 3. ज्ञान-क्षेत्र का सीमा विस्तार, 4. सुष्ठ प्रतिपादन शैली।

उपर्युक्त तत्त्वों के अनुसार पहली बात - शोध में तथ्यों के अन्वेषण पर सर्वाधिक बल होता है। तथ्य अर्थात् वास्तविक या यथार्थ कथन, पर सत्य नहीं; जिसे सत्यापित करना होता है। जैसे – संजीव ने अपने 'फाँस' उपन्यास में वैश्वीकरण के कारण किसानों के जीवन का गिरता स्तर और उसके कारण आत्महत्या का चित्रण किया है। पर वे "किसानों की आत्महत्या के कारण यहाँ की सामजिक संरचना में ढूँढते हैं।" यह एक तथ्य है; जो अन्वेषण के समय शोधक के हाथ आया है। शोधक को इसे तर्क और प्रमाण के आधार पर सत्यापित करना होता है। उसे इस बात पर विचार करना होगा कि क्या सचमुच में संजीव के कथनानुसार यहाँ की सामाजिक संरचना किसानों की आत्महत्या के लिए कारणीभूत है? अगर है तो वे कौन-से तत्त्व हैं, शोधक को ढूँढना पड़ेगा। या "डॉ. रमा नवले ने 'फाँस' को किसानों की आत्महत्या विषय पर लिखा पहला हिंदी उपन्यास बताया है।" यह इस उपन्यास से संबंधित एक अन्य तथ्य है – इसे सत्यापित करने की प्रक्रिया शोध है। दूसरी बात शोधकर्ता उपलब्ध तथ्यों अथवा सिद्धांतों का पुनराख्यान

करता है। जैसे – यह युग स्त्री-पुरुष समता का युग है, यह एक उपलब्ध तथ्य है। पर यह सत्य है क्या? इसे सत्यापित करने के लिए इसका पुनराख्यान करना पड़ेगा। डॉ. रमा नवले ने इसका पुनराख्यान प्रस्तुत करते हुए कहा - "स्त्री-पुरुष समता बड़ा भद्दा और भौंडा तथा घिस-घिसकर अपना अर्थ खो चुका शब्द है। हमें 'समता' शब्द का अर्थ ढूँढना पड़ेगा। इस शब्द की पहचान तभी हो सकती है, जब हम स्त्री और पुरुष की तुलना करने के बजाय इनकी स्थितियों की तुलना करें। तब पता चलेगा कि स्त्रियों की स्थिति पुरुषों की स्थिति की तरह अच्छी नहीं है और दोनों की समता बेकार शब्द है।" यह कहकर अपनी संपूर्ण किताब में इस सूत्र वाक्य का उन्होंने पुनराख्यान किया है। तीसरी बात अन्वेषण और पुनराख्यान की प्रक्रिया के कारण ही ज्ञान-क्षेत्र की सीमाओं के विस्तार की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। भरतमुनि के रस-सूत्र के पुनराख्यान के कारण पूरे रस-सिद्धांत का विकास होता है, हो रहा है। साधारणीकरण का सिद्धांत इसी का दाय है। जिस अनुकरण के कारण प्लेटो ने काव्य को नकारा, उसी अनुकरण की पुनर्व्याख्या के आधार पर अरस्तु का अनुकरण सिद्धांत अस्तित्व में आया। कोई भी अभिव्यक्ति बिना भाषा के संभव ही नहीं है। इतने गुरुगंभीर विषय का प्रतिपादन सुष्ठ भाषा में ही संभव है।

आलोचना का संबंध 'लोच्' धातु से होने के कारण इसका संबंध कृति के सर्वांग और सांगोपांग निरूपण से है। डॉ. नगेंद्र ने इसके तीन पड़ाव स्वीकार किए हैं – 1. प्रभाव-ग्रहण – रागात्मक प्रतिक्रिया, 2. व्याख्या-विश्लेषण, 3. मूल्यांकन अथवा निर्णय। - आलोचना मूलत: कलाकृति द्वारा प्रमाता के हृदय में उत्पन्न प्रभाव को व्यक्त करती है। आलोच्य कार्य की शुरुआत ही इस प्रभाव से होती है। जैसे – विख्यात समीक्षक डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे जी पर कमलेश्वर की कहानियों का इतना प्रभाव रहा कि उन्होंने उन कहानियों पर 'कहानीकार कमलेश्वर : संदर्भ और प्रकृति' नामक पुस्तक लिखी, जो आलोचना के क्षेत्र की एक महत्त्वपूर्ण कृति बन गई। देश भर के संवेदनशील पाठकों से इस कृति ने ही उनको जोड़ा। सहृदय पाठकों की ओर से उन्हें काफ़ी प्रतिक्रियाएँ मिलीं। बहुत कम समय में इस किताब के कई संस्करण निकले। आलोचक, उस पर हुए रागात्मक प्रभाव के कारण ही कृति पर अपनी प्रिय-अप्रिय क्रिया-प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति करता है। कृति की प्रियता-अप्रियता का व्याख्या-विश्लेषण करने लगता है। रणसुभे जी ने भी अपनी उपर्युक्त आलोचनात्मक कृति में, इस कृति की प्रियता के कारणों को स्पष्ट करते हुए लिखा है – कमलेश्वर की कहानियों के केंद्र में स्वातंत्र्योत्तर काल का परिस्थितियों से जूझता सामान्य व्यक्ति है। न यह किसी विशिष्ट जाति का है और न ही विशिष्ट धर्म का। यह सामान्य निम्न मध्यवर्गीय या मध्यवर्गीय व्यक्ति है। यह व्यक्ति एक ओर भावुक, संवेदनशील, मूल्यों में सहज विश्वास करनेवाला है, तो दूसरी ओर युगीन मूल्य बदलने के कारण अपने इन मूल्यों और विश्वासों के साथ वह न जी पानेवाला व्यक्ति है। स्थितियों से समझौता कर पाना उसके लिए आसान नहीं है। इससे उत्पन्न संघर्ष को झेलना ही उसकी नियति है। छायावाद ने नामवरसिंह को इतना प्रभावित किया कि उन्होंने 'छायावाद' नामक रचना लिखी। परवर्ती काल की उनकी कई रचनाओं के बाद भी यह कृति उनकी सृजन-क्षमता एवं उनकी समीक्षा का परिचय देनेवाली अमर कृति बन गई। आलोचक अपने अभिव्यक्त विचारों के माध्यम से अपने भावों-विचारों का संप्रेषण कर लेता है। रणसुभे द्वारा दिया गया कमलेश्वर की कहानियों की प्रियता का कारण पाठकों को भी अपनी अनुभूतियों से एकरूप कर देता है। यही आलोचना का मूल्य भी होता है। इस व्याख्या-विश्लेषण की कोई निश्चित पद्धति नहीं होती। कभी सौन्दर्य-शास्त्र के अनुसार, कभी श्रोता–भावक के मनोविज्ञान के अनुसार, तो कभी समाज-शास्त्र के अनुसार यह विश्लेषण किया जाता है। 'छायावाद' इस कृति में सौन्दर्यशास्त्रीय तत्व महत्त्वपूर्ण बन गए हैं, तो रणसुभे जी की कृति में मनोविज्ञान। आलोचक सभी पद्धतियों को स्वीकार कर चलता है। आलोचना का तीसरा पड़ाव मूल्यांकन अथवा निर्णय है। आलोचक अपनी प्रतिक्रियाओं के आधार पर कृति का मूल्यांकन कर निर्णय देता है।

अनुसंधान और आलोचना के पारस्परिक संबंधों पर प्रकाश डालते हुए डॉ. नगेंद्र कहते हैं - "अनुसंधान और आलोचना दोनों की केवल जाति ही नहीं, उपजाति भी एक है।" ठीक भी है। दोनों की पद्धति समान होती है। तथ्यों की व्याख्या और विश्लेषण करने का तरीका और निर्णय देने की बात भी समान ही होती है। अनुसंधान में जो तथ्याख्यान होता है, वही आलोचना में व्याख्या विश्लेषण। केवल शब्द अलग हैं, निरूपण का तरीका एक जैसा होता है। दोनों में विवेचन, कार्य-कारण संबंध, अर्थ-व्यंजना के उद्घाटन का तरीका भी एक जैसा होता है। अनुसंधान में तथ्य के आधार पर निर्णय लेना जितना अनिवार्य होता है, उतनी अनिवार्यता आलोचना के लिए नहीं होती। पर तथ्यों के पुष्ट आधार के बिना आलोचना में विश्वास की दृढ़ता भी उत्पन्न नहीं होती। वह सत्य का साक्षात्कार नहीं करा सकती। राजेंद्र प्रसाद सिंह ने सितंबर 2015 के 'स्त्रीकाल' में 'हिंदी भाषा में स्त्री विमर्श' शीर्षक से एक लेख लिखा। इस लेख में उन्होंने कई प्रमाण देकर व्याकरणिक दृष्टि से हिंदी भाषा में निहित लिंग-

वैषम्य का विश्लेषण करते हुए स्त्री-पुरुष भेदभाव की वृत्ति को उजागर किया। अगर वे तथ्य प्रस्तुत न करते, तो यह लेख इतना विश्वसनीय नहीं बनता। इन्हीं बातों के कारण कहा जा सकता है कि निष्कर्ष और निर्णय का महत्त्व और निर्णय लेने की पद्धति भी दोनों में एक जैसी ही होती है। इसलिए कई बार इन दोनों के स्वरूप को अलग-अलग रूप में प्रस्तुत कर पाना संभव नहीं हो पाता। हिंदी में समीक्षा की समीक्षा की परंपरा क्षीण रूप में दिखाई देती है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. शिवदान सिंह चौहान, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. मैनेजर पांडेय आदि आलोचकों की समीक्षा की समीक्षा की गई है। इन समीक्षकों की समीक्षा ने हिंदी समीक्षा को स्तरीय भी बनाया है। इस प्रकार की आलोचना एक ओर समीक्षा का आस्वादन कराती है, तो दूसरी ओर सर्जनात्मक आलोचना का परिचय भी देती है। इस बात से परिचित होने के कारण एवं महाराष्ट्र के हिंदीतर भाषी हिंदी आलोचक डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे जी की समीक्षा से काफ़ी प्रभावित होने के कारण मैंने उनकी समीक्षा पर 'समीक्षा की समीक्षा' (डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे की समीक्षा के संदर्भ में) – पुस्तक लिखी। यह किताब पूरी करते-करते मैं इस बात को महसूस करने लगी थी कि केवल सृजनात्मक लेखक ही अपनी रचनाओं में आत्मकथा के अंश नहीं छोड़ता, बल्कि समीक्षक भी अपनी समीक्षा में कुछ आत्मकथा के अंश छोड़ता ही है। मैंने यह महसूस किया कि रणसुभे की समीक्षा के आधार पर हम उनकी आत्मकथा के अंश पा सकते हैं।" इस बात को मैंने किताब की प्रस्तावना में इस तरह लिखा है – "शायद समीक्षा की भी यह एक नई पद्धति हो सकती है .... जिसके आधार पर हम महनीय व्यक्तियों के व्यक्तित्व को जान सकते हैं। साहित्य समीक्षा में यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य हो सकता है। ..... जैसे हम साहित्य के माध्यम से साहित्यकार के व्यक्तित्व को जान सकते हैं, वैसे ही समीक्षा के माध्यम से समीक्षक के व्यक्तित्व को भी। लिखने के पहले ऐसा कुछ होगा, यह मेरे दिमाग में भी नहीं था, पर लिखने के बाद ऐसा हो गया।" इस बात को मैंने कई तर्कों एवं प्रमाणों के आधार पर विषद किया। तथ्यों का यह व्याख्या-विश्लेषण आलोचना के व्याख्या-विश्लेषण से भिन्न नहीं है, ऐसा मुझे लगता है। मैं अधिक तब आश्वस्त हुई, जब इस किताब की भूमिका लिखते समय प्रो. सतीश यादव जी ने मेरे इस तथ्य को एक संदर्भ के द्वारा पुष्ट किया – "आलोचक संधान और प्रतिघात से उसकी प्रतिभा पर शान रखने का कार्य करता है, तो आलोचना की आलोचना आलोचक की वृत्ति, प्रवृत्ति और संगति-विसंगति का बोध कराने का ज़रिया है।" यादव जी के कथन से मेरे इस तथ्य की पुष्टि हो रही है। दूसरी ओर मैं इस बात से इसलिए प्रसन्न हुई, क्योंकि मैंने यह भी महसूस किया कि मेरी समीक्षा की समीक्षा से संप्रेषण की प्रक्रिया भी पूरी हुई। बात पाठकों तक पहुँच गई।

बावजूद इसके, अनुसंधान और आलोचना एक-दूसरे के पर्याय नहीं है; इस बात को हमें ध्यान में रखना होगा। पहले ही धात्वार्थ के आधार पर यह बताया जा चुका है। अनुसंधान अन्वेषण पर अधिक बल देता है, तो आलोचना निरीक्षण-परीक्षण पर। ये दोनों तत्व एक-दूसरे से एकदम निरपेक्ष नहीं हो सकते हैं। अन्वेषण बिना निरीक्षण-परीक्षण के संभव नहीं है और इसी तरह निरीक्षण-परीक्षण के लिए भी पूर्व क्रिया के रूप में अन्वेषण की आवश्यकता होती ही है। अनुसंधान के अनेक रूप शुद्ध आलोचना के अंतर्गत नहीं आते और आलोचना के भी कुछ रूपों को शुद्ध अनुसंधान नहीं माना जा सकता। आलोचना में कला तत्व की जितनी प्रधानता होती है, उतनी अनुसंधान में नहीं। इसलिए आलोचना के संदर्भ में आलोचना कला है या विज्ञान? यह प्रश्न उपस्थित होता है, पर अनुसंधान के संदर्भ में यह प्रश्न उपस्थित नहीं होता। आत्माभिव्यक्ति अथवा कला तत्व साहित्यिक आलोचना का अनिवार्य गुण होता है, साहित्यिक अनुसंधान में इसका महत्त्व कम ही रहेगा। अनुसंधान की निश्चित प्रविधि होती है; जो अनुसंधान की अनिवार्य शर्त होती है। विषय-चयन, सामग्री-संकलन, तथ्यान्वेषण, तथ्यों का वस्तुनिष्ठ एवं निर्लिप्त दृष्टि से निरूपण, वैज्ञानिकता, अनुक्रमणिका, परिशिष्ट, ग्रन्थ-सूची, पाद-टिप्पणियाँ आदि अनुसंधान-प्रविधि के अंग होते हैं। प्रविधि के नियमानुसार ही इनकी व्यवस्था रखनी पड़ती है। यह व्यवस्था आलोचना के लिए ज़रूरी नहीं होती। अनुसंधान और आलोचना में कार्यारंभ से लेकर फलागम तक भेद होता है। अनुसंधान का उद्देश्य ज्ञान-वृद्धि कराना है, तो आलोचना अपनी रागात्मक प्रतिक्रियाओं के कारण प्रमाता से संप्रेषण स्थापित कराते हुए रचना में व्याप्त अनुभूति का साक्षात्कार कराना चाहती है।

वर्तमान समय ने हिंदी अनुसंधान और आलोचना के सामने कई चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। इसका पहला कारण शैक्षिक दृष्टि से यह समय अंतरानुशासनात्मक शिक्षा का है। इसलिए शिक्षा के प्रत्येक विषय को विकसित करने के लिए अन्य शैक्षिक अनुशासनों का सहारा लेना पड़ रहा है। हिंदी भाषा एवं साहित्य भी इसके लिए अपवाद नहीं हैं। इसके साथ ही कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) ने कई चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। वैश्वीकरण, सूचना-क्रांति और इलेक्ट्रॉनिक स्रोत ने हिंदी अनुसंधान एवं आलोचना का स्वरूप बदल दिया है। वैश्विक स्तर पर शोध में एकरूपता लाने की दृष्टि से शोध-लेखन के मानक प्रारूप की आवश्यकता पर बल देते हुए

डॉ. योगेंद्र प्रताप मिश्र कहते हैं - "शोध में एकरूपता लाने के लिए और वैश्विक आधार पर हिंदी के शोधों को प्रतिष्ठित करने के लिए शोध-लेखन के मानक प्रारूप को निश्चित करना होगा।" सूचना-क्रांति के कारण ज्ञान का विस्फ़ोट हुआ है। इलेक्ट्रॉनिक स्रोतों की उपस्थिति से ऑनलाइन किताबों और पत्र-पत्रिकाओं की भरमार हो गई है। सूचना प्राद्यौगिकी और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के कारण शोधक को संदर्भ शोध सामग्री एक पल में उपलब्ध हो रही है। पर इस पर कितना विश्वास किया जाए? शोधक के सामने यह प्रश्न-चिह्न है। आलोचना की भी कई रीतियाँ एवं मान दिखाई दे रहे हैं। इसका स्वरूप बहुआयामी और विविध हो गया है। साहित्य का मूल्यांकन अब केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है। मनुष्य जितना अधिक उत्तराधुनिक होता जा रहा है, उतने अधिक आयाम उसमें जुड़ते जा रहे हैं और इसी के साथ-साथ मनुष्य की संवेदनाएँ जटिल होती जा रही हैं। विविध विमर्शों ने आलोचना में व्याप्त वर्चस्ववाद का विरोध कर हाशिये के तबकों की अभिव्यक्ति के लिए नए प्रतिमानों की बहस शुरू कर दी है।

अनुसंधान और आलोचना की दृष्टि से 21वीं शती का यह तीसरा दशक अब और भी अधिक चुनौतीपूर्ण हो जाएगा, क्योंकि 2020 में भारत की नई शिक्षा-नीति घोषित हुई और इसी के साथ ज्ञान की स्वदेशी भारतीय प्रणाली को बढ़ावा देने की दृष्टि से कार्य शुरू हुआ। यह प्रणाली मूलत: शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण में आमूलचूल परिवर्तन की दृष्टि से कार्यरत है। यह प्रणाली स्वदेशी ज़मीन पर मज़बूती से खड़ी होकर ज्ञान धारण की प्रक्रिया पर बल देती है। इसलिए आज हिंदी अनुसंधान और आलोचना के सामने प्राचीन भारतीय ज्ञान का दस्तावेज़ीकरण और प्रमाणीकरण कर उसके आधुनिकीकरण की चुनौती है। यूनेस्को द्वारा घोषित सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'ऋग्वेद', जिसकी ओर 'ज्ञान की गंगोत्री' के रूप में केवल हम ही नहीं संपूर्ण विश्व देख रहा है, इसका आँख मूँदकर समर्थन या विरोध दोनों दृष्टिकोण (यहाँ की दो संस्कृतियाँ) अतिवाद पर आधारित हैं। ऋग्वेद को ज्ञान की गंगोत्री कहा जाता है, तब क्या ऋग्वेद सचमुच में ज्ञान की गंगोत्री है? है तो कैसे है? ऋग्वेद के साथ अन्य प्राचीन ग्रन्थों की आलोचना भी महत्त्व रखती है। इस अध्ययन में पहली बाधा भाषा की है। यह समग्र ज्ञान हिंदी में लाना, (क्योंकि हिंदी विश्व में बोलनेवालों की संख्या की दृष्टि से प्रथम क्रमांक की भाषा है। यदि इस कथन को विवादास्पद मान लिया जाए, तब भी द्वितीय क्रमांक तो निश्चित है ही।) काफ़ी चुनौतीपूर्ण है। दूसरी बाधा इसके संस्करणों को लेकर है। ऋग्वेद के कई संस्करणों में से कौन-सा संस्करण अधिक प्रामाणिक है? इसकी जानकारी उपलब्ध कराना आवश्यक है। केवल ऋग्वेद ही नहीं, हमारे प्राचीन ग्रन्थों के संदर्भ में यह अन्वेषण महत्त्वपूर्ण है। तीसरी बात - ज्ञान को खंगालकर पुनर्जीवित करने के लिए तथ्यों के दस्तावेज़ीकरण और प्रमाणीकरण की ज़रूरत है। ये सारे कार्य किसी एक शोधक से संभव नहीं है। यह काम सामूहिक अनुसंधान और पुनर्नवीकरण की प्रक्रिया से गति पा सकता है। सामूहिक अनुसंधान की प्रक्रिया हमारी ज्ञान-प्रणाली का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। इसे समझकर अनुसंधान का स्वरूप बदलना और इसे संकुचित दायरे से बाहर निकालकर 'वैयक्तिक अनुसंधान' की प्रक्रिया को 'सामूहिक अनुसंधान की प्रक्रिया' बनाने की चुनौती है। हिंदी आलोचना की चुनौती इस ज्ञान को एवं उसमें निहित मूल्यों को वैश्विक रूप में प्रस्तुत करने की है।

संदर्भ-सूची :

1. डॉ. नगेंद्र, अनुसंधान और आलोचना - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई सड़क, दिल्ली
2. उपन्यासकार संजीव किसान आत्महत्या यथार्थ और विकल्प, संपादक – प्रो. संजय नवले, 2018, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, किताब में संकलित लेख "किसानों को 'फाँस' से मुक्ति की राह दिखानेवाला संजीव का उपन्यास 'फाँस'- रमा नवले" एवं इसी में डॉ. सुनील कुमार लवटे की प्रस्तावना से
3. स्त्री विमर्श : अवधारणा और स्वरूप, डॉ. रमा नवले, 2024, आर. के पब्लिकेशन, मुंबई
4. कहानीकार कमलेश्वर : संदर्भ और प्रकृति, डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, 2011, विकास प्रकाशन, कानपुर
5. समीक्षा की समीक्षा (डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे की समीक्षा के संदर्भ में), रमा बुलबुले, नवले, प्रस्तावना से, यश पब्लिकेशंस दिल्ली
6. शोध संचयन – इलेक्ट्रॉनिक (ऑनलाइन – ISSN – 2249-9180) एवं मुद्रित पत्रिका – ISSN – 0975-1254) में संकलित लेख, साहित्य शोध के विविध परिप्रेक्ष्य एवं चुनौतियाँ (हिंदी के संदर्भ में), डॉ. योगेंद्र प्रताप मिश्र

ramanawle@gmail.com

हिंदी शोध एवं आलोचना में तकनीक की भूमिका

- डॉ. दीनदयाल
हरियाणा, भारत

इक्कीसवीं सदी में तकनीकी विकास ने हिंदी साहित्यिक शोध और आलोचना की अवधारणाओं, विधियों एवं अभिसरणों में एक मौलिक परिवर्तन को जन्म दिया है। यह शोध-पत्र हिंदी भाषा में साहित्यिक शोध की पारंपरिक संरचना को आधार बनाते हुए तकनीकी नवाचारों के प्रभावों का समग्र विवेचन करता है। शोध में यह स्पष्ट किया गया है कि कैसे डिजिटल पुस्तकालयों (जैसे NDLI, Shodhganga), टेक्स्ट विश्लेषण सॉफ़्टवेयर (जैसे Voyant Tools, AntConc) और संदर्भ प्रबंधन उपकरण (जैसे Zotero, Mendeley) ने हिंदी शोध को पारंपरिक गुरु-शिष्य परंपरा से उन्नत वैज्ञानिक पद्धति की दिशा में अग्रसर किया है। इसके अतिरिक्त भाषा-संसाधनों (Language Resources) जैसे - Hindi WordNet, Treebank, LE-Lexicon ने computational linguistics के क्षेत्र में हिंदी की सहभागिता को सशक्त किया है।

टेक्स्ट विश्लेषण अब केवल भावनात्मक या वैचारिक स्तर तक सीमित नहीं, बल्कि सांख्यिकीय डेटा-विश्लेषण, विषय-मॉडलिंग (Topic Modeling) और भाव-विश्लेषण (Sentiment Analysis) तक विस्तृत हो चुका है। आलोचना, जो पूर्वतः आलोचक-केंद्रित एकालाप रही, अब यूट्यूब, ब्लॉग्स, सोशल मीडिया एवं पॉडकास्ट जैसे मंचों पर जनसंवादी संवाद के रूप में विकसित हो रही है, जहाँ पाठक, लेखक और समीक्षक सभी सक्रिय सहभागी बनते हैं।

तकनीक ने जहाँ शोध की गति, पहुँच और प्रामाणिकता को बढ़ाया है, वहीं नैतिकता, मौलिकता और विवेक का संतुलन बनाए रखना अत्यावश्यक बन गया है। यह शोध इस बिंदु को प्रतिष्ठित करता है कि हिंदी शोध और आलोचना अब केवल पारंपरिक बौद्धिक अभ्यास नहीं, बल्कि एक समवेत, तकनीक-संपन्न और मानव-केंद्रित संवाद की संरचना में परिवर्तित हो चुकी है। यह नवयुगीन प्रवृत्ति हिंदी को वैश्विक ज्ञान-समुदाय में प्रतिष्ठित करने की ओर एक सशक्त कदम है।

1. तकनीक के युग में हिंदी-शोध-परंपरा का रूपांतरण

हिंदी साहित्य में शोध की प्रारंभिक परंपरा पांडुलिपियों, मुद्रित ग्रंथों और गुरु-शिष्य केंद्रित मार्गदर्शन पर आधारित रही, जिसे शुक्ल, द्विवेदी और नामवर सिंह जैसे विचारकों ने दिशा दी। सीमित संसाधनों और भौगोलिक बाधाओं के कारण उस समय शोध की गति धीमी और संदर्भ सीमित थे। लेकिन डिजिटल युग ने इस परंपरा को पूरी तरह बदल दिया है। NDLI, Shodhganga और Google Scholar जैसे डिजिटल प्लेटफ़ॉर्मों ने संदर्भ खोज को आसान और त्वरित बना दिया है। इससे शोध न केवल सुलभ हुआ है, बल्कि वह तुलनात्मक, बहुभाषीय और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी समृद्ध हुआ है। अब हिंदी में शोध केवल तथ्य-संकलन नहीं, बल्कि विश्लेषण और संवाद का एक आधुनिक विज्ञान बन गया है, जिसमें परंपरा और तकनीक का संतुलित संगम दिखाई देता है।

2. तकनीकी उपकरण : शोध का संबल

डिजिटल युग में हिंदी शोध वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बन गया है, जिसमें Zotero, Mendeley, Google Scholar जैसे टूल्स संदर्भ-प्रबंधन और स्रोत-खोज में सहायक हैं। Grammarly और Hemingway लेखन को परिष्कृत बनाते हैं, जबकि Voyant Tools और AntConc जैसे टेक्स्ट एनालिसिस सॉफ़्टवेयर शोध को डेटा-आधारित और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समृद्ध करते हैं। ये तकनीकी उपकरण शोध के हर चरण को त्वरित, सटीक और प्रभावी बनाते हैं, जिससे शोध एक गतिशील और गुणात्मक प्रक्रिया बन जाती है।

3. डिजिटल पुस्तकालय और ऑनलाइन मंच

परंपरागत शोध-प्रक्रिया मुद्रित ग्रंथों पर आश्रित एवं पुस्तकालयों तक परिसीमित रही। शोधार्थी के लिए भ्रमण की आवश्यकता, सामग्री का अभाव और गति में रुकावट शोध के मूल संकट रहे। डिजिटल-क्रांति के उद्भव से शोध-पट में परिवर्तन संभव हुआ। NDLI, DLI, Project Gutenberg, Shodhganga, Internet Archive आदि मंचों ने शोध-सामग्री की सुलभता, संदर्भ-विस्तार और क्षेत्रीय-समावेशन को सुनिश्चित किया।

NDLI-प्रयास तथा IIT-खड़गपुर द्वारा निर्मित मंच ग्रामीण शोधार्थियों की समता हेतु क्रांतिकारी भूमिका निभा रहा है। Shodhganga प्रबंध-संग्रह शोध-विषय के निर्धारण, पूर्वशोध-समीक्षा एवं प्रवृत्ति-विश्लेषण में सहायक है। Google Books, JSTOR, Academia.edu, ResearchGate आदि अंतरराष्ट्रीय मंचों ने

हिंदी-शोध को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक दृष्टिकोण और भाषिक विविधता से समृद्ध किया है।

अब शोध-प्रक्रिया व्यक्ति-केंद्रित न होकर सहभागिता-आधारित संवाद बन चुकी है। शिक्षक, शोधार्थी, पाठक और समीक्षक के समवेत सहभाग से शोध वैश्विक विमर्श का हिस्सा बन रहा है। डिजिटल-पुस्तकालयों और ऑनलाइन-मंचों ने शोध को सुलभ, लोकतांत्रिक, बहुआयामी और बौद्धिक गवेषणा का आधुनिक स्वरूप प्रदान किया है।

4. भाषा संसाधन और हिंदी

पूर्वकाल में साहित्यिक और प्रशासनिक माध्यम रही हिंदी अब तकनीकी परिदृश्य में सशक्त भाषा बन चुकी है। भाषा-संसाधनों के विकास ने हिंदी-शोध को वैज्ञानिक, तुलनात्मक एवं बहुआयामी स्वरूप प्रदान किया है। भाषा-संसाधन संबंधी डिजिटल उपकरण हिंदी-शोध को संरचनात्मक विश्लेषण, सांख्यिकीय परीक्षण और प्रयोगात्मक दृष्टिकोण से समृद्ध करते हैं।

CSTT, C-DAC, CIIL, TDIL, केंद्रीय हिंदी संस्थान आदि संस्थानों द्वारा विकसित तकनीकी शब्दावली, द्विभाषी-कोश, पर्यायवाची-संग्रह, वर्तनी-जाँचक, ई-शब्दकोश आदि ने शोध-भाषा की गुणवत्ता को परिष्कृत किया है। Hindi WordNet, Treebank, LE-Lexicon, हिंदी कॉर्पस और स्पीच-टू-टेक्स्ट टूल्स ने computational linguistics के क्षेत्र में हिंदी की वैश्विक स्वीकृति सुनिश्चित की है।

अब शोधार्थी AI-संपन्न-संसाधनों द्वारा शब्द-प्रयोग, अनुवाद, भाव-विश्लेषण, वाक्य-संरचना व प्रवृत्ति-अध्ययन जैसे क्षेत्रों में दक्षता प्राप्त कर रहे हैं। हिंदी अब न केवल विषय-विवेचन, बल्कि वैज्ञानिकता पर आधारित शोध-प्रवाह की सक्षम वाहिका है। भाषा-संसाधन संबंधी तकनीक हिंदी में शोध के सशक्त सेतु हैं, जो हिंदी को वैश्विक और बौद्धिक संवाद का सक्षम माध्यम बना रहे हैं। शोधार्थी की जागरूकता और तकनीक के विवेकपूर्ण प्रयोग से हिंदी शोध की प्रस्तुति सशक्त एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित होती है।

5. टेक्स्ट-विश्लेषण और सांख्यिकीय विमर्श

हिंदी में पारंपरिक, भावनात्मक और व्याख्यात्मक शोध अब डेटा-संवेदनशील, संरचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक दिशा में विकसित हो चुका है। डिजिटल-तकनीक और सांख्यिकीय-उपकरणों जैसे - Voyant Tools, AntConc, KH Coder, LIWC, Sketch Engine ने शोध-प्रक्रिया को वैज्ञानिक दृष्टि दी है।

अब पाठ-विश्लेषण केवल विचार-मूल्यांकन नहीं, बल्कि शब्द-आवृत्ति, सह-अस्तित्व, वाक्य-संरचना, भाव-पुनरावृत्ति जैसे मापदंडों पर आधारित है। 'गोदान' जैसे ग्रंथों में 'कर्ज़', 'किसान', 'शोषण' जैसे आवृत्ति होने वाले शब्द यथार्थवाद के संकेतक हैं। AntConc जैसे टूल्स से सह-शब्द के संदर्भ का अध्ययन कर पात्र-चिंतन एवं सामाजिक पृष्ठभूमि की गुणात्मक व्याख्या संभव है।

पाठ-विश्लेषण विधियाँ - Topic Modeling, Sentiment Analysis, Collocation Study आदि हैं। ये विधियाँ कविता, आत्मकथा और निबंध की आलोचना में नवाचार एवं प्रामाणिकता जोड़ती हैं। शोधार्थी अब निष्कर्षों को सांख्यिकीय प्रमाण सहित प्रस्तुत कर सकते हैं, जिससे विश्वसनीयता और विश्लेषण की गंभीरता में वृद्धि होती है। इस शोध-पद्धति का विकास हिंदी को संवेदना का प्रेषण तथा वैज्ञानिक विश्लेषण करने में सक्षम भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करता है। टेक्स्ट-एनालिसिस हिंदी-शोध को बहुस्तरीय, तुलनात्मक और प्रमाण-आधारित बनाकर शोध के आधुनिक मानकों से जोड़ता है।

6. आलोचना : विचार से संवाद तक

शुक्ल, द्विवेदी, रामविलास और नामवर के विचारों पर केंद्रित पारंपरिक हिंदी-आलोचना शास्त्रीय, एकालापीय एवं आलोचक द्वारा नियंत्रित रही, जिसमें पाठकीय भूमिका न्यून और संवाद की संभावना सीमित थी। आलोचना विचार-प्रधान अवश्य थी, परंतु जनसंचार से विहीन थी।

डिजिटल युग में यह आलोचना बहुस्तरीय और प्रतिक्रियात्मक संवाद में परिवर्तित हो चुकी है। ब्लॉग, यूट्यूब, पॉडकास्ट, ऑनलाइन पत्रिकाएँ, सोशल मीडिया, वेबिनार जैसे मंचों ने आलोचना को लोकतांत्रिक एवं संवादात्मक दिशा दी है। अब आलोचक निर्णायक नहीं, अपितु सहभागी है। पाठक ग्रहणकर्ता नहीं, बल्कि प्रतिक्रियाशील आलोचक है।

यूट्यूब पर टिप्पणियाँ, फ़ेसबुक पर हो रहे विमर्श एवं ब्लॉग की प्रतिक्रियाएँ आलोचना को बहुवचनात्मक संवाद में ढालती हैं। यह रूप केवल विचारों की व्याख्या नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं तकनीकी संदर्भों में कृति के विश्लेषण का साधन बन गया है। आलोचक अब सांस्कृतिक सिद्धांतों और डेटा के उपकरणों से आलोचना को बहुस्तरीय बनाते हैं। अब आलोचना विद्वानों का विलास नहीं, अपितु जनसाझा-बौद्धिक उत्तरदायित्व है। तकनीकी हस्तक्षेप ने आलोचना को उत्तरदायी, लचीला तथा

यथार्थपरक बनाया है। स्वर-विविधता, विषय-विविधता, प्रस्तुति-नवाचार एवं पाठकीय सहभागिता आलोचना के नए मानक बन गए हैं।

इस संक्रमण ने आलोचना को विचार से संवाद, निष्कर्ष से प्रक्रिया, एकालाप से बहुसंवाद और विश्लेषण से सहभागिता में परिवर्तित कर दिया है। यह आलोचना का डिजिटल लोकतंत्रीकरण है, जहाँ हर पाठक आलोचक है और हर प्रतिक्रिया आलोचना की नई धारा है।

7. तकनीक और आलोचना की संरचना

पारंपरिक आलोचना का ढाँचा विचार-गंभीर, विश्लेषण-गंभीर और भाषा-प्रबुद्ध अवश्य था, परंतु तकनीक की दृष्टि से अभावजन्य, एकपक्षीय और माध्यम-संकीर्ण रहा। लेखक की विचारधारा पर केंद्रित आलोचना केवल लेखन पर निर्भर थी। तकनीक के आगमन ने आलोचना की संरचना को न तो खंडित किया और न ही समाप्त; बल्कि दृश्य, श्रव्य एवं संवादात्मक डेटा पर आधारित एक नया रूप देकर इसे नवसृजित किया।

Voyant Tools, AntConc जैसे विश्लेषण-उपकरणों ने आलोचना को शाब्दिक और आँकड़ात्मक दृष्टि से समृद्ध कर दिया है। शब्दावृत्ति, कोलोकेशन, भावनात्मक संरचना, विषय-विश्लेषण अब आँकड़ों के साथ दिखाए जाते हैं। आलोचना अब केवल 'सुनाना' और 'समझाना' नहीं, अपितु 'दिखाना' भी है।

यूट्यूब, पॉडकास्ट, वेबिनार, ऑडियो बुक आदि ने आलोचना को दृश्य-श्रव्य अनुभव बना दिया है। स्लाइड्स, चित्र, ध्वनि, संगीत से युक्त समीक्षा अब कृति की बौद्धिकता के साथ-साथ संवेदना और सौंदर्य-शास्त्र का संप्रेषण करती है। इस प्रकार की आलोचना एक संवेदनात्मक और बौद्धिक यथार्थ का साक्षात्कार है। ब्लॉग्स और ऑनलाइन पत्रिकाएँ समीक्षक और पाठक के लिए परस्पर संवाद का मंच बन चुकी हैं। टिप्पणियाँ, प्रतिप्रश्न एवं प्रतिक्रियाएँ आलोचना को जीवंत, बहुस्तरीय और संवादात्मक बनाती हैं। एकतरफ़ा प्रस्तुति अब पाठकीय सहभागिता में बदल गई है। Grammarly, Google Docs जैसी वर्तनी-जाँच की प्रणालियाँ, थिसॉरस, पर्यायवाची-कोश आदि भाषिक उपकरणों ने भाषा को सटीक, प्रवाहमय और परिष्कृत बना दिया है।

डिजिटल-प्रस्तुति की विविधता, जैसे स्क्रॉलिंग टेक्स्ट, इन्फ़ोग्राफ़िक्स, वर्चुअल एनिमेशन और लाइव चर्चाएँ आलोचना को बौद्धिक संवाद का मंच बनाती हैं। समीक्षक अब मंचस्थ-वक्ता नहीं, अपितु संवाद और नवाचार की भाषा में आलोचना करता हुआ डिजिटल समुदाय का प्रतिनिधि है। इस तकनीकी हस्तक्षेप ने आलोचना की संरचना को एकपक्षीय से बहुपक्षीय, शाब्दिक से दृश्य-श्रव्य, विचारात्मक से प्रामाणिक और पाठक-विहीनता से सहभागिता-सम्पन्नता में रूपांतरित किया है। भविष्य की आलोचना की आत्मा, तकनीक की सहायता से समावेशी, संवादात्मक और साक्ष्याधारित संरचना होगी।

8. आलोचना में लोकतंत्रीकरण

परंपरागत आलोचना की धारा विशिष्ट बौद्धिक क्षेत्र में सीमित थी, जहाँ प्रतिष्ठित समीक्षक ही कृतियों पर टिप्पणी कर सकते थे। यह संवाद लेखक और समीक्षक के मध्य था। इसमें पाठक निष्क्रिय था और विचारों का अधिनायकत्व स्वीकार्य था। किंतु, डिजिटल सर्वसुलभता और तकनीकी उन्नयन ने इस केंद्रीकरण को भंग कर आलोचना को जन-आधारित, लोकतांत्रिक और सहभागिता-सम्पन्न बना दिया है।

अब इंटरनेट, स्मार्टफ़ोन और सोशल मीडिया ने आलोचना के मंच को सर्वजन-सुलभ बनाया है। यूट्यूब, फ़ेसबुक, ट्विटर, ब्लॉग्स, पॉडकास्ट्स, इंस्टाग्राम आदि सभी माध्यम अब साहित्यिक प्रतिक्रिया के मंच हैं। कोई भी व्यक्ति कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि पर विचार रख सकता है। यह प्रक्रिया अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ साहित्य को जन-विमर्श की ओर अग्रसर करती है।

पाठक अब आलोचना के निष्क्रिय अनुगामी नहीं, सक्रिय प्रतिक्रियाशील समीक्षक हैं। फ़ेसबुक पोस्ट्स पर 'गोदान' पर जन-संवाद, यूट्यूब पर 'अकबर के दूसरे नाम' की व्याख्या और टिप्पणियों का बहुवचनात्मक समागम है। इन सभी ने आलोचना को एकालाप से संवाद और अधिनायकत्व से जन-विमर्श में रूपांतरित किया है। आलोचना का यह लोकतंत्रीकरण साहित्य के अर्थ, सरोकार और संदर्भ को विस्तृत करता है। अब आलोचना केवल रूप-विचार ही नहीं, अपितु समाज, राजनीति और संस्कृति के द्वार खोलती है। आलोचना अब केवल 'पाठ' नहीं, 'प्रसंग' है। विद्वान नहीं, अब 'जन' उसका वाहक है।

हालाँकि इस खुले-मंच का प्रतिपक्ष भी है - ट्रोलिंग, फ़ेक-रिव्यू, भावनात्मक अतिरेक आदि आलोचना की शुद्धता को चुनौती देते हैं। परंतु, यह लोकतांत्रिक संक्रमण की शुरुआती असंगतियाँ हैं, जिन्हें संवेदना, विवेक और समय से नियंत्रित किया जा सकता है।

निस्संदेह, आलोचना का यह नवरूप हिंदी साहित्य में विचाराधारित संवाद का नया अध्याय जोड़ रहा है। यह बौद्धिक

एकाधिकार के स्थान पर जन-भागीदारी को केंद्र में लाकर आलोचना को जीवंत, संवादशील और समसामयिक बना रहा है।

9. समकालीन उदाहरण : तकनीकी प्रयोग

इक्कीसवीं सदी के शोधार्थी एवं आलोचक केवल पुस्तकों पर निर्भर नहीं, अपितु डिजिटल-संपन्न, टेक्स्ट-विश्लेषक और संवाद-केंद्रित सहभागी के रूप में उभरे हैं। विविध ऑनलाइन मंच, विश्लेषण-उपकरण और संवाद-समर्थ पोर्टल अब शोध और आलोचना की नई भाषा रच रहे हैं। निम्नलिखित समकालीन उदाहरण हिंदी शोध में तकनीक के सर्जनात्मक, सशक्त और सप्रमाण प्रयोगों को उद्घाटित करते हैं, जो न केवल प्रक्रिया, बल्कि परिणाम की दिशा भी निर्धारित करते हैं -

i. **तकनीकी अनिवार्यता और हिंदी-शोध :** अब तकनीक हिंदी शोध और आलोचना के लिए केवल विकल्प नहीं, अपरिहार्य बन चुकी है। समकालीन उदाहरणों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि तकनीक ने हिंदी में साहित्यिक अनुसंधान को नई दिशा और व्याप्ति दी है।

ii. **NDLI-DLI (डिजिटल सुलभता का विस्तार) :** National Digital Library of India (NDLI) और Digital Library of India (DLI) ने हज़ारों दुर्लभ पुस्तकों, शोध-प्रबंधों और पत्रिकाओं को डिजिटाइज़ कर ग्रामीण और शहरी सभी शोधार्थियों को समान अवसर दिया है। प्रेमचंद, निराला, मुक्तिबोध आदि की मूल रचनाओं तक की सुलभता शोध की लोकतांत्रिकता को सुदृढ़ करती है।

iii. **Shodhganga (शोध-गुणवत्ता का आधार) :** UGC-INFLIBNET द्वारा संचालित Shodhganga में हिंदी-विषयक हज़ारों शोध-प्रबंध उपलब्ध हैं। विषय-चयन, शोध-पद्धति, प्रबंध-प्रस्तुति आदि का मार्गदर्शन मिलना दोहराव का निवारण करने और शोध के स्तर की वृद्धि करने में सहायक हैं।

iv. **YouTube (आलोचना का दृश्य-संवाद) :** 'हिंदी आलोचना मंच', 'BookLover Reviewer' जैसे यूट्यूब चैनल्स ने काव्य-पाठ, रचना-विश्लेषण, लेखक-परिचय आदि को दृश्य मंच पर लाकर आलोचना को जीवंत, जन-सुलभ और संवादमूलक बना दिया है।

v. **ब्लॉग-विमर्श (स्वतंत्रता और बहुस्तरीयता) :** 'अनहद आलोचना', 'लिखावट', 'साहित्यिकी' जैसे ब्लॉग स्वतंत्र, वैचारिक और शोधपरक आलोचना के मंच हैं। पाठकीय टिप्पणियाँ आलोचना को बहुसांस्कृतिक और संवादपरक बनाती हैं।

vi. **टेक्स्ट-टूल्स (आलोचना का वैज्ञानिक आधार) :** 'गोदान' जैसे उपन्यासों का AntConc, Voyant Tools से विश्लेषण कर शब्द-आवृत्ति, सामाजिक-संकेतक और संवाद-संरचना को सांख्यिकीय रूप से रेखांकित किया गया, जिससे आलोचना अधिक प्रामाणिक बनती है।

vii. **ऑनलाइन पत्रिकाएँ (जनसंवाद का मंच) :** सृजन ऑस्ट्रेलिया, साहित्य कुंज, पुरवाई आदि ऑनलाइन पत्रिकाएँ लेखकों-पाठकों के बीच संवाद स्थापित कर आलोचना को पत्रिका-संकीर्णता से निकाल जन-संवादी बना रही हैं।

viii. **डिजिटल विमर्श (विषय-विस्तार और समावेशिता) :** हिंदी समय, सृजनगाथा, हिंदी ग्रंथ कोश जैसे डिजिटल पोर्टल स्त्री, दलित, आदिवासी, LGBTQ+ और पर्यावरणीय विमर्श को आलोचना से जोड़ते हैं। इससे आलोचना की संवेदनशीलता, समकालीनता और समावेशिता बढ़ती है।

10. शोध की संभावनाएँ और आवश्यक चेतावनियाँ

इक्कीसवीं सदी में हिंदी शोध वैश्विक परिप्रेक्ष्य, अंतर्विषयी दृष्टिकोण और डिजिटल उपकरणों से समन्वित समग्र बौद्धिक प्रक्रिया बन चुका है। NDLI, Shodhganga ने सूचना-सुलभता को लोकतांत्रिक बनाया, जिससे ग्रामीण शोधार्थी अंतरराष्ट्रीय स्तरीय स्रोतों तक पहुँच सके। AI टूल्स (ChatGPT, Gemini आदि) विषय-चयन, प्रारूप-निर्माण, अनुवाद और संदर्भ-संकलन में सहायक हैं। Zotero, Mendeley, Grammarly ने शोध-लेखन को क्रमबद्ध और शुद्ध बनाया। टेक्स्ट एनालिसिस टूल्स ने साहित्यिक विश्लेषण को संरचनात्मक और वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। Academia.edu, ResearchGate जैसे मंचों ने शोध को संवादात्मक प्रक्रिया बनाया, जहाँ फ़ीडबैक और सुधार के अवसर उपलब्ध हैं।

चेतावनियाँ (नैतिकता और विवेक की कसौटी) : तकनीक का अंधानुकरण मौलिकता-हानि, तथ्य-विकृति और सतही-लेखन को जन्म देता है। AI टूल्स से पूर्ण लेखन करने से शोध संदर्भविहीन और असंवेदनशील हो सकता है। अतः AI को सहयोगी के रूप में उपयोग करना चाहिए, विकल्प नहीं।

Plagiarism एक गहन संकट है। Turnitin, URKUND जैसे उपकरणों से इसकी रोकथाम आवश्यक है। ऑनलाइन स्रोतों की प्रामाणिकता भी शोध की विश्वसनीयता तय करती है। वस्तुतः सिर्फ़

संपादित, विद्वतापूर्ण स्रोतों का उपयोग ही मान्य होना चाहिए।

सूचना की अधिकता शोधार्थियों को भ्रमित कर सकती है; इसलिए विवेकपूर्ण चयन, प्राथमिकता-निर्धारण और विषय-केन्द्रितता आवश्यक है।

नैतिक विवेक और संस्थागत उत्तरदायित्व : तकनीक शक्ति है, परंतु उसका सार्थक प्रयोग नैतिक अनुशासन, मौलिकता और बौद्धिक सजगता पर आधारित होना चाहिए। विश्वविद्यालयों को शोध प्रारंभ करने से पहले ही शोध की नैतिकता, AI की सीमाओं और डिजिटल अनुशासन की शिक्षा देनी चाहिए। शोध में सत्यनिष्ठा, स्रोत-प्रामाणिकता और पाठक-जवाबदेही को केन्द्र में रखना अनिवार्य है।

11. भविष्य की दिशा : तकनीक-संपन्न, मानव-केंद्रित हिंदी अनुसंधान

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध से लेकर इक्कीसवीं सदी के तृतीय दशक तक हिंदी-शोध परंपरागत अनुशासन से तकनीक-संपन्न संवादशीलता की ओर प्रवृत्त हुआ है। यह संक्रमण केवल प्रक्रिया का नहीं, बल्कि दृष्टिकोण का भी पुनराविष्कार है, जो अब शोध की ऐसी दिशा का निर्धारण करने की माँग करता है, जहाँ तकनीकी दक्षता और मानवीय संवेदना का सह-अस्तित्व हो।

तकनीक-संपन्नता अब विकल्प नहीं, अनुसंधान की आवश्यकता बन चुकी है। विषय-निर्धारण, संदर्भ-संकलन, विश्लेषण, लेखन एवं प्रकाशन जैसे प्रत्येक शोध-चरण में डिजिटल संसाधन अपरिहार्य हैं। NDLI, Shodhganga, Google Scholar, ResearchGate जैसे पोर्टल्स ने शोध-सामग्री को लोकतांत्रिक, सुलभ और बहुभाषीय बना दिया है। AI, NLP, ML जैसी तकनीकों से भाषा-प्रसंस्करण, ऑटो-वर्गीकरण और संदर्भ-सूत्रांकन स्वचालित हो रहा है। AI टूल्स तुलनात्मक अध्ययन हेतु डेटा-संकलन, सार-संश्लेषण और निष्कर्ष-निर्धारण में समर्थ सिद्ध हो रहे हैं। परंतु, मानव-केंद्रितता की उपेक्षा शोध को यांत्रिक बना सकती है। शोध की आत्मा तकनीक नहीं, विवेक है। डेटा, ग्राफ़ और सॉफ़्टवेयर केवल माध्यम हैं। रचना की अंतर्धारा तो संवेदना, सांस्कृतिक प्रसंग और मानवीय दृष्टिकोण ही है। साहित्य का मर्म 'मनुष्य' है और शोध तब तक सार्थक नहीं, जब तक वह पाठ में मानव-अनुभव की पड़ताल न करे।

डिजिटल साक्षरता की दीक्षा अब शोध की पूर्व शर्त है। विश्वविद्यालयों और शोध-संस्थानों को चाहिए कि वे शोधार्थियों को तकनीकी उपकरणों, डेटा-प्रबंधन, डिजिटल प्रस्तुति और शोध-नैतिकता की औपचारिक शिक्षा दें। शिक्षकों और मार्गदर्शकों का तकनीकी सजग होना आवश्यक है, अन्यथा शोध का नेतृत्व दिशाहीन हो सकता है।

प्रकाशन और वितरण की सीमाएँ अब मुद्रित पत्रिकाओं तक नहीं रहेंगी। ओपन एक्सेस जर्नल्स, ई-जर्नल्स, ब्लॉग्स, सोशल मीडिया, वेबिनार और संवादात्मक मंचों ने शोध को वैश्विक पाठकों तक पहुँचाने के अवसर दिए हैं। शोध अब पुस्तकालयों की अलमारी नहीं, संवाद का समकालीन साधन बनेगा।

अंतर्विषयक शोध भविष्य की रीढ़ है। हिंदी-शोध साहित्य तक सीमित नहीं, बल्कि मीडिया, पर्यावरण, AI, मनोविज्ञान, राजनीति, डिजिटल संस्कृति आदि से गहरे संवाद में रहेगा। अंतर्विषयकता समसामयिकता और नवाचार का सेतु बनेगी।

हिंदी में साहित्यिक शोध और आलोचना परंपरागत रूप से विचार-संवेदना, संस्कृति-सरोकार और समाज-चेतना से संबद्ध रही है, जिसकी संरचना मुद्रित आश्रय, पुस्तकालय-केंद्रितता और अभिजात्य पर निर्भर होने वाली संवाद-पद्धति पर आधारित थी। शोध और आलोचना अभिजात्य की बौद्धिक गति में सीमित रही, किंतु इक्कीसवीं सदी की तकनीकी क्रांति ने इस ढाँचे को माध्यम-प्रवर्तन और विचार-विस्तार के साथ नव परिभाषित किया। यह रूपांतरण मात्र साधन का संशोधन नहीं, अपितु शोध-संस्कृति का पुनर्जन्म है।

आलोचना भी समीक्षक के एकालाप से उभरकर यूट्यूब, ब्लॉग, वेबिनार और सोशल मीडिया के माध्यम से पाठक, लेखक और समीक्षक का संवाद-क्षेत्र बन चुकी है। दृश्य-श्रव्य माध्यमों से आलोचना भावात्मक, संप्रेषणीय और सहभागितामूलक बनकर जन-संवादी समीक्षा का रूप ग्रहण कर रही है। इस नवसंरचना की धुरी प्रौद्योगिकी है, किंतु यह साधक है, साध्य नहीं। तकनीक पर आश्रित शोध यदि मौलिकता, विवेक, संवेदना और सांस्कृतिक दृष्टि से रिक्त हो, तो वह मात्र रिपोर्ट बनता है। आलोचना यदि ट्रेंडिंग संवेदनाओं और व्यू-प्रतिक्रियाओं तक सीमित हो जाए, तो गहराई और संतुलन लुप्त हो जाता है। अतः तकनीक का उपयोग संयम, विवेक और उद्देश्यपरक अनुशासन के साथ हो।

भविष्य का हिंदी-अनुसंधान संवाद की संस्कृति में रूपांतरित होगा। शोध और आलोचना सहचर बनकर हिंदी को शोध-भाषा के वैश्विक गौरव तक पहुँचाएगी। अतः नवयुगीन शोध और आलोचना अब केवल शैक्षणिक प्रक्रिया नहीं है, अपितु डेटा-दर्शन, तर्क-संवेदना, शब्द-संख्या और मशीन-मानव के समन्वय से समृद्ध जनज्ञान और लोकतंत्र का बौद्धिक सेतु बन चुकी है।

संदर्भ सूची :

1. राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय, (2023), NDLI में हिंदी शोध-ग्रंथों की उपलब्धता / Hindi Research Resources in NDLI, https ://ndl.iitkgp.ac.in/
2. शोधगंगा पोर्टल, (2022), हिंदी विषय के शोध-प्रबंधों का ऑनलाइन भंडार / Shodhganga : A reservoir of Indian theses in Hindi, https ://shodhganga.inflibnet.ac.in/
3. Voyant Tools, (2024), साहित्यिक ग्रंथों के लिए टेक्स्ट एनालिसिस प्लेटफ़ॉर्म / Voyant : Text Analysis for Literary Research, https ://voyant-tools.org/
4. Zotero.org, (2023), संदर्भ-प्रबंधन और शोध-लेखन उपकरण / Zotero : Reference Management and Research Writing Tool, https ://www.zotero.org/
5. सी-डैक इंडिया, (2020), हिंदी तकनीकी शब्दावली का विकास / C-DAC India, Development of Standardized Hindi Terminology, https ://www.cdac.in/
6. OpenAI, (2023), GPT आधारित शोध सहायता प्रणाली / GPT-Based Research Assistance System, https ://openai.com/chatgpt
7. ब्लॉगस्पॉट हिंदी आलोचना मंच, (2023), डिजिटल आलोचना की प्रवृत्तियाँ / Hindi Literary Criticism in the Digital Age, https ://hindiblogs.blogspot.com/
8. Academia.edu, (2022), हिंदी विषयक शोध-पत्रों का वैश्विक मंच / Academia : Global Platform for Hindi Research, https ://www.academia.edu/
9. AntConc, (2022), साहित्यिक विश्लेषण के लिए शब्दावृत्ति सॉफ़्टवेयर / AntConc : Word Frequency Software for Literary Analysis, https ://www.laurenceanthony.net/software/antconc/
10. ResearchGate, (2023), शोध नेटवर्किंग और आलोचना-मंच / ResearchGate : Scholarly Networking and Criticism Platform, https ://www.researchgate.net/
11. Grammarly, (2023), भाषा-सुधार और शैली-मार्गदर्शक उपकरण / Grammarly : Language Enhancement and Style Guidance Tool, https ://www.grammarly.com/
12. हंस पत्रिका (ऑनलाइन संस्करण), (2024), समकालीन साहित्यिक आलोचना / Hans Magazine (Online Edition) : Platform for Literary Criticism, https ://www.hansindia.org/
13. समालोचन (ब्लॉग), (2024), हिंदी आलोचना और विमर्श का ऑनलाइन मंच / Samalochan Blog : Hindi Criticism and Discourse, https ://samalochan.blogspot.com/
14. सृजनगाथा, (2024), हिंदी में विविध विमर्शों पर केंद्रित साहित्यिक पोर्टल / Srijangatha : Portal for Diverse Literary Discourses in Hindi, https ://www.srijangatha.com/
15. Central Institute of Indian Languages, (2023), हिंदी भाषा-संसाधन विकास / CIIL : Development of Hindi Language Resources, https ://www.ciil.org/

deendayal@jdm.du.ac.in

बॉलीवुड फ़िल्मों के शीर्षकों के थाई अनुवाद की रणनीतियाँ

- डॉ. पद्मा सवांगश्री
- डॉ. सेकसन सवांगश्री
थाईलैंड

आज इंटरनेट की तेज़ और स्थिर गति ने एक डिजिटल युग को जन्म दिया है, जिससे स्ट्रीमिंग वीडियो (Streaming Video) जैसी सेवाओं का विकास हुआ है, जिसमें दर्शक ऑनलाइन माध्यम से फ़िल्में देखने के लिए शुल्क अदा करते हैं। स्ट्रीमिंग फ़िल्में आजकल अधिक लोकप्रिय हो गई हैं, क्योंकि इन्हें देखने के लिए स्थान और समय की कोई पाबंदी नहीं होती, जिससे उपभोक्ताओं को फ़िल्म देखने की आज़ादी और भी अधिक मिलती है। वर्तमान समय में फ़िल्मों की ऑनलाइन स्ट्रीमिंग सेवा देने वाले कुछ प्रमुख प्लेटफ़ॉर्म हैं - नेटफ़्लिक्स (Netflix) और अमेज़न प्राइम वीडियो (Amazon Prime Video) आदि ।

वर्तमान समय में भारत की फ़िल्में थाईलैंड में मुख्यतः ऑनलाइन फ़िल्म प्लेटफ़ॉर्म जैसे नेटफ़्लिक्स (Netflix) और अमेज़न प्राइम वीडियो (Amazon Prime Video) के माध्यम से प्रवेश कर रही हैं। इससे थाई दर्शकों के लिए भारतीय फ़िल्मों तक पहुँचना पहले की तुलना में कहीं अधिक सरल हो गया है।

एक रोचक विशेषता यह है कि इन वीडियो स्ट्रीमिंग सेवाओं में फ़िल्मों के पोस्टर होते हैं, जिन पर फ़िल्मों के नाम प्रदर्शित होते हैं। फ़िल्म पोस्टर की भूमिका फ़िल्म के प्रचार में अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है, क्योंकि फ़िल्म का नाम दर्शकों को आकर्षित करने का एक प्रमुख साधन होता है। अनेक दर्शक फ़िल्म का नाम देखकर ही फ़िल्म देखने का निर्णय लेते हैं। साथ ही, फ़िल्म का नाम उसकी विषयवस्तु या शैली जैसे प्रेम कहानी, हास्य, रहस्य या डरावनी कहानी आदि का संकेत भी देता है। भारतीय बॉलीवुड फ़िल्मों के थाई शीर्षकों में दो नाम होते हैं : एक मूल नाम (हिंदी या अंग्रेज़ी में) और एक थाई में नया अनुवादित नाम। इन नए नामों के अनुवाद में तीन प्रमुख प्रकार की रणनीतियाँ अपनाई जाती हैं, जो अध्ययन के योग्य हैं -

1. लिप्यंतरण की रणनीति
2. भावानुवाद की रणनीति
3. नया नामकरण की रणनीति

अनुवाद रणनीति	**आवृत्ति (Frequency)**	**प्रतिशत (%)**
लिप्यंतरण की रणनीति		
1. पूर्ण लिप्यंतरण और कोई थाई भाषा विवरण नहीं	112	29.95
2. पूर्ण लिप्यंतरण और थाई भाषा में विवरण	16	4.28
3. आंशिक लिप्यंतरण, आंशिक छोड़ना और थाई विवरण	14	3.74
4. आंशिक लिप्यंतरण, आंशिक छोड़ना और कोई थाई विवरण नहीं	2	0.53
5. आंशिक लिप्यंतरण और आंशिक अनुवाद	8	2.14
भावानुवाद की रणनीति		
6. पूर्ण अनुवाद और कोई थाई विवरण नहीं	30	8.02
7. पूर्ण अनुवाद और थाई विवरण	25	6.68
8. कथानक पर आधारित अनुवाद (मूल शब्दों से स्वतंत्र)	8	2.14
9. आंशिक अनुवाद, आंशिक छोड़ना और कोई थाई विवरण नहीं	2	0.53
10. आंशिक अनुवाद, आंशिक छोड़ना और थाई विवरण	20	5.35
नया नामकरण की रणनीति		
11. नया नामकरण	137	36.64
कुल	374	100

1. लिप्यंतरण की रणनीति

यह वह रणनीति है, जिसमें फ़िल्म के मूल शीर्षक से उच्चारण के अनुसार शब्दों को लेकर उन्हें थाई भाषा में लिखा जाता है, यानी उच्चारण के अनुसार नाम रूपांतरित किया जाता है।

1.1. पूर्ण लिप्यंतरण बिना किसी थाई भाषा विवरण के

यह अनुवाद की एक रणनीति है, जिसमें बॉलीवुड फ़िल्मों के नामों को थाई भाषा में केवल लिप्यंतरण (Transliteration) किया जाता है। इस रणनीति के तहत अनुवादित फ़िल्मों के नामों में मूल नाम या तो केवल अंग्रेज़ी शब्दों से बने होते हैं, जिन्हें ज्यों-का-त्यों थाई भाषा में लिप्यांतरित किया गया है या केवल हिंदी शब्दों से बने होते हैं या हिंदी और अंग्रेज़ी शब्दों के मिश्रण से बने होते हैं ।

1.1 पूर्ण लिप्यंतरण और बिना किसी थाई भाषा विवरण के रणनीति		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम	**अंग्रेज़ी नाम**	**थाई नाम**
पानीपत	Panipat	ปานิปัต /पा-नि-पत/
ओके जानू	OK Jaanu	โอเค จานู /ओ-के जा-नू/

(i) उदाहरण 1 : **"पानीपत" (Panipat) –** ปานิปัต (2019) यह फ़िल्म 1758 ई. की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है, जब मराठा साम्राज्य (मराठा) अपने शिखर पर था। "पानीपत" हरियाणा राज्य का एक ऐतिहासिक नगर है, जो दिल्ली से लगभग 95 कि.मी. उत्तर में स्थित है। यह मराठा और अफ़गान सेनाओं के बीच निर्णायक युद्धस्थल रहा, जहाँ सदाशिव जैसे वीर सेनापति ने अपने जीवन का बलिदान दिया। इस फ़िल्म का नाम "ปานิปัต" /पा-नि-पत/ हिंदी मूल शब्द का पूर्ण लिप्यंतरण है, जिसमें थाई भाषा में कोई अतिरिक्त विवरण नहीं जोड़ा गया।

(ii) उदाहरण 2 : "ओके जानू" (OK Jaanu) – โอเค จานู (2017) यह एक रोमांटिक ड्रामा फ़िल्म है, जिसमें नाम दो भाषाओं से मिलकर बना है — अंग्रेज़ी शब्द "ओके" (OK) जिसका अर्थ है "ठीक है" और हिंदी शब्द "जानू" जिसका अर्थ है "प्रिय / जान"। फ़िल्म मुंबई में रहने वाले "आदि" और "तारा" की कहानी है, जो पहले दोस्त बनते हैं और फिर प्रेम में पड़ जाते हैं। लेकिन उनका करियर और व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएँ उनके प्रेम को चुनौती देती हैं। "โอเค จานู" /ओ-के जा-नू/ फ़िल्म का नाम मूल नाम का पूरा लिप्यंतरण है, जिसमें कोई थाई शब्द नहीं जोड़ा गया।

1.2 पूर्ण लिप्यंतरण और थाई भाषा में विवरण जोड़ने की रणनीति

यह रणनीति ऐसी है, जिसमें बॉलीवुड फ़िल्म के मूल नाम को पूरी तरह लिप्यंतरण कर थाई भाषा में लिखा जाता है और उसके बाद थाई भाषा में एक वाक्यांश या शब्द जोड़ा जाता है, ताकि फ़िल्म की प्रकृति, पात्रों या कथानक को थाई दर्शकों के लिए और अधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जा सके ।

1.2 पूर्ण लिप्यंतरण और थाई भाषा में विवरण जोड़ने की रणनीति		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम	**अंग्रेज़ी नाम**	**थाई नाम**
बॉडीगार्ड	Bodyguard	บอดี้การ์ด พิทักษ์รัก /बॉ-डी-गार्ड **भि-थक-रक**/
मर्दानी 2	Mardaani 2	มาร์ดานี่ สวยพิฆาต 2 /मार्दा-नी **सोय-भि-घात 2**/

(i) उदाहरण 1 : "बॉडीगार्ड" – บอดี้การ์ด พิทักษ์รัก यह नाम अंग्रेज़ी शब्द "Bodyguard" का लिप्यंतरण है, जिसे थाई भाषा में "พิทักษ์รัก" /भि-थक-रक/ (प्रेम की रक्षा करने वाला) जोड़कर संपूर्ण शीर्षक बनाया गया है। यह शीर्षक एक युवक "बलवंत सिंह" (बलवंत सिंह) की कहानी को दर्शाता है, जो एक अमीर लड़की "दिव्या" (दिव्या) का बॉडीगार्ड बनता है और उसी से प्रेम करने लगता है।

(ii) उदाहरण 2 : "मर्दानी 2" – มาร์คานี่ สวยพิฆาต 2 इस फ़िल्म के थाई नाम में हिंदी नाम "मर्दानी" का पूर्ण लिप्यंतरण किया गया है और उसके साथ थाई भाषा में "สวยพิฆาต 2" /सोय-भि-घात 2/ (सुन्दर और घातक 2) जोड़ा गया है। यह शीर्षक मुख्य पात्र "शिवानी" एक सुंदर, लेकिन सशक्त महिला पुलिस अधिकारी को दर्शाता है जो अपराधियों से बुद्धिमत्ता और साहस से लड़ती है।

1.3 आंशिक लिप्यंतरण, आंशिक विलोपन और थाई भाषा में विवरण जोड़ने की रणनीति

यह रणनीति फ़िल्म के मूल नाम के कुछ भागों को लिप्यंतरण करने, कुछ भागों को हटाने और उसके बाद थाई भाषा में विवरण जोड़कर शीर्षक को दर्शकों के लिए स्पष्ट करने का प्रयास करती है।

1.3 आंशिक लिप्यंतरण, आंशिक विलोपन और थाई भाषा में विवरण जोड़ने की रणनीति		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम	**अंग्रेज़ी नाम**	**थाई नाम**
गुंजन सक्सेना : द कारगिल गर्ल	Gunjan Saxena : The Kargil Girl	กัณจัญ ศักเสนา: ดิดปีกสู่ฝัน /कण-चञ शक-से-ना **तिद-पीक सू-फ़न/**
माया मेमसाब	Maya Memsaab	โศกนาฏกรรมมายา **/शोक-ना-ट-कम** मा-या**/**

(i) उदाहरण 1 : "गुंजन सक्सेना : द कारगिल गर्ल" – **กัณจัญ ศักเสนา: ดิดปีกสู่ฝัน (2020)** इस शीर्षक में "गुंजन सक्सेना" का लिप्यंतरण किया गया है, जबकि "द कारगिल गर्ल" भाग को हटा दिया गया है। इसके स्थान पर थाई भाषा में "ดิดปีกสู่ฝัน" /तिद-पीक सू-फ़न**/** (सपनों को पंख देना) जोड़ा गया है, जिससे दर्शकों को फ़िल्म का विषय - एक भारतीय महिला पायलट की प्रेरणादायक कहानी की झलक मिलती है। गुंजन सक्सेना भारत की पहली युद्धक महिला पायलट थीं, जिन्होंने कारगिल युद्ध में भाग लिया।

(ii) उदाहरण 2 : "माया मेमसाब" – **โศกนาฏกรรมมายา (1993)** यहाँ "माया" (नायिका का नाम) का लिप्यंतरण किया गया है, जबकि "मेमसाब" शब्द को हटा दिया गया है। थाई भाषा में "โศกนาฏกรรม" **/शोक-नाट-कर्म/** (त्रासदी) शब्द जोड़कर दर्शाया गया है कि यह फ़िल्म एक समृद्ध लेकिन प्रेम में असंतुष्ट महिला की दुखद कहानी है।

1.4 आंशिक लिप्यंतरण, आंशिक विलोपन और बिना थाई विवरण जोड़ने की रणनीति

यह रणनीति फ़िल्म के मूल शीर्षक का कुछ हिस्सा लिप्यंतरण कर और कुछ हिस्सा हटाकर नया शीर्षक बनाती है, बिना थाई भाषा में कोई अतिरिक्त विवरण जोड़े।

1.4 आंशिक लिप्यंतरण, आंशिक विलोपन और बिना थाई विवरण जोड़ने की रणनीति		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम	**अंग्रेज़ी नाम**	**थाई शीर्षक**
टॉइलेट - एक प्रेम कथा	Toilet - Ek Prem Katha	ตูเลต (Toilet) /तू-लेत/
धोबी घाट (मुंबई डायरी)	Dhobi Ghat (Mumbai Diaries)	ไดอารี่จากมุมไบ /डाय-री चाक मुंबई/

(i) उदाहरण 1 : "टॉइलेट - एक प्रेम कथा" – ตูเลต **(Toilet)** यह शीर्षक फ़िल्म के मूल नाम "टॉइलेट - एक प्रेम कथा" में से "टॉइलेट" शब्द का आंशिक लिप्यंतरण है और शेष भाग "एक प्रेम कथा" (एक प्रेम कहानी) को हटा दिया गया है, बिना थाई भाषा में कोई विवरण जोड़े। यह फ़िल्म भारत के ग्रामीण समाज में शौचालय की आवश्यकता और महिलाओं की गरिमा की रक्षा पर आधारित है। फ़िल्म का कथानक एक नवविवाहित जोड़े पर केंद्रित है, जहाँ पत्नी अपने ससुराल में शौचालय न होने के कारण नाराज़ होकर घर छोड़ देती है और पति समाज की परंपराओं से टकराते हुए शौचालय बनवाने के लिए संघर्ष करता है।

(ii) उदाहरण 2 : "धोबी घाट (मुंबई डायरी)" – ไดอารี่จากมุมไบ **(Mumbai Diaries)** यह शीर्षक मूल नाम "धोबी घाट (मुंबई डायरी)" से "मुंबई डायरी" (Mumbai Diaries) भाग का लिप्यंतरण है, जबकि "धोबी घाट" (धोबी का घाट) भाग को हटा दिया गया है और थाई में कोई नया विवरण नहीं जोड़ा गया। इस फ़िल्म में चार अलग-अलग सामाजिक वर्गों के लोगों की ज़िंदगियाँ आपस में टकराती हैं। "धोबी घाट" (laundry steps) एक प्रतीकात्मक स्थान है, जो भारत की जातीय और सामाजिक संरचनाओं को दर्शाता है।

1.5 आंशिक लिप्यंतरण और आंशिक अनुवाद की रणनीति

यह रणनीति फ़िल्म के शीर्षक का एक भाग लिप्यंतरण (transliteration) करके रखा जाता है, जबकि शेष भाग को हिंदी से थाई में अनुवाद किया जाता है।

1.5 आंशिक लिप्यंतरण और आंशिक अनुवाद की रणनीति		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम	**अंग्रेज़ी नाम**	**थाई शीर्षक**
बद्रीनाथ की दुल्हनिया	Badrinath Ki Dulhania	เจ้าสาวของบาดรินาท **/चाऊ-साव खौंग** बाग्रिनाद/
गोलमाल अगेन	Golmaal Again	กอลมาลอีกครั้ง / कौल-माल **ईक-ग्रंग**/

(i) उदाहरण 1 : "बद्रीनाथ की दुल्हनिया" – เจ้าสาวของบาดรินาท इस शीर्षक में "बद्रीनाथ" (Badrinath) को थाई में "บาดรินาท" /बाग्रिनाद/ के रूप में लिप्यंतरण किया गया है, लेकिन यह लिप्यंतरण शुद्ध हिंदी उच्चारण "बद्रीनाथ" (/बट्री-नाथ/) से थोड़ा भिन्न है। "की दुल्हनिया" का अर्थ है "की = का/की/के" और "दुल्हनिया = दुल्हन (दुल्हनिया)" "เจ้าสาว" (เจ้าสาวของ...) /चाऊ-साव खौंग/ यह शीर्षक फ़िल्म की मूल भावना को व्यक्त करता है, जहाँ बद्रीनाथ एक रूढ़िवादी लेकिन हृदय से अच्छे परिवार का युवक है, जो वैदेही नाम की स्वतंत्र विचारों वाली शिक्षित लड़की से प्रेम करता है। फ़िल्म पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर सवाल उठाती है, जहाँ महिलाएँ अपने सपनों के लिए संघर्ष करती हैं।

(ii) उदाहरण 2 : "गोलमाल अगेन" → กอลมาลอีกครั้ง **(Golmaal Again)** इस शीर्षक में "गोलमाल" (Golmaal) का थाई में "กอลมาล" /कौल-माल/ के रूप में आंशिक लिप्यंतरण किया गया है, जबकि "Again" (अगेन) को थाई भाषा में "อีกครั้ง" (อีกครั้ง = फिर से/एक बार और) के रूप में अनुवादित किया गया है। "Golmaal" का अर्थ होता है "गड़बड़", "अराजकता", या "हास्यपूर्ण भ्रम", जो इस हास्य फ़िल्म की कहानी को प्रतिबिंबित करता है। यह एक सीक्वल है, जो दो विरोधी गुटों की कहानी और उनके बीच की हास्यास्पद घटनाओं को दर्शाता है।

2. अर्थानुवाद की युक्तियाँ

2.1 सम्पूर्ण वाक्य का शाब्दिक अनुवाद और कोई अतिरिक्त थाई भाषा की व्याख्या नहीं

बॉलीवुड फ़िल्मों के शीर्षकों को थाई भाषा में अनुवाद करते समय यह पद्धति उस स्थिति को दर्शाती है, जहाँ मूल हिंदी (या अंग्रेज़ी) शीर्षक का शाब्दिक अनुवाद किया गया, लेकिन उसमें किसी भी प्रकार की अतिरिक्त व्याख्या, विवरण या भावात्मक पूरक नहीं जोड़ा गया। अनुवाद केवल शाब्दिक है।

2.1 सम्पूर्ण वाक्य का शाब्दिक अनुवाद और कोई अतिरिक्त थाई व्याख्या नहीं		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम (हिंदी)	**अंग्रेज़ी नाम**	**थाई में अनूदित शीर्षक**
बदला	Badla	แค้น /गैन/
हिचकी	Hichki	สะอึก /स-ईक/

(i) उदाहरण 1 : "बदला (Badla)" – แค้น (2019) इस फ़िल्म के शीर्षक का शाब्दिक अनुवाद "बदला" है, जिसका अर्थ है "प्रतिशोध" "แค้น" /गैन/ । यह शीर्षक फ़िल्म की मूल कहानी को प्रभावी रूप से दर्शाता है। कहानी एक दंपति की है, जिनका बेटा एक सड़क दुर्घटना में मारा जाता है और अपराधी इसके लिए ज़िम्मेदारी नहीं लेता, बल्कि साक्ष्यों को छुपाने की कोशिश करता है। पिता नकली वकील बनकर नैना से सच उगलवाता है।

(ii) उदाहरण 2 : "हिचकी (Hichki)" – สะอึก इस फ़िल्म का शीर्षक "हिचकी" का अर्थ है - "हिचकी" "สะอึก" /स-ईक/, जो फ़िल्म की नायिका नैना माथुर (नैना मथुर) की बीमारी Tourette Syndrome को दर्शाता है। इस बीमारी के बावजूद नायिका 'नैना' समाज में अपनी जगह बनाती है और उन छात्रों की शिक्षा का ज़िम्मा उठाती है, जिन्हें समाज ने उपेक्षित कर दिया है। उसके समर्पण और प्रयासों के परिणामस्वरूप, उसके सभी छात्र जीवन में सफलता प्राप्त करते हैं।

2.2 सम्पूर्ण वाक्य का शाब्दिक अनुवाद और थाई भाषा में अर्थवर्धक विवरण जोड़ना

यह रणनीति उन फ़िल्मों के नामों के अनुवाद में प्रयुक्त होती है, जहाँ हिंदी शीर्षक का पूरा अर्थ ज्यों-का-त्यों अनुवाद किया जाता है, साथ ही उसमें अतिरिक्त थाई भाषा में विवरण या व्याख्या जोड़ी जाती है, ताकि दर्शकों को फ़िल्म की विषयवस्तु या शैली की स्पष्ट जानकारी दी जा सके।

2.2 सम्पूर्ण वाक्य का शाब्दिक अनुवाद और थाई भाषा में अर्थवर्धक विवरण जोड़ना		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम (हिंदी)	**अंग्रेज़ी नाम**	**थाई में अनूदित शीर्षक**
चाहत	Chaahat	วังวนรักแรงปรารถนา /वंग-वोन-रक-रैंग-प्रार्थना/
पहेली	Paheli	ปริศนารัก /प्रिश्ना-रक/

(i) उदाहरण 1 : "चाहत (Chaahat)" – วังวนรักแรงปรารถนา इस फ़िल्म का शीर्षक "चाहत" का अर्थ होता है "इच्छा" या "प्रबल कामना" "ความปรารถนา" /प्रार्थना/ और इसका अनुवाद थाई में किया गया "วังวนรักแรงปรารถนา" /वंग-वोन-रक-रैंग-प्रार्थना/ जिसमें "วังวนรัก" /वंग-वोन-रक/ को जोड़ा गया है, ताकि दर्शक समझ सकें कि यह फ़िल्म एक जटिल प्रेम त्रिकोण पर आधारित है। कहानी एक गायक की है, जिसे दो स्त्रियों में से एक को चुनना है - एक जिससे वह प्रेम करता है और दूसरी जो उसके प्रति पागलपन की हद तक आसक्त है।

(ii) उदाहरण 2 : "पहेली (Paheli)" – ปริศนารัก इस फ़िल्म का शीर्षक "पहेली" का अर्थ होता है -"पहलि" या "पजल" "ปริศนา" /प्रिश्ना/, और थाई अनुवाद में "รัก" /रक/ (प्यार) शब्द जोड़ा गया है, जिससे फ़िल्म की प्रेम और रहस्य की मुख्य थीम स्पष्ट हो जाती है। कहानी एक नवविवाहिता स्त्री की है, जिसका पति शादी की रात ही व्यापार के लिए निकल जाता है और उसका स्थान एक भूत ले लेता है, जो उससे सच्चा प्रेम करता है। पाँच वर्षों तक वह स्त्री उस भूत के साथ रहती है, जिसे उसने अपने पति का रूप समझा। जब असली पति लौटता है, तो उसे निर्णय लेना होता है कि वह प्रेम को चुने या पारंपरिक दायित्व को।

2.3 कथा पर आधारित अनुवाद, जो मूल शब्दों से बँधा नहीं होता

इस प्रकार का अनुवाद फ़िल्म के मूल शीर्षक को उसके शाब्दिक अर्थ के अनुसार न देखकर उसके कथानक या भावार्थ

को ध्यान में रखकर किया जाता है।

2.3 : कथा पर आधारित स्वतंत्र अनुवाद		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम (हिंदी)	**अंग्रेज़ी नाम**	**थाई अनुवादित शीर्षक**
सत्यमेव जयते	Satyameva Jayate	ความจริงมีเพียงหนึ่งเดียว /ग्वाम-च्रिंग मी भियांग ह्लींग दियाव/ (सच्चाई केवल एक ही है)
मिसेज़ सीरियल किलर	Mrs. Serial Killer	ฆ่าเพื่อรัก/घा भिऊ रक/ (प्यार के लिए हत्या)

(i) उदाहरण 1 : "सत्यमेव जयते (Satyameva Jayate)" — ความจริงมีเพียงหนึ่งเดียว (2018) इस फ़िल्म का मूल नाम "सत्यमेव जयते" का शाब्दिक अर्थ है - "सत्य की ही विजय होती है" लेकिन थाई में इसे अनुवाद किया गया "ความจริงมีเพียงหนึ่งเดียว" /ग्वाम-च्रिंग मी भियांग ह्लींग दियाव/ (सच्चाई केवल एक ही है) - जो फ़िल्म की कथावस्तु को दर्शाने के लिए अधिक उपयुक्त है। कहानी दो जुड़वाँ भाइयों की है - वीर और शिवांश, जिनके पिता को भ्रष्टाचार का विरोध करने पर मार दिया गया था। पिता की मौत के बाद शिवांश पुलिस विभाग से जानकारी लेता है, जबकि वीर भ्रष्ट अफ़सरों को मारता है। हत्या का क्रम 'सत्यमेव जयते' शब्द के अक्षरों के आधार पर किया जाता है।

(ii) उदाहरण 2 : "मिसेज़ सीरियल किलर (Mrs. Serial Killer)" — ฆ่าเพื่อรัก (2020) इस फ़िल्म के मूल नाम का अर्थ है - "महिला सीरियल किलर" (นางฆาตกรต่อเนื่อง), लेकिन थाई में अनुवाद किया गया "ฆ่าเพื่อรัก" /घा भिऊ रक, जिसका अर्थ है "प्रेम के लिए हत्या"। फ़िल्म में एक महिला अपने पति की बेगुनाही साबित करने के लिए खुद बराबर हत्या करती है, ताकि असली अपराधी की पहचान हो सके। इसीलिए थाई शीर्षक "ฆ่าเพื่อรัก" /घा भिऊ रक/ (प्यार के लिए हत्या) उपयुक्त प्रतीत होता है।

2.4 आंशिक अनुवाद, आंशिक विलोपन और बिना किसी अतिरिक्त स्पष्टीकरण के अनुवाद

इस प्रकार के अनुवाद में फ़िल्म के नाम का केवल एक हिस्सा ही अनुवादित किया जाता है। आमतौर पर उस भाग का अनुवाद किया जाता है, जो फ़िल्म के मुख्य विचार या घटनाक्रम से संबंधित होता है, जबकि शेष भाग को छोड़ दिया जाता है। साथ ही, शीर्षक में कोई अतिरिक्त थाई भाषा विवरण भी नहीं जोड़ा जाता ।

2.4 आंशिक अनुवाद, आंशिक विलोपन और बिना किसी अतिरिक्त स्पष्टीकरण के अनुवाद		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम (हिंदी)	**अंग्रेज़ी नाम**	**थाई में अनुवादित शीर्षक**
चोक्ड : पैसा बोलता है	Choked : Paisa Bolta Hai	กระอัก /क्र-अक/ (चोक्ड)
थप्पड़ : बस इतनी सी बात?	Thappad - Bas Itni Si Baat?	ตบ ! /तोप/ (थप्पड़)

(i) उदाहरण 1 : "चोक्ड : पैसा बोलता है (Choked: Paisa Bolta Hai)" — กระอัก (2020) इस फ़िल्म के शीर्षक में केवल "चोक्ड (Choked)" शब्द का अनुवाद किया गया है, जिसका अर्थ है "กระอัก" /क्र-अक/ जबकि बाकी शीर्षक "पैसा बोलता है" को हटा दिया गया है। फ़िल्म एक बैंक कर्मचारी महिला की कहानी है, जो अपने बेरोज़गार पति के कर्ज़ के बोझ तले दबी है। एक दिन उसे अपने घर में एक रहस्यमय पैसे का स्रोत मिलता है, जो उसकी ज़िंदगी बदल सकता है — यह फ़िल्म पैसे, लालच और नैतिकता के द्वंद्व पर आधारित है।

(ii) उदाहरण 2 : "थप्पड़: बस इतनी सी बात?" — ตบ ! (2020) इस शीर्षक में केवल "थप्पड़" को रखा गया है, जिसका अर्थ है "ตบ" /तोप/ जबकि शेष शीर्षक "बस इतनी सी बात?" को हटा दिया गया है। फ़िल्म की कहानी एक विवाहित महिला की है जिसे उसके पति ने सबके सामने थप्पड़ मारा। महिला अन्याय के खिलाफ़ खड़ी होती है। इस प्रकार, केवल "थप्पड़" "ตบ" /तोप/ शब्द ही फ़िल्म के मूल भाव को दर्शाने के लिए पर्याप्त समझा गया।

2.5 आंशिक अनुवाद, आंशिक विलोपन और कथानक के आधार पर अतिरिक्त थाई स्पष्टीकरण

इस प्रकार के अनुवाद में फ़िल्म के शीर्षक का केवल एक भाग

अनुवादित किया जाता है, जबकि अन्य भागों को हटा दिया जाता है। साथ ही, थाई भाषा में एक अतिरिक्त विवरण जोड़ा जाता है, जिससे फ़िल्म की विषयवस्तु या भाव स्पष्ट हो सके।

2.5 आंशिक अनुवाद, आंशिक विलोपन और कथानक के आधार पर अतिरिक्त थाई स्पष्टीकरण		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम (हिंदी)	अंग्रेज़ी नाम	**थाई में अनुवादित शीर्षक**
हम्प्टी शर्मा की दुल्हनियां	Humpty Sharma Ki Dulhania	เจ้าสาวดื้อ /चाव-साव-दीऊ/ (जिद्दी दुल्हन)
पीपली लाइव	Peepli Live	ตายเป็นตาย ขอถ่ายทอดสด /ताय-पेन-ताय खौ-थाय-थौद-सोद/ (मरना है तो मरेंगे, लेकिन लाइव ज़रूर करेंगे।)

(i) उदाहरण 1 : "हम्प्टी शर्मा की दुल्हनिया" — เจ้าสาวดื้อ इस फ़िल्म के शीर्षक में केवल "दुल्हनिया" (दुल्हन, यानी 'เจ้าสาว') को बरकरार रखा गया है, जबकि "हम्प्टी शर्मा की" को हटा दिया गया है। थाई अनुवाद में अतिरिक्त विवरण "ดื้อ" /दीऊ/ (जिद्दी) जोड़ा गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि फ़िल्म में एक ऐसी नायिका है, जो अपनी मर्ज़ी से अपने जीवन का निर्णय लेती है। वह एक युवक 'हम्प्टी शर्मा' से प्रेम करती है और उससे विवाह करने की ज़िद्द करती है।

(ii) उदाहरण 2 : "पीपली लाइव" — ตายเป็นตาย ขอถ่ายทอดสด यहाँ "लाइव (Live)" शब्द को अनूदित किया गया है, जिसका अर्थ है 'ขอถ่ายทอดสด' /खौ-थाय-थौद-सोद/ (लाइव ज़रूर करेंगे।) जबकि "पीपली" (एक गाँव का नाम) को हटा दिया गया है। थाई अनुवाद में अतिरिक्त वाक्यांश "ตายเป็นตาย" /ताय-पेन-ताय/ (मरना है तो मरेंगे) जोड़ा गया है, जो फ़िल्म की कथा को और अधिक प्रभावशाली बनाता है। फ़िल्म में एक निर्धन किसान आत्महत्या करने की योजना बनाता है, ताकि उसे सरकार की ओर से मुआवज़ा मिले। इस योजना की खबर मीडिया तक पहुँचती है और मीडिया इस मुद्दे को लाइव प्रसारित करने लगता है।

3. नामकरण की नई रणनीति

3.1 पात्र के नाम पर आधारित नया शीर्षक रखना

फ़िल्मों के नाम हिंदी से थाई में अनुवाद करते समय कुछ फ़िल्मों के लिए अनुवादकों ने मूल नाम को छोड़कर बिल्कुल नया नाम चुना, जो फ़िल्म की कहानी, पात्र या भावना को बेहतर तरीके से दर्शाता है। इस खंड में हम उन फ़िल्मों को देखेंगे, जिनके थाई शीर्षक पात्र के नाम पर आधारित हैं।

3.1 पात्र के नाम पर आधारित नया शीर्षक रखना		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम (हिंदी)	**अंग्रेज़ी नाम**	**थाई में अनुवादित शीर्षक**
कुछ कुछ होता है	Kuch Kuch Hota Hai	อัญชลี /अंजलि/

उदाहरण : "कुछ कुछ होता है (Kuch Kuch Hota Hai)" — อัญชลี /अंजलि/ यह फ़िल्म 1998 में बनी एक प्रसिद्ध प्रेम-त्रिकोण आधारित कहानी है। मूल शीर्षक "कुछ कुछ होता है" - "कुछ विशेष घटता है।" इस शीर्षक को थाई में अनुवाद करना या लिप्यंतरण करना फ़िल्म की भावनाओं को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत नहीं करता। इसलिए, अनुवादक ने फ़िल्म के मुख्य पात्र "अंजलि" के नाम पर ही थाई शीर्षक "อัญชลี" /अंजलि/ रखा। यह शीर्षक न केवल दर्शकों के लिए सहज और यादगार है, बल्कि फ़िल्म की केंद्रीय पात्र की ओर ध्यान खींचता है, जिससे दर्शकों को यह जिज्ञासा होती है कि "อัญชลี" /अंजलि/ कौन है और उसके साथ क्या हुआ।

3.2 पात्र की भूमिका के आधार पर नया शीर्षक रखना

कभी-कभी फ़िल्म के पात्रों की भूमिका इतनी प्रमुख होती है कि अनुवादक मूल शीर्षक को न लेकर एक ऐसा नाम रखते हैं, जो सीधे उस भूमिका को दर्शाता है। इस पद्धति से दर्शकों को यह आभास होता है कि फ़िल्म किस प्रकार के चरित्र या कार्य से जुड़ी हुई है।

3.2 पात्र की भूमिका के आधार पर नया शीर्षक रखना		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम (हिंदी)	अंग्रेज़ी नाम	थाई में अनुवादित शीर्षक
क्लास ऑफ '83	Class of '83	นักฆ่านอกเครื่องแบบ /नक-घा-नौक-क्रेउंग-बैब/ (गुप्त वेश में कातिल)
शान (सम्मान, गौरव)	Shaan	เพื่อนรัก /भुआन-रक / (प्रिय मित्र)

(i) उदाहरण 1 : "क्लास ऑफ '83 (Class of '83)" — นักฆ่านอกเครื่องแบบ /नक-घा-नौक-क्रेउंग-बैब/ इस फ़िल्म का मूल नाम उस पुलिस प्रशिक्षण बैच पर आधारित है, जिसे 1983 में प्रशिक्षित किया गया था। लेकिन थाई अनुवाद में शीर्षक को पात्रों की गुप्त और विशेष भूमिका के आधार पर "นักฆ่านอกเครื่องแบบ" (गुप्त वेश में कातिल) रखा गया, जिससे यह स्पष्ट हो कि ये पात्र पुलिस की सामान्य ड्यूटी नहीं निभाते, बल्कि वे गुप्त मिशन पर होते हैं। यह शीर्षक सीधे दर्शकों का ध्यान कथानक के एक्शन और रहस्य की ओर आकर्षित करता है।

(ii) उदाहरण 2 : "शान (Shaan)" — เพื่อนรัก /भुआन-रक/ "शान" शब्द का अर्थ है "गौरव" या "सम्मान", जो एक अमूर्त अवधारणा है। थाई अनुवाद में इसे पात्रों के बीच के संबंध को सामने लाते हुए "เพื่อนรัก" (प्रिय मित्र) रखा गया है, जो फ़िल्म की केंद्रीय कहानी को दर्शाता है - दो मित्र जिनकी ज़िंदगी और प्यार टकरा जाते हैं, जिससे उनकी दोस्ती दुश्मनी में बदल जाती है।

3.3. पात्र की विशेषता के आधार पर नया शीर्षक रखना

कभी-कभी पात्रों की कुछ विशेषताएँ नई थाई फ़िल्मों के शीर्षक रखने पर प्रभाव डालती हैं, ताकि वे आसानी से समझ में आएँ और दर्शकों को सीधे आकर्षित कर सकें।

3.3. पात्र की विशेषता के आधार पर नया शीर्षक रखना		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम (हिंदी)	**अंग्रेज़ी नाम**	**थाई में अनुवादित शीर्षक**
प्रस्थानम	Prassthanam	ทายาทเลือดร้อน /था-याद-लुआद-रॉन / (गर्म खून का वारिस)
कामयाब	Kaamyaab	วัยดึกคืนฝัน /वई-दिक-घीन-फ़न / (सपनों की वापसी, बुढ़ापे के सपने)

(i) उदाहरण 1 : "प्रस्थानम (Prassthanam)" — ทายาทเลือดร้อน इस फ़िल्म के हिंदी नाम का शाब्दिक अर्थ है - "प्रस्थान" यानी यात्रा का आरंभ, लेकिन थाई अनुवाद "ทายาทเลือดร้อน" /था-याद-लुआद-रॉन / (गर्म खून का वारिस) पात्र के प्रमुख लक्षण पर आधारित है। फ़िल्म में एक राजनीतिक परिवार की कहानी दिखाई गई है, जहाँ सौतेला बेटा उत्तराधिकारी चुना जाता है, जिससे असली बेटे को गुस्सा आता है और वह हिंसा का रास्ता अपनाता है।

(ii) उदाहरण 2 : "कामयाब (Kaamyaab)" — วัยดึกคืนฝัน "कामयाब" का अर्थ है - "सफलता प्राप्त करना", लेकिन थाई अनुवाद "วัยดึกคืนฝัน" /वई-दिक-घीन-फ़न / (सपनों की वापसी, बुढ़ापे के सपने) इस फ़िल्म के नायक की विशेषता को दर्शाता है; एक वरिष्ठ अभिनेता जो वर्षों बाद वापस आता है और अपने अधूरे सपनों को पूरा करने का प्रयास करता है।

3.4 पात्र की भूमिका का रूपक करके नया नामकरण करना

कुछ फ़िल्मों के थाई नाम ऐसे रखे गए हैं, जो पात्र की भूमिका को रूपक के रूप में व्यक्त करते हैं, यानी नायक या नायिका की

विशेषता, स्वभाव या कर्मों की तुलना किसी शक्तिशाली, रहस्यमय या अमूर्त तत्त्व से की जाती है।

3.4 पात्र की भूमिका का रूपक करके नया नामकरण करना		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम (हिंदी)	**अंग्रेज़ी नाम**	**थाई में अनुवादित शीर्षक**
डॉन	Don	นักฆ่าหน้าหยก /नक-घा-ना-योक/ (खूबसूरत मगर खतरनाक)
हसीन दिलरुबा	Haseen Dillruba	กุหลาบมรณะ /कु-लाप-मौ-र-ण / (मौत का गुलाब)

(i) उदाहरण 1 : "डॉन (Don)" — นักฆ่าหน้าหยก यह नाम "Don" के नायक की भूमिका को एक रूपक में बदल देता है। "นักฆ่าหน้าหยก" /नक-घा-ना-योक/ (खूबसूरत मगर खतरनाक) या (शानदार दिखने वाला कातिल)। फ़िल्म में नायक एक खूंखार अपराधी है, जिसे पुलिस हर हाल में पकड़ना चाहती है, पर वह इतना चालाक और स्मार्ट है कि लोग उसकी असली पहचान तक नहीं जान पाते।

(ii) उदाहरण 2 : "हसीन दिलरुबा (Haseen Dillruba)" — กุหลาบมรณะ "हसीन दिलरुबा" का अर्थ है "सुंदर प्रेमिका" लेकिन थाई अनुवाद "กุหลาบมรณะ" /कु-लाप-मौ-र-ण / (मौत का गुलाब) पात्र की दोहरी भूमिका का रूपक प्रस्तुत करता है – बाहर से सौम्य, अंदर से घातक । फ़िल्म की नायिका अपनी मासूम छवि के पीछे एक जटिल साज़िश रचती है, जिसमें हत्या और छल शामिल है।

3.5 फ़िल्म के नामकरण में वस्तु या स्थान से प्रेरित नया शीर्षक

इस श्रेणी में फ़िल्मों को थाई भाषा में ऐसे नाम दिए गए हैं, जो कहानी में महत्त्वपूर्ण वस्तु या स्थान से जुड़े हुए हैं। नामकरण का उद्देश्य है - दर्शकों को कहानी के भावनात्मक या प्रतीकात्मक केंद्र से जोड़ना, भले ही वह नाम मूल शीर्षक से भिन्न क्यों न हो।

3.5 फ़िल्म के नामकरण में वस्तु या स्थान से प्रेरित नया शीर्षक		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम (हिंदी)	**अंग्रेज़ी नाम**	**थाई में अनुवादित शीर्षक**
लगान : वन्स अपॉन अ टाइम इन इंडिया	Lagaan : Once Upon a Time in India	แผ่นดินของข้า /फैन-दिन-खौंग-खा/ (मेरी धरती)
धनक	Dhanak	สายรุ้ง /साई-रुंग/ (इंद्रधनुष)

(i) उदाहरण 1 : "लगान: वन्स अपॉन अ टाइम इन इंडिया" — แผ่นดินของข้า फ़िल्म का मूल नाम "लगान" कर (टैक्स) से संबंधित है। लेकिन थाई अनुवाद "แผ่นดินของข้า" /फैन-दिन-खौंग-खा/ (मेरी धरती) इस कहानी के भावनात्मक और राष्ट्रीय गौरव के पक्ष को उजागर करता है। कहानी एक गाँव की है, जो अंग्रेज़ों द्वारा थोपे गए लगान (कर) का विरोध करता है और क्रिकेट मैच के माध्यम से अपने सम्मान और ज़मीन की रक्षा करता है।

(ii) उदाहरण 2 : "धनक" - สายรุ้ง (इंद्रधनुष) यह फ़िल्म एक नेत्रहीन लड़के और उसकी बहन की भावनात्मक यात्रा को दिखाती है। थाई शीर्षक "สายรุ้ง" /साई-रुंग/ (इंद्रधनुष) प्रतीक है उस आशा का, जिसे बहन ने अपने भाई से वादा किया था कि वह एक दिन इंद्रधनुष देख पाएगा। यह नाम वस्तुतः कहानी के भावनात्मक केंद्र "आशा और सपना" को दर्शाता है।

3.6 फ़िल्म की विषयवस्तु पर आधारित नया शीर्षक

इस प्रकार का शीर्षक थाई भाषा में कहानी के मुख्य विषय, भावनात्मक तत्त्व या सारवस्तु से प्रेरित होता है। मूल नाम से भिन्न होते हुए भी यह शीर्षक दर्शकों को फ़िल्म की दिशा और भावना का स्पष्ट संकेत देता है।

3.6 फ़िल्म की विषयवस्तु पर आधारित नया शीर्षक		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम (हिंदी)	**अंग्रेज़ी नाम**	**थाई में अनुवादित शीर्षक**
हम साथ-साथ हैं	Hum Saath-Saath Hain	ครอบครัวเดียวกัน /क्रॉप-क्रूआ-डियाव-कन/ (एक ही परिवार)
ज़िन्दगी ना मिलेगी दोबारा	Zindagi Na Milegi Dobara	ชีวิตเดียวเพื่อให้สุด /जी-वित-डियाव-फ़ियाव-हाई-सुत/ (एक ही जीवन है इसे पूरी तरह जियो)

(i) उदाहरण 1 : "हम साथ-साथ हैं" — ครอบครัวเดียวกัน / क्रॉप-क्रूआ-डियाव-कन/ (एक ही परिवार) यह शीर्षक फ़िल्म की कहानी को दर्शाता है, जो एक बड़े संयुक्त परिवार की है, जहाँ प्रेम और एकता हुआ करती थी, लेकिन एक षड्यंत्र और गलतफ़हमियों के कारण परिवार में दरार आ जाती है। "ครอบครัวเดียวกัน" का अर्थ है - "एक ही परिवार", जो फ़िल्म के सार्वभौमिक पारिवारिक मूल्य को दर्शाता है।

(ii) उदाहरण 2 : "ज़िन्दगी ना मिलेगी दोबारा" — ชีวิตเดียวเพื่อให้สุด /जी-वित-डियाव-फ़ियाव-हाई-सुत/ मूल शीर्षक का अर्थ है - "जीवन दोबारा नहीं मिलेगा" और थाई शीर्षक "ชีวิตเดียวเพื่อให้สุด" का अर्थ है - "एक ही जीवन है, इसे पूरी तरह जियो।" यह फ़िल्म तीन दोस्तों की यात्रा और आत्म-खोज की कहानी है, जो दोस्ती, प्रेम, भय और स्वतंत्रता को दर्शाती है।

3.7 फ़िल्म की घटनाओं पर आधारित नया शीर्षक

इस प्रकार के शीर्षक फ़िल्म की मुख्य घटनाओं, संघर्ष या प्रमुख घटनाचक्र को आधार बनाकर थाई भाषा में नया नाम देते हैं, जिससे दर्शक पहले से अनुमान लगा सकते हैं कि फ़िल्म में क्या मोड़ या स्थितियाँ होंगी।

3.7 फ़िल्म की घटनाओं पर आधारित नया शीर्षक		
बॉलीवुड फ़िल्म का नाम (हिंदी)	**अंग्रेज़ी नाम**	**थाई में अनुवादित शीर्षक**
काला पत्थर	Kaala Patthar	หายนะเหมืองพิหาร /हाई-न-मुआंग-बि-हार/ (बिहार की खदान की त्रासदी)
रोमियो अकबर वाल्टर	Romeo Akbar Walter	ปฏิบัติการสะท้านแผ่นดิน /प-टि-बत-कान-स-थान-फैन-दिन/ (धरती को हिलाने वाला मिशन)

(i) उदाहरण 1 : "काला पत्थर (Kaala Patthar)" — หายนะเหมืองพิหาร इस फ़िल्म का शीर्षक थाई भाषा में बदलकर "หายนะเหมืองพิหาร" /हाई-न-मुआंग-बि-हार/ (बिहार की खदान की त्रासदी) रखा गया है, जो फ़िल्म की ट्रैजेडी और सामाजिक संघर्ष पर केंद्रित है। फ़िल्म में तीन नायकों की कहानी है - एक शर्मसार नौसेना अधिकारी, एक ईमानदार इंजीनियर और एक भगोड़ा अपराधी, जो एक साथ मिलकर लालची खदान मालिक से लड़ते हैं और एक भीषण खदान दुर्घटना में मज़दूरों को बचाने की कोशिश करते हैं।

(ii) उदाहरण 2 : "रोमियो अकबर वाल्टर (Romeo Akbar Walter)" — ปฏิบัติการสะท้านแผ่นดิน /प-टि-बत-कान-स-थान-फैन-दिन/ यह फ़िल्म 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध से पहले की एक जासूसी कहानी है। थाई शीर्षक "ปฏิบัติการสะท้านแผ่นดิน" /प-टि-बत-कान-स-थान-फैन-दिन/ (धरती को हिलाने वाला मिशन) फ़िल्म की जासूसी थ्रिलर भावना को उजागर करता है, जहाँ मुख्य पात्र तीन अलग-अलग पहचान अपनाकर एक खतरनाक मिशन पर निकलता है।

निष्कर्षतः फ़िल्म का शीर्षक एक महत्त्वपूर्ण घटक होता है, जो दर्शकों को फ़िल्म की कहानी की दिशा और विषयवस्तु का अनुमान लगाने में सहायता करता है। बॉलीवुड फ़िल्मों के शीर्षकों

को थाई भाषा में अनुवाद करने के लिए सबसे अधिक प्रयुक्त रणनीति "नया नामकरण" (नई शीर्षक रचना) है। इसका मुख्य कारण यह है कि थाईलैंड में हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं का ज्ञान सीमित है। इसलिए अनुवादकों को ऐसे शीर्षक गढ़ने की आवश्यकता होती है, जो दर्शकों के लिए समझने योग्य हों और फ़िल्म की भावना को सटीक रूप से व्यक्त कर सकें। इस नई शीर्षक-रचना में प्रमुख रूप से निम्नलिखित तत्वों को आधार बनाया जाता है - पात्रों के नाम, भूमिका और विशेषता तथा फ़िल्म की विषयवस्तु अथवा उसमें घटित घटनाएँ व प्रयुक्त वस्तुएँ। यह रणनीति सबसे अधिक उपयोग की गई। इसके बाद दूसरी सबसे अधिक प्रयुक्त रणनीति "लिप्यंतरण" पाई गई। यह इसलिए हुआ, क्योंकि स्रोत भाषा (हिंदी/अंग्रेज़ी) और लक्ष्य भाषा (थाई) के बीच सांस्कृतिक अंतर और शब्दों के अभाव के कारण अनुवादक कई बार उपयुक्त शब्द नहीं खोज पाते हैं या अनुवाद-प्रक्रिया को तेज़ करने हेतु सीधे लिप्यंतरण का सहारा लेते हैं। हालाँकि, लिप्यंतरण करते समय यह भी देखा गया कि इसमें एकरूपता की कमी पाई जाती है - कभी शब्दों का रूप बदल जाता है, कभी उच्चारण और कभी अर्थ भी विकृत हो जाते हैं। सबसे कम प्रयुक्त रणनीतियाँ हैं - आंशिक लिप्यंतरण - आंशिक उपेक्षा + बिना कोई अतिरिक्त विवरण तथा आंशिक अनुवाद + बिना कोई अतिरिक्त विवरण। ये दोनों तरीके कम प्रचलित हैं, क्योंकि ये शीर्षकों को अस्पष्ट बना देते हैं और दर्शकों को भ्रमित कर सकते हैं।

संदर्भ-सूची :

1. चलीकांच चंतचमरसर्रत्न, विदेशी एक्शन फ़िल्मों के शीर्षकों के थाई भाषा में अनुवाद की रणनीतियों का अध्ययन और विश्लेषण, (2018), आयुध्या: महाचुलालोंगकोर्न राजविद्यायलय विश्वविद्यालय, बौद्ध अध्ययन पीएच.डी. शोध प्रबंध
2. दूआंगता सुपोल, अनुवाद का सिद्धांत और रणनीतियाँ, (1988), बैंकॉक, अंग्रेज़ी विभाग, कला संकाय, चुलालोंगकोर्न विश्वविद्यालय
3. वन्ना सेंगअरामरुआंग, अनुवाद के सिद्धांत और मूल सिद्धांत, (2002), बैंकॉक, चुलालोंगकोर्न विश्वविद्यालय प्रकाशन
4. सुपवन थोंगवान, अमेरिकी हास्य फ़िल्मों के थाई शीर्षकों के अनुवाद की रणनीतियाँ, (2012), नखोन पथोम : सिलपाकोर्न विश्वविद्यालय, मास्टर ऑफ़ आर्ट्स शोध प्रबंध
5. संछवी सायबुआ, अनुवाद के सिद्धांत, (2007), बैंकॉक, थम्मसात विश्वविद्यालय प्रकाशन
6. अचछरा लाईसत्रूखलाई, अनुवाद का उद्देश्य, सिद्धांत और विधियाँ, (2000), बैंकॉक, रामकहमहेंग विश्वविद्यालय प्रकाशन
7. Bushra Ahmed & Anita Kakar, Bollywood, The Films! The Songs! The Stars! Foreword by Amitabh Bachchan, (2007), London : Penguin Random House
8. Global Trend, "Netflix", (2021). स्रोत: https://positioningmag.com/1343492.html (20 अक्टूबर 2021)
9. Hmong, "Amazon Prime", (2021), स्रोत: https://hmong.in.th/wiki/Amazon_Prime.html (20 अक्टूबर 2021)

pattamasawangsri@gmail.com
pattama.sa@cmu.ac.th

जॉ पॉल विनय और जॉ दर्बलनेट की अनुवाद-प्रविधि के आधार पर 'दास्ताँ और भी हैं' का विश्लेषण

- अंजय रंजन दास
बांग्लादेश

बांग्लादेश के राष्ट्रपिता बंगबंधु शेख मुजीबुर रहमान के नेतृत्व में महान् मुक्तियुद्ध के उपरांत सन् 1971 के 16 दिसंबर को विश्व मानचित्र पर स्वाधीन सार्वभौम 'बांग्लादेश' राष्ट्र का जन्म हुआ। बंगबंधु शेख मुजीबुर रहमान द्वारा बांग्ला भाषा में लिखित आत्मकथा 'অসমাপ্ত আত্মজীবনী'/ɔʃɔmapt̪o at̪t̪oɟiboni/ (रहमान, 2012) एक अनमोल ऐतिहासिक दस्तावेज़ है और इसका साहित्यिक मूल्य अपार है। सन् 2017 में भारत सरकार के विदेश मंत्रालय के तत्त्वावधान में भारतीय अनुवादक प्रेम कपूर द्वारा अनूदित 'दास्ताँ और भी हैं' शीर्षक से 'অসমাপ্ত আত্মজীবনী'/ɔʃɔmapt̪o at̪t̪oɟiboni/ पुस्तक का हिंदी अनुवाद प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत शोध आलेख में फ़्रांसीसी भाषा वैज्ञानिक जॉ पॉल विनय और जॉ दर्बलनेट (Vinay & Darbelnet, 2008) की अनुवाद-प्रविधि के आधार पर 'অসমাপ্ত আত্মজীবনী'/ɔʃɔmapt̪o at̪t̪oɟiboni/ (रहमान, 2012) और 'दास्ताँ और भी हैं' (रहमान, 2017) पुस्तक का तुलनात्मक शाब्दिक विश्लेषण (लेक्सिकल एनालिसिस) किया गया है।

फ़्रांसीसी भाषा वैज्ञानिक जॉ पॉल विनय (1910-1999) और जॉ दर्बलनेट (1904-1990) (Vinay & Darbelnet, 2008) ने दावा किया है कि अनुवाद की सात विधियाँ हैं और उन्होंने इन विधियों को ऐसे क्रम में व्यवस्थित किया है कि प्रत्येक विधि पिछली विधि से अधिक जटिल प्रतीत होती है। विनय व दर्बलनेट का मानना है कि प्रयोग के दौरान इन सातों विधियों में से प्रत्येक का अलग-अलग उपयोग हो सकता है अथवा एक ही अनुवाद पर एक से अधिक विधियों का उपयोग हो सकता है। उनके वर्गीकरण के आधार पर भाषा वैज्ञानिक शिशिर भट्टाचार्य्य (भट्टाचार्य्य, 2022) ने अनुवाद की सभी विधियों को क) आक्षरिक अनुवाद और ख) तिर्यक अनुवाद - दो श्रेणियों में विभाजित किया है, जो इस प्रकार है -

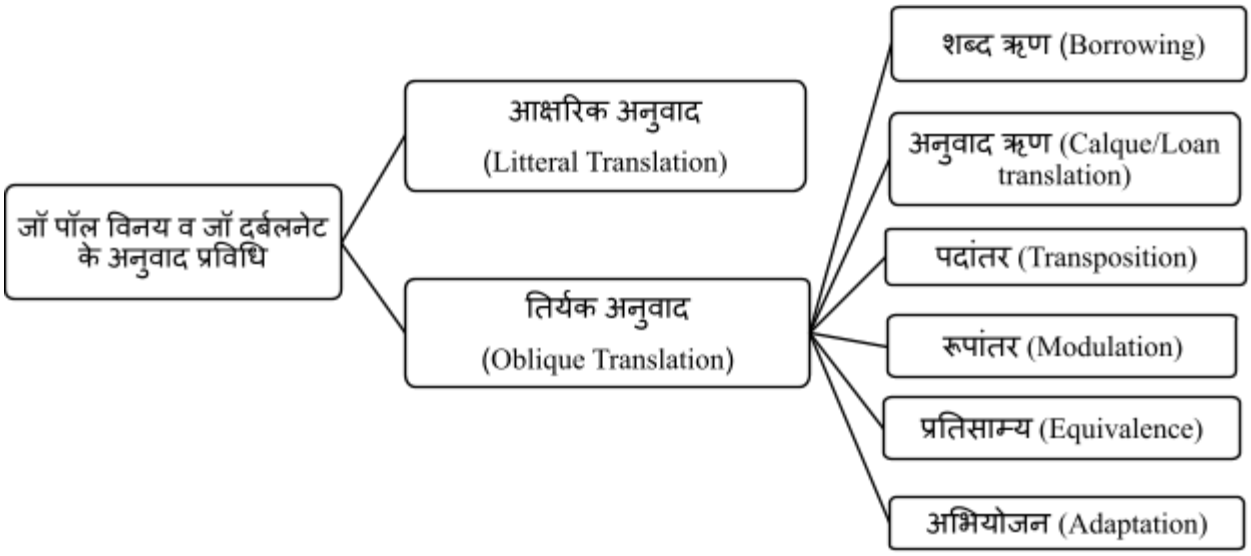

तालिका- 1: जॉ पॉल विनय और जॉ दर्बलनेट की अनुवाद-प्रविधि

क) आक्षरिक अनुवाद (Litteral Translation):

आक्षरिक अनुवाद में स्रोत रचना के अर्थ और भाषा-संरचना 'अक्षर-अक्षर' (verbatim) में प्रतिबिंबित होता है। इसमें स्रोत रचना के पाठ को तब सीधे लक्ष्य भाषा में रखा जा सकता है, जब स्रोत और लक्ष्य भाषा की शाब्दिक और व्याकरणिक संरचना समानांतर होती है अथवा संबंधित दो भाषाओं या भाषा-समूहों की अवधारणाएँ समानांतर होती हैं। मानव भाषा में प्रतिबिंबित अवधारणाओं के बीच यह जो समानता है, वह भाषा के शब्दों और संरचनाओं से भी उच्चस्तरीय वास्तविकता है, जिसे विनय व दर्बलनेट ने 'मेटालिंग्विस्टिक्स' वास्तविकता कहा है। बांग्ला और हिंदी भाषा में ऐसी समानता है। आक्षरिक अनुवाद का एक उदाहरण निम्नलिखित है -

বাংলা : উদারতা দরকার, কিন্তু নীচ অন্ত:করণের ব্যক্তিদের সাথে উদারতা দেখালে ভবিষ্যতে ভালর থেকে মন্দই বেশি হয়, দেশের ও জনগণের ক্ষতি হয়। (অসমাপ্ত আত্মজীবনী)

IPA : baŋla : ud̪art̪a d̪ɔrkar, kint̪u nic ɔnt̪okkɔroner bekt̪id̪er ʃat̪ʰe ud̪art̪a d̪ekʰale bʰobiʃʃot̪e bʰalor t̪ʰeke mond̪oi̯ beʃi hɔʲ, d̪eʃer o ɟɔngɔner kʰot̪i hɔʲ। (ɔʃɔmapt̪o at̪t̪oɟiboni)

हिंदी : उदारता आवश्यक है, किन्तु नीच अन्तःकरण के व्यक्तियों के प्रति उदारता दिखाने से भला कम, बुरा ही अधिक होता है, देश व जनता की क्षति होती है। (दास्ताँ और भी हैं)

अधिकांश अनुवाद कार्य आक्षरिक अनुवाद-प्रविधि से किया जा सकता है और किया जाता भी है। अगर किन्हीं कारणों से आक्षरिक अनुवाद संभव न हो सके, तो तिर्यक अनुवाद की आवश्यकता होती है।

2) तिर्यक अनुवाद (Oblique Translation):

दो भाषाओं के बीच मेटालिंग्विस्टिक्स और अंतरभाषात्मक समानताओं के बावजूद, स्रोत भाषा की शब्दावली और व्याकरणिक संरचना को लक्ष्य भाषा में प्रतिबिंबित करने में अनुवादक को दोनों भाषाओं के बीच कुछ अंतर (lacunae) महसूस होता है। लक्ष्य भाषा में इस अंतर को दूर करने के लिए अनुवादक को तिर्यक अनुवाद-प्रविधि का सहारा लेना पड़ता है।

ख 1. शब्द ऋण (Borrowing):

अनुवाद के दौरान ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जब स्रोत भाषा के किसी विशेष शब्द का पर्यायवाची शब्द लक्ष्य भाषा में आसानी से उपलब्ध नहीं होता है। हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि सभी स्थितियों में लक्ष्य भाषा में वह पर्यायवाची शब्द नहीं है। अनुवादक कितनी शीघ्रता से सही समय पर सही शब्द ढूँढ पाएँगे, यह अनुवादक की भाषा की पकड़ पर निर्भर करता है। ऐसी स्थिति में स्रोत भाषा के शब्द को शब्द ऋण के रूप में सीधे अनुवाद में प्रयोग किया जाता है। 'सॉरी', 'रेस्टोरेंट', 'ऑपरेशन', 'फ़ंड' आदि अंग्रेज़ी भाषा के कई शब्दों को शब्द ऋण के रूप में बांग्ला और हिंदी शब्दकोश में शामिल किया गया है।

ख 2. अनुवाद ऋण (Calque/Loan translation):

बांग्ला भाषा के 'আকাশচুমব্ী ভবন' /akaʃcumbi bʰɔbon/, 'মুঠোফোন' /mutʰopʰon/, 'অনুবীক্ষণ' /onubikkʰɔn/ शब्द अंग्रेज़ी भाषा के 'Skyscraper', 'Mobile Phone', 'Microscope' शब्दों के अनुवाद-ऋण के उदाहरण हैं और हिंदी भाषा के 'अश्रु गैस', 'भाई-भतीजावाद' शब्द अंग्रेज़ी भाषा के 'Tear gas', 'Nepotism' शब्दों के अनुवाद-ऋण के उदाहरण हैं। उपरोक्त सभी अनुवाद-ऋण शब्द अब बांग्ला और हिंदी शब्दकोश का हिस्सा बन गए हैं। अनुवाद करते समय इनका उपयोग किया जा सकता है तथा नए अनुवाद-ऋण शब्द भी बनाए जा सकते हैं।

अनुवाद-ऋण दो प्रकार के होते हैं: 1. शाब्दिक ऋण (Lexical) और 2. संरचनात्मक ऋण (Structural)। बांग्ला भाषा के 'অনুবীক্ষণ' /onubikkʰɔn/ शब्द और हिंदी भाषा के 'अश्रु गैस' शब्द शाब्दिक ऋण के उदाहरण हैं। अंग्रेज़ी Washing machine का बांग्ला अनुवाद 'কাপড় ধোয়ার মেশিন' /kapoɽ d̪ʰoʷar meʃin/ अथवा हिंदी में 'कपड़े धोने की मशीन' संरचनात्मक ऋण के उदाहरण हैं।

ख 3. पदांतर (Transposition):

पदांतर से तात्पर्य एक पद या वाक्यांश के स्थान पर दूसरे पद या वाक्यांश का प्रयोग या किसी विशेष वाक्य-विन्यास संरचना के स्थान पर किसी अन्य वाक्य-विन्यास संरचना का प्रयोग करने से है। इसे संरचनात्मक परिवर्तन भी कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए, मान लेते हैं कि निम्नलिखित क) और ख) दो अलग-अलग दैनिक बांग्ला समाचार-पत्रों की सुर्खियाँ हैं।

1) আমি আবার ফিরে আসবো! রূপগঞ্জে পরাজিত

पर्‌াথর্ীর ঘোষণা। IPA: /ami abar pʰire aʃbo! rupogɔnɟe pɔraɟit̪o prart̪ʰir gʰoʃona l/ (हिंदी अनुवाद : मैं फिर वापस आऊँगा ! रूपगंज में पराजित प्रत्याशी की घोषणा।)

2) রূপগঞ্জে পরাজিত পর্‌াথর্ীর পর্‌ত্যাবতর্‌নের ঘোষণা। IPA: /rupogɔnɟe pɔraɟit̪o prart̪ʰir prot̪t̪abɔrt̪oner gʰoʃona l/

(हिंदी अनुवाद : रूपगंज में पराजित प्रत्याशी की प्रत्यावर्तन की घोषणा।)

पहले शीर्षक में 'আমি আবার ফিরে আসবো' /ami abar pʰire aʃbo/ 'मैं फिर वापस आऊँगा' एक क्लॉज़ (Clause) है और दूसरे शीर्षक में 'পর্‌ত্যাবতর্‌ন'/prot̪t̪abɔrt̪on/ 'प्रत्यावर्तन' एक नाउन फ्रेज़ (Noun Phrase) है। अर्थात् एक व्याकरणिक इकाई के स्थान पर दूसरी इकाई का प्रयोग किया जा रहा है।

हिंदी में 'गार्गी ने कहा कि वह वापस आ सकती है' के स्थान पर 'गार्गी ने अपनी वापसी निश्चित की है' का प्रयोग पदांतर या संरचनात्मक परिवर्तन का एक उदाहरण है।

ख 4. रूपांतर (Modulation):

रूपांतर में संरचनात्मक परिवर्तन के अलावा अर्थ और शैली में भी उल्लेखनीय परिवर्तन होते हैं। रूपांतर को भावानुवाद (semiosis) या छाया अनुवाद (Shadow translation) भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें द्योतक (Signifier) और द्योतित (Signified) दोनों संरचनाएँ बदल जाती हैं। यदि आक्षरिक अनुवाद, शब्द-ऋण, अनुवाद-ऋण और पदांतर में से कोई भी अनुवादक की ज़रूरतों को पूरा करने में सक्षम नहीं होते हैं अर्थात् जब इन चारों विधियों के उपयोग के बाद भी लक्ष्य रचना अस्वीकार्य रह जाती है, तब रूपांतर की आवश्यकता होती है। बांग्ला 'না গেলে কি হয় না?' /na gele ki hɔʲ na?/ अथवा हिंदी 'मत जाओ तो नहीं होगा ?' वाक्यांश के अंग्रेज़ी अनुवाद में अनुवादक अगर You better not go! अभिव्यक्ति का इस्तेमाल करते हैं, तो यह रूपांतर का उदाहरण होगा। यहाँ स्रोत वाक्य द्वैत नञ्चर्थकतापूर्ण प्रश्नवाचक वाक्य है। लक्ष्य अनुवाद में द्वैत नञ्चर्थकता को दूर करके यह ना बोधक आज्ञासूचक वाक्य बना है। मूल की तुलना में लक्ष्य रचना में अनेक शैलीगत और अर्थगत परिवर्तन होने के कारण इसे 'रूपांतर' कहा जा रहा है। अंग्रेज़ी वाक्यांश The moment I saw you का बांग्ला अनुवाद हो सकता है 'যে মুহূতের্‌ আপনাকে দেখলাম' কিংবা 'যখন আপনাকে দেখলাম'/'ɟe muhurt̪e apnake d̪ekʰlam' kiŋba 'ɟɔkʰon apnake d̪ekʰlam'/ और हिंदी अनुवाद हो सकता है 'जिस क्षण आपको देखा' अथवा 'जब आपको देखा'। पहले वाले आक्षरिक अनुवाद हैं और दूसरे वाले थोड़ा रूपांतर हैं, क्योंकि 'যে মুহূতের্‌' /ɟe muhurt̪e/ के बदले में 'যখন'/ɟɔkʰon/ का और 'जिस क्षण' के बदले में 'जब' का उपयोग किया गया है।

ख 5. प्रतिसाम्य (Equivalence):

एक ही अनुभव या घटना को अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग तरीकों से व्यक्त किया जा सकता है। कहावतें प्रतिसाम्य के अन्यतम उदाहरण हैं।

तालिका- 2: तुलनात्मक कहावतें		
বাংলা IPA: /baŋla/	हिंदी	अंग्रेज़ी
অক্কা পাওয়া /ɔkka pao̯ʷa/	चल बसना	Kick the bucket
চোরে চোরে মাসতুতো ভাই /core core maʃt̪ut̪o bʰai̯/	चोर-चोर मौसेरे भाई	Birds of the same feather flock together
জোর যার মুল্লুক তার /ɟor ɟar mulluk t̪ar /	जिसकी लाठी उसकी भैंस	Might is right
যেমন কমর্‌ তেমন ফল /ɟæmon kɔrmo t̪æmon pʰɔl /	जैसी करनी वैसी भरनी	Tit for tat
নাচতে না জানলে উঠান বাঁকা /nact̪e na ɟanle utʰan bãka /	नाच न आवे आँगन टेढ़ा	A bad workman always quarrels with his tools
খালি কলসি বাজে বেশি' /kʰali kɔlʃi baɟe beʃi /	अधजल गगरी छलकत जाए	Empty vessels sound much

ख 6. अभियोजन (Adaptation):

हर भाषा किसी-न-किसी संस्कृति की गोद में जन्म लेती है। सभी संस्कृतियाँ समान रूप से रूढ़िवादी नहीं हैं। स्रोत भाषा की संस्कृति के कुछ ऐसे पहलू हो सकते हैं, जो लक्ष्य भाषा की संस्कृति में बिल्कुल भी अनुवादित नहीं हो सकते हैं। स्रोत रचना की संस्कृति और लक्ष्य रचना की संस्कृति के बीच के अंतर को ध्यान में रखते हुए, अनुवादक को ऐसे तरीके से अनुवाद करना होता है, जो लक्ष्य भाषा के पाठक के लिए स्वीकार्य हो। अनुवाद की इस पद्धति को 'अभियोजन' कहा जाता है। मान लीजिए कि मूल कृति में 'खो-खो' खेल का उल्लेख है, लेकिन लक्ष्य भाषा की संस्कृति में ऐसा कोई खेल नहीं है। अनुवादक अगर 'खो-खो' खेल के स्थान पर आवश्यकता के अनुसार टिप्पणी जोड़के 'कबड्डी' खेल का उल्लेख करते हैं, तो यह अभियोजन का उदाहरण होगा।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि ऊपर वर्णित सात अनुवाद विधियों में से पहली दो विधियाँ अर्थात् शब्द-ऋण और अनुवाद-ऋण विधियाँ पूरी तरह से शब्द-कोश केंद्रित हैं, तथापि शब्द चुनाव के क्षेत्र में अन्य विधियों का भी उपयोग करना असंभव नहीं है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख में आँकड़ों के रूप में स्रोत रचना से शब्दों का यादृच्छिक चयन (Random Selection) करके बांग्ला शब्दकोश (चौधुरी, 2021) के आधार पर शब्दों की व्युत्पत्ति का निर्णय किया गया है। इसके बाद शब्दों की लक्ष्य रचना में प्रयुक्त हिंदी पर्यायवाची शब्दों की व्युत्पत्ति हिंदी शब्दकोश (पाण्डेय, 2019) के आधार पर निर्णय करके विनय व दर्बलनेट (Vinay & Darbelnet, 2008) की अनुवाद प्रविधि के आधार पर अनुवाद में अपनाई गई विधि का निर्धारण किया गया है।

आँकड़ों के संग्रह और प्रस्तुतीकरण का लघु उदाहरण

सारणी -1: स्रोत (बांग्ला) और लक्ष्य (हिंदी) रचना के शब्दों की तुलनात्मक सूची

उৎস রচনা: বাংলা ' অ স মা প্ ত আত্মজীবনী' IPA: /ut̪ʃ rɔcona baŋla ɔ ʃ ɔ m a p t̪ o at̪t̪oɟiboni/			लक्ष्य रचनाः हिंदी दास्ताँ और भी हैं			
	উৎস রচনায় বয্বহৃত বাংলা শব্দ IPA:/ut̪ʃ rɔconaʲ bæbohrit̪o baŋla ʃɔbd̪o/	উৎপত্তি /ut̪pɔt̪t̪l/	लक्ष्य रचना में प्रयुक्त हिंदी शब्द	शब्द का स्रोत	लक्ष्य रचना में प्रयुक्त शब्द के संभावित पर्यायवाची शब्द और स्रोत	जॉ पॉल विनय व जॉ दर्बलनेट के अनुवाद प्रविधि
1	অক্ষত /ɔkkʰɔt̪o/	সংস্কৃত /ʃɔŋskrit̪o/	सही-सलामत	अरबी	अक्षत (संस्कृत) सकुशल (संस्कृत)	रूपांतर
2	অত্যাচার /ot̪t̪acar/	সংস্কৃত /ʃɔŋskrit̪o/	अत्याचार	संस्कृत	जुल्म (अरबी)	आक्षरिक
3	অপারেশন /ɔpareʃon/	Bs‡iwR /iŋreɟi/	ऑपरेशन	अंग्रेज़ी	शल्योपचार (संस्कृत)	शब्द ऋण

4	কাঁদানে গ্যাস /kãd̪ane gæʃ/	স ং স্ কৃ ত - ইংরেজি /ʃɔŋskrit̪o -iŋre□i/	अश्रु गैस	संस्कृत-अंग्रेज़ी	-	अनुवाद ऋण
5	তোষামোদ /t̪oʃamod̪/	फারসি /pʰarsi/	चापलूसी	फ़ारसी	चाटुकारिता (संस्कृत) खुशामद (फ़ारसी)	आक्षरिक
6	ফোটর্ /pʰort/	ইংরেজি /iŋreɟi/	फ़ोर्ट	अंग्रेज़ी	किला (अरबी)	शब्द ऋण
7	বোকা /boka/	দেশি /d̪eʃi/	नादान	फ़ारसी	मूर्ख (संस्कृत) बेवकूफ़ (फ़ारसी+अरबी) मूढ़ (संस्कृत)	रूपांतर
8	ময়ানিফেস্টো /mænipʰest/	ইংরেজি /iŋreɟi/	मैनिफ़ेस्टो	अंग्रेज़ी	घोषणा-पत्र (संस्कृत)	शब्द ऋण
9	সব্জনপরীতি /ʃɔɟonprit̪i/	সংস্কৃত /ʃɔŋskrit̪/	भाई-भतीजावाद	हिंदी	-	अनुवाद ऋण
10	হুঁশিয়ার /hu□ʃʲiar/	फারসি /pʰarsi/	आगाह	फ़ारसी	सावधान (संस्कृत) जागरूक (संस्कृत) सतर्क (संस्कृत) वाकिफ़ (अरबी)	रूपांतर

आँकड़ों का विश्लेषण

भट्टाचार्य (2013) के अनुसार, अधिकांश भारतीय भाषाओं की तुलना में बांग्ला भाषा में संस्कृत शब्दों का प्रयोग अधिकतर स्वाभाविक लगता है। विशेषकर अरबी-फ़ारसी के शब्द बांग्ला की तुलना में हिंदी के मिज़ाज के अधिक अनुकूल हैं। स्रोत रचना 'অসমাপ্ত আত্মজীবনী' /ɔʃɔmapt̪o at̪t̪oɟiboni/ (रहमान, 2012) और लक्ष्य रचना 'दास्ताँ और भी हैं' (रहमान, 2017) के 100 आँकड़ों के व्युत्पत्ति-विश्लेषण से पता चलता है कि स्रोत भाषा बांग्ला की तुलना में लक्ष्य भाषा हिंदी में संस्कृत ऋण शब्दों का उपयोग अरबी और फ़ारसी ऋण शब्दों की तुलना में कम है।

आँकड़े विश्लेषण चार्ट - 1

	व्युत्पत्ति के अनुसार विभिन्न भाषाओं से आगत शब्द					कुल आँकड़े
	संस्कृत	अरबी	फ़ारसी	अंग्रेज़ी	अन्य	
উৎস রচনা: বাংলা /ut̪ʃ rɔcona baŋla/ 'অসমাপ্ত আত্মজীবনী' / ɔʃɔmapt̪o at̪t̪oɟiboni/	66	8	9	12	5	100
लक्ष्य रचनाः हिंदी दास्ताँ और भी हैं	28	41	16	7	8	100

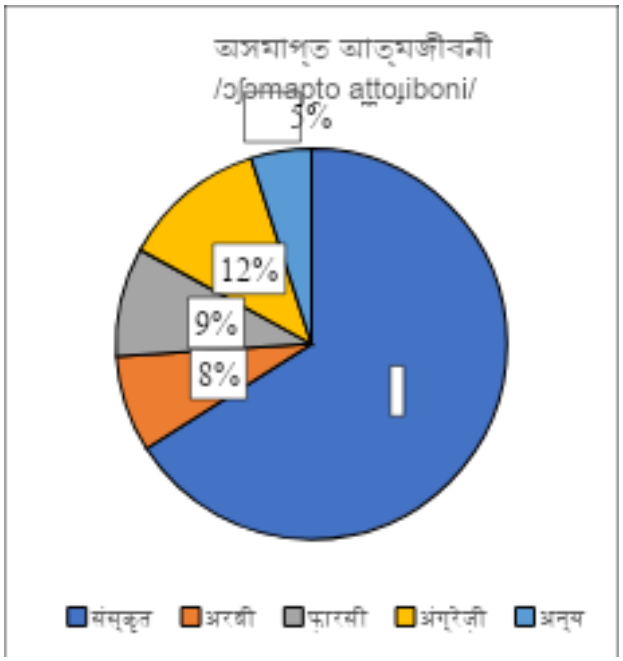

पाई चार्ट 1

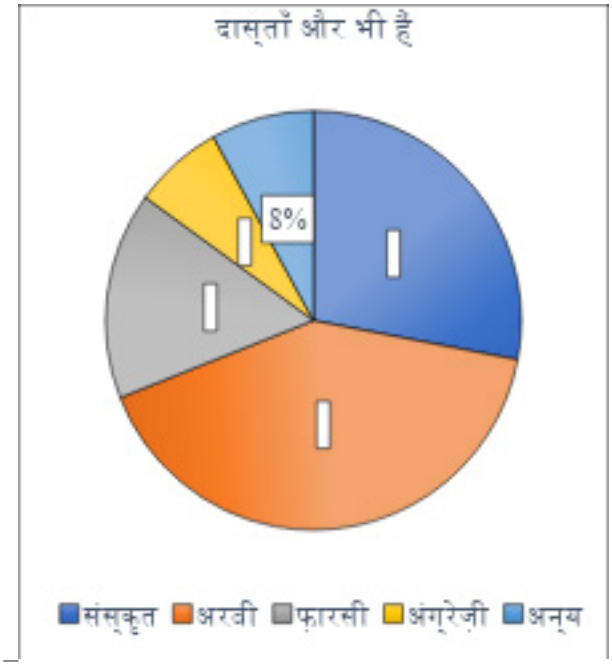

पाई चार्ट 2

पाई चार्ट 1: स्रोत रचना में विभिन्न भाषाओं से आगत शब्द का प्रतिशत

पाई चार्ट 2: लक्ष्य रचना में विभिन्न भाषाओं से आगत शब्द का प्रतिशत

स्रोत (बांग्ला) और लक्ष्य (हिंदी) रचना के शब्दों की तुलनात्मक सूची से हम देख सकते हैं कि स्रोत रचना के 'অত্যাচার'/ottacar/,'আভিজাত্য'/abʰiɟatto/,'গবেষণা'/gɔbeʃona/,'চেষ্টা'/ceʃta/,'নির্বাচন'/nirbacɔn/, 'মরুভূমি'/morubomi/, 'ষড়যন্ত্র'/ʃɔroɟɔntro/, 'স্মরণশক্তি'/ʃoronʃɔkti/ आदि बांग्ला शब्दों के अनुवाद के लिए हिंदी भाषा में व्यापक रूप से इस्तेमाल किए जाने वाले अरबी-फ़ारसी ऋण शब्द जैसे- 'ज़ुल्म', 'रईसी', 'शोध', 'कोशिश', 'चुनाव', 'रेगिस्तान', 'साज़िश', 'याददाश्त' आदि उपलब्ध रहने के बावजूद भी अनुवादक ने इनका इस्तेमाल न करके स्रोत रचना के संस्कृत ऋण शब्दों को ही ग्रहण करके लक्ष्य रचना में आक्षरिक अनुवाद किया है।

स्रोत रचना में प्रयुक्त अंग्रेज़ी भाषा के 'Operation', 'Fund', 'Fort', 'Manifesto', 'Philosopher', 'Vice-Chancellor' आदि शब्दों के अनुवाद के लिए हिंदी भाषा में 'शल्योपचार', 'कोष', 'किला', 'घोषणा-पत्र', 'दार्शनिक', 'कुलपति' आदि शब्द उपलब्ध रहने के बावजूद भी अनुवादक ने इनका इस्तेमाल न करके स्रोत रचना में प्रयुक्त शब्दों को ही शब्द ऋण के रूप में ग्रहण करके लक्ष्य रचना में उपयोग किया है।

अंग्रेज़ी भाषा के Tear gas और Nepotism शब्द के कृत ऋण अनुवाद के रूप में 'अश्रु गैस' और 'भाई-भतीजावाद' शब्द को हिंदी शब्दकोश में शामिल किया गया है। स्रोत रचना में प्रयुक्त 'কাঁদানে গ্যাস' /kãdane gæʃ/, 'স্বজনপ্রীতি'/ʃɔɟonpriti/ बांग्ला शब्दों के अनुवाद के लिए अनुवादक ने लक्ष्य रचना में 'अश्रु गैस' और 'भाई-भतीजावाद' शब्दों का उपयोग किया है।

स्रोत रचना में प्रयुक्त 'অক্ষত'/ɔkkʰɔto/,'অনুভব'/onubʰɔb/,'ব্যাঘাত'/bægʰat/,'বোকা'/boka/ आदि संस्कृत निष्ठ बांग्ला शब्दों के अनुवाद के लिए संस्कृतनिष्ठ हिंदी शब्द जैसे - 'सकुशल', 'अनुभव', 'बाधा', 'मूर्ख' आदि शब्द उपलब्ध रहने के बावजूद भी इनका इस्तेमाल न करके अनुवादक ने लक्ष्य रचना में अरबी-फ़ारसी ऋण शब्द जैसे - 'सही-सलामत'(अरबी), 'महसूस'(अरबी), 'ख़लल'(अरबी), 'नादान'(फ़ारसी) आदि का इस्तेमाल किया है।

आँकड़े विश्लेषण चार्ट - 2

लक्ष्य रचना 'दास्ताँ और भी हैं' में जॉ पॉल विनय व जॉ दर्बलनेट के अनुवाद प्रविधि का प्रयोग			
आक्षरिक	शब्द ऋण	अनुवाद ऋण	रूपांतर
84	6	2	8
कुल आँकड़े 100			

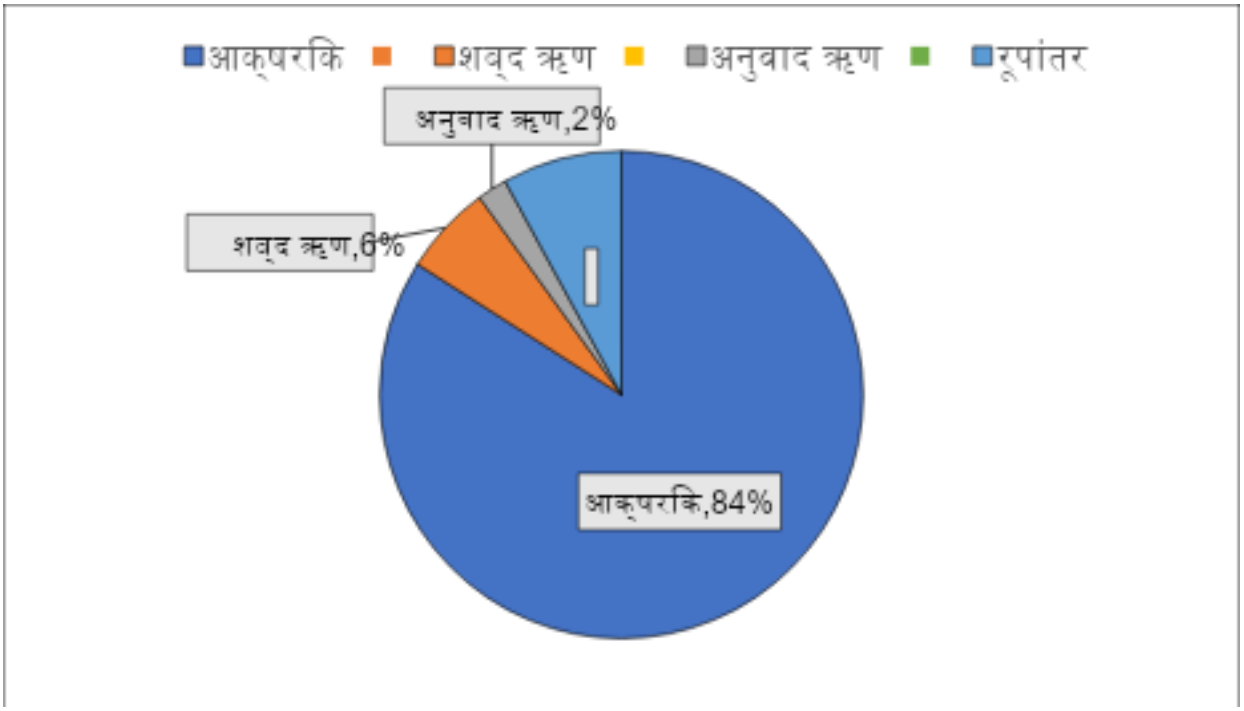

पाई चार्ट – 3

लक्ष्य रचना 'दास्ताँ और भी हैं' में जॉ पॉल विनय व जॉ दर्बलनेट की अनुवाद-प्रविधि का प्रयोग

प्रस्तुत शोध आलेख में फ्रांसीसी भाषा वैज्ञानिक जॉ पॉल विनय और जॉ दर्बलनेट (Vinay & Darbelnet, 2008) की सात अनुवाद-प्रविधियों के आधार पर बांग्ला भाषा में लिखित स्रोत रचना 'অসমাপ্ত আত্মজীবনী'/ɔʃɔmapt̪o at̪t̪oɟiboni/ (रहमान, 2012) का हिंदी अनुवाद 'दास्ताँ और भी हैं' (रहमान, 2017) पुस्तक के शाब्दिक विश्लेषण से यह नतीजा प्राप्त होता है कि लक्ष्य रचना में 84 प्रतिशत आक्षरिक अनुवाद विधि का, 6 प्रतिशत शब्द ऋण विधि का, 2 प्रतिशत अनुवाद ऋण विधि का और 8 प्रतिशत रूपांतर विधि का उपयोग किया गया है। लक्ष्य रचना में पदांतर, प्रतिसाम्य और अभियोजन इन तीन विधियों का प्रयोग नहीं हुआ है। आँकड़ों के यादृच्छिक चयन पद्धति इसका कारण होना असंभव नहीं है यद्यपि बांग्ला-हिंदी सहोदरी भाषा होने के कारण लक्ष्य रचना में आक्षरिक अनुवाद के अलावा दूसरी विधियों का प्रयोग दुर्लभ होना स्वाभाविक है। उल्लेखनीय है कि अगर आँकड़ों के आकार में परिवर्तन किया जाए, तो प्राप्त नतीजों में तब्दीली होना असंभव नहीं है, जो किसी भी अन्य शोध की तरह प्रस्तुत शोध आलेख की भी सीमा है।

संदर्भ-सूची :

1. चौधुरी, जा, *'বাংলা একাডেমি আধুনিক বাংলা অভিধান'* (2021) बांग्ला अकादमी आधुनिक बांग्ला शब्दकोश
2. बांग्ला अकादमी, ढाका
3. पाण्डेय, अ. कु, *'वर्धा हिन्दी शब्दकोश'* , (2019) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
4. भट्टाचार्य्य, शि, *'অন্তরঙ্গ বয্াকরণ'* [अंतरंग व्याकरण], (2013) नवयुग प्रकाशनी, ढाका
5. भट्टाचार्य्य, शि, 'অনুবাদের পদ্ধতি: তিযর্ক অনুবাদের ষড়যন্তর্' (2022), अनुवाद विधि : तिर्यक अनुवाद की साज़िश
6. तत्त्वतालाश, आदर्श, ढाका, संख्या 5, 9-25
7. रहमान, शे. मु, *'অসমাপ্ত আত্মজীবনী'* [असमाप्त आत्मजीवनी], (2012) द यूनिवर्सिटी प्रेस लिमिटेड, ढाका
8. रहमान, शे. मु, *'दास्ताँ और भी है'*, (2017) राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली
9. Vinay, J.P. & Darbelnet, J.. A methodology for translation, In Munday, J. (ed.). *Introducing Translation Studies* (2008), Routledge, New York,55-59.

anjoyhindi.ranjon@gmail.com

विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस
की शोध पत्रिका
2025

पता : इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423, मॉरीशस
Address : Independence Street, Phoenix 73423, Mauritius

फ़ोन / Phone : +230-6600800
ई-मेल / E-mail : info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
डेटाबेस / Database : www.vishwahindidb.com

मुद्रण : स्टार पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, भारत
Print : Star Publications PVT LTD, Bharat
info@starpublic.com & info@hindibook.com

कवर डिज़ाइन : डॉ. प्रकाश झगारू, मॉरीशस
Cover Design : Dr. Prakash Jhugaroo, Mauritius
pjhugaroo@gmail.com